श्री सेठिया जैन ग्रन्थमाला पुष्प नं० १०१

श्री जैन सिद्धान्त बोल संग्रह

चतुर्थ भाग

(बोल नं० ७७० से ८२१ तक)

संयोजक
भैरोदान सेठिया

प्रकाशक
अगरचन्द भैरोदान सेठिया
जैन पारमार्थिक संस्था
बीकानेर

विक्रम संवत् १९९९	न्योछावर २) रु०	प्रथम आवृत्ति
वीर संवत् २४६९	ज्ञान खाते में लगेगा	५००

सेठिया प्रिंटिंग प्रेस, बीकानेर ता० ३०—३—४२

संक्षिप्त विषयसूची

पुस्तक मिलने का पता—

(१) पुस्तक प्रकाशन समिति
यूल प्रेस बिल्डिंग्स,

(२) अगरचन्द भैरोदान सेठिया
जैन पारमार्थिक संस्था,

बीकानेर (राजपूताना)

भैरोदान सेठिया

सस्थापक–

सेठिया जैन पारमार्थिक संस्था, बीकानेर

(जन्म– विजयादशमी सम्वत् १९२३)

श्री सेठिया जैन पारमार्थिक संस्था, बीकानेर

पुस्तक प्रकाशन समिति

१ अध्यक्ष- श्री दानवीर सेठ भैरोदानजी सेठिया।

२ मन्त्री- श्री जेठमलजी सेठिया।

३ उपमन्त्री- श्री माणकचन्दजी सेठिया।

'साहित्य भूषण'

लेखक मण्डल

४ श्री इन्द्रचन्द्र शास्त्री B A. शास्त्राचार्य्य, न्यायतीर्थ, वेदान्तवारिधि।

५ श्री रोशनलाल चपलोत B. A. न्यायतीर्थ काव्यतीर्थ, सिद्धान्ततीर्थ, विशारद।

६ श्री श्यामलाल जैन M. A. न्यायतीर्थ, विशारद।

७ श्री घेवरचन्द्र बाँठिया 'वीरपुत्र' सिद्धान्तशास्त्री, न्यायतीर्थ, व्याकरणतीर्थ

श्री जैन सिद्धान्त बोल संग्रह, तीसरे भाग पर

सम्मतियाँ

श्री सौधर्म वृहत्तपागच्छीय भट्टारक श्रीमज्जैनाचार्य व्याख्यान वाचस्पति विजययतीन्द्र सूरीश्वरजी महाराज साहेब, ता० २-१-४२।

सर्वज्ञप्ररूपित जैनागम सूत्र सागर में आत्म हितकारक बोल-रत्नों का संग्रह अगाध है, उनका पार पाना शक्ति से परे है। सेठियाजी ने उन मे से चुन कर कुछ उपयुक्त बोलो का संग्रह 'श्री जैन सिद्धान्त बोल संग्रह' नाम से खण्डश प्रकाशित करना आरम्भ किया है। उसका तीसरा भाग हमारे सामने है, जो प्रथम, द्वितीय भाग से कुछ अधिक बड़ा है। इसमें आठ, नव और दस बोलों का संग्रह है। यह विशेष रुचिकर है। सरलता एवं अपनी सज धज में यह अद्वितीय है। सेठियाजी का यह प्रयत्न सराहनीय है। भविष्य मे साहित्यिक दृष्टि से सर्व साधारण को विशेष लाभकारक होगा।

अनेकान्त, सरसावा, अक्टूबर १९४२

श्री जैन सिद्धान्त बोल संग्रह—प्रथम भाग, द्वितीय भाग, संग्रहकर्ता- भैरोदानजी सेठिया बीकानेर। प्रकाशक-- सेठिया पारमार्थिक संस्था, बीकानेर। पृष्ठ संख्या प्रथम भाग ५१२, द्वितीय भाग ४७५। मूल्य सजिल्द दोनों भागों का क्रमश. १), १।) रु०।

इस ग्रन्थ में आगमादि ग्रन्थो पर से सुन्दर वाक्यों का संग्रह हिन्दी भाषा में किया हुआ है। दोनों भागों के बोलों (वाक्यों) का संग्रह ५६८ है। ये बोल संग्रह श्वेताम्बर साहित्य के अभ्यासियों तथा विद्यार्थियों के लिए बड़े काम की चीज है। ग्रन्थ उपयोगी और संग्रह करने योग्य है।

सेठिया भैरोदानजी बीकानेर ने अपनी स्थावर सम्पत्ति का ट्रस्ट बालपाठशाला विद्यालय, नाइट कालेज, कन्या पाठशाला, ग्रन्थालय और मुद्रणालय, इन छ संस्थाओं के नाम कर दिया है। उसी फण्ड से प्रस्तुत दोनों भागों का प्रकाशन हुआ है। आपकी यह उदार वृत्ति और लोकोपयोगी कामों में दान की आम रुचि सराहनीय तथा अन्य धनिक श्रीमानों के लिए अनुकरणीय है।

परमानन्द जैन शास्त्री

जैन प्रकाश बम्बई, तारीख १७ जनवरी, १९४२ शनिवार।

जैन सिद्धान्त बोल संग्रह भाग १ २. ३। प्रथम भाग पृ० सं० ५३० मूल्य १)। द्वितीय भाग पृ सं.४७५ मू० १॥),तृतीय भाग पृ० स० ४८८ मू० २)। सग्रहकर्ता—श्री भैरोदानजी सेठिया,प्रकाशक— अगरचंद भैरोदान सेठिया जैन पारमार्थिक सस्था बीकानेर।

जैन समाज श्रीयुत् सेठियाजी के नाम से भलीभाति परिचित है। इस समय वे वयोवृद्ध है। घर का भार पुत्रों को सौंप कर वे सदा धर्मकार्यो में रत रहते है। यह ग्रन्थ उनके लम्बे समय के साधु समागम और शास्त्राभ्यास का परिणाम है। प्राचीन काल मे ग्रन्थ रचना की एक विशिष्ट पद्धति थी जिसके अनुसार सख्याक्रम से तत्वो का सग्रह किया जाता था। ठाणाग सूत्र आदि इसके नमूने हैं। बोल संग्रह की रचना भी इसी पद्धति पर हुई है। पहिले भाग मे पाच संख्या तक के ४२३ तत्त्वों का, दूसरे भाग मे ६ और ७ सख्या वाले १४० तत्त्वों का और तीसर भाग में २०६। कुल मिलाकर तीनों भागो में ७६६ तत्वों का समावेश है। ग्रन्थ की सामग्री आगमों से ली गई है मगर श्री सेठिया जी ने तत्त्वों की विशद व्याख्याएं की है। इस प्रकार ये ग्रन्थ तत्त्वों की Directory के रूप में बन जाने से जिज्ञासुओं के लिए बडे सहायक सिद्ध होंगे। अन्य भाग भी शीघ्र प्रकाशित होने वाले हैं।

इन ग्रन्थों के कद और उपयोगिता को देखते हुए मूल्य बहुत ही कम रक्खा गया है। यह प्रशंसनीय वस्तु है, इसका कारण सेठियाजी की धर्मवृत्ति के अतिरिक्त और क्या हो सकता है। वे तत्त्वाभिलाषी और जिज्ञासु है उसी प्रकार अन्य जिज्ञासु बन्धुओं की जिज्ञासा तृप्ति के भी उत्सुक हैं। यही कारण है कि उनकी आर्थिक सहायता से बीकानेर में कई पारमार्थिक सस्थाए वर्षों से चल रही है। उसी के द्वारा यह प्रकाशन कार्य भी हो रहा है। इन सभी धर्म प्रवृत्तियों के लिए जैन समाज श्री सेठियाजी का ऋणी है और रहेगा। सभी लायब्रेरियों, संस्थाओं और तत्वचितकों के पास ऐसे उपयोगी ग्रन्थों का होना अनिवार्य है।

स्थानकवासी जैन, अहमदाबाद ता० २२-१-४२

श्री जैन सिद्धान्त बोल संग्रह, तृतीय भाग। सग्रहकर्त्ता- भैरोदानजी शेठिया प्रकाशक— श्री शेठिया जैन पारमार्थिक सस्था बीकानेर। पाकु पुठु, पृष्ठ संख्या ५६० कीमत २) रुपया।

शेठिया जैन ग्रथमाला नुं आ १०० मुं पुष्प छे तेथी जणाय छे के श्री शेठियाजीए जैन साहित्यनी वृद्धिमा पोतानो अमर फालो आप्यो छे अने हजु आपता रहे एम आपणे ईच्छीए। तेओनुं एक एक पुष्प जैन साहित्य बगीचा मा सुवास रेडे छे एम कहवुं जोडए।

श्री ठाणाग सूत्रना बोल सग्रह नुं बीजु पुस्तक आप्या बाद टुक समय मा ज आ त्रीजु पुस्तक जैन समाज ने जोवा मले छे ए आनदनो विषय छे। आज नी मोघवारीए पुस्तकमा

जणाव्या प्रमाणे पड़तर करतां ओछी कीमत राखी छे अे तेनी विशिष्टता छे।

प्रथम ना वे भाग मा १ थी ७ बोलो नुं विवरण आपवामां आव्युं हतुं। आ ग्रंथ मा ८-९-अने १० अेम त्रण वधु बोलोनुं विवरण आप्यु छे। आमा साधु समाचारी साथे संबंध धरावती संख्या बंध वावतो आवेलो छे। साथे साथे मनुष्य भव ना दश दृष्टातो, विस्तृत आठ कर्मावली (शका समाधान साथे), दश श्रावको नु वर्णन वगेरे मुमुक्षु माटे वैराग्य प्रेरक छे। आ उपरान्त रत्नावलि आदि विविध तपो कोठाओ द्वारा समजाववा मा आव्या छे। छपाई काम, कागल अने गेटअप स्वच्छ अने आकर्षक छे। प्रयास अति आवकारपात्र छे। वीजा भागो शीघ्र प्रगटे एम इच्छीए

प्रमाण के लिये उद्धृत ग्रन्थों की सूची

ग्रन्थ नाम	कर्त्ता	प्रकाशक एवं प्राप्ति स्थान
अनुयोग द्वार	मलधारी हेमचन्द्रसूरि	आगमोदय समिति गोपीपुरा, सूरत
अभिधान चिन्तामणि	हेमचन्द्राचार्य	
आगमसार (हस्तलिखित)	देवचन्दजी कृत	
आवश्यक निर्युक्ति	मलयगिरि सूरि	आगमोदय समिति सूरत।
उत्तराध्ययन	शातिसूरि कृत वृहद्वृत्ति	देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तको द्वार संस्था बम्बई।
औपपातिक	अभयदेव सूरि टीका	आगमोदय समिति सूरत।
कर्मग्रन्थ पाँचवा भाग	देवेन्द्र सूरि रचित मलयगिरि सूरि विवरण सहित	आत्मानन्द जैनसभा भावनगर।
चार शिक्षाव्रत	पूज्यश्री जवाहिरलालजीमहाराज।	हितेच्छु श्रावक मडल रतलाम।
जीवाभिगम	मलयगिरि टीका	देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तकोद्धार सस्था।
जैनविद्या	डा० बनारसी दास	लाहोर।
ज्ञाताधर्म कथांग	अभयदेव सूरि टीका	आगमोदय समिति।
ज्ञाताधर्म कथाग	शास्त्री जेठालाल हरिभाईकृत। गुजराती अनुवाद	जैनधर्म प्रसारक सभा भावनगर।
ज्ञानार्णव	शुभचन्द्राचार्य कृत	रायचन्द्र जैन शास्त्रमाला बम्बई।
ठाणांग	अभयदेव सूरि टीका	आगमोदय समिति।
तत्वार्थाधिगम भाष्य	श्रीउमास्वाति कृत	मोतीलाल लाधाजी पूना।
दशवैकालिक	मलयगिरि टीका	आगमोदय समिति सूरत।
दशाश्रुतस्कन्ध	उपाध्याय श्री आत्मारामजी महाराजकृत हिन्दी अनुवाद	जैन शास्त्रमाला कार्यालय सैदमिट्ठा लाहोर।

धर्मबिन्दु प्रकरण	हरिभद्राचार्य कृत मुनिचन्द्राचार्य विहित वृत्ति युक्त	आगमोदय समिति सूरत ।
नन्दी सूत्र	मलयगिरि टीका	आगमोदय समिति सूरत ।
नवपद प्रकरण	उपाध्याय यशोदेव विरचित बृहद्वृत्ति युक्त	देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तकोद्धार संस्था बम्बई
निशीथ चूर्णि		
पन्नवणा	मलयगिरि टीका	आगमोदय समिति सूरत ।
पन्नवणा	पं० भगवानदास हर्षचन्द्र कृत गुजराती अनुवाद ।	जैन सोसाइटी अहमदावाद
प्रवचन सारोद्धार	नेमिचन्द्र सूरि कृत, सिद्धसेनशेखर रचित वृत्ति सहित ।	दे० ला० जैन पुस्तकोद्धार संस्था, बम्बई ।
प्रश्न व्याकरण	अभयदेव सूरि टीका	आगमोदय समिति सूरत ।
बृहत्कल्प भाष्य निर्युक्ति सहित	मलयगिरि और आचार्य क्षेमकीर्ति कृत वृत्ति सहित	आत्मानन्द जैन सभा भावनगर।
भगवती	अभयदेव सूरि टीका	आगमोदय समिति सूरत ।
भावना शतक	शतावधानी मुनि श्री रत्नचन्द्रजी महाराज	
व्यवहार सूत्र	माणेकमुनि द्वारा सम्पादित	
श्राद्धविधि प्रकरण	रत्नशेखर सूरि कृत	श्रावक हीरालाल हंसराज जामनगर ।
शान्त सुधारस	उपाध्याय श्रीविनय विजयजी	जैनधर्म प्रसारक सभा भावनगर ।
समवायांग	अभयदेव सूरि टीका	आगमोदय समिति सूरत
सम्बोध सत्तरी	हरिभद्रसूरि कृत	
सूर्यप्रज्ञप्ति	अमोलक ऋषिजी कृत हिन्दी अनुवाद	राजा बहादुर लाला सुखदेव सहाय ज्वालाप्रसाद, महेन्द्रगढ़
हरिभद्रीयावश्यक भद्रबाहु निर्युक्ति तथा भाष्य युक्त	हरिभद्र सूरि टीका	आगमोदय समिति सूरत ।
त्रिषष्टि शलाकापुरुष चरित्र	हेमचन्द्राचार्य कृत	जैनधर्म प्रसारक सभा भावनगर ।

दो शब्द

"श्री जैन सिद्धान्त बोल संग्रह" का चौथा भाग पाठकों के सामने प्रस्तुत है। इस में ग्यारह से लेकर चौदह तक चार बोल देने का विचार था किन्तु पुस्तक के छपते समय कुछ ऐसे नए बोल मिले जिन्हें ले लेना अत्यावश्यक समझा गया। उन के कारण तेरहवें बोल संग्रह तक ही पुस्तक के पृष्ठ पांच सौ के लगभग हो गए। विस्तृत अकाराद्यनुक्रमणिका और विषय सूची आदि अलग थे। इस लिए चौदहवें बोल संग्रह को पाँचवें भाग के लिए छोड़ दिया गया है।

तीसरे भाग की अपेक्षा चौथे भाग में पृष्ठों की संख्या कुछ अधिक है। कागज और जिल्द के सामान का मूल्य भी उत्तरोत्तर बढ़ रहा है। इस लिए इस में खर्च अधिक पड़ा है। फिर भी कीमत तीसरे भाग जितनी ही रक्खी गई है।

पुस्तक छप जाने पर जो अशुद्धियाँ हमारी नजर में आ गई उन्हें वहीं पर हाथ से सुधार दिया गया है। इस कारण अलग शुद्धिपत्र देने की आवश्यकता नहीं समझी गई।

ग्यारह अंग और बारह उपांगों की विषय सूची, बारह भावनाएँ, बारह भावव्रत तथा बहुत से कथानक और दृष्टान्त इस भाग की विशेषता है।

आशा है, पहिले भागों की तरह यह भी पाठकों को पसन्द आएगा।

पाँचवा भाग लगभग लिखा जा चुका है। छठा भी शीघ्र तैयार हो जाएगा। कागजों की तंगी के कारण उनके छपने में थोड़ा विलम्ब हो सकता है तथापि यथा शक्य,उन्हें शीघ्र प्रकाशित करने का प्रयत्न किया जाएगा।

पुस्तक प्रकाशक समिति

आभार प्रदर्शन

जैन धर्म दिवाकर पण्डितप्रवर उपाध्याय श्री आत्माराम जी महाराज ने चौथे भाग की पाण्डुलिपि को आद्योपान्त सुन कर आवश्यक संशोधन करवाया है। इसी प्रकार पूज्य श्री जवाहरलालजी महाराज के सुशिष्य मुनि श्री पन्नालालजी महाराज ने भी बहुत परिश्रम पूर्वक पुस्तक का आद्योपान्त ध्यान से निरीक्षण किया है। उपरोक्त दोनों मुनिवरों की अमूल्य सहायता प्रथम भाग से लेकर अब तक बराबर मिल रही है। उनके उपकार के लिए कृतज्ञतापूर्ण हृदय से हम कामना करते हैं कि उनका सहयोग सदा इसी प्रकार मिलता रहे।

परम प्रतापी जैनाचार्य पूज्य श्री जवाहरलाल जी महाराज के बीकानेर या भीनासर विराजने से भी हमें बहुत लाभ हुआ है। पुस्तक छपते समय या लिखते समय जो भी समस्या उपस्थित हुई, उनके पास जाने से सुलझ गई। साधु साध्वी के आचार से सम्बन्ध रखने वाली बहुत सी बातों का स्पष्टीकरण उन्हीं की कृपा से हुआ है। पूज्य श्री के

परम शिष्य पण्डितरत्न युवाचार्य श्री गणेशीलालजी महाराज, पण्डित प्रवर मुनि श्री सिरेमलजी महाराज व पण्डितरत्न मुनि श्री जवरीमलजी महाराज ने भी आवश्यकता पड़ने पर अपना अमूल्य समय दिया है। इस उपकार के लिए हम उपरोक्त मुनिवरों के सदा आभारी रहेंगे।

श्री श्वे. स्थानकवासी जैन कान्फरेंस, बम्बई को पुस्तक की पाण्डुलिपि भेजी गई थी। इसे प्रकाशित करने की अनुमति देने के लिए हम कान्फरेंस के भी आभारी हैं।

पण्डित श्री सुबोधनारायण झा, व्याकरणाचार्य तथा पं० हनुमत्प्रसादजी साहित्य-शास्त्री बोल सग्रह विभाग में कार्य कर रहे हैं। इन्होंने पुस्तक के लिए काफी परिश्रम उठाया है। इसके लिए दोनों महानुभावों को हार्दिक धन्यवाद है।

महावीर जयन्ती
२४६९
विक्रम सम्वत् १९९९

पुस्तक प्रकाशक समिति
ऊन प्रेस, बीकानेर

विषय सूची

अकाराद्यनुक्रमणिका

ह

श्री जैन सिद्धान्त बोल संग्रह

(चतुर्थ भाग)

मङ्गलाचरण

तित्थयरे भगवंते अणुत्तरपरक्कमे अमिअनाणी ।
तिन्ने सुगइगइगए, सिद्धिपहपएसए वंदे ॥ १ ॥
वंदामि महाभागं महामुणिं महायसं महावीरं ।
अमरनररायमहिअं तित्थयरमिमस्स तित्थस्स ॥ २ ॥
इक्कारस वि गणहरे पवायए पवयणस्स वंदामि ।
सव्वं गणहरवंसं वायगवंसं पवयणं च ॥ ३ ॥
अत्थं भासइ अरहा, सुत्तं गंथंति गणहरा निउणं ।
सासणस्स हियट्ठाए, तओ सुत्तं पवत्तेइ ॥ ४ ॥
अर्हद्वक्त्रप्रसूतं गणधररचितं द्वादशाङ्गं विशालं,
चित्रं बह्वर्थयुक्तं मुनिगणवृषभैर्धारितं बुद्धिमद्भिः ।
मोक्षाग्रद्वारभूतं व्रतचरणफलं ज्ञेयभावप्रदीपं,
भक्त्या नित्यं प्रपद्ये श्रुतमहमखिलं सर्वलोकैकसारं ॥ ५ ॥

भावार्थ- सर्वोत्कृष्ट पराक्रम वाले, अमितज्ञानी, संसारसमुद्र से तरे हुए, सुगति गति अर्थात् मोक्ष में गए हुए, सिद्धिपथ अर्थात् मोक्षमार्ग के उपदेशक तीर्थङ्कर भगवान् को वन्दन हो ॥ १॥

महाभाग्य, महामुनि, महायश, देवेन्द्र और नरेन्द्रों द्वारा पूजित तथा वर्तमान तीर्थ के प्रवर्तक भगवान् महावीर को वन्दन हो ॥ २ ॥

प्रवचन अर्थात् आगमों का सूत्र रूप से उपदेश देने वाले गौतम आदि ग्यारह गणधरों को, सभी गणधरों के वंश अर्थात् शिष्य-परम्परा को, वाचकवंश को तथा आगम रूप प्रवचन को वन्दना करता हूँ ॥ ३ ॥

अरिहन्त भगवान् केवल अर्थ कहते हैं, गणधर देव उसे द्वादशाङ्गी रूप सूत्रों में गूंथते हैं। अत एव शासन का हित करने के लिए सूत्र प्रवर्तमान हैं ॥ ४ ॥

मैं समस्त श्रुत-आगम का भक्तिपूर्वक आश्रय लेता हूँ; क्योंकि वह तीर्थङ्करों से अर्थरूप में प्रकट होकर गणधरों के द्वारा शब्द-रूप में ग्रथित हुआ है। वह श्रुत विशाल है अतएव बारह अङ्गों में विभक्त है। वह अनेक अर्थों से युक्त होने के कारण अद्भुत है, अतएव उसको बुद्धिमान् मुनि पुङ्गवों ने धारण कर रक्खा है। वह चारित्र का कारण है, इस लिए मोक्ष का प्रधान साधन है। वह सब पदार्थों को प्रदीप के समान प्रकाशित करता है, अतएव वह सम्पूर्ण संसार में अद्वितीय सारभूत है ॥ ५ ॥

ग्यारहवां बोल संग्रह

७७०- भगवान् महावीर के ग्यारह नाम

चौवीसवें तीर्थङ्कर श्रमण भगवान् महावीर के अनेक नाम हैं। कृष्ण नगर,लाहोर से प्रकाशित 'जैनविद्या' नामक त्रैमासिक पत्रिका में पं० बेचरदास जी दोशी का एक लेख प्रकाशित हुआ है। उसमें भगवान् के नामों का शास्त्रों का प्रमाण देकर विवेचन किया है। उपयोगी जान कर वह यहाँ उद्धृत किया जा रहा है।

हमारे जैन समाज में भगवान् महावीर के दो नाम ही प्रायः प्रसिद्ध हैं। एक महावीर दूसरा वर्द्धमान। इन में भी महावीर नाम अधिक प्रसिद्ध है। प्रस्तुत निबन्ध में प्रभु महावीर के दूसरे नामों की चर्चा की गई है, जो आगम ग्रन्थ और जैनकोशों में मिलते हैं।

आचाराङ्ग सूत्र में लिखा है--समणे भगवं महावीरे कासवगोत्ते। तस्स णं इमे तिण्णि णामधेज्जा एवं आहिज्जंति अम्मापिउसंतिए वद्धमाणे। सहसमुदिए समणे। भीमभयभेरवं उरालं अचेलयं परीसहं सहइ त्ति कट्टु देवेहिं से णामं कयं समणे भगवं महावीरे।" (चौवीसवां अध्ययन-भावना)

श्रमण भगवान् महावीर काश्यप गोत्र के थे। उनके तीन नाम इस प्रकार कहे जाते हैं-

(१) वर्धमान- माता पिता ने उनका नाम वद्धमाण-वर्धमान किया था।

(२) श्रमण-सहज-स्वाभाविक-गुण समुदाय के कारण उनका दूसरा नाम समण-श्रमण हुआ।

(३) महावीर—अचेलकता अर्थात् नग्नता का कठोर परिषह जिसे बड़े बड़े शक्तिशाली पुरुष भी सहन नहीं कर सकते हैं उसको भी भगवान् वर्धमान ने समभाव पूर्वक सहन किया इस कारण देवों ने उनका नाम 'महावीर' रक्खा ।

(४) विदेह—विदेह दिन्न। आचाराङ्ग सूत्र के चौवीसवें अध्ययन में अन्यस्थल पर लिखा है —'तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे णाये, णायपुत्ते, णायकुलणिव्वत्ते, विदेहे, विदेह-दिण्णे, विदेहजच्चे, विदेहसूमाले । सूत्र, १७।

उक्त पाठ में भगवान् को 'विदेह' नाम से सम्बोधित किया है । भगवान् का विदेह नाम भगवान् की माता के कुल के साथ संबन्ध रखता है । माता त्रिशला 'विदेह' कुल की थी ।

आचाराङ्ग सूत्र में लिखा है—'समणस्स भगवओ महावीरस्स अम्मा वासिट्ठगोत्ता । तीसे णं तिण्णि नामधेज्जा एवं आहिज्जंति तिसला ति वा, विदेहदिन्ना ति वा, पियकारिणि ति वा। राजा चेटक वैशाली नगरी की गणसत्ता का प्रमुख था। वैशाली नगरी विदेह देश का एक अवयवरूप थी। राजा चेटक का घराना 'विदेह' नाम से ख्यात था इसी कारण चेटक की बहिन और प्रभु महावीर की माता त्रिशला के भी विदेह के घराने की होने से विदेहदिन्ना—विदेह दत्ता नाम हुआ और विदेहदिन्ना के पुत्र भगवान् वर्धमान का नाम विदेह और विदेहदिन्न पड़ा ।

(५) णाय, णायपुत्त—ज्ञात, ज्ञात पुत्र—माता के कुल के कारण भगवान् महावीर का नाम विदेह पड़ा। इसी प्रकार पिता के वंश के कारण प्रभु का नाम णाय—ज्ञात अथवा णायपुत्त—ज्ञातपुत्र हुआ। उक्त स्थल के आचाराङ्ग सूत्र के पाठ में लिखा है— 'णाए-णाय-पुत्ते, णायकुलनिव्वत्ते' । भगवान् के पिता राजा सिद्धार्थ को भी णायकुलनिव्वत्ते—ज्ञातकुल—निर्वृत्तः अर्थात् 'ज्ञात कुल में

उत्पन्न हुआ' इस नाम से सूत्रकार ने संबोधित किया है।

बौद्धों के मूल पिटक ग्रन्थों में 'दीर्घतपस्सी निग्गंठो नातपुत्तो' वाक्य का उल्लेख अनेक स्थलों में आता है। उस वाक्य का 'नातपुत्त' पद भगवान् महावीर का सूचक है और 'दीर्घ तपस्सी' पद भगवान् की कठोरतम तपोमय साधना का द्योतक है, तथा 'निग्गंठ' पद भगवान् के असाधारण अपरिग्रह व्रत को दर्शाता है। जैन परंपरा की अपेक्षा बौद्ध परंपरा में भगवान् के लिए 'नातपुत्त' नाम विशेष प्रतीत होता है।

जैन अङ्ग सूत्रों में 'नायाधम्म कहा' नाम का छठा अङ्ग है। हमारी समझ में 'नायाधम्म कहा' का आद्य 'नाय' पद भगवान् के नाम का द्योतक है। नाय अर्थात् ज्ञात-ज्ञातपुत्र-महावीर, उनसे कही हुई धम्म कहा- नायधम्मकहा- ज्ञातधर्म कथा। दिगंबर परंपरा में 'नायधम्मकहा' को 'नाथधर्म कथा' अथवा 'ज्ञातृ धर्म कथा' कहते हैं। 'नाथधर्म कथा' का आद्य 'नाथ' शब्द भगवान् महावीर का ही बोधक है। 'नात' नाम भगवान् के पितृ वंश का है उसी नाम का 'नाथ' उच्चारणांतर है। प्राकृत नात, शौरसेनी नाथ। 'नात' शब्द ही किसी प्रकार 'नाथ' रूप में परिणत हो गया है। धनंजय नाममाला के प्रणेता महाकवि धनंजय ने भगवान् को 'नाथान्वय' कहा है। 'नाथान्वय' का अर्थ जिनका वंश नाथ हो अर्थात् नाथ वंश के। भगवान् के पितृकुल का नाम 'ज्ञात-नात' है और बौद्ध पिटकों में भी 'नातपुत्त' नाम से भगवान् की ख्याति है इसी कारण कविराज धनंजय सूचित 'नाथान्वय' पद का आद्य 'नाथ' और प्रस्तुत 'ज्ञात' दोनों को समानाक्षर और समानार्थ समझना चाहिए। 'त' और 'थ' का अक्षर भेद, उच्चारणांतर का ही परिणाम है। यदि 'नाथ' और 'नात' पद समान न समझें तो 'नाथान्वय' का अर्थ ही ठीक न होगा। 'नाथधर्म कथा' का दूसरा नाम ज्ञातृ धर्म

कथा भी दिगम्बर परंपरा में प्रसिद्ध है। ज्ञातृ अर्थात् ज्ञात–ज्ञात पुत्र से कही गई धर्म कथा ज्ञातधर्म कथा। श्वेतांबर परंपरा के आगमों में भगवान् को 'णाय' अथवा 'णात' तथा 'णायपुत्त' अथवा 'णातपुत्त' नाम से कहा गया है। मैं समझता हूँ कि 'णाय' की अपेक्षा 'णात' पाठ विशेष प्राचीन है। 'णात' का संस्कृत परिवर्तन 'ज्ञात' तो होता ही है परन्तु 'ज्ञातृ' भी हो सकता है। 'पितृ' पद का प्राकृत परिवर्तन 'पित' भी होता है और 'पिय' भी। उसमें भी 'पिय' को अपेक्षा 'पित' उच्चारण भाषादृष्टि से विशेष प्राचीन है। इसी प्रकार प्राकृत 'णात' का संस्कृत परिवर्तन श्वेतांबरों ने 'ज्ञात' किया तो दिगम्बरों ने 'ज्ञातृ' किया। इनमें मात्र अक्षर भेद है किन्तु अर्थ भेद नहीं है। गोम्मटसार के रचयिता ने 'नाथधर्म कथा' नाम लिख कर 'नात' पद को अपनाया है तो राजवार्तिक कार ने (भट्ट अकलंक देव ने) 'ज्ञातृधर्म कथा' कह कर 'ज्ञातृ' पद की स्वीकृति की है। इस तरह दिगम्बर परंपरा में 'ज्ञात' और 'ज्ञातृ' दोनों का प्रचार हुआ है। बौद्ध पिटकों के प्रकांड पंडित और इतिहासज्ञ श्री राहुल सांकृत्यायन कहते हैं कि वर्तमान में विहार में 'झथरिया' गोत्र के क्षत्रिय लोग विद्यमान हैं। वे झथरिया लोग भगवान् महावीर के वंशज हैं। 'ज्ञात' का प्राकृत में एक उच्चारण 'जात' भी होता है और 'ज्ञातृ' का 'जातार'। श्री राहुलजी का मत है कि गोत्र सूचक 'झथरिया' शब्द का संबंध उक्त 'जात' अथवा 'जातार' के साथ है। जैनसंघ का कर्तव्य है कि भगवान् के वंशजों की परिशोध करके उनके अभ्यु-दयार्थ सक्रिय प्रवृत्ति करें।

(६) वेसालिय–वैशालिक। सूत्र कृताङ्ग (अध्ययन द्वितीय उद्देशक तृतीय) में भगवान् को 'वेसालिय' नाम से सूचित किया है। 'विशाला' विहार की एक प्राचीन नगरी का नाम है। वर्तमान

में इसका नाम वसाडपट्टी है। भगवान् की माता 'विशाला' नगरी की रहने वाली थी। इस कारण माता त्रिशला का अपर नाम 'विशाला' हुआ और विशाला के पुत्र का नाम वैशालिक पड़ा, विशालायाः अपत्यम्—वैशालिकः प्रा० वेसालिय। जैसे माता के 'विदेह' देश के साथ सम्बन्ध रखने से भगवान् का नाम 'विदेह' पड़ा ठीक उसी प्रकार माता का 'विशाला' नगरी के साथ सम्बन्ध होने के कारण भगवान् का नाम वैशालिक हुआ।

(७) मुणि—मुनि और माहण—ब्राह्मण। आचाराङ्ग सूत्र में 'मुणिणा हु एतं पवेदितं' (अध्ययन पाँचवां उद्देशक चौथा), मुणिणा पवेदितं (अध्ययन पाँचवां उद्देशक तीसरा), 'मुणिणा हु एवं पवेइयं (अध्ययन दूसरा उद्देशा तीसरा) इस प्रकार अनेक जगह भगवान् को मात्र 'मुणि—मुनि' शब्द से संबोधित किया है। मालूम होता है कि भगवान् का वाचा संयम असाधारण था। साढ़े बारह वर्ष तक भगवान् ने अपनी आत्मशुद्धि के लिए जो कठोरतम साधना की, इसमें भगवान् ने वचन प्रयोग बहुत कम किया था इस प्रकार भगवान् अपने असाधारण मौन गुण के कारण 'मुनि' शब्द से ख्यात हुए। इसी कारण भगवान् कि ख्याति 'माहण—ब्राह्मण शब्द से भी हुई थी। आचाराङ्ग सूत्र में लिखा है कि 'माहणेणं मतिमता' (अध्ययन ६, उद्देशक १—२—३—४) अर्थात् 'मतिमान् ब्राह्मण ने भगवान् वीर ने इस प्रकार कहा है' ऐसा लिख कर सूत्रकार ने भगवान् को 'ब्राह्मण' शब्द से भी संबोधित किया है। ब्राह्मण शब्द का मूल 'ब्रह्म' शब्द है। ब्रह्म वेत्ति स ब्राह्मणः अर्थात् जिसने ब्रह्म को जाना वह ब्राह्मण।

बहुत पुराने समय के ब्राह्मण ब्रह्मचारी थे वा सर्वथा समभावी—अहिंसक सत्यवादी और अपरिग्रही थे। परन्तु भगवान् के जमाने में ब्राह्मण वर्ग विकृत हो गया था पशुयागादि में हिंसा

करता था, दक्षिणा के लालच से मूढ़ होकर राजाओं की वा धनी लोगों की खुशामद करता था इस प्रकार भगवान् के समय का ब्राह्मण अपकृष्ट हो गया था। भगवान् के समय की समाज व्यवस्था का हूबहू चित्र जैन सूत्रों में और बौद्ध पिटक ग्रन्थों में खींचा हुआ है। उसको देखने से उस समय के ब्राह्मण की अपकृष्ट दशा का ठीक ठीक ख्याल आता है। उस अपकृष्ट ब्राह्मण को उत्कृष्ट बनाने के लिए भगवान् सच्चे ब्राह्मण हुए और भगवान् ने अपने आचरणों से और वचनों से अपने अनुयायियों को सच्चे ब्राह्मण का स्वरूप भी बताया। इसी कारण भगवान् 'ब्राह्मण' नाम से ख्यात हुए। 'ब्राह्मण' का पुराना प्राकृत उच्चारण 'बह्मण' बंभण' और 'माहण' होता है। जैन व्याख्याकारों ने 'मा+हण अर्थात् 'मत हनो' का भाव 'माहण शब्द से दिखाया है और जो हनन हिंसा नहीं करता है अथवा 'हनो' शब्द का उच्चारण नहीं करता है उसको 'माहण' बताया है। परन्तु व्याकरण की दृष्टि से देखा जाय तो 'ब्राह्मण' शब्द का संबंध 'ब्रह्म' शब्द के साथ है न कि 'मा+हन' के साथ।

कोशकार महाकवि धनंजय ने अपनी धनंजय माला में भगवान् महावीर के नामों का उल्लेख इस प्रकार किया है—

"सन्मतिः, महतिवीरः, महावीरोऽन्त्यकाश्यपः।
नाथान्वयः, वर्धमानः, यत्तीर्थमिह सांप्रतम् ॥ ११६॥

उक्त श्लोक में महावीर के छः नाम बताए हैं—सन्मति। महति वीर। महावीर। अन्त्यकाश्यप, नाथान्वय और वर्धमान। इनमें से महावीर, वर्धमान और नाथान्वय नामों का वृत्तान्त ऊपर हो चुका, शेष तीन का इस प्रकार है—

(८) सन्मति—'सती मतिर्यस्य स सन्मतिः' अर्थात् जिसकी मति संद्रूप है, अचल है, शाश्वत है, सत्यरूप है, विभात्रों के कारण

जिसकी मति में (प्रज्ञा में) लव मात्र का भी परिवर्तन नहीं हो सकता है वह सन्मति है। आचार्य सिद्धसेन दिवाकर ने अपने रचित गहन ग्रन्थ का नाम भगवान् के नाम पर 'सन्मति प्रकरण' रक्खा है। इससे मालूम होता है कि भगवान् का 'सन्मति' नाम अधिक प्राचीन है।

(९) महतिवीर- व्याख्या पन्नत्ति (भगवती सूत्र) आदि अङ्ग-सूत्रों में और औपपातिक प्रभृति उपाङ्ग सूत्रों में स्थल स्थल पर लिखा है कि 'समणे भगवं महावीरे तीसे महति महालियाए परिसाए धम्मं आइक्खई" अर्थात् श्रमण भगवान् महावीर उस महातिमहान (महान् से महान्) सब से बड़ी परिषद् को धर्म कहते हैं" इस प्रकार भगवान् की धर्मदेशना-सभा को सर्वत्र महातिमहान(बड़ी से बड़ी)बताया है। कोषकार धनंजय ने भगवान् की महातिमाहन (महति महालिया) धर्म परिषद् को ध्यान में रख कर भगवान् को भी महति वीर' नाम से ख्यात किया हो ऐसा मालूम होता है अथवा 'महति' पद को सप्तम्यन्त समझा जाय तो उसका अर्थ 'बड़े में' होगा और समस्त महति + वीर 'महतिवीर' का अर्थ बड़े लोगों में वीर (सब से बड़ा वीर) होगा। इस पक्ष में 'महावीर' और महतिवीर के अर्थ में कुछ भी अन्तर न होगा। बड़े पुरुषों के अनेक नामों का खास खास हेतु होता है इस दृष्टि से देखा जाय तो'महतिवीर'नाम का सम्बन्ध भगवान्की महातिमहान धर्म-परिषद् के साथ जोड़ना युक्ति संगत मालूम होता है।

(१०)अन्त्यकाश्यप—सूत्रकृताङ्ग सूत्र के तृतीय अध्ययन, तृतीय उद्देशक में भगवान को 'कासव- काश्यप' शब्द से सम्बोधित किया है और दशवैकालिक सूत्र (अध्ययन चतुर्थ) में भगवान को 'कासव- काश्यप' शब्द से विशिष्ट करके भी संबोधित किया है। भगवान का गोत्र 'काश्यप' था और भगवान काश्यप

गोत्र के होकर अन्तिम तीर्थंकर हुए थे इससे कोषकार ने भगवान को 'अन्त्यकाश्यप' नाम दिया है। सूत्र-आगम निर्दिष्ट उल्लेखों से भगवान का केवल 'काश्यप' नाम ही प्रचलित था ऐसा मालूम होता है और कोषकार के निर्देश से 'अन्त्यकाश्यप' नाम भी जान पड़ता है।

कविराज धनंजय की तरह महावैयाकरण आचार्य हेमचन्द्र ने भी अपने 'अभिधान चिन्तामणि नाम माला' कोष में भगवान् वीर के अनेक नाम बताए हैं—

" वीरः चरमतीर्थकृत् " ॥ २९ ॥

" महावीरः वर्धमानः, देवार्यः ज्ञातनन्दनः " ॥३०॥

(प्रथम देवाधिदेव कांड)

वीर, चरम तीर्थकृत्, महावीर, वर्धमान, देवार्य और ज्ञातनन्दन ये छः नाम आचार्य हेमचन्द्र ने बताये हैं। इनमें से वीर, महावीर, वर्धमान नामों का वृत्तांत पहले लिखा गया है। 'ज्ञातनन्दन' नाम ज्ञातपुत्र का ही पर्याय है। प्रभु अंतिम तीर्थंकर होने से जैसे धनंजय ने उनको 'अन्त्यकाश्यप' कहा वैसे ही आचार्य हेमचन्द्र ने उनको 'चरमतीर्थकृत्' कहा। चरम-अंतिम, तीर्थकृत्-तीर्थंकर। व्युत्पत्ति की दृष्टि से 'अन्त्यकाश्यप' और 'चरम तीर्थकृत्' का अर्थ समान है।

(११) देवार्य—आचार्य हेमचन्द्र ने भगवान का एक नवीन नाम देवार्य बताया है। इसका अर्थ करते हुए आचार्य हेमचंद्र लिखते हैं कि—"देवाश्चासौ आर्यश्च देवार्यः। देवैः अर्यते-अभिगम्यते इति वा। देवानां इन्द्रादीनां अर्यः स्वामी इति वा"—(उक्त श्लोक टीका) हेमचन्द्राचार्य के कथनानुसार 'देवार्य' शब्द में 'देव आर्य' और 'देव अर्य' इस प्रकार दो विभाग से पदच्छेद हैं। 'देवार्य' का देवरूप आर्य अथवा देवों के आद-

रणीय आर्य अथवा देवों का स्वामी ऐसे तीन अर्थ होते हैं और ये तीनों अर्थ जैन दृष्टि के अनुसार महावीर में सुसंगत भी हैं। आवश्यक सूत्र की, हरिभद्रसूरि (विक्रम संवत् नवम शताब्दी) रचित वृत्ति में भगवान महावीर का सविस्तर चरित लिखा हुआ है। उसमें कई जगह भगवान् को 'देवज्ज-- देवार्य' पद से संबोधित किया है और आचार्य हेमचन्द्र ने अपने योगशास्त्र में भी भगवान को 'देवार्य' नाम से सूचित किया है।

उक्त नामों के अतिरिक्त वीर, त्रिशलातनय, त्रैशलेय, सिद्धार्थ सुत आदि नाम भी मिलते हैं परन्तु उनका कोई विशेषार्थ नहीं है इस कारण उनकी चर्चा यहाँ नहीं की गई।

(ले० अध्यापक बेचरदास दोशी। जैनविद्या Vol. 1 No 1 जुलाई)

७७१–श्रामण्य पूर्विका अध्ययन की ग्यारह गाथाएं

जैन धर्म में चारित्र को बहुत ऊंचा स्थान दिया गया है। क्योंकि चारित्र धारण किये विना न तो परिणामों में दृढ़ता आती है और न किसी कार्य में सफलता प्राप्त होती है। इस लिए जैन शास्त्रों में चारित्र की बहुत महिमा बतलाई गई है। जितनी चारित्र की महिमा है उतनी ही उसकी आवश्यकता भी है और जितना वह आवश्यक है उतना ही वह कठिन भी है। इस लिए जिसकी आत्मा परम धैर्य्यवान् और सम्यग्दर्शन सम्पन्न है वही इसे धारण कर सकता है और वही इसका पालन कर सकता है।

चारित्र के अनेक भेद हैं। कामदेव को जीत लेने पर ही उन सब का सम्यक् पालन हो सकता है। कामदेव का मन के साथ घनिष्ट सम्बन्ध है। मन अति चंचल है। उसको जीते बिना काम-देव का जीतना कठिन है और कामदेव को जीते विना चारित्र

का पालन नहीं हो सकता। इसी विषय को लेकर दशवैकालिक सूत्र के दूसरे अध्ययन में ग्यारह गाथाएं आई हैं उनका भावार्थ नीचे दिया जाता है—

जो पुरुष कामभोगों से निवृत्त नहीं हुआ है, वह पुरुष पद पद में संकल्प विकल्पों से खेद खिन्न होता हुआ किस प्रकार संयम का पालन कर सकता है? अपितु संयम का पालन नहीं कर सकता। जिसने द्रव्यलिङ्ग धारण कर रक्खा है और द्रव्य-क्रियाएं भी कर रहा है किन्तु जिसकी अन्तरङ्ग आत्मा विषयों की ओर ही लगी हुई है वह वास्तव में अश्रमण (असाधु) ही है।

(२) वस्त्र, गन्ध, अलंकार (आभूषण) स्त्रियों तथा शय्याओं आदि को जो पुरुष भोगता तो नहीं हैं लेकिन उक्त पदार्थ जिसके वश में भी नहीं हैं, वह वास्तव में त्यागी नहीं कहा जाता, अर्थात् जिस पुरुष के पास उक्त पदार्थ नहीं हैं किन्तु उनको भोगने की इच्छा वनी हुई है, यदि वह उनका त्याग कर भी दे तो भी वह त्यागी नहीं कहा जा सकता क्योंकि इच्छा वनी रहने के कारण उसके चित्त में नाना प्रकार के संकल्प विकल्प पैदा होते रहेंगे अर्थात् सदा आर्त्तध्यान वना रहेगा। इस लिए द्रव्यलिङ्ग धारण किये जाने पर भी वह त्यागी नहीं कहा जा सकता।

(३) जो पुरुष प्रिय और कमनीय भोगों के मिलने पर भी उन्हें पीठ दे देता है तथा स्वाधीन भोगों को छोड़ देता है, वास्तव में वही पुरुष त्यागी कहा जाता है।

जो भोग इन्द्रियों को प्रिय नहीं हैं, या प्रिय हैं परन्तु स्वाधीन नहीं हैं, या स्वाधीन भी हैं किन्तु किसी समय प्राप्त नहीं होते तो उनको मनुष्य स्वयं ही नहीं भोगता या नहीं भोग सकता। लेकिन जो इन्द्रियों को प्रिय हैं, स्वाधीन हैं और प्राप्त भी हैं उन्हें जो छोड़ता है, उनसे विमुख रहता है, वास्तव में सच्चा त्यागी वही

है। ऐसा त्याग करना धीर वीर पुरुषों का काम है।
(४) सब प्राणियों पर समभाव रख कर विचरते हुए मुनि का मन यदि कदाचित् संयम रूपी घर से बाहर निकल जाय तो मुनि को चाहिए कि 'वह स्त्री आदि मेरी नहीं है और न मैं ही उसका हूँ' इस प्रकार विचार कर उस स्त्री आदि पर से रागभाव को दूर हटा ले और अपने मन को संयम मार्ग में स्थिर करे।
(५) गुरु कहते हैं कि हे शिष्य ! आतापना ले, सुकुमार भाव को छोड़, काम भोगों का अतिक्रमण कर। इनके त्यागने से निश्चय ही दुःख अतिक्रान्त हो जावेंगे अर्थात् दुःखों का विनाश हो जायगा। द्वेष को छेदन कर, राग को दूर कर, ऐसा करने से संसार में तूँ अवश्य ही सुखी हो जायगा।

आतापना आदि तप को अङ्गीकार करना और सुकुमारता का त्याग करना काम को रोकने के लिये बाह्य कारण हैं। राग द्वेष को छोड़ना अन्तरङ्ग कारण है। इन दोनों निमित्त कारणों के सेवन से मनुष्य काम को जीत सकता है और सुखी हो सकता है।
(६) अगन्धन कुल में उत्पन्न हुए सर्प, कठिनता से सहन की जाने वाली और जिसमें से धुँये के गुब्बारे उठ रहे हैं, ऐसी (जिसे सहन करना दुष्कर है ऐसी धूम चिह्न वाली) जाज्वल्यमान प्रचण्ड अग्नि में गिर कर अपने प्राण देने के लिये तो तय्यार हो जाते हैं परन्तु वमन किये हुए विष को वापिस पी लेने की इच्छा नहीं करते।

आगे सातवीं और आठवीं गाथा में राजमती और रहनेमि का दृष्टान्त देकर उपरोक्त विषय का कथन किया गया है। इसलिये उस कथा का पूर्वरूप यहाँ लिखा जाता है—

सोरठ देश में 'द्वारिका' नाम की एक नगरी थी। विस्तार में वह बारह योजन लम्बी और नौ योजन चौड़ी थी। उस समय

नवें वासुदेव श्रीकृष्ण महाराज राज्य करते थे। उनके पिता के एक बड़े भाई समुद्रविजय थे। उनके शिवा देवी नाम की रानी थी। शिवा देवी की कुक्षि से बाईसवें तीर्थङ्कर भगवान् अरिष्टनेमि का जन्म हुआ। युवावस्था को प्राप्त होने पर उग्रसेन राजा की पुत्री श्रीराजमती से उनका विवाह होना निश्चित हुआ। धूम धाम के साथ जब वे बरात लेकर जा रहे थे तो उन्होंने जूनागढ़ के पास बहुत से पशु और पक्षियों को बाड़े और पिंजरों में बन्द देखा। श्री अरिष्टनेमि ने जानते हुए भी जनता को बोध कराने के लिये सारथि से पूछा—ये पशु यहाँ किस लिये बंधे हुए हैं ? सारथि ने कहा—हे भगवान् आपके विवाह में साथ आये हुए मांसाहारी बरातियों के लिये भोजनार्थ ये पशु और पक्षी यहाँ लाये गये हैं। यह सुनते ही भगवान् अरिष्टनेमि का चित्त बड़ा उदास हुआ। जीवों की दया से द्रवित होकर उन्हों ने विचार किया कि विवाह के लिये इतने पशु पक्षियों का वध होना परलोक में कल्याणकारी न होगा। यह विचार कर उनका चित्त विवाह से हट गया। भगवान् की इच्छानुसार सारथि ने उन बाड़े और पिंजरों के द्वार खोल दिये और उन पशु पक्षियों को बन्धन मुक्त कर दिया। सारथि के इस कार्य्य से प्रसन्न होकर भगवान् ने मुकुट और राज्यचिह्न के सिवाय सम्पूर्ण भूषण उतार कर सारथि को प्रीति दान में दे दिये और आप विवाह न करते हुए अपने घर को वापिस चले आये। एक वर्ष पर्यन्त करोड़ों सुवर्ण मुद्राओं का दान देकर एक हजार पुरुषों के साथ उन्होंने दीक्षा अङ्गीकार कर ली। इन समाचारों को सुन कर राजमती ने भी अपनी अनेक सखियों के साथ संयम स्वीकार कर लिया। संयम लेकर राजमती भगवान् अरिष्टनेमि के दर्शनार्थ रेवती पर्वत पर (जहाँ वे तपस्या कर रहे थे) चलीं। रास्ते में अकस्मात् अति वेग से वायु चलने

लगी और बड़े जोर की वर्षा हुई। जिससे सब साध्वियाँ तितर बितर हो गईं। राजमती अकेली रह गई। वायु और वर्षा की घबराहट के कारण एक गुफा में प्रवेश किया। उसे निर्जन स्थान जान कर राजमती ने अपने भीगे हुए कपड़ों को उतार कर भूमि पर फैला दिया। उस गुफा में भगवान् अरिष्टनेमि के छोटे भाई श्री रथनेमि (रहनेमि) पहले से ही समाधि लगा कर खड़े थे। बिजली की चमक में नग्न राजमती के शरीर पर रथनेमि की दृष्टि पड़ी। देखते ही रथनेमि का चित्त काम भोगों की ओर आकर्षित हो गया और राजमती से प्रार्थना करने लगे। इस पर विदुषी राजमती ने रथनेमि को समझाया कि देखो, अगन्धन जाति का सर्प एक तिर्यञ्च होता हुआ भी अपने जातीय हठ से जाज्वल्यमान अग्नि में पड़कर अपने प्राण देने के लिये तो तैयार हो जाता है परन्तु वह यह इच्छा नहीं करता कि मैं वमन किये हुए विष को फिर से अङ्गीकार कर लूँ। हे मुनि! विषयभोगों को विष के समान समझ तुम उनका त्याग कर चुके हो परन्तु खेद है कि वमन किये हुए उन कामभोगों को तुम वापिस अङ्गीकार करना चाहते हो।

अब राजमती आक्षेपपूर्वक उपदेश करती हुई रथनेमि से कहती है—

(७) हे अपयश के चाहने वाले! (रथनेमि!)! अपने असंयम रूप जीवन के लिये जो तू वमन को पुनः पीना चाहता है अर्थात् छोड़े हुए कामभोगों को फिर से अङ्गीकार करना चाहता है, इससे तो तेरी मृत्यु हो जाना ही अच्छा है।

(८) अपने कुल की प्रधानता की ओर रथनेमि का ध्यान आकर्षित करती हुई राजमती कहती है कि—हे रथनेमि! मैं उग्रसेन राजा की पुत्री हूँ और तू समुद्रविजय राजा का पुत्र है। अतः गन्धन कुल में उत्पन्न हुए सर्प (जो कि वमन किये हुए जहर

को वापिस चूस लेता है)के समान न हो। किन्तु तू अपने चित्त को निश्चल कर और दृढ़ता पूर्वक संयम का पालन कर।

(९) हे रथनेमि! ग्रामानुग्राम विहार करते हुए और गोचरी के लिये घर घर फिरते हुए तू जिन जिन सुन्दर स्त्रियों को देखेगा और फिर यदि उनमें विषय के भाव करेगा, तो वायु से प्रेरित हड नामक वृक्ष (हड नाम का एक वृक्ष होता है जिसका मूल अर्थात् जड़ तो बहुत कमजोर तथा निर्बल होती है और ऊपर शाखाओं आदि का भार अधिक होता है अबद्धमूल होने के कारण वायु का थोड़ा सा झोंका लगते ही वह गिर पड़ता है) की तरह अस्थिर आत्मा वाला हो जायगा।

(१०) सती राजमती के उपरोक्त वचनों को सुनकर वह रथनेमि, जिस प्रकार अंकुश से हाथी वश में हो जाता है, उसी प्रकार धर्म में स्थिर हो गया ॥१०॥

(११) तत्त्व के जानने वाले प्रविचक्षण पंडितपुरुष उसी प्रकार भोगों से विरक्त हो जाते हैं जिस प्रकार कि पुरुषोत्तम रथनेमि।

इस गाथा में रथनेमि के लिये 'पुरुषोत्तम' विशेषण लगाया गया है। इससे यह प्रकट होता है कि जो पुरुष चाहे जैसी विकट और डिगाने वाली परिस्थिति के उपस्थित हो जाने पर भी संयम मार्ग से न डिगे वह तो सर्वोत्तम है ही किन्तु वह भी पुरुषोत्तम है जो परिस्थिति से हिलाये हिल जाने पर भी अर्थात् मन के चंचल हो जाने पर भी सोच समझ कर अपने आचरण रूप व्रत से नहीं डिगते और दूसरों के उपदेश द्वारा मन को वश में कर कुपथ से हट कर प्रायश्चित्त पूर्वक अपने व्रत में दृढ़ बन जाते हैं। यह भी शूरवीर पुरुषों का लक्षण है। वे भी शीघ्र ही अपना कल्याण कर लेते हैं ॥११॥

(दशवैकालिक दूसरा अध्ययन)

७७२-दुर्लभ ग्यारह

संसार में ग्यारह बातों की प्राप्ति होना बहुत दुर्लभ है। वे निम्न लिखित हैं-

(१) मनुष्य भव (२) आर्यक्षेत्र (३) उत्तम जाति (मातृपक्ष को जाति कहते हैं) (४) उत्तम कुल (पितृपक्ष कुल कहलाता है) (५) रूप अर्थात् किसी भी अङ्ग में हीनता न होना (६) आरोग्य (७) आयु (८) बुद्धि अर्थात् परलोक सम्बन्धी बुद्धि (९) धर्म का सुनना और उसका भली प्रकार निश्चय करना (१०) निश्चय कर लेने के पश्चात् उस पर श्रद्धा (रुचि) करना (११) निरवद्य अनुष्ठान रूप संयम स्वीकार करना। (हरिभद्रीयावश्यक प्रथम भाग गाथा ८३१)

७७३-आरम्भ और परिग्रह को छोड़े बिना ग्यारह बातों की प्राप्ति नहीं हो सकती

आरम्भ और परिग्रह को छोड़े बिना निम्न लिखित ग्यारह बातों की प्राप्ति नहीं हो सकती।

(१) केवलिप्ररूपित धर्मश्रवण-आरम्भ और परिग्रह अनर्थ के मूल कारण हैं। आरम्भ और परिग्रह से संतोष किये बिना प्राणी केवली भगवान् द्वारा फरमाये गये धर्म को सुन भी नहीं सकता।

(२) आरम्भ और परिग्रह को छोड़े बिना प्राणी शुद्ध सम्यक्त्व को प्राप्त नहीं कर सकता अथवा जीवाजीवादि नव तत्त्वों का सम्यग् ज्ञान नहीं कर सकता।

(३) आरम्भ परिग्रह को छोड़े बिना प्राणी मुण्डित होकर अगार धर्म से अनगार धर्म को प्राप्त नहीं कर सकता। केशलोचन आदि द्रव्यमुण्डपना है और क्रोध, मान, माया, लोभ आदि कषायों पर विजय प्राप्त करना अर्थात् इन्हें छोड़ देना भावमुण्डपना कहलाता है। जो व्यक्ति आरम्भ, परिग्रह को छोड़ देता है वही शुद्ध प्रव्रज्या

को अंगीकार कर सकता है।

(४) अब्रह्म से निवृत्ति रूप शुद्ध ब्रह्मचर्य्य का पालन भी आरंभ परिग्रह को छोड़े बिना नहीं हो सकता।

(५) आरम्भ और परिग्रह को छोड़े बिना पृथ्वीकाय आदि छः कायों की रक्षा रूप संयम का पालन भी नहीं हो सकता।

(६) आश्रव (जिससे कर्मों का बन्धन होता है) द्वारों का निरोधरूप संवर भी आरम्भ परिग्रह के त्याग बिना नहीं हो सकता।

(७) अविपरीत रूप से पदार्थों को बतलाने वाला अर्थात् संशय रहित निश्चित ज्ञान आभिनिबोधिक कहलाता है। इसके इन्द्रिय निमित्त और अनिन्द्रियनिमित्त ऐसे दो भेद हैं। इस ज्ञान की प्राप्ति भी आरम्भ परिग्रह को छोड़े बिना हो नहीं सकती।

(८)श्रुतज्ञान,(९)अवधिज्ञान,(१०)मनःपर्ययज्ञान और(११)केवल ज्ञान की प्राप्ति भी आरम्भ परिग्रह को छोड़े बिना नहीं हो सकती।

(ठाणांग सूत्र ६४)

७७४-उपासक पडिमाएं ग्यारह

साधुओं की उपासना (सेवा) करने वाला उपासक कहलाता है। अभिग्रह विशेष को पडिमा(प्रतिमा) कहते हैं। उपासक(श्रावक) का अभिग्रह विशेष (प्रतिज्ञा) उपासक पडिमाएं कहलाती हैं। ग्यारह पडिमाएं ये हैं--

(१) दंसण सावए-पहली दर्शन पडिमा है। इसमें श्रमणोपासक 'रायाभियोगेणं' आदि आगारों रहित सम्यक्त्व का निरतिचार पालन करता है अर्थात् क्रियावादी अक्रियावादी नास्तिक आदि वादियों के मतों को भली प्रकार जान कर विधि पूर्वक सम्यग्दर्शन का पालन करता है। इस पडिमा का आराधन एक मास तक किया जाता है।

(२) कयव्वयकम्मे- दूसरी पडिमा में सब प्रकार के धर्मों की

रुचि रहती है। बहुत से शीलव्रत गुणव्रत विरमण व्रत प्रत्याख्यान और पौषधोपवास धारण किये जाते हैं किन्तु सामायिक व्रत और देशावकाशिक व्रत का सम्यक् पालन नहीं होता।

पहली पडिमा का आराधक पुरुष शुद्ध सम्यक्त्व वाला होता है। दूसरी में वह चारित्रशुद्धि की ओर झुक कर कर्मक्षय का प्रयत्न करता है। वह पाँच अणुव्रत और तीन गुणव्रतों को धारण करता है। चार शिक्षा व्रतों को भी अङ्गीकार करता है किन्तु सामायिक और देशावकाशिक व्रतों का यथा समय सम्यग् पालन नहीं कर सकता। इस पडिमा का समय दो मास है।

(३) सामाइयकडे— तीसरी पडिमा में सर्व धर्म विषयक रुचि रहती है। वह शीलव्रत, गुणव्रत, विरमण प्रत्याख्यान और पौषधोपवासव्रत धारण करता है। सामायिक और देशावकाशिक व्रतों की आराधना भी उचित रीति से करता है, किन्तु चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या और पूर्णिमा आदि पर्व दिनों में पौषधोपवास व्रत की सम्यग् आराधना नहीं कर सकता है। इस पडिमा के लिए तीन मास का समय है।

(४) पोसहोववासनिरए— चौथी पडिमा में उपरोक्त सब व्रतों का पालन सम्यक् प्रकार से करता है। अष्टमी चतुर्दशी आदि पर्व दिनों में प्रतिपूर्ण पौषधव्रत का पूर्णतया पालन किया जाता है किन्तु 'एक रात्रिकी' उपासक पडिमा का सम्यक् आराधना नहीं कर सकता। यह पडिमा चार मास की होती है।

(५) दिवा बंभयारी रत्तिपरिमाण कडे— पाँचवीं पडिमा वाले को सर्व धर्म विषयक रुचि होती है। उपरोक्त सब व्रतों का सम्यक्तया पालन करता है और 'एक रात्रिकी' उपासक पडिमा का भी भली प्रकार पालन करता है। इस पडिमा में पाँच बातें विशेष रूप से धारण की जाती हैं— वह स्नान नहीं करता, रात्रि में चारों

आहारों का त्याग करता है, धोती की लांग नहीं देता, दिन में ब्रह्मचारी रहता है और रात्रि में मैथुन की मर्यादा करता है। इस प्रकार विचरता हुआ वह कम से कम एक दिन दो दिन या तीन दिन से लेकर अधिक से अधिक पाँच मास तक विचरता रहता है।

(६) दिया वि राओ वि बंभयारी—छठी पडिमा में सर्व धर्म विषयक रुचि होती है। वह उपरोक्त सब व्रतों का सम्यक् रूप से पालन करता है और पूर्ण ब्रह्मचर्य्य का पालन करता है, किन्तु वह सचित्त आहार का त्याग नहीं करता अर्थात् औषधादि सेवन के समय या अन्य किसी कारण से वह सचित्त का सेवन भी कर लेता है। इस पडिमा की अवधि कम से कम एक दो या तीन दिन है और अधिक से अधिक छः मास है।

(७) सचित्त परिण्णाए- सातवीं पडिमा में सर्व धर्म विषयक रुचि होती है। इस में उपरोक्त सब नियमों का पालन किया जाता है। इस पडिमा का धारक पूर्ण ब्रह्मचर्य्य का पालन करता है और सचित्त आहार का सर्वथा त्याग कर देता है किन्तु आरम्भ का त्याग नहीं करता। इसकी उत्कृष्ट काल मर्यादा सात मास है।

(८) आरम्भ परिण्णाए- आठवीं पडिमा में सर्व धर्म विषयक रुचि बनी रहती है। इसका धारक सब नियमों का पालन करता है। सचित्त आहार और आरम्भ का त्याग कर देता है किन्तु वह दूसरों से आरम्भ कराने का त्याग नहीं करता। इसकी कालमर्यादा जघन्य एक दिन दो दिन या तीन दिन है और उत्कृष्ट आठ मास है।

(९) पेस परिण्णाए- नववीं पडिमा को धारण करने वाला उपासक उपरोक्त सब नियमों का यथावत् पालन करता है। आरम्भ का भी त्याग कर देता है किन्तु उद्दिष्ट भक्त का परित्याग नहीं करता अर्थात् जो भोजन उसके निमित्त तय्यार किया जाता है उसे वह ग्रहण कर लेता है। वह स्वयं आरम्भ नहीं करता

और न दूसरों से करवाता है किन्तु अनुमति देने का उसे त्याग नहीं होता। इस पडिमा का उत्कृष्ट काल नौ मास है जघन्य एक दो या तीन दिन है।

(१०) उद्दिट्ठ भत्तपरिण्णाए– दसवीं पडिमाधारक श्रावक उपरोक्त सब नियमों का पालन करता है और वह उद्दिष्ट भक्त का भी त्याग कर देता है। उस्तरे (छुर से) मुण्डन करा देता है अथवा शिखा (चोटी) रखता है। किसी विषय में एक बार या अनेक बार पूछने पर वह दो प्रकार का उत्तर दे सकता है। यदि वह उस पदार्थ को जानता है तो कह सकता है कि मैं इसको जानता हूँ। यदि नहीं जानता हो तो कह दे कि मैं नहीं जानता। उसका कोई सम्बन्धी जमीन में गड़े हुए धन आदि के विषय में पूछे तो भी उसे हाँ या ना के सिवाय कुछ जवाब न दे। इस पडिमा की अवधि एक दो या तीन दिन है और उत्कृष्ट अवधि दस मास है।

(११) समणभूए– ग्यारहवीं पडिमाधारी सर्व धर्म विषयक रुचि रखता है। उपरोक्त सब नियमों का पालन करता है। शिर के बालों को उस्तरे से (छुर से) मुंडवा देता है अथवा लुञ्चन करता है अर्थात् शक्ति हो तब तो उसे लुञ्चन ही करना चाहिए और शक्ति न हो तो उस्तरे से मुण्डन करा ले। साधु का वेष धारण करे। साधु के योग्य भण्डोपकरण आदि उपधि धारण कर श्रमण निर्ग्रंथों के लिये प्रतिपादित धर्म का निरतिचार पालन करता हुआ विचरे। मार्ग में युगप्रमाण भूमि को आगे देखता हुआ चले। यदि मार्ग में त्रस प्राणी दिखाई दें तो उन जीवों को बचाते हुए पैरों को संकुचित कर चले अर्थात् उन जीवों को किसी प्रकार की पीड़ा न पहुँचाता हुआ ईर्यासमिति पूर्वक गमन क्रिया में प्रवृत्ति करे किन्तु जीवों को विना देखे सीधा गमन न करे। ग्यारहवीं पडिमाधारी की सारी क्रियाएं साधु के समान होती हैं अतः प्रत्येक क्रिया में यतना पूर्वक प्रवृत्ति करे।

साधु की तरह भिक्षावृत्ति से ही अपना जीवननिर्वाह करे किन्तु, इतना फर्क है कि उसका अपने सम्बन्धियों से सर्वथा राग बन्धन छूटता नहीं है इसलिए वह उन्हीं के घर भिक्षा लेने को जाता है।

भिक्षा लेते समय एषणा समिति का भी पूर्ण ध्यान रखे। जो पदार्थ उसके जाने से पहले पक चुके हों और अग्नि पर से उतार कर शुद्ध स्थान में रखे हुए हों उन्हीं को ग्रहण करे। जो पदार्थ उसके जाने के बाद पके उसे ग्रहण न करे। जैसे उसके जाने के पहले चावल पके हैं और दाल पकने वाली है तो केवल चावलों को ग्रहण करे। दाल नहीं। यदि उसके जाने से पहले दाल पकी हो और चावल पकने वाले हों तो केवल दाल ले चावल नहीं।

भिक्षा के लिए गृहस्थ के घर में प्रवेश करते समय पडिमाधारी श्रावक को भिक्षा दो 'ऐसा कहना चाहिए।'

उस श्रावक की और साधु की भिक्षाचरी और पडिलेहणा तथा अन्य बाहरी क्रियाओं में कोई अन्तर नहीं होता साधु सरीखा ही होता है। केवल शिखा धारण करता है। इसके लिए समवायांग सूत्र में पाठ आया है कि 'समण भूए' (श्रमणभूत) अर्थात् साधु के तुल्य। अतः किसी के ऐसा पूछने पर कि 'आप कौन हैं' उसे स्पष्ट उत्तर देना चाहिये कि मैं पडिमाधारी श्रावक हूँ, साधु नहीं।

इस पडिमा की अवधि जघन्य एक दो या तीन दिन की है और उत्कृष्ट ग्यारह मास है। अर्थात् यदि ग्यारह महीने से पहले ही उस पडिमाधारी श्रावक की मृत्यु हो जाय या वह दीक्षित हो जाय तो जघन्य या मध्यम काल ही उसकी अवधि है और यदि दोनों में से कुछ भी न हुआ तो उपरोक्त सब नियमों के साथ ग्यारह महीने तक इस पडिमा का पालन किया जाता है।

सब पडिमाओं का समय मिलाकर साढ़े पांच वर्ष होते हैं।

(दशाश्रुतस्कन्ध दशा ६) (समवायांग समवाय ११)

७७५—गणधर ग्यारह

लोकोत्तर ज्ञान दर्शन आदि गुणों के गण (समूह) को धारण करने वाले तथा प्रवचन को पहले पहल सूत्र रूप में गूंथने वाले महापुरुष गणधर कहलाते हैं। वे प्रत्येक तीर्थङ्कर के प्रधान शिष्य तथा अपने अपने गण के नायक होते हैं। वर्तमान अवसर्पिणी काल के २४ तीर्थङ्करों के गणधर इस प्रकार थे—

(१)	भ० ऋषभदेव—	८४	(२)	भ० अजितनाथ—	६५
(३)	,, संभवनाथ—	१०२	(४)	,, अभिनन्दन—	११६
(५)	,, सुमतिनाथ—	१००	(६)	,, पद्मप्रभ—	१०७
(७)	,, सुपार्श्वनाथ—	६५	(८)	,, चन्द्रप्रभ—	६३
(६)	,, सुविधिनाथ—	८८	(१०)	,, शीतलनाथ—	८१
(११)	,, श्रेयांसनाथ—	७६	(१२)	,, वासुपूज्य—	६६
(१३)	,, विमलनाथ—	५७	(१४)	,, अनन्तनाथ—	५०
(१५)	,, धर्मनाथ—	४३	(१६)	,, शान्तिनाथ—	३६
(१७)	,, कुन्थुनाथ—	३५	(१८)	,, अरनाथ—	३३
(१६)	,, मल्लिनाथ—	२८	(२०)	,, मुनिसुव्रत—	१८
(२१)	,, नमिनाथ—	१७	(२२)	,, नेमिनाथ—	११
(२३)	,, पार्श्वनाथ—	१०	(२४)	,, महावीर—	११

भगवान् महावीर के नौ गण और ग्यारह गणधर थे। दो गण ऐसे थे जिनमें दो दो गणधर सम्मिलित थे। भगवान् महावीर के शिष्य होने से पहले ग्यारहों गणधर वैदिक ब्राह्मण विद्वान् थे। इन्द्रभूति, अग्निभूति और वायुभूति ये तीनों भाई थे। अपने मत की पुष्टि के लिए शास्त्रार्थ करने के लिए भगवान् के पास आए थे। अपने अपने संशय का भगवान् से सन्तोषजनक उत्तर पाकर सभी उनके शिष्य हो गए। सभी के नाम और संशय नीचे लिखे अनुसार हैं—

(१) इन्द्रभूति— जीव है या नहीं।

(२) अग्निभूति–ज्ञानावरण आदि कर्म हैं या नहीं ।
(३) वायुभूति—शरीर और जीव एक हैं या भिन्न भिन्न ।
(४) व्यक्त स्वामी–पृथिवी आदि भूत हैं या नहीं ।
(५) सुधर्मा स्वामी–इस लोक में जो जैसा है, परलोक में भी वह वैसा ही रहता है या नहीं ।
(६) मंडितपुत्र–बंध और मोक्ष हैं या नहीं ।
(७) मौर्यपुत्र–देवता हैं या नहीं ।
(८) अकम्पित–नारकी हैं या नहीं ।
(९) अचलभ्राता–पुण्य ही बढ़ने पर सुख और घटने पर दुःख का कारण हो जाता है, या दुःख का कारण पाप पुण्य से अलग है ।
(१०) मेतार्य–आत्मा की सत्ता होने पर भी परलोक है या नहीं।
(११) प्रभास–मोक्ष है या नहीं ?

सभी गणधरों के संशय और उनका समाधान विस्तार पूर्वक नीचे लिखे अनुसार है—

(१) इन्द्रभूति– शास्त्रार्थ के लिए आए हुए इन्द्रभूति को देख कर भगवान् ने प्रेमभरे शब्दों में कहा– आयुष्मन् इन्द्रभूते ! तुम्हारे मन में सन्देह है कि आत्मा है या नहीं। दोनों पक्षों में युक्तियाँ मिलने से तुम्हें ऐसा सन्देह हुआ है। आत्मा का अभाव सिद्ध करने के लिए निम्नलिखित युक्तियाँ हैं–

आत्मा नहीं है, क्योंकि प्रत्यक्ष का विषय नहीं है। जैसे आकाश के फूल। जो वस्तु विद्यमान है वह प्रत्यक्ष से जानी जा सकती है जैसे घट। आत्मा प्रत्यक्ष से नहीं जानी जा सकती इसलिए नहीं है। 'परमाणु विद्यमान होने पर भी प्रत्यक्ष से नहीं जाने जा सकते' यह कहना ठीक नहीं है। क्योंकि घटादि कार्यों के रूप में परिणत होने पर वे प्रत्यक्ष से जाने जा सकते हैं ।

आत्मा अनुमान से भी नहीं जाना जा सकता। प्रत्यक्ष से दो

वस्तुओं का अविनाभाव (एक दूसरे के विना न रहना) निश्चित हो जाने के बाद किसी दूसरी जगह एक को देख कर दूसरी का ज्ञान अनुमान से होता है। आत्मा का प्रत्यक्ष न होने के कारण उसका अविनाभाव किसी वस्तु के साथ निश्चित नहीं किया जा सकता।

आगम से भी आत्मा की सिद्धि नहीं होती। क्योंकि उसी महापुरुष के वाक्य को आगम रूप से प्रमाण माना जा सकता है जिसने आत्मा को प्रत्यक्ष देखा है। आत्मा प्रत्यक्ष का विषय नहीं है इस लिए उसके अस्तित्व को बताने वाला आगम भी प्रमाण नहीं माना जा सकता। दूसरी बात यह है कि अलग अलग मतों के आगम भिन्न भिन्न प्ररूपणा करते हैं। कुछ आत्मा के अस्तित्व को बताते हैं और कुछ अभाव को। ऐसी दशा में यह नहीं कहा जा सकता कि अमुक आगम ही प्रमाण है।

उपमान या अर्थापत्ति प्रमाण से भी आत्मा का अस्तित्व सिद्ध नहीं होता, क्योंकि इन दोनों की प्रवृत्ति भी प्रत्यक्ष द्वारा जाने हुए पदार्थ में ही हो सकती है।

उत्तर पक्ष

हे गौतम! आत्मा तुम्हें भी प्रत्यक्ष ही है। तुम्हें जो संशय रूप ज्ञान हो रहा है, वह आत्मा ही है। उपयोग ही आत्मा का स्वरूप है। इसी प्रकार अपने शरीर में होने वाले सुख दुःख आदि का ज्ञान स्वसंवेदी (अपने आपको जानने वाला) होने के कारण आत्मा को प्रत्यक्ष करता है। प्रत्यक्ष से सिद्ध वस्तु के लिए दूसरे प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। 'मैंने किया, मैं करता हूं, मैं करूँगा। मैंने कहा, मैं कहता हूँ, मैं कहूँगा। मैंने जाना, मैं जानता हूँ, मैं जानूंगा इत्यादि तीनों कालों को विषय करने वाले ज्ञानों में भी 'मैं' शब्द से आत्मा का ही बोध होता है। इस प्रत्यक्ष ज्ञान से भी आत्मा की सिद्धि होती है। अगर 'मैं' शब्द से शरीर को लिया जाय तो मृत शरीर में

भी यह प्रतीति होनी चाहिए। आत्मा का निश्चयात्मक ज्ञान हुए विना 'मैं हूँ' यह निश्चयात्मक ज्ञान नहीं हो सकता, क्योंकि इस में भी 'मैं' शब्द का अर्थ आत्मा ही है।

आत्मा के नहीं होने पर 'आत्मा है या नहीं' इस प्रकार का संशय भी नहीं हो सकता क्योंकि संशय ज्ञान रूप है और ज्ञान आत्मा का गुण है। गुणी के विना गुण नहीं रह सकता। ज्ञान को शरीर का गुण नहीं कहा जा सकता क्योंकि ज्ञान अमूर्त और बोध रूप है तथा शरीर मूर्त और जड है। दो विरोधी पदार्थ गुण और गुणी नहीं बन सकते। जैसे विना रूप वाले आकाश का गुण रूप नहीं हो सकता इसी प्रकार मूर्त और जड शरीर का गुण अमूर्त और बोध रूप ज्ञान नहीं हो सकता। सभी वस्तुओं का निश्चय आत्मा का निश्चय होने पर ही हो सकता है। जिसे आत्मा में ही सन्देह है वह कर्मबन्ध, मोक्ष तथा घट पट आदि के विषय में भी संशय रहित नहीं हो सकता।

आत्मा का अभाव सिद्ध करने वाले अनुमान में पक्ष के भी बहुत से दोष हैं। प्रत्यक्ष मालूम पड़ने वाले आत्मा का अभाव सिद्ध करने से साध्य प्रत्यक्ष बाधित है। आत्मा का अस्तित्व सिद्ध करने वाले अनुमान द्वारा बाधित होने से यह साध्य अनुमान विरुद्ध भी है। 'मैं संशय वाला हूँ' इस में 'मैं' शब्द से वाच्य आत्मा का अस्तित्व मानते हुए भी उसका निषेध करना अभ्युपगम विरोध है। लोक में जिस वस्तु का निश्चय छोटे से लेकर बड़े सभी व्यक्तियों को हो उसका निषेध करने से लोक बाधित है। अपने ही लिए 'मैं हूँ या नहीं' इस प्रकार संशय करना अपनी माता को वन्ध्या बताने की तरह स्ववचन बाधित है। इस प्रकार पक्ष के प्रत्यक्षादि द्वारा बाधित होने के कारण पक्ष में अपक्षधर्मता के कारण हेतु भी असिद्ध है। हिमालय के पलों (चार तोले का

एक तोल) का परिमाण तथा पिशाच आदि में पाँचों प्रमाणों की प्रवृत्ति न होने पर भी उनका अस्तित्व सभी मानते हैं, इसलिए उपरोक्त हेतु अनैकान्तिक भी है। प्रमाण सिद्ध आत्मा में ही हेतु की प्रवृत्ति होने के कारण हेतु विरुद्ध भी है।

आत्मा प्रत्यक्ष है,क्योंकि इसके गुण स्मृति, जिज्ञासा (जानने की इच्छा) चिकीर्षा (करने की इच्छा) जिगमिषा (जानने की इच्छा) संशय आदि प्रत्यक्ष हैं। जिस वस्तु के गुण प्रत्यक्ष होते हैं वह वस्तु भी प्रत्यक्ष होती है, जैसे घट के गुण रूपादि प्रत्यक्ष होने से घट भी प्रत्यक्ष है। अगर गुणों के ग्रहण से गुणी का ग्रहण न माना जाय तो भी गुणों के ज्ञान से गुणवाले का अस्तित्व तो अवश्य सिद्ध हो जाता है।

शङ्का–ज्ञान आदि गुणों से किसी गुण वाले की सिद्धि तो अवश्य होती है किन्तु वे गुण आत्मा के ही हैं, यह नहीं कहा जा सकता। जैसे; गोरापन, दुबलापन, मोटापन आदि बातें शरीर में मालूम पड़ती हैं उसी तरह ज्ञान, अनुभव आदि भी शरीर में मालूम पड़ते हैं, इसलिए इनको शरीर के ही गुण मानना चाहिए।

सामाधान–ज्ञानादि गुण शरीर के नहीं हैं, क्योंकि शरीर मूर्त और चक्षु इन्द्रिय का विषय है। जैसे घट। ज्ञानादि गुण अमूर्त और अचाक्षुष हैं। इसलिए उनका आश्रय गुणी भी अमूर्त और अचाक्षुष होना चाहिए। इस प्रकार का गुणी जीव ही है।

अपने शरीर में आत्मा प्रत्यक्ष सिद्ध है। दूसरे के शरीर में उसका ज्ञान अनुमान से होता है। वह अनुमान इस प्रकार है– दूसरे के शरीर में आत्मा है क्योंकि वह इष्ट वस्तु में प्रवृत्ति तथा अनिष्ट से निवृत्ति करता है। जिस शरीर में प्रवृत्ति और निवृत्ति होती है वह आत्मा वाला है जैसे अपना शरीर।

'हेतु का साध्य के साथ अविनाभाव प्रत्यक्ष सिद्ध होने के बाद

हेतु से साध्य का अनुमान होता है' यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि भूत पिशाच ग्रह आदि का कहीं प्रत्यक्ष दर्शन न होने पर भी किसी शरीर में विविध चेष्टाओं से अनुमान किया जाता है।

शरीर किसी के द्वारा किया गया है, क्योंकि आदि और निश्चित आकार वाला है। जैसे घट। जिस का कोई कर्ता नहीं होता वह आदि और निश्चित आकार वाला नहीं होता, जैसे बादलों का आकार या मेरुपर्वत। तथा इन्द्रियाँ किसी के द्वारा अधिष्ठित हैं क्योंकि करण हैं जैसे दण्ड, चक्र, चीवर आदि करण होने के कारण कुम्हार द्वारा अधिष्ठित हैं। जिसका कोई अधिष्ठाता नहीं होता वह करण भी नहीं होता, जैसे आकाश। इन्द्रियों का अधिष्ठाता जीव ही है।

जहाँ आदान (लेना) और आदेय भाव (लिया जाना) होता है वहाँ आदाता अर्थात् लेने या ग्रहण करने वाला भी अवश्य होता है, जैसे संडासी और लोहे में आदानादेयभाव है तो वहाँ आदाता लुहार है। इसी प्रकार इन्द्रियाँ ग्रहण करती हैं और विषय ग्रहण किए जाते हैं तो वहाँ ग्रहीता या आदाता भी अवश्य होना चाहिए और वह आदाता जीव है। जहाँ आदाता नहीं है वहाँ आदानादेयभाव भी नहीं होता जैसे आकाश में।

देह आदि का कोई भोक्ता है, क्योंकि ये भोग्य हैं। जैसे भोजन वस्त्रादि का भोक्ता है। जिस वस्तु का कोई भोक्ता नहीं होता उसे भोग्य नहीं कहा जा सकता जैसे आकाश के फूल। शरीर आदि का कोई स्वामी है क्योंकि संघातरूप हैं, मूर्त हैं, इन्द्रियों के विषय हैं, दिखाई देते हैं। जैसे नाट्यगृह आदि के स्वामी सूत्रधार वगैरह। जो बिना स्वामी का होता है वह संघात आदि रूप वाला भी नहीं होता जैसे आकाश के फूल। शरीर आदि संघातरूप हैं इसलिए इनका कोई स्वामी है।

इन सब अनुमानों में कर्ता अधिष्ठाता आदि शब्द से जीव ही लिया जा सकता है। शङ्का—मूर्त घटादि के कर्ता कुम्हार वगैरह जैसे मूर्त हैं उसी प्रकार मूर्त देह आदि का कर्ता भी कोई मूर्त ही सिद्ध किया जा सकता है, अमूर्त नहीं। इस लिए विरुद्ध दोष आता है।

समाधान—संसारी जीव ही देह आदि का कर्ता है और वह कथञ्चित् मूर्त भी है। इसलिए किसी प्रकार का दोष नहीं आता।

जीव विद्यमान है, क्योंकि उसके विषय में संशय होता है। जिस वस्तु के विषय में संशय होता है वह कहीं न कहीं अवश्य विद्यमान है। जैसे स्थाणु और पुरुष के संशयात्मक ज्ञान में स्थाणु और पुरुष दोनों भिन्न भिन्न रूप से विद्यमान हैं। आत्मा और शरीर के विषय में सन्देह होता है इस लिए दोनों का स्वतन्त्र अस्तित्व है।

शङ्का—'विद्यमाम वस्तु में ही सन्देह होता है' यह मानने से आकाशकुसुम को भी विद्यमान मानना पड़ेगा।

समाधान—आकाश और कुसुम दोनों पदार्थ स्वतन्त्र रूप से विद्यमान हैं इस लिए उनके विषय में सन्देह हो सकता है। जिस वस्तु का सन्देह जहाँ हो वहीं उसका होना संशय से सिद्ध नहीं किया जाता किन्तु कहीं न कहीं उस वस्तु की सत्ता अवश्य होती है। कुसुम आकाश में न होने पर भी लता पर हैं। इस लिए उनका संशय हो सकता है। जो वस्तु कहीं नहीं है उस का संशय नहीं हो सकता।

अजीव शब्द की सत्ता से भी जीव सिद्ध किया जा सकता है। क्योंकि अजीव शब्द जीव का निषेध करता है। जीव की सत्ता के बिना उसका निषेध नहीं किया जा सकता।

'आत्मा नहीं है' इस निषेध से भी उसका अस्तित्व सिद्ध होता है क्योंकि विद्यमान वस्तु का ही स्थान विशेष में निषेध किया जा सकता है। जो वस्तु बिल्कुल नहीं है उसका निषेध भी नहीं किया जा सकता।

जीव शब्द अर्थ वाला है, क्योंकि व्युत्पत्ति वाला होते हुए शुद्धपद है। जो व्युत्पत्ति वाला होते हुए शुद्ध पद होता है उसका कोई न कोई अर्थ अवश्य होता है जैसे घट शब्द। शरीर, देह आदि तथा जीव प्राणी आदि शब्दों में भेद होने से इन्हें समानार्थक नहीं कहा जा सकता। शरीर और जीव के गुणों में भेद होने के कारण भी इन्हें समानार्थक नहीं कहा जा सकता। आत्मा शरीर और इन्द्रियों से भिन्न हैं, क्योंकि देह के नष्ट हो जाने पर भी आत्मा के द्वारा उपलब्ध वस्तु का स्मरण होता है। जैसे खिड़की से देखा गया पुरुष खिड़की के न रहने पर भी स्मृति का विषय होता है, इस लिए पुरुष खिड़की से भिन्न है।

भगवान् ने फिर कहा— 'जीव है' यह वचन सत्य है, क्योंकि मेरा वचन है। जैसे-अवशेष वचन। अथवा 'जीव है' यह वचन सत्य है क्योंकि सर्वज्ञ का वचन है। जैसे आपके माने हुए सर्वज्ञ का वचन।

मेरा वचन सत्य और निर्दोष है, क्योंकि भय, राग, द्वेष और अज्ञान से रहित हैं। जो वचन भय आदि से रहित है वह सत्य होता है। जैसे मार्ग पूछने पर उसे जानने वाले शुद्ध हृदय व्यक्ति द्वारा दिया गया ठीक उत्तर।

शङ्का—आप सर्वज्ञ हैं तथा भयादि से रहित वचनों वाले हैं, यह कैसे कहा जा सकता है।

समाधान-मैं सभी सन्देहों को दूर कर सकता हूँ तुम जो पूछो उसका उत्तर दे सकता हूँ तथा सर्वथा निर्भय हूँ। अपने ज्ञान द्वारा लोकालोक को देखता हूँ तथा अनन्त शक्ति सम्पन्न मेरी आत्मा अजर अमर है। इस लिए मेरे में उपरोक्त गुण हैं।

इत्यादि युक्तियों से आत्मा की सिद्धि हो जाती है। उसका लक्षण वीर्य और उपयोग है। संसारी और सिद्ध अथवा त्रस और

स्थावर के भेद से आत्मा के दो भेद हैं।

भगवान् के उपदेश से इन्द्रभूति का संशय दूर हो गया। वे भगवान् के शिष्य हो गए और प्रथम गणधर कहलाए।

(२) अग्निभूति—इन्द्रभूति को दीक्षित हुआ जानकर उनके छोटे भाई अग्निभूति को बड़ा क्रोध आया। उन्होंने सोचा—महावीर बड़े भारी ऐन्द्रजालिक हैं। उन्होंने अपने वाग्जाल से मेरे भाई को जीत लिया और अपना शिष्य बना लिया। मैं उन्हें जीत कर अपने भाई को वापिस लाऊँगा। यह सोचकर बड़े अभिमान के साथ अग्निभूति भगवान् महावीर के पास पहुँचे। भगवान् का दर्शन करते ही उनका क्रोध शान्त हो गया। अभिमान भाग गया। मुँह से एक भी शब्द न निकल सका। भगवान् की सौम्यमूर्ति, दिव्य ललाट तथा शान्त और गम्भीर मुद्रा को देखकर वे चकित रह गए। ऐसा दिव्य स्वरूप उन्होंने न पहले कभी देखा था, न सुना था।

भगवान् ने प्रेम भरे शब्दों में कहा—सौम्य अग्निभूति! अग्निभूति ने सोचा क्या ये मेरा नाम भी जानते हैं? पर मैं तो जगत्प्रसिद्ध हूँ। सारा संसार मेरा नाम जानता है। यदि ये मेरे मन के संशय को जान जाँय और उसे दूर करें तभी मान सकता हूँ कि ये सर्वज्ञ हैं। भगवान् ने उसके मन की बात जानते हुए कहा—हे अग्निभूति! तेरे मन में सन्देह है कि कर्म हैं या नहीं? यह सन्देह तुझे परस्पर विरोधी वेद वाक्यों से हुआ है। वेदों में एक जगह आया है—

'पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्, उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति। यदेजति यन्नैजति यद्दूरे यदु अन्तिके यदन्तरस्य सर्वस्य यदुत सर्वस्यास्य बाह्यत' इत्यादि।

अर्थात्—यह सारा संसार पुरुष अर्थात् आत्मरूप ही है। भूत और भविष्यत् दोनों आत्मा अर्थात् ब्रह्म ही हैं। मोक्ष का भी वही स्वामी है जो अन्न से बढ़ता है, जो चलता है अथवा नहीं चलता।

जो दूर है और समीप है। जो इस ब्रह्माण्ड के भीतर है या बाहर है वह सब ब्रह्म ही है।

इससे सिद्ध होता है कि ब्रह्म के सिवाय और कोई पदार्थ नहीं है। कर्म या पुण्य पाप वगैरह भी कुछ नहीं हैं। इसके विरुद्ध दूसरी श्रुति है—

पुण्यः पुण्येन कर्मणा पापः पापेन कर्मणा, इत्यादि। इस श्रुति से कर्मों का अस्तित्व सिद्ध होता है। कर्मों का प्रत्यक्ष न होने से वे और किसी प्रमाण द्वारा भी नहीं जाने जा सकते। इस सन्देह को दूर करने के लिए भगवान् ने नीचे लिखे अनुसार कहना शुरू किया—

हे सौम्य! मैं कर्मों को (जो कि एक प्रकार का परमाणु पुद्गलमय द्रव्य है) प्रत्यक्ष देख रहा हूँ। तुम भी इन्हें अनुमान द्वारा जान सकते हो इस लिए कर्मों के विषय में सन्देह नहीं करना चाहिए। नीचे लिखे अनुमानों से कर्मों का अस्तित्व सिद्ध होता है-

सुख और दुःख के अनुभव का कोई कारण है क्योंकि ये कार्य हैं। जैसे अङ्कुर। सुख और दुःख के अनुभव का कारण कर्म ही है।

शङ्का-माला, चन्दन, अङ्गना आदि इष्ट वस्तुएं सुख का कारण हैं और साँप, विष, काँटा आदि अनिष्ट वस्तुएं दुःख का। इस प्रकार प्रत्यक्ष मालूम पड़ने वाले कारणों को छोड़ कर प्रत्यक्ष न दीखने वाले कर्मों की कल्पना से क्या लाभ? दृष्ट को छोड़कर अदृष्ट की कल्पना करना न्याय नहीं हैं।

समाधान—दो व्यक्तियों के पास इष्ट और अनिष्ट सामग्री बराबर होने पर भी एक सुखी और दूसरा दुखी मालूम पड़ता है। इस प्रकार का भेद किसी अदृष्ट कारण के बिना नहीं हो सकता और वह अदृष्ट कारण कर्मवर्गणा ही है।

बालक का शरीर किसी पूर्व शरीर के बाद उत्पन्न होता है,

क्योंकि इन्द्रियादि वाला है। जैसे युवा शरीर। इस अनुमान के द्वारा जन्म से पहले किसी शरीर का अस्तित्व सिद्ध होता है जो बालक के शरीर का कारण है। पूर्वजन्म का शरीर तो इसका कारण नहीं कहा जा सकता क्योंकि वह पूर्वजन्म में ही छूट जाता है, विग्रहगति में नहीं रहता। जो कार्य की उत्पत्ति के समय अवश्य विद्यमान रहता है उसे ही कारण कहा जा सकता है। पूर्वजन्म का शरीर नवीन शरीर उत्पन्न होने से बहुत पहले नष्ट हो जाता है इसलिए वह नवीन शरीर का कारण नहीं कहा जा सकता। दूसरी बात यह है कि विना शरीर के जीव की गति नहीं होती। विग्रह गति में स्थूल शरीर न होने पर भी सूक्ष्म शरीर रहता है। वही सूक्ष्म शरीर कार्मण (कर्मों का समूह रूप) है।

दान आदि क्रियाएं फल वाली हैं, क्योंकि वे चेतन द्वारा की जाती हैं। जो क्रियाएं चेतन द्वारा की जाती हैं उनका फल अवश्य होता है और वह फल कर्म ही है।

शङ्का–दान देने से चित्त प्रसन्न होता है। इस लिए चित्त की प्रसन्नता ही दान आदि क्रियाओं का फल है। कर्मरूप फल मानने की कोई आवश्यकता नहीं है।

समाधान–चित्त की प्रसन्नता के प्रति दान निमित्त है, जैसे मिट्टी घड़े के प्रति निमित्त है। जिस प्रकार घड़ा मिट्टी का फल नहीं कहा जा सकता उसी तरह चित्त की प्रसन्नता दान आदि का फल नहीं कहा जा सकता। इस लिए दान आदि का फल कर्म ही है।

कर्मों के कार्य शरीर आदि के मूर्त होने से कर्म मूर्त हैं इत्यादि युक्तियों से मूर्त कर्मों का अस्तित्व सिद्ध होने पर और अग्निभूति का संशय दूर हो जाने पर वे भगवान् के शिष्य बन गए।

(३) वायुभूति–अग्निभूति को दीक्षित हुआ जान कर उनके छोटे भाई वायुभूति ने सोचा– भगवान् वास्तव में सर्वज्ञ हैं, तभी तो

मेरे दोनों बड़े भाई उनके पास दीक्षित हो गये। उसका मस्तक भक्ति से झुक गया। वन्दना करने के लिए वह भगवान् के पास पहुँचा। भगवान् को वन्दना करके नम्रता पूर्वक बैठ गया। भगवान् ने प्रेम पूर्वक कहा–

सौम्य! वायुभूते! संकोचवश तुम अपने हृदय की बात नहीं कह रहे हो। तुम्हारे मन में संशय है कि जीव और शरीर एक ही हैं या भिन्न भिन्न। वेद में दोनों प्रकार की श्रुतियाँ मिलती हैं, कुछ ऐसी हैं जिन से जीव का शरीर से भिन्न अस्तित्व सिद्ध होता है और कुछ ऐसी हैं जिन से जीव और शरीर एक ही सिद्ध होते हैं।

शङ्का– भूतवादियों का कहना है कि पृथ्वी, जल, तेज और वायु इन चारों भूतों के मिलने से आत्मा उत्पन्न होता है। यद्यपि पृथ्वी आदि में अलग अलग चेतना शक्ति नहीं है, फिर भी चारों के मिलने से नवीन शक्ति उत्पन्न हो सकती है। जैसे किसी एक वस्तु में मादकता न होने पर भी कुछ के मिलने पर नई मादक शक्ति उत्पन्न हो जाती है।

समाधान–केवल भूत समुदाय से चेतना उत्पन्न नहीं हो सकती क्योंकि अलग अलग भूतों में वह शक्ति बिल्कुल नहीं है। जैसे बालू से तेल नहीं निकल सकता। जिन वस्तुओं के समूह में जो शक्ति रहती है वह उनके एक देश में भी आंशिक रूप से रहती ही है। जैसे एक तिल में तेल। पृथ्वी आदि भूतों में पृथक् रूप से चेतना शक्ति नहीं रहती इसलिए वह समुदाय में भी नहीं आ सकती। जिन वस्तुओं से मद्य पैदा होता है उनमें अलग अलग भी मदशक्ति रहती है, इस लिए यह कहना ठीक नहीं है कि प्रत्येक वस्तु में मद न होने पर भी उनके समूह में उत्पन्न हो जाता है। नीचे लिखे अनुमानों से भी भूतों से अलग आत्मा सिद्ध होता है– जीव का चेतना गुण भूत और इन्द्रियों से भिन्न वस्तु का धर्म

है क्योंकि भूत और इन्द्रियों द्वारा प्राप्त किए हुए पदार्थ का स्मरण होता है। जैसे पाँच खिड़कियों द्वारा जाने गए पदार्थ का स्मरण करने वाले देवदत्त आदि की आत्मा। अनेक कारणों से जाने गए पदार्थ को जो एक स्मरण करता है वह उनसे भिन्न होता है। घटादि पदार्थ चक्षु, स्पर्श आदि अनेक इन्द्रियों से जाने जा सकते हैं किन्तु उनका स्मरण करने वाला एक ही है, इसलिए वह चक्षु आदि से भिन्न है। इस प्रकार स्मरण करने वाला आत्मा ही है।

शङ्का– इन्द्रियाँ ही स्वयं जानती हैं और वे ही स्मरण करती हैं। अलग आत्मा मानने से क्या लाभ?

समाधान– न इन्द्रियाँ स्वयं जानती हैं, न स्मरण करती हैं किन्तु आत्मा इन्द्रियों द्वारा जानता है और वही स्मरण करता है। अगर इन्द्रियाँ ही स्मरण करती हैं तो किसी इन्द्रिय के नष्ट हो जाने पर उसके द्वारा जाने हुए पदार्थ का स्मरण नहीं होना चाहिए।

घट पट आदि को जानना इन्द्रियों से भिन्न किसी दूसरी वस्तु का कार्य है, क्योंकि इन्द्रियों के नष्ट हो जाने पर उनका व्यापार न होने पर भी उनके द्वारा जाने हुए पदार्थ का स्मरण होता है, अथवा इन्द्रियों का व्यापार होने पर भी वस्तु की उपलब्धि न होने से कहा जा सकता है कि जानने वाला कोई और है। जब मन किसी दूसरी ओर लगा होता है तो किसी वस्तु की ओर आँखें खुली रहने पर भी वह दिखाई नहीं देती। इससे जाना जाता है कि जानने वाला इन्द्रियों से भिन्न कोई और है। क्योंकि इन्द्रियाँ तो कारण है।

आत्मा इन्द्रियों से भिन्न है क्योंकि एक इन्द्रिय से वस्तु को जान कर दूसरी इन्द्रिय से विकार प्राप्त करता है। जैसे एक खिड़की से किसी वस्तु को देख कर दूसरी से उसे ग्रहण करने की चेष्टा करने वाला व्यक्ति खिड़कियों से भिन्न है। आँखों से निम्बू

वगैरह देखने पर मुख में पानी भरना, इस बात को सिद्ध करता है कि आँख और मुख दोनों में क्रिया करने वाला कोई तीसरा है और वह आत्मा है।

बालक का ज्ञान किसी दूसरे ज्ञान के बाद होता है क्योंकि ज्ञान है। जो ज्ञान होता है, वह किसी दूसरे ज्ञान के बाद ही होता है जैसे युवक का ज्ञान। बालक के ज्ञान से पहले होने वाला ज्ञान शरीरजन्य नहीं हो सकता क्योंकि पूर्व शरीर पूर्वभव में ही नष्ट हो जाता है। ज्ञान रूप गुण बिना आत्मा रूप गुणी के नहीं रह सकता जैसे प्रकाश बिना सूर्य नहीं रह सकता। इसलिए आत्मा सिद्ध होता है।

माता के स्तनपान के लिए होने वाली बालक की प्रथम अभिलाषा किसी दूसरी अभिलाषा के बाद होती है क्योंकि अनुभव रूप है। जैसे बाद में होने वाली अभिलाषाएं। जब तक वस्तु का ज्ञान नहीं होता तब तक उसकी इच्छा नहीं होती। बालक बिना बताए ही दूध पीने की इच्छा तथा उसमें प्रवृत्ति करने लगता है, इससे सिद्ध होता है कि उसे इन वस्तुओं का ज्ञान पहले से है। इस ज्ञान का आधार पूर्व जन्म का शरीर तो हो नहीं सकता, क्योंकि वह नष्ट हो चुका है, वर्तमान शरीर भी नहीं हो सकता क्योंकि उसने अनुभव नहीं किया है। इसलिए पूर्व शरीर और वर्तमान शरीर दोनों के अनुभव का आधार कोई स्वतन्त्र आत्मा है।

इत्यादि अनुमानों द्वारा शरीर से भिन्न आत्मा सिद्ध कर देने पर वायुभूति का संशय दूर हो गया और वे भगवान् महावीर के शिष्य हो गए।

(४) व्यक्त स्वामी—इन्द्रभूति अग्निभूति और वायुभूति की दीक्षा का समाचार सुन कर व्यक्त स्वामी का हृदय भी भक्ति पूर्ण हो गया। वे भी वन्दना नमस्कार करने के लिए भगवान् के पास आए।

भगवान् ने व्यक्त स्वामी के हृदय की बात जान कर कहा– हे व्यक्त ! तुम्हारे मन में सन्देह है कि पृथ्वी आदि भूत हैं या नहीं। वेदों में दोनों प्रकार की श्रुतियाँ मिलने से तुम्हें ऐसा सन्देह हुआ है। एक जगह लिखा है– 'स्वप्नोपमं वै सकलमित्येष ब्रह्मविधिरञ्जसा विज्ञेयः'। अर्थात् यह सारा संसार स्वप्न की तरह मायामय है। इससे भूतों का अभाव सिद्ध होता है। दूसरी जगह लिखा है–द्यावापृथिवी (आकाश और पृथ्वी) पृथ्वी देवता, आपो (जल) देवता। इन सब से यह सिद्ध होता है कि पृथ्वी भूत अलग है। इस प्रकार भूतों के अस्तित्व और नास्तित्व के संशय को बताकर भगवान् ने नीचे लिखे अनुसार कहना शुरू किया–

हे व्यक्त ! तुम्हारा मत है कि यह सारी दुनियाँ स्वप्न के समान कल्पित है, मिथ्या है। इसे वास्तविक सिद्ध करने वाला कोई प्रमाण नहीं है।

घट पट आदि वस्तुओं की सिद्धि न स्वतः हो सकती है, न परतः, न दोनों से और न किसी अन्य प्रकार से। कार्य कारण आदि सारी बातें आपेक्षिक हैं। जितनी वस्तुएं हैं वे या तो कारण हैं या कार्य। कारण के द्वारा किए जाने पर किसी वस्तु को कार्य कहा जाता है और किसी कार्य को करने पर ही कोई वस्तु कारण कही जाती है। जैसे मिट्टी कारण है और घट कार्य। मिट्टी इसी लिए कारण कही जाती है क्योंकि वह घट रूप कार्य को उत्पन्न करती है और घट इसीलिए कार्य कहा जाता है क्योंकि वह मिट्टी से उत्पन्न होता है। इस लिए कार्यकारणादिपना स्वतः सिद्ध नहीं है। जो वस्तु स्वतः सिद्ध नहीं है वह परतः सिद्ध भी नहीं हो सकती जैसे आकाश के फूल। स्वपरोभय से भी सिद्ध नहीं हो सकती क्योंकि जो बात अलग अलग किसी वस्तु को सिद्ध नहीं कर सकती, वह इकट्ठी होकर भी उसे सिद्ध नहीं कर सकती। जैसे

वालूरेत के एक कण में तेल नहीं है तो बहुत सी रेत इकट्ठी होने पर भी तेल पैदा नहीं हो सकता।

कारण के विना कार्य सिद्ध नहीं होता और कार्य के विना कारण सिद्ध नहीं हो सकता इसलिए अन्योऽन्याश्रय दोष आ जाएगा। इसलिए नोभयतः भी संभव नहीं है।

चौथा विकल्प भी सिद्ध नहीं होता क्योंकि स्वतः और परतः को छोड़ कर और कोई विकल्प हो ही नहीं सकता।

इसी प्रकार ह्रस्व दीर्घ आदि व्यवहार भी अपेक्षा पर ही निर्भर हैं। इसलिए इसमें भी वे दोष हैं जो कार्य और कारण में बताए गए हैं।

मध्यमा अङ्गुली की अपेक्षा तर्जनी छोटी कही जाती है और कनिष्ठा की अपेक्षा बड़ी। वास्तव में न कोई छोटी है न बड़ी। इसलिए संसार में वास्तविक पदार्थ कोई भी नहीं है। सभी शून्य हैं। केवल कल्पना के आधार पर सारा प्रपञ्च दिखाई देता है।

इत्यादि युक्तियों से संसार में सर्वशून्यता का सन्देह करने वाले व्यक्तस्वामी को भगवान् ने कहा– आयुष्मन् व्यक्त ! पृथ्वी आदि भूतों में तुम्हारा संशय नहीं होना चाहिए, क्योंकि जो वस्तु आकाशकुसुम की तरह सर्वथा असत् है उसमें संशय नहीं हो सकता। तुम्हारे इस संशय से ही सिद्ध होता है कि पृथ्वी आदि पाँच भूत हैं। यदि सभी वस्तुएं असत् हैं तो स्थाणु और पुरुष विषयक ही संशय क्यों होता है। गगनकुसुम विषयक संशय क्यों नहीं होता। जो वस्तु किसी एक स्थान पर प्रमाण द्वारा सिद्ध होती है उसी का दूसरी जगह संशय होता है, जो वस्तु सर्वथा असत् है उसमें संशय नहीं हो सकता। संशय उत्पन्न होने के लिए ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय आदि सामग्री आवश्यक है। सर्व शून्य मानने पर सामग्री न रहेगी और संशय भी उत्पन्न न होगा।

शङ्का–सर्वथा अभाव होने पर भी स्वप्न में संशय होता है। जैसे

आंगन में कुछ न होने पर भी स्वप्नद्रष्टा को संदेह होता है कि यह हाथी है या पहाड़ है।

समाधान- स्वप्न में भी संशय का विषय ऐसी वस्तुएं ही हैं जो जाग्रतावस्था में जानी जा चुकी हैं। जिस व्यक्ति ने हाथी को कभी सुना या देखा न हो उसे स्वप्न में हाथी दिखाई नहीं दे सकता।

संसार को शून्य रूप मानने से स्वप्न और जाग्रत, सत्य और मिथ्या आदि में कुछ भी भेद नहीं रहेगा।

ह्रस्व दीर्घ आदि की सत्ता केवल आपेक्षिक नहीं है किन्तु अर्थक्रिया का करना रूप सत्त्व भी उन में पाया जाता है, क्योंकि वे अपने ज्ञान को पैदा करना रूप अर्थक्रिया करती हैं। यदि ये ह्रस्व दीर्घ या तदुभय रूप ज्ञान उत्पन्न करती हैं तो प्रमाण से स्वयंसिद्ध ही हैं। तर्जनी अङ्गुली में छोटापन और बड़प्पन दोनों धर्म रहते हैं। कनिष्ठा या मध्यमा की अपेक्षा वे केवल कहे जाते हैं। यदि इन धर्मों के विना रहे भी इन्हें छोटा या बड़ा कहा जाय तो आकाश-कुसुम में भी ह्रस्वत्व या दीर्घत्व की प्रतीति होनी चाहिए। किसी लम्बी वस्तु को भी ह्रस्व कहा जा सकेगा।

सर्व शून्यवाद में और भी अनेक दोष आते हैं। उन से पूछा जा सकता है- घट पट आदि सब वस्तुओं को मिथ्या बताने वाला वचन सत्य है या असत्य? यदि सत्य है तो उसी के वास्तविक हो जाने के कारण शून्यवाद सिद्ध नहीं होगा। यदि असत्य है तो स्वयं अप्रमाण होने के कारण शून्यवाद की सिद्धि नहीं हो सकती। इस तरह किसी प्रकार शून्यता सिद्ध नहीं होती।

यदि वस्तुओं की असत्ता सब जगह समान है तो कार्यकारण-भाव का भी लोप हो जाएगा। तिलों से ही तेल निकलता है, बालू रेत से नहीं, इसमें कोई नियामक न रहेगा। आकाशकुसुम की तरह असद्भूत वस्तुओं से ही सब कुछ उत्पन्न होने लगेगा। कारण विशेष

से कार्यविशेष उत्पन्न होता हुआ दिखाई देता है, इस के लिए भिन्न भिन्न कार्यों के उत्पन्न होने से पहले कारण का वास्तविक अस्तित्व मानना आवश्यक है।

इस प्रकार बहुत सी युक्तियों से समझाने के बाद भगवान् ने व्यक्त से कहा—हे व्यक्त! पृथ्वी, जल और अग्नि तो सभी के प्रत्यक्ष हैं, इस लिए इनका अपलाप नहीं किया जा सकता। वायु का भी स्पर्श होने से वह प्रत्यक्ष ही है। इसका अस्तित्व अनुमान से भी सिद्ध किया जा सकता है—शरीर के साथ होने वाले अदृश्य स्पर्श आदि विना गुणी के नहीं हो सकते, क्योंकि गुण हैं, जो गुण हैं वे गुणी के विना नहीं होते, जैसे घट के रूपादि। स्पर्श, शब्द, स्वास्थ्य, कम्प आदि गुणों का आधार गुणी वायु ही है।

आकाश का अस्तित्व सिद्ध करने के लिए नीचे लिखा अनुमान है— पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु आधार वाले हैं, क्योंकि मूर्त हैं। जैसे पानी का आधार घट है। संसार में पृथ्वी आदि वस्तुओं का आधार आकाश ही है, इससे आकाश की भी सिद्धि हो जाती है। इत्यादि युक्तियों से समझाया जाने पर व्यक्तस्वामी का संशय दूर हो गया और वे भगवान् महावीर के शिष्य हो गए।

(५) सुधर्मास्वामी— व्यक्तस्वामी को दीक्षित हुआ जान कर सुधर्मास्वामी भी भगवान् महावीर के पास वन्दना आदि के लिए गए। सुधर्मास्वामी को देखते ही भगवान् ने कहा— हे सुधर्मन्! तुम्हारे मन में यह सन्देह है कि मनुष्यादि मर कर दूसरे भव में पूर्वभव सरीखे ही रहते हैं या बदल जाते हैं। यह सन्देह तुम्हारे मन में विरुद्ध वेदवाक्यों के कारण हुआ है। एक वाक्य कहता है— 'पुरुषो मृतः सन् परभवे पुरुषत्वमेवाश्नुते प्राप्नोति' तथा 'पशवो गवादयः पशुत्वमेव' इत्यादि अर्थात् पुरुष मर कर परभव में पुरुष ही होता है और गाय आदि पशु मर कर पशु होते हैं। इस वाक्य

से मालूम पड़ता है कि परभव में जीव पूर्वभव सरीखा ही रहता है। 'शृगालो वै एष जायते यः सपुरीषो दह्यते'। अर्थात् जो व्यक्ति पुरीष (विष्ठा) सहित जला दिया जाता है वह दूसरे भव में शृगाल होता है। इस वाक्य से दूसरे भव में बदल जाना सिद्ध होता है।

युक्तियाँ भी दोनों पक्षों का समर्थन करती हैं- कारण के अनुसार ही कार्य होता है। जैसे जौ के बीज से जौ ही पैदा होते हैं, गेहूँ नहीं। वर्तमान-भव का कारण पूर्वभव है। इस लिए पूर्वभव के सदृश ही वर्तमान भव हो सकता है। यह कहना ठीक नहीं है, कार्य का कारण के समान होना एकान्त नियम नहीं है। क्योंकि शृङ्ग से सर (तृणविशेष) उत्पन्न हो जाता है। उसी पर सरसों का लेप करने से गन्धकी उत्पन्न होती है। गाय और भेड़ के लोम से दूब पैदा होता है। इस प्रकार भिन्न भिन्न वस्तुओं के मिलाने से अनेक प्रकार के वृक्ष उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार गोमय (गोबर) आदि वस्तुओं से बिच्छू आदि अनेक प्राणी तथा दूसरी वस्तुएं बन जाती हैं। उनमें कहीं भी कार्य और कारण का सादृश्य नहीं दिखाई देता।

कारण के अनुरूप कार्य को मान लेने पर भी परभव में विभिन्नता हो सकती है। परभव का कारण इस जन्म का शरीर नहीं है किन्तु कर्म ही है। उनकी विचित्रता के अनुसार परभव में विचित्रता हो सकती है। क्रूर कर्मों वाला जीव नरक, तिर्यञ्च आदि नीच गतियों में उत्पन्न होता है, शुभ कर्मों वाला जीव देव और मनुष्य रूप शुभ-गति में उत्पन्न होता है। इस लिए कर्मों में विविधता होने के कारण यह नहीं कहा जा सकता कि उत्तरभव में जीव पूर्वभव सरीखे ही रहते हैं। इस के लिए नीचे लिखा अनुमान है- संसारी जीव नारक आदि रूप वाले विचित्र संसार को प्राप्त करते हैं, क्योंकि संसार विचित्र कर्मों का फल है। कर्मों की परिणति विचित्र रूप से होती है, क्योंकि कर्म विचित्र पुद्गल परिणाम रूप हैं।

संसार में प्राणी भिन्न भिन्न प्रकार की क्रियाएं करते हुए नजर आते हैं। क्रिया के अनुरूप ही फल होने से परभव में फल भी विचित्र ही होगा।

शङ्का– इस भव में होने वाली खेती आदि क्रियाएं ही सफल हैं, परभव के लिए की जाने वाली दान आदि क्रियाओं का कोई फल नहीं है। पारलौकिक क्रियाओं के निष्फल होने से परभव में उनका कोई असर नहीं होता, इसी लिए परभव में सभी प्राणी एक सरीखे होते हैं।

समाधान– इस प्रकार भी सब जीव समान नहीं हो सकते, क्योंकि समानता कर्मों से पैदा होती है। पारलौकिक क्रियाओं को निष्फल मानने पर कर्म नहीं हो सकते और कर्मों के विना जीवों की उत्पत्ति नहीं हो सकती। यदि विना कर्म के भी समानता मानी जाय तो विना कुछ किए फल प्राप्ति होने लगेगी और किए हुए दान आदि कर्म विना फल के नष्ट हो जाएंगे। अथवा पारलौकिक क्रियाओं के न मानने पर कर्मों का सर्वथा अभाव हो जायगा। कर्मों का अभाव होने पर परभव की प्राप्ति ही नहीं होगी। फिर समानता और विषमता की बात ही दूर रह जाती है। यदि कर्म-रूप कारण के विना अकारण ही भवान्तर की प्राप्ति मानते हो तो भव प्राप्ति की तरह नाश भी ऐसे ही होने लगेगा, फिर संसार का बन्धन काटने के लिए तप नियम आदि का अनुष्ठान व्यर्थ हो जायगा। विना कारण मानने पर जीवों की समानता की तरह विषमता भी ऐसे ही सिद्ध हो जायगी।

शङ्का–जिस प्रकार कर्मों के विना ही मिट्टी आदि कारणों से स्वाभाविक रूप से घटादि कार्य उत्पन्न होते रहते हैं, इसी प्रकार मनुष्य तिर्यञ्च आदि अलग अलग जाति के प्राणियों से उन्हीं के समान प्राणी उत्पन्न होते रहेंगे। कर्मों को मानने की क्या आवश्यकता है?

समाधान–घटादि कार्य स्वतः उत्पन्न नहीं होते। उन्हें भी कर्ता, करण आदि की अपेक्षा रहती है। इसी प्रकार परभव में होने वाले शरीर को भी आत्मा रूप कर्ता और करण की अपेक्षा है। शरीर के लिए करण कर्म ही हैं।

शङ्का– घट पट आदि के कर्ता कुम्भार आदि प्रत्यक्ष सिद्ध हैं इस लिए उनमें कर्ता और करण मान लेने चाहिएं। शरीरादि कार्य तो बादलों के विकार की तरह स्वाभाविक ही मानने चाहिए क्योंकि वहाँ कर्ता आदि दिखाई नहीं देते। इस लिए कर्मों की सिद्धि नहीं होती।

समाधान– शरीर आदि स्वाभाविक नहीं हैं, क्योंकि आदि तथा निश्चित आकार वाले हैं। जो वस्तु सादि तथा निश्चित आकार वाली होती है, वह कर्त्ता करण आदि की अपेक्षा के बिना स्वाभाविक रूप से उत्पन्न नहीं होती, जैसे घट। जैसे किसी समय कर्म ही कर्ता रूप में आ जाता है यथा–'पचति ओदनं स्वयमेव' इसी प्रकार नामकर्म शरीरोत्पत्ति में काम कर रहा है।

इस प्रकार युक्तियों से समझा कर भगवान् ने कहा– सभी वस्तुओं में तीन धर्म रहते हैं। उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य। उत्पाद और व्यय की अपेक्षा कोई भी वस्तु पहली पर्याय सरीखी नहीं रहती। जीव भी देव, मनुष्य आदि नवीन पर्याय को प्राप्त करता रहता है। ध्रौव्य की अपेक्षा वस्तुओं की सभी पर्यायों में समानता रहती है। जैसे मिट्टी का गोला घट के रूप में बदलता है। गोले और घड़े का आकार भिन्न भिन्न होने से दोनों में भेद है किन्तु मिट्टी की अपेक्षा दोनों में समानता है। इसी प्रकार देव और मनुष्य भव में बहुत सा भेद है किन्तु दोनों पर्यायों में आत्मा एक ही होने से दोनों में समानता है। समानता द्रव्य का धर्म है और विषमता गुणों का।

भगवान् महावीर के युक्तियुक्त समाधान द्वारा सुधर्मा स्वामी का

सन्देह दूर होने पर वे उनके शिष्य हो गए और पाँचवे गणधर कहलाए।

(६) मण्डित स्वामी— इन्द्रभूति यावत् सुधर्मा स्वामी को दीक्षित हुआ जान कर मण्डित स्वामी भगवान् की वन्दना करने के लिए गए। उन्हें देखते ही भगवान् ने कहा— हे मण्डित! तुम्हारे मन में सन्देह है कि बन्ध और मोक्ष हैं या नहीं। बन्ध और मोक्ष का अभाव सिद्ध करने के लिए तुम नीचे लिखी युक्तियाँ उपस्थित करते हो—

जीव के साथ होने वाला कर्मों का बन्ध सादि है या अनादि? यदि सादि है तो पहले जीव की सृष्टि होती है पीछे कर्मों की, अथवा पहले कर्मों की सृष्टि होती है फिर जीवों की, या दोनों की साथ होती है?

पहले जीव पीछे कर्म कहना ठीक नहीं है, क्योंकि कर्मों के बिना जीव की उत्पत्ति नहीं हो सकती। जीव का जन्म अर्थात् उत्पत्ति कर्म द्वारा ही होती है। बिना कर्म वह कैसे उत्पन्न हो सकेगा? अगर बिना कारण भी कोई वस्तु उत्पन्न होने लगे तो खरशृङ्ग भी उत्पन्न होने लगेंगे। अगर आत्मा को अनादि और फिर कर्मों की उत्पत्ति मानी जाय तो भी ठीक नहीं है। इस तरह कर्मों का आत्मा के साथ सम्बन्ध नहीं हो सकेगा क्योंकि शुद्ध आत्मा के साथ कर्म-बन्ध नहीं होता। अगर शुद्ध के साथ भी कर्मबन्ध हो तो मुक्त जीवों को भी कर्मबन्ध होने लगेगा।

पहले कर्म पीछे जीव मानना भी ठीक नहीं है। क्योंकि जीव कर्मों का कर्ता है और कर्ता के बिना कर्मरूप कार्य उत्पन्न नहीं हो सकता।

दोनों की एक साथ उत्पत्ति मानना भी ठीक नहीं है। एक साथ उत्पन्न होने पर भी जीव कर्मों का कर्ता नहीं हो सकता। इन दोनों का परस्पर सम्बन्ध भी नहीं हो सकता। पहले वाले सभी दोष इस पक्ष में भी समान हैं। इसलिए जीव और कर्मों को सादि नहीं

माना जा सकता।

यदि इन दोनों का सम्बन्ध अनादि माना जाय तो यह भी ठीक नहीं है क्योंकि अनादि सम्बन्ध कभी नष्ट नहीं हो सकता, जैसे जीव और ज्ञान का सम्बन्ध। इस प्रकार मोक्ष का अभाव हो जाएगा।

समाधान–शरीर और कर्म की सन्तान परम्परा अनादि है, क्योंकि वे एक दूसरे के हेतु हैं। जैसे बीज और अंकुर। बीज से अंकुर पैदा होता है और अंकुर से बीज। यह नहीं कहा जा सकता कि यह परम्परा कब शुरू हुई। इसी प्रकार कर्मों से शरीर पैदा होता है और शरीर से कर्म होते हैं। इन दोनों की परम्परा अनादि है। किसी खास कर्म या शरीर के लिए यह कहा जा सकता है कि वह आदि वाला है किन्तु उनकी परम्परा के लिए नहीं कहा जा सकता। इस लिए पहले कर्म हुए या जीव इत्यादि प्रश्न ही नहीं उत्पन्न हो सकते। ऐसा कोई कर्म नहीं है जो उससे पहले होने वाले शरीर का कार्य न हो और ऐसा कोई शरीर नहीं है जो अपने से पहले होने वाले कर्म का कार्य न हो। कर्मों का होना ही वन्ध है, इस लिए वन्ध भी प्रवाह से अनादि है। देह और कर्म दोनों का कर्ता जीव है। देह को वनाते समय कर्म करण हैं और कर्मों को बनाते समय शरीर। यद्यपि कर्मों का प्रत्यक्ष नहीं होता, किन्तु देह–रूप कार्य से उनका अनुमान किया जा सकता है, अर्थात् उनकी सिद्धि की जा सकती है।

'कर्म और शरीर की सन्तान परम्परा को अनादि मानने से उसका कभी अन्त न होगा' यह कहना भी ठीक नहीं है क्योंकि बीज और अंकुर की सन्तान परम्परा अनादि होने पर भी सान्त होती है। वीज अथवा अंकुर के विना कार्य किए नष्ट हो जाने पर बीज और अंकुर की परम्परा नष्ट हो जाती है। इसी प्रकार मुर्गी और उसके अण्डे, पिता और पुत्र की परम्परा भी नष्ट हो सकती है।

सोने में लगा हुआ मैल अनादि होने पर भी आग से तपाना आदि कारणों से छूट जाता है। उसी प्रकार जीव और कर्मों का सम्बन्ध भी तप और संयम रूप उपायों से छूट जाता है। इसलिए मोक्ष का अभाव नहीं हो सकता।

जीव और कर्मों का परस्पर सम्बन्ध अभव्यों में अनादि और अनन्त तथा भव्यों में अनादि सान्त है।

शङ्का—सभी जीव एक सरीखे हैं, फिर उनमें भव्य और अभव्य का भेद क्यों होता है?

समाधान— भव्यों में स्वभाव से ही मुक्ति की योग्यता होती है और अभव्यों में नहीं।

शङ्का— मोक्ष गया हुआ जीव वापिस नहीं लौटता और छः महीनों में एक जीव अवश्य मोक्ष जाता है। ऐसा मानने पर कभी न कभी संसार भव्यों से खाली हो जायगा, क्योंकि काल अनन्त हैं?

समाधान— यह ठीक नहीं है, क्योंकि भव्य जीव अनन्तानन्त हैं। जैसे भविष्यत्काल और आकाश। जो वस्तु अनन्तानन्त होती है वह प्रतिक्षण कम होने पर भी खतम नहीं होती, जैसे प्रत्येक क्षण में वर्तमान रूप से परिणत होता हुआ भविष्यत्काल। अथवा आकाश के एक एक प्रदेश को बुद्धि द्वारा कम करते रहने पर भी वह कभी समाप्त नहीं होता। इसी प्रकार भव्यों का उच्छेद नहीं हो सकता।

भूत और भविष्यत्काल बराबर हैं। इस लिए यह कहा जा सकता है कि जितने जीव भूतकाल में मोक्ष गए हैं उतने ही भविष्य में जाएंगे। भूतकाल में अब तक एक निगोद का अनन्तवाँ भाग जीव मोक्ष गए हैं, इसलिए भविष्य में भी उतने ही जाएंगे। न्यून या अधिक नहीं जा सकते। इस प्रकार भी भव्यों का उच्छेद नहीं हो सकता, क्योंकि भव्य जीव काल और आकाश की तरह अनन्त हैं। जिस तरह काल और आकाश खतम नहीं होते, उसी तरह भव्य

जीव भी समाप्त नहीं होते ।

शङ्का-यदि सब भव्य मोक्ष नहीं जाएंगे तो मोक्ष न जाने वाले भव्य तथा अभव्य जीवों में क्या भेद है ?

समाधान- जो मोक्ष जाएंगे वे ही भव्य नहीं कहे जाते, किन्तु जिनमें मोक्ष जाने की योग्यता है, वे भव्य कहे जाते हैं। अभव्य जीवों में मोक्ष जाने की योग्यता ही नहीं होती। योग्यता होने पर भी कारणसामग्री न मिलने से बहुत सी वस्तुएं उस रूप में परिणत नहीं होतीं। जैसे दण्ड के आकार में परिणत होने की योग्यता होने पर भी बहुत से वृक्ष उस रूप में परिणत नहीं होते। इसी प्रकार जो जीव मोक्ष न जाने पर भी मोक्ष जाने की योग्यता रखते हैं, वे भव्य कहे जाते हैं। अभव्यों में तो मोक्ष जाने की योग्यता ही नहीं होती। जैसे पानी में दण्ड बनने की योग्यता नहीं है। अथवा जैसे मिले हुए सोने और पत्थर में अलग अलग होने की योग्यता होने पर भी सभी अलग अलग नहीं होते किन्तु जिन्हें अलग करने की सामग्री प्राप्त हो जाती है, वे ही अलग होते हैं। यह निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि वे ही अलग अलग होते हैं, जिन में योग्यता होती है। इसी प्रकार सभी भव्यों में योग्यता होने पर भी सामग्री न मिलने से कर्ममल दूर नहीं होता। अभव्यों में कर्ममल दूर करने की योग्यता ही नहीं है।

शङ्का- मोक्ष गया हुआ जीव वापिस नहीं लौटता, यह कहना ठीक नहीं है। मोक्ष नित्य नहीं है, क्योंकि कृतक है, प्रयत्न के बाद प्राप्त होता है, आदि वाला है। जैसे घड़ा।

समाधान- जो कृतक, प्रयत्न के बाद उत्पन्न होने वाला और आदि वाला है वह नाश वाला है यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि प्रध्वंसाभाव कृतकादि वाला होने पर भी नष्ट नहीं होता। प्रध्वंसाभाव को अभाव स्वरूप बता कर दृष्टान्त में वैषम्य बताना ठीक

नहीं है, क्योंकि प्रध्वंसाभाव पुद्गल और सत् रूप ही है।

मोक्ष को कृतक मानना भी ठीक नहीं है क्योंकि आत्मा और कर्मपुद्गलों का अलग अलग होना ही मोक्ष है। तप और संयम के द्वारा कर्मों का नाश हो जाने पर वियोग स्वयं हो जाता है। आत्मा अपने आप शुद्ध और निर्मल बन जाता है। इस लिए मोक्ष कृतक अर्थात् किया जाने वाला नहीं है। जिस प्रकार मुद्गर द्वारा घट का नाश होने पर आकाश का कुछ नहीं होता इसी प्रकार तप और संयम द्वारा कर्मों का नाश होने पर आत्मा अपने शुद्ध स्वरूप को प्राप्त हो जाता है उस में कोई नई वस्तु उत्पन्न नहीं होती।

शङ्का- जीव निर्जरा द्वारा जिन कर्म पुद्गलों को छोड़ता है वे लोक में ही रहते हैं, लोक के बाहर नहीं जाते। जीव भी लोक में ही रहते हैं, तो उनका फिर सम्बन्ध क्यों नहीं होता ?

समाधान- मुक्त जीव को फिर बन्ध नहीं होता, क्योंकि उस में बन्ध के कारण नहीं हैं। जैसे बिना अपराध का पुरुष। कर्मबन्ध योग और कषायों के कारण से होता है और वे मुक्त आत्मा के नहीं हैं, इस लिए उनके कर्मबन्ध नहीं होता। जिस बीज में अंकुर पैदा करने की शक्ति नष्ट हो गई है, उससे फिर अंकुर पैदा नहीं होता। इसी प्रकार जिस आत्मा में कर्मबन्ध का बीज नष्ट हो गया है, उसमें फिर कर्मबन्ध नहीं होता। कर्मबन्ध का मूल कारण कर्म ही है। इस लिए एक बार कर्म नष्ट हो जाने पर फिर कर्मबन्ध नहीं होता इसी कारण से मुक्त आत्माओं की संसार में पुनरावृत्ति नहीं होती।

शङ्का- जीव की गति कर्मों के अनुसार ही होती है। मुक्त आत्माओं के आठों कर्म शरीर के साथ ही नष्ट हो जाते हैं, फिर उन की ऊर्ध्वगति कैसे होगी ?

समाधान- मुक्त आत्मा कर्मों का बन्धन छूटते ही ऊपर की ओर गमन करते हैं। उनकी एक समय की गति होती है। कर्मों

का क्षय होने से जैसे जीव सिद्धत्व रूप स्वभाव को प्राप्त कर लेता है। ऊर्ध्वगति रूप जीव का स्वभाव है। अथवा जिस प्रकार तुम्बी, एरण्डफल, अग्नि, धूम और धनुष से छूटे हुए बाण की गति होती है उसी प्रकार सिद्धों की भी पूर्वप्रयुक्त वेग से गति होती है।

शङ्का–जितनी वस्तुएं अमूर्त हैं वे सभी अक्रिय हैं, जैसे आकाश। आत्मा अमूर्त है तो इसे अक्रिय भी मानना पड़ेगा।

समाधान– दूसरे अमूर्तों के अक्रिय होने से अगर सक्रिय आत्मा को भी अक्रिय सिद्ध किया जा सकता है तो दूसरे अमूर्तों के जड़ होने से आत्मा को भी जड़ मानना पड़ेगा। जिस प्रकार दूसरे अमूर्तों के जड़ होने पर भी भिन्न स्वभाव वाले आत्मा को जड़ नहीं कहा जा सकता, इसी प्रकार दूसरे अमूर्तों के अक्रिय होने पर भी आत्मा अक्रिय नहीं है। नीचे लिखे अनुमान से भी आत्मा सक्रिय सिद्ध होता है–आत्मा सक्रिय है, क्योंकि कर्ता और भोक्ता है जैसे कुम्भार; अथवा आत्मा सक्रिय है, क्योंकि प्रत्यक्ष से शरीर का हलन चलन दिखाई देता है, जैसे यन्त्रपुरुष (मशीन का बना हुआ पुरुष)। कर्म न होने पर भी सिद्ध गति के परिणामस्वरूप सिद्धों में भी क्रिया होती है।

शङ्का–यदि सिद्ध जीवों के स्वभाव के कारण ही ऊर्ध्वगति होती है तो सिद्ध क्षेत्र से आगे भी गति क्यों नहीं होती?

समाधान– सिद्धगति के बाद धर्मास्तिकाय न होने से गति नहीं होती, क्योंकि लोकाकाश के साथ ही धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय समाप्त हो जाते हैं। जीव और पुद्गलों की गति बिना धर्मास्तिकाय के नहीं होती इस लिए जीव ऊपर जाता हुआ आगे धर्मास्तिकाय न होने से रुक जाता है। जैसे मत्स्य पानी के बिना नहीं चल सकता उसी तरह धर्मास्तिकाय के बिना जीव और पुद्गल की गति नहीं होती।

शङ्का–अगर व्यक्तिगत रूप से देखा जाय तो सभी सिद्ध जीवों की आदि है, क्योंकि कर्म खपाने के बाद ही जीव वहाँ पहुँचते हैं। सभी जीवों की आदि मानने पर प्रथम जीव के मोक्ष जाने से पहले सिद्ध क्षेत्र को खाली मानना पड़ेगा।

समाधान– जिस प्रकार प्रत्येक समय का प्रारम्भ होने पर भी यह नहीं कहा जा सकता कि काल द्रव्य अमुक समय शुरू हुआ और इस से पहले काल नहीं था, उसी प्रकार मोक्ष को समष्टिरूप से सादि नहीं कहा जा सकता।

शङ्का–सिद्धि क्षेत्र का विस्तार अढाई द्वीप (मनुष्य क्षेत्र) जितना ही है। जीव अनन्तकाल से सिद्ध हो रहे हैं और अनन्तकाल तक होते रहेंगे। थोड़े से क्षेत्र में इतने जीव कैसे समा सकते हैं ?

समाधान– सिद्ध जीव अमूर्त हैं इस लिए एक दूसरे का प्रतिघात नहीं करते। थोड़े से क्षेत्र में भी वे अनन्त रह सकते हैं। जैसे किसी द्रव्य के सूक्ष्म होने पर उस पर अनन्त सिद्धों का ज्ञान पड़ता है, एक ही नर्तकी पर हजारों दृष्टियाँ गिरती हैं, छोटे से कमरे में सैकड़ों दीपों की प्रभा समा जाती है, एक पुरुष के ज्ञान में अनेक वस्तुओं का चित्र समाविष्ट हो जाता है,उसी प्रकार सिद्ध भी एक दूसरे का विना प्रतिघात किए परिमित क्षेत्र में भी अनन्त रहते हैं।

इस प्रकार युक्ति के द्वारा समझाया जाने पर मण्डित स्वामी का संशय दूर हो गया और वे भगवान् के शिष्य हो गए।

(७) मौर्यस्वामी– वन्दना करने के लिए आए हुए मौर्यस्वामी को भगवान् ने कहा–हे मौर्य! तुम्हारे मन में संशय है कि देव हैं या नहीं। वेदों में दोनों प्रकार की श्रुतियों मिलने से तुम्हें यह सन्देह हुआ है। किन्तु तुम्हें यह संशय नहीं करना चाहिए, क्योंकि तुम भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक चारों प्रकार के देवों को दर्शनों के लिए आते हुए देख रहे हो। प्रत्यक्ष होने के कारण तुम्हें

उनके विषय में सन्देह न करना चाहिए।

सूर्य चन्द्र आदि ज्योतिषी देवों को तुम दिन रात देखते हो। यद्यपि दिखाई देने वाले विमान हैं, फिर भी विमान से विमान में रहने वाला स्वतः सिद्ध हो जाता है, क्योंकि रहने वाले का सर्वथा अभाव होने पर रहने का स्थान नहीं बन सकता।

अनुमान से भी देवों का अस्तित्व सिद्ध होता है– देव हैं, क्योंकि लोक में देवों द्वारा किए गए उपकार और अपकार देखे जाते हैं, जैसे राजा वगैरह द्वारा किए गए उपकार और अपकार।

मनुष्य और तिर्यञ्च गति में सुख और दुःख दोनों मिले हुए हैं। किसी को सुख अधिक है किसी को दुःख। जिन जीवों ने उत्कट पुण्य या पाप किया है, उनके फल भोग के लिए ऐसा स्थान होना चाहिए, जहाँ सुख ही सुख हो या दुःख ही दुःख हो। इन्हीं दो स्थानों का नाम स्वर्ग और नरक है।

शङ्का– यदि देव हैं और अपनी इच्छापूर्वक आहार विहार करते रहते हैं तो वे मनुष्यलोक में क्यों नहीं आते?

समाधान–देवों के मनुष्यलोक में नहीं आने के कई कारण हैं। जैसे सुन्दर रूप वाली कामिनी में आसक्त और रमणीय प्रदेश में रहने वाला व्यक्ति अपने स्थान को छोड़ कर दूसरी जगह नहीं जाना चाहता, इसी तरह स्वर्गीय वस्तुओं में प्रेम वाले होने से तथा वहाँ के काम भोगों में आसक्त होने के कारण देव मनुष्यलोक में नहीं आते। जैसे अपने कार्य में व्यस्त मनुष्य इधर उधर नहीं जाता इसी तरह देव अपना कार्य समाप्त न होने से मनुष्यलोक में नहीं आते। जिस प्रकार सङ्गरहित मुनि बिना चाहे घर में नहीं जाता इसी प्रकार देव मनुष्यों के अधीन न होने के कारण यहाँ नहीं आते। मनुष्य-भव के अशुभ तथा दुर्गन्धि वाला होने के कारण भी देव नहीं आते।

शङ्का– क्या देवता मनुष्यलोक में बिल्कुल नहीं आते ?

उत्तर– तीर्थङ्कर के जन्म, दीक्षा, केवलज्ञान, निर्वाण के अवसर पर अपना कर्तव्य पालन करने के लिए देव मनुष्यलोक में आते हैं। उनमें से कुछ इन्द्र आदि तो भक्ति पूर्वक आते हैं। कुछ उनकी देखा देखी चले आते हैं। कुछ संशय दूर करने के लिए, कुछ पूर्वभव के मित्र आदि से अनुराग होने के कारण, कुछ समयबन्ध अर्थात् पूर्वजन्म में किए हुए किसी संकेत के कारण, कुछ किसी तपस्वी या विद्वान् साधु के गुणों से आकृष्ट होकर, कुछ पूर्व-जन्म के शत्रु को पीड़ा देने के लिए, कुछ पूर्वजन्म के मित्र या पुत्रादि पर अनुग्रह करने के लिए और कोई कोई यों ही क्रीड़ा के लिए मनुष्यलोक में आजाते हैं।

भूत प्रेत आदि के द्वारा अधिष्ठित व्यक्ति में दिखाई देने वाली विचित्र क्रियाओं से भी देवयोनिविशेष का अनुमान किया जा सकता है। इसी तरह भूत द्वारा अधिष्ठित घरों में होने वाली अद्भुत घटनाओं से भी देवों का अस्तित्व सिद्ध होता है।

स्वर्ग तथा देवों का अस्तित्व न मानने से वेद में बताई गई अग्निहोत्र आदि क्रियाएं निष्फल हो जाएंगी।

इस प्रकार समझाया जाने पर मौर्यस्वामी का संशय दूर हो गया और वे भगवान् महावीर के शिष्य हो गए तथा सातवें गण-धर बने।

(८) अकम्पितस्वामी–दर्शनों के लिए आए हुए अकम्पित स्वामी को देख कर भगवान् ने कहा–हे अकम्पित ! तुम्हारे मन में संशय है कि नरक है या नहीं ? यह संशय तुम्हें वेद वाक्यों से हुआ है।

शङ्का–नारकी जीव नहीं हैं, क्योंकि प्रत्यक्ष से मालूम नहीं पड़ते। अनुमान से भी नहीं जाने जा सकते। संसार में देव, मनुष्य और तिर्यञ्च तीन ही प्रकार के प्राणी मालूम पड़ते हैं, चौथे नारकी दिखाई

नहीं देते।

समाधान-भगवान् ने उत्तर दिया। हे अकम्पित! अपने केवलज्ञान द्वारा मैं नारकी जीवों को प्रत्यक्ष देख रहा हूँ। इस लिए यह कहना ठीक नहीं है कि नारकी जीव किसी के प्रत्यक्ष नहीं हैं।

शङ्का-भगवन्! आपके ज्ञान में प्रत्यक्ष होने पर भी हम तो उसी वस्तु को मानते हैं जो हमारे प्रत्यक्ष हो।

समाधान- यह तुम्हारा दुराग्रह है। प्रत्येक व्यक्ति अगर यह निश्चय कर ले कि मैं अपनी आँखों से देखी हुई वस्तु को ही मानूँगा तो दुनियाँ का व्यवहार ही न चले। बहुत से काम, गाँव, नगर, नदियाँ, नाले, समुद्र, भूत और भविष्यत्काल की बातें तुम्हें प्रत्यक्ष नहीं है किन्तु उन्हें मान कर व्यवहार करते हो। इस लिए अपनी आँखों से देखी हुई वस्तु को ही मानना ठीक नहीं है। बहुत सी बातों में दूसरे द्वारा साक्षात् की गई वस्तु पर भी विश्वास करना पड़ता है। वास्तव में देखा जाय तो वस्तु को आत्मिक ज्ञान द्वारा जानना ही वास्तविक प्रत्यक्ष है। इन्द्रियों द्वारा जानना तो वास्तव में परोक्ष है। केवल व्यवहार में उसे प्रत्यक्ष मान लिया जाता है। ऐन्द्रियक ज्ञान में जीव वस्तु को साक्षात् नहीं जानता किन्तु इन्द्रियों द्वारा जानता है। इस लिए इन्द्रियों का व्यवधान होने से यह ज्ञान परोक्ष है।

शङ्का-अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष इन्द्रिय प्रत्यक्ष से अधिक कैसे जानता है?

समाधान-जैसे पाँच खिड़कियों वाले कमरे में बैठा हुआ व्यक्ति जितना जानता है, दीवारें हट जाने पर खुले प्रदेश में बैठा हुआ व्यक्ति उससे कहीं अधिक जानता है, इसी प्रकार इन्द्रिय ज्ञान से आत्मज्ञान अधिक विस्तृत और विशद होता है।

नीचे लिखे अनुमान से भी नरक की सिद्धि होती है- उत्कट पाप का फल भोगने वाले कहीं रहते हैं, क्योंकि कर्म का फल भोगना ही पड़ता है, जैसे कर्मफल को भोगने वाले मनुष्य और तिर्यञ्च।

मनुष्य और तिर्यञ्च गति में दुःख होने पर भी सुख मिला हुआ है। इस लिए तीव्र पाप कर्मों का फल नरकों में ही भोगा जाता है।

इस प्रकार समझाया जाने पर अकम्पितस्वामी का सन्देह दूर हो गया। वे भगवान् महावीर के शिष्य हो गए और आठवें गणधर कहलाए।

(६) अचलभ्राता— दर्शनार्थ आए हुए अचलभ्राता को देखकर भगवान् ने कहा— हे अचलभ्राता! तुम्हारे मन में सन्देह है कि पुण्य और पाप हैं या नहीं? यह संशय तुम्हें परस्पर विरोधी बात बताने वाले वेदवाक्यों से हुआ है।

पुण्य और पाप के विषय में पाँच मत हैं-- (१) पुण्य ही है पाप नहीं है। (२) पाप ही है पुण्य नहीं है। (३) पाप और पुण्य दोनों मिले हुए हैं जैसे मेचकमणि में कई रंग मिले हुए होते हैं और वे मिश्रित सुख और दुःख के कारण हैं। इस लिए पुण्यपाप नामक एक ही वस्तु है। (४) पुण्य और पाप दोनों स्वतन्त्र और भिन्न भिन्न स्वरूप वाले हैं। पुण्य सुख का कारण है और पाप दुःख का। (५) पुण्य या पाप रूप सत्ता ही नहीं है। सारा संसार अपने स्वभाव के अनुसार स्वयं परिवर्तित हो रहा है।

पहले पक्ष में जैसे जैसे पुण्य बढ़ता है, सुख भी अधिक होने लगता है। जैसे जैसे पुण्य घटता है सुख कम और दुःख अधिक होने लगता है। सुख और दुःख पुण्य की मात्रा पर अवलम्बित हैं। पाप को अलग मानने की आवश्यकता नहीं है। पुण्य का सर्वथा क्षय होने पर मोक्ष हो जाता है। जैसे पथ्याहार की वृद्धि होने पर आरोग्य की वृद्धि होती है उसी प्रकार पुण्य की वृद्धि से सुख की वृद्धि होती है। जैसे पथ्याहार क्रम से छोड़ने पर शरीर में रोग उत्पन्न हो जाते हैं उसी प्रकार पुण्य की कमी होने पर दुःख उत्पन्न हो जाते हैं। सर्वथा आहार का त्याग कर देने पर जैसे मृत्यु हो

जाती है उसी प्रकार सर्वथा पुण्य का क्षय हो जाने पर मोक्ष हो जाता है।

दूसरे पक्ष में बिलकुल इससे उल्टा है। जैसे अपथ्याहार बढ़ने पर रोग की वृद्धि तथा घटने पर रोग कम हो जाता है। उसी तरह पाप बढ़ने पर दुःख की वृद्धि तथा पाप घटने पर सुख की वृद्धि होती है। पाप का सर्वथा नाश हो जाने पर मोक्ष हो जाता है। जैसे सर्वथा अपथ्याहार छोड़ देने पर रोग से मुक्ति हो जाती है।

तीसरे में एक ही वस्तु के पुण्य और पाप रूप दो अंश हैं, जैसे मेचकमणि में कई रंग होते हैं, अथवा नरसिंह में नरत्व और सिंहत्व दोनों रहते हैं, उसी प्रकार एक ही वस्तु में पुण्य और पाप मिले रहते हैं। पुण्यांश के अधिक होने पर वही सुख का कारण तथा पापांश के अधकि होने पर वही दुःख का कारण हो जाती है।

चौथे पक्ष में पुण्य और पाप दोनों भिन्न भिन्न स्वतन्त्र वस्तुएं हैं, क्योंकि इन दोनों के कार्य भिन्न भिन्न तथा परस्पर विरोधी हैं। पुण्य का कार्य सुख देना है और पाप का दुःख देना।

पाँचवें पक्ष में संसार स्वभाव से ही सुखी या दुःखी हुआ करता है। अलग किसी कारण को मानने की आवश्यकता नहीं है। इसलिए पुण्य और पाप नहीं हैं।

इनमें से चौथा पक्ष आदेय अर्थात् ग्रहण करने योग्य है, बाकी चार नहीं। स्वभाव वाद का खण्डन अग्निभूति के वाद में किया जा चुका है। कर्मों की सिद्धि के लिए और भी बहुत से अनुमान किए जा सकते हैं, जैसे– दानादि शुभ क्रियाओं तथा हिंसा आदि अशुभ क्रियाओं का कोई न कोई फल है, क्योंकि वे कारणरूप हैं, जैसे खेती आदि क्रियाओं का फल धान्य आदि की प्राप्ति है। इस तरह दानादि क्रियाओं का फल पुण्य तथा हिंसादि क्रियाओं का फल पाप है। इसी प्रकार देह आदि का कोई कारण है, क्योंकि वे कार्य-

मनुष्य और तिर्यञ्च गति में दुःख होने पर भी सुख मिला हुआ है। इस लिए तीव्र पाप कर्मों का फल नरकों में ही भोगा जाता है।

इस प्रकार समझाया जाने पर अकम्पितस्वामी का सन्देह दूर हो गया। वे भगवान् महावीर के शिष्य हो गए और आठवें गणधर कहलाए।

(६) अचलभ्राता– दर्शनार्थ आए हुए अचलभ्राता को देखकर भगवान् ने कहा– हे अचलभ्राता ! तुम्हारे मन में सन्देह है कि पुण्य और पाप हैं या नहीं? यह संशय तुम्हें परस्पर विरोधी बात बताने वाले वेदवाक्यों से हुआ है।

पुण्य और पाप के विषय में पाँच मत हैं-- (१) पुण्य ही है पाप नहीं है। (२) पाप ही है पुण्य नहीं है। (३) पाप और पुण्य दोनों मिले हुए हैं जैसे मेचकमणि में कई रंग मिले हुए होते हैं और वे मिश्रित सुख और दुःख के कारण हैं। इस लिए पुण्यपाप नामक एक ही वस्तु है। (४) पुण्य और पाप दोनों स्वतन्त्र और भिन्न भिन्न स्वरूप वाले हैं। पुण्य सुख का कारण है और पाप दुःख का। (५) पुण्य या पाप रूप सत्ता ही नहीं है। सारा संसार अपने स्वभाव के अनुसार स्वयं परिवर्तित हो रहा है।

पहले पक्ष में जैसे जैसे पुण्य बढ़ता है, सुख भी अधिक होने लगता है। जैसे जैसे पुण्य घटता है सुख कम और दुःख अधिक होने लगता है। सुख और दुःख पुण्य की मात्रा पर अवलम्बित हैं। पाप को अलग मानने की आवश्यकता नहीं है। पुण्य का सर्वथा क्षय होने पर मोक्ष हो जाता है। जैसे पथ्याहार की वृद्धि होने पर आरोग्य की वृद्धि होती है उसी प्रकार पुण्य की वृद्धि से सुख की वृद्धि होती है। जैसे पथ्याहार क्रम से छोड़ने पर शरीर में रोग उत्पन्न हो जाते हैं उसी प्रकार पुण्य की कमी होने पर दुःख उत्पन्न हो जाते हैं। सर्वथा आहार का त्याग कर देने पर जैसे मृत्यु हो

जाती है उसी प्रकार सर्वथा पुण्य का क्षय हो जाने पर मोक्ष हो जाता है।

दूसरे पक्ष में बिलकुल इससे उल्टा है। जैसे अपथ्याहार बढ़ने पर रोग की वृद्धि तथा घटने पर रोग कम हो जाता है। उसी तरह पाप बढ़ने पर दुःख की वृद्धि तथा पाप घटने पर सुख की वृद्धि होती है। पाप का सर्वथा नाश हो जाने पर मोक्ष हो जाता है। जैसे सर्वथा अपथ्याहार छोड़ देने पर रोग से मुक्ति हो जाती है।

तीसरे में एक ही वस्तु के पुण्य और पाप रूप दो अंश हैं, जैसे मेचकमणि में कई रंग होते हैं, अथवा नरसिंह में नरत्व और सिंहत्व दोनों रहते हैं, उसी प्रकार एक ही वस्तु में पुण्य और पाप मिले रहते हैं। पुण्यांश के अधिक होने पर वही सुख का कारण तथा पापांश के अधिक होने पर वही दुःख का कारण हो जाती है।

चौथे पक्ष में पुण्य और पाप दोनों भिन्न भिन्न स्वतन्त्र वस्तुएं हैं, क्योंकि इन दोनों के कार्य भिन्न भिन्न तथा परस्पर विरोधी हैं। पुण्य का कार्य सुख देना है और पाप का दुःख देना।

पाँचवें पक्ष में संसार स्वभाव से ही सुखी या दुःखी हुआ करता है। अलग किसी कारण को मानने की आवश्यकता नहीं है। इसलिए पुण्य और पाप नहीं हैं।

इनमें से चौथा पक्ष आदेय अर्थात् ग्रहण करने योग्य है, बाकी चार नहीं। स्वभाव वाद का खण्डन अग्निभूति के वाद में किया जा चुका है। कर्मों की सिद्धि के लिए और भी बहुत से अनुमान किए जा सकते हैं, जैसे—दानादि शुभ क्रियाओं तथा हिंसा आदि अशुभ क्रियाओं का कोई न कोई फल है, क्योंकि वे कारणरूप हैं, जैसे खेती आदि क्रियाओं का फल धान्य आदि की प्राप्ति है। इस तरह दानादि क्रियाओं का फल पुण्य तथा हिंसादि क्रियाओं का फल पाप है। इसी प्रकार देह आदि का कोई कारण है, क्योंकि वे कार्य-

रूप हैं। जैसे घट की उत्पत्ति के लिए मिट्टी, दण्ड, चक्र, चीवर आदि की आवश्यकता पड़ती है।

शङ्का– देह आदि के माता पिता आदि कारण प्रसिद्ध ही हैं, फिर अदृष्ट कारण मानने की क्या आवश्यकता है?

समाधान– माता पिता आदि कारणों के समान होने पर भी दो व्यक्तियों में भेद नज़र आता है। एक सुरूप होता है दूसरा कुरूप। एक बुद्धिमान दूसरा मूर्ख। इन सब बातों का कारण माता पिता के सिवाय कोई दूसरा मानना पड़ता है।

सुख और दुःख का उन्हीं सरीखा कारण है, क्योंकि ये कार्य हैं। जो कार्य होता है, उसके अनुरूप कारण भी होता है, जैसे घट के परमाणु।

शङ्का—सुख और दुःख के अनुरूप कारण होने से पुण्य और पाप की सिद्धि की जाती है। सुख और दुःख आत्मा के भाव होने से अमूर्त हैं, इस लिए उनका कारण भी अमूर्त होना चाहिए। अमूर्त का कारण मूर्त कर्मों को नहीं माना जा सकता।

समाधान—कार्य और कारण सर्वथा समान नहीं होते। सर्वथा समान मानने पर कार्य और कारण का भेद ही मिट जाएगा। इस लिए दोनों में कुछ समानता होती है और कुछ विषमता।

शङ्का—संसार की सभी वस्तुएं कुछ अंशों में समान तथा कुछ अंशों में भिन्न हैं। कारण और कार्य भी कुछ अंशों में भिन्न हैं। ऐसी दशा में कारण को कार्य के अनुरूप कहने का क्या तात्पर्य है?

समाधान—कारण ही कार्यरूप में परिणत होता है इस लिए वह उसके अनुरूप कहा जाता है। जो जिस रूप में परिणत नहीं होता वह उसके अनुरूप नहीं कहा जाता। जीव और पुण्य का संयोग सुख का कारण है और सुख उसी की पर्याय है। जीव और पाप का संयोग दुःख का कारण है और दुःख भी उसी की पर्याय है।

जैसे सुख को शुभ, कल्याण, शिव इत्यादि नामों से कहा जाता है। वैसे ही पाप भी दूसरे नामों से पुकारा जाता है।

'पुण्य से ही सुख और दुःख दोनों हो जाएंगे, इस लिए पाप को मानने की कोई आवश्यकता नहीं।' यह पक्ष भी ठीक नहीं है, क्योंकि पुण्य की कमी से ही दुःख नहीं बढ़ सकता। ऐसा मानने पर मुक्त जीवों को सब से अधिक दुःख होना चाहिए। दूसरी बात यह है, जैसे सुख अपने अनुकूल कर्मों के प्रकर्ष (अधिकता) से पैदा होता है उसी प्रकार दुःख की उत्पत्ति भी अपने अनुकूल कर्मों के प्रकर्ष से माननी चाहिए। यदि पुण्य के अपकर्षमात्र से दुःख की उत्पत्ति मानी जाय तो अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति न होने पर ही दुःख होना चाहिए किसी अनिष्ट की प्राप्ति पर दुःख न होना चाहिए। पुण्य की कमी से सुख की कमी हो सकती है दुःख की उत्पत्ति न होनी चाहिए। जैसे चक्रवर्ती आदि का शरीर पुण्य प्रकृति के उदय से होता है इसी प्रकार दुःखी प्राणी का शरीर पाप प्रकृति के उदय से होता है। इत्यादि युक्तियों से पुण्य से अलग पाप को मानना आवश्यक है।

इन्हीं युक्तियों को दूसरे पक्ष में लगाने पर पाप से अलग पुण्य की सिद्धि हो जाती है। इस लिए केवल पाप को मानने वाला दूसरा पक्ष भी ठीक नहीं है।

मन, वचन और काया रूप योगों की प्रवृत्ति से कर्मबन्ध होता है। इनकी प्रवृत्ति दो तरह से होती है-किसी समय शुभ, किसी समय अशुभ। दोनों तरह की प्रवृत्तियाँ एक साथ नहीं हो सकतीं। शुभ प्रवृत्ति से शुभबन्ध होता है और अशुभ प्रवृत्ति से अशुभ। शुभ-बन्ध को पुण्य तथा अशुभबन्ध को पाप कहा जाता है।

प्रश्न- 'एक समय में शुभ या अशुभ एक ही क्रिया होती है' यह कहना ठीक नहीं है। जो मनुष्य विना विधि दान दे रहा है,

उपदेश दे रहा है, या मन में सोच रहा है उसको एक ही समय में शुभ और अशुभ दोनों क्रियाएं होती हैं।

उत्तर- व्यवहार नय की अपेक्षा ऐसे स्थान पर शुभाशुभ क्रिया मानी जा सकती है, किन्तु निश्चय नय की अपेक्षा वहाँ एक समय में एक ही योग रहता है। योगों का शुभ या अशुभ होना परिणाम या भावों पर निर्भर है। बुरे भाव होने पर योग अशुभ हो जाता है और अच्छे भाव होने पर शुभ। ये दोनों भाव एक समय में एक साथ नहीं रह सकते, इस लिए शुभाशुभ योग भी कोई नहीं है। शास्त्र में भावयोग ही विशेष माना जाता है, द्रव्य-योग नहीं। जैसे कि मन में शुभ भाव आने से शुभमनोयोग होता है और अशुभ भाव आने से अशुभ मनोयोग कहा जाता है। वास्तव में मनोयोग शुभाशुभ नहीं है, किन्तु भावयोग के सम्बन्ध से द्रव्यमनोयोग शुभाशुभ हो जाता है। इसी लिए ध्यान के चार भेद बताए गए हैं। इन में से दो शुभ है और दो अशुभ। इसी प्रकार लेश्याओं में भी अन्तिम तीन शुभ हैं और पहली तीन अशुभ। ध्यान और लेश्या को ही योग कहते हैं। इस प्रकार पुण्य और पाप दोनों पृथक् पृथक् सिद्ध हो जाते हैं। शुभ वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श से युक्त शुभ फल देने वाली कर्मप्रकृतियों को पुण्य कहते हैं। अशुभ वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श से युक्त तथा अशुभ फल देने वाली कर्मप्रकृतियों को पाप कहते हैं। शुभ या अशुभ प्रवृत्ति करता हुआ जीव पुण्य या पाप के योग्य कर्मपुद्गलों को ग्रहण करता है। कर्म वर्गणा के पुद्गल न तो मेरु की तरह अतिस्थूल हैं और न परमाणु की तरह सूक्ष्म। जिस स्थान में जीव रहता है उसी स्थान में रहे हुए पुद्गलों को ग्रहण करता है दूसरे स्थान में रहे हुए पुद्गलों को नहीं। जैसे तेल की मालिश किए शरीर में धूल आकर चिपक जाती है उसी तरह रागद्वेष के कारण कर्मपुद्गल

जीव से चिपक जाते हैं। कर्मों को जीव अपने सभी प्रदेशों से ग्रहण करता है।

उपशम श्रेणी से गिरा हुआ जीव सादि मोहनीय आदि कर्मों को बाँधता है। जिस जीव ने किसी श्रेणी को नहीं प्राप्त किया है उसके कर्म अनादि होते हैं।

जिस प्रकार एक सरीखा होने पर भी गाय के द्वारा खाया हुआ आहार दूध के रूप में परिणत हो जाता है और साँप के द्वारा खाया हुआ विष के रूप में परिणत हो जाता है, इसी प्रकार ग्रहण करने से पहले कर्मपुद्गल एक सरीखे होते हैं। शुभयोग पूर्वक प्रवृत्ति करने वालों के वे पुण्यरूप में परिणत हो जाते हैं और अशुभ योग पूर्वक प्रवृत्ति करने वालों के पापरूप में। अथवा जैसे एक ही शरीर में ग्रहण किया हुआ आहार रक्त मांस आदि धातु तथा मूत्र मल आदि निःसार पदार्थों के रूप में परिणत हो जाता है इसी प्रकार कर्मपुद्गल भी शुभ और अशुभ रूप में परिणत होते हैं। कर्मों की ४६ प्रकृतियाँ शुभ हैं, बाकी अशुभ हैं। सम्यक्त्व मोहनीय, हास्य, पुरुषवेद और रति ये चार प्रकृतियाँ किसी के मत से पुण्य में नहीं गिनी जातीं, ऐसी दशा में पुण्यप्रकृतियाँ ४२ ही रह जाती हैं। इन्हें पुण्य में गिनने से पुण्यप्रकृतियाँ ४६ हैं।

इस प्रकार पुण्य और पाप को मिला कर एक ही वस्तु मानने वाला पक्ष भी खण्डित हो गया, क्योंकि सुख और दुःख दोनों वस्तुएं भिन्न भिन्न हैं, इससे उनके कारण भी भिन्न २ मानने पड़ेंगे।

इस प्रकार समझाए जाने पर अचलभ्राता द्विजोपाध्याय का संशय दूर हो गया। वे भगवान् महावीर के शिष्य हो गए और नवें गणधर कहलाए।

(१०) मेतार्यस्वामी- दर्शनार्थ आए हुए मेतार्यस्वामी को देख कर भगवान् ने कहा- आयुष्मन् मेतार्य! तुम्हारे मन में यह संदेह

है कि परलोक है या नहीं। तुम्हारा कहना है अगर जीव को पाँच-भौतिक माना जाय तब तो परलोक हो ही नहीं सकता। अगर भूतों से आत्मा को अलग माना जाय तो भी उत्पत्ति वाला होने से उसे अनित्य अर्थात् नश्वर मानना पड़ेगा। नश्वर होने से उसका शरीर के साथ ही नाश हो जायगा और परलोक गमन नहीं होगा। इस प्रकार भी परलोक की सिद्धि नहीं होती। स्वर्ग और नरक के प्रत्यक्ष न दिखाई देने से उन्हें मानने में कोई प्रमाण नहीं है।

यह ठीक नहीं है। स्वर्ग नरक तथा आत्मा की सिद्धि पहले की जा चुकी है। उसी तरह यहाँ भी समझ लेना चाहिए।

शङ्का– आत्मा ज्ञानस्वरूप है और ज्ञान क्षणिक है, इस लिए आत्मा को भी क्षणिक मानना पड़ेगा। यदि आत्मा को ज्ञान से भिन्न माना जाय तो वह जड़ स्वरूप हो जाएगा।

समाधान–सभी वस्तुएं उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य इन तीन गुणों वाली हैं। आत्मा के ज्ञानादि बदलते रहने पर भी चैतन्य ध्रुव है। इस लिए उसका नाश नहीं होता। ज्ञान भी एकान्त क्षणिक नहीं होता, क्योंकि गुण है। इसी प्रकार संसार की सभी वस्तुएं नित्यानित्य हैं।

इस प्रकार पहले कही हुई युक्तियों से समझाने पर मेतार्यस्वामी का संशय दूर हो गया। वे भगवान् के शिष्य हो गए और दसवें गणधर कहलाए।

(११) प्रभासस्वामी–दर्शनों के लिए आए हुए प्रभासस्वामी को देख कर भगवान् ने कहा– हे आयुष्मन् प्रभास! तुम्हारे मन में संशय है कि निर्वाण है या नहीं? अगर निर्वाण होता है तो क्या दीपक की तरह होता है? अर्थात् जैसे दीपक बुझने के बाद उसका कोई अस्तित्व नहीं रहता, इसी तरह निर्वाण हो जाने पर आत्मा का अस्तित्व भी मिट जाता है। यह बौद्ध मान्यता है। बौद्धाचार्य अश्व-

घोष ने इसे नीचे लिखे अनुसार बताया है—

दीपो यथा निर्वृतिमभ्युपेतो,
नैवावनिं गच्छति नान्तरिक्षम्।
दिशं न काञ्चित् विदिशं न काञ्चित्,
स्नेहक्षयात् केवलमेति शान्तिम् ॥
जीवस्तथा निर्वृतिमभ्युपेतो,
नैवावनिं गच्छति नान्तरिक्षम्।
दिशं न काञ्चित् विदिशं न काञ्चित्
क्लेशक्षयात् केवलमेति शान्तिम् ॥

अर्थात्– जैसे निर्वाण को प्राप्त हुआ दीपक न पृथ्वी को जाता है न आकाश को। न किसी दिशा को जाता है न विदिशा को। तेल खतम हो जाने पर अपने आप शान्त हो जाता है। उसी प्रकार निर्वाण को प्राप्त हुआ जीव न पृथ्वी को जाता है न आकाश को, न किसी दिशा को न विदिशा को। क्लेश का क्षय हो जाने से अपने आप शान्त हो जाता है।

अथवा जैसे जैन मानते है अर्थात् राग, द्वेष, मद, मोह, जन्म, जरा, रोग आदि दुःखों का क्षय हो जाना मोक्ष है। इस मत में निर्वाण हो जाने पर भी जीव का अस्तित्व बना रहता है।

अथवा कर्म और जीव का सम्बन्ध अनादि होने से वह अनन्त भी है। जो वस्तु अनादि होती है वह अनन्त भी होती है।

इन सन्देहों को दूर करने के लिए भगवान् ने नीचे लिखे अनुसार कहना शुरू किया–

कर्म और जीव का सम्बन्ध अनादि होने पर भी छूट सकता है, यह पहले सिद्ध किया जा चुका है। प्रदीप की तरह आत्मा का सर्वनाश मानना भी ठीक नहीं है। जैसे दूध पर्याय नष्ट होने पर दही के रूप में परिणत हो जाता है, मुद्गर आदि के द्वारा नष्ट किया

हुआ घट कपाल (ठीकरे) रूप में बदल जाता है इसी प्रकार दीए की आग भी दूसरे रूप में बदल जाती है सर्वथा नष्ट नहीं होती, क्योंकि किसी वस्तु का सर्वथा नाश नहीं हो सकता।

शङ्का– यदि दीपक का सर्वथा नाश नहीं होता तो बुझाने के बाद दिखाई क्यों नहीं देता?

समाधान– प्रदीप के बुझ जाने पर वह अन्धकार के रूप में परिणत हो जाता है और अन्धकार के रूप में दिखाई भी देता है। बहुत सी वस्तुएं सूक्ष्म होने से नहीं भी मालूम पड़तीं, जैसे बिखरते हुए काले बादल या वायु में धीरे धीरे उड़ते हुए सूक्ष्मपरमाणु। इस लिए किसी वस्तु की सूक्ष्म परिणति न दिखाई देने मात्र से उसे असत् नहीं कहा जा सकता। बहुत से पुद्गल विकार को प्राप्त होने पर दूसरी इन्द्रिय से ग्रहण किए जाते हैं। जैसे सोना पहले चक्षु इन्द्रिय से जाना जा सकता है। गलाने के बाद राख में मिल जाने पर केवल स्पर्श का विषय होता है। फिर भस्म से अलग कर देने पर चक्षु से जाना जा सकता है। इसी प्रकार नमक, गुड़ आदि बहुत से पदार्थ पहले चक्षु से जाने जा सकते हैं किन्तु शाक आदि में मिलने पर केवल रसनेन्द्रिय से जाने जाते हैं, इत्यादि बातों से मालूम पड़ता है कि पुद्गलों के परिणाम बहुत ही विचित्र हैं। कुछ पुद्गल सूक्ष्मता को प्राप्त होने पर बिल्कुल नहीं दिखाई देते। इस लिए किसी भी वस्तु का रूपान्तर हो जाने पर उसका सर्वथा नाश मानना ठीक नहीं है। दीपक भी पहले चक्षु इन्द्रिय से जाना जाता है, किन्तु बुझने पर घ्राणेन्द्रिय से जाना जाता है। उसका सर्वथा समुच्छेद नहीं होता। इसी प्रकार जीव भी निर्वाण होने पर सिद्धस्वरूप हो जाता है उसका नाश नहीं होता। इस लिए जीव के विद्यमान रहते हुए दुःखादि का नाश हो जाना मोक्ष है।

मुक्त जीव के जन्म, जरा, व्याधि, मरण, इष्टवियोग, अरति,

शोक, क्षुधा, प्यास, शीत, उष्ण, काम, क्रोध, मद, शाठ्य, तृष्णा, राग, द्वेष, चिन्ता, उत्सुकता आदि सभी दुःख नष्ट हो जाते हैं, इस लिए उन्हें परमसुख प्राप्त होता है जैसे वीतराग मुनि को। लकड़ी आदि में ऊपर लिखी बातें न होने पर भी जड़ होने से उसे सुख का अनुभव नहीं होता, तथा मुक्त जीव अपने ही प्रकाश से प्रकाशित होते हैं क्योंकि उनके आवरण सम्पूर्ण रूप से नष्ट हो गये हैं।

स्थितः शीतांशुवज्जीवः प्रकृत्या भावशुद्धया।
चन्द्रिकावच्च विज्ञानं, तदावरणमभ्रवत्॥

अर्थात्–अपनी शुद्ध प्रकृति में रहा हुआ जीव चन्द्रमा के समान है उसका ज्ञान चाँदनी की तरह है और आवरण बादलों सरीखा है।

स व्याबाधाभावात् सर्वज्ञत्वाच्च भवति परमसुखी।
व्याबाधाभावोऽत्र स्वच्छस्य ज्ञस्य परमसुखम्॥

अर्थात्– किसी तरह की बाधा (अड़चन या इच्छा) न होने से जीव परम सुख वाला है। किसी प्रकार की बाधा तथा आवरण का न होना ही परम सुख है।

शङ्का– सभी जीव इन्द्रियादि करणों द्वारा जानते हैं। मुक्त जीवों के करण न होने से उन्हें सर्वज्ञ नहीं मानना चाहिए।

समाधान–जानना वास्तव में आत्मा का स्वभाव है। ज्ञानावरणीय आदि कर्मों का परदा पड़ा रहने के कारण संसारी जीव इन्द्रियों की सहायता के बिना नहीं जान सकते। मुक्त जीवों का परदा हट जाने के कारण वे आत्मज्ञान द्वारा संसार की सभी वस्तुओं को जानते हैं। उन्हें करणों की आवश्यकता नहीं है।

प्रश्न– सुख का कारण पुण्य है और दुःख का पाप। मुक्त आत्माओं को जैसे पाप नष्ट हो जाने के कारण दुःख नहीं होता, उसी प्रकार पुण्य नष्ट हो जाने के कारण सुख भी नहीं होना चाहिए। फिर मोक्ष में अव्याबाध सुख का कहना मिथ्या है।

उत्तर– पुण्य से होने वाला सुख वास्तव में सुख नहीं है क्योंकि वह कर्मों के उदय से होता है और उन कर्मों के हट जाने पर नहीं होता। इसी लिए वड़े वड़े चक्रवर्ती या देव कोई भी संसारी जीव वास्तव में सुखी नहीं है।

शङ्का– यदि संसार में होने वाला सुख कर्मों के कारण वास्तविक नहीं है तो संसार में होने वाला दुःख भी कर्मों के कारण नहीं मानना चाहिए। इस लिए स्वयं आत्मा द्वारा अनुभव किए जाने वाले सुख और दुःख को वास्तविक न कहना ठीक नहीं है।

समाधान–संसारी जीवों को वास्तव में सुख का अनुभव नहीं होता। जिस प्रकार भार ढोने वाला व्यक्ति थोड़ी देर के लिए भार हट जाने पर अपने को सुखी समझने लगता है, अथवा प्यासा पानी मिल जाने पर अपने को सुखी समझता है इसी प्रकार प्रत्येक प्राणी थोड़ा सा दुःख दूर होने पर अपने को सुखी समझने लगता है। उसे वास्तव में सुख कुछ नहीं है। मन में रही हुई काम वासना से एक तरह की वेचैनी पैदा होती है और वह क्षण भर के लिए स्त्रीसम्भोग से शान्त हो जाती है तो मनुष्य उसे सुख समझने लगता है। यदि स्त्री का आलिङ्गन वास्तव में सुख देने वाला हो तो वासना रहित व्यक्ति को क्यों नहीं सुख देता। वालक या वृद्ध जिस के हृदय में वासना नहीं है उसके सामने स्त्री के विलास विल्कुल फीके हैं। जो व्यक्ति किसी वीमारी से व्याकुल हो रहा है उसे कामिनियों की चेष्टाएं कड़वी लगती हैं, इस लिए संसार की किसी वस्तु को वास्तव में सुख देने वाली नहीं कहा जा सकता। जैसे खुजली रोग वाला अपने अङ्ग को खुजलाने में सुख समझता है इसी प्रकार संसारी प्राणी अपनी इच्छाओं की क्षणिक तृप्ति में सुख मान लेते हैं। जैसे नाखून से खुजाने का परिणाम भयङ्कर खुजली होता है उसी प्रकार एक इच्छा को पूर्ण करने से नई नई इच्छाएं

भयङ्कर रूप में खड़ी हो जाती है। इस लिए दुःख का कारण होने से क्षणिक तृप्ति भी दुःख ही है। अज्ञानी मनुष्य उसे सुख समझता है। जैसे अपथ्य भोजन खाने में स्वाद होने पर भी परिणाम में बुरा है इसी प्रकार संसारिक सुख भी बुरे हैं।

वास्तविक सुख तभी होता है जब पुराना रोग बिल्कुल कट जाए, नया पैदा होने के कारण न रहें। ऐसी अवस्था मोक्ष ही है। वहाँ इच्छा राग, द्वेष, आदि सभी दुःख के कारण नष्ट हो जाते हैं और कर्म न होने से नवीन उत्पन्न नहीं होते। इस लिए वहाँ पर दुःख का सर्वथा नाश और सुख का आत्यन्तिक लाभ होता है। जिस महापुरुष ने मानसिक विकारों को जीत लिया उसे तो यहाँ भी परमसुख प्राप्त है। देवों की विशाल ऋद्धि और चक्रवर्ती का विशाल साम्राज्य भी उसके सामने तुच्छ हैं। इसी लिए कहा है—

निर्जितमदमदनानां, वाक्कायमनोविकाररहितानाम्।
विनिवृत्तपराशानामिहैव मोक्षः सुविहितानाम्॥

(प्रशमरति २३८ श्लोक)

अर्थात् जिन्हों ने मद और मदन (काम) को जीत लिया है, जो मन, वचन और काया के विकार से रहित हो गए हैं, जो सब आशाओं से परे हैं तथा समाधियुक्त हैं उन्हें इसी जन्म में मोक्ष है।

जिस प्रकार आत्मा के अनन्तज्ञान गुण को ज्ञानावरणीय कर्म ढक देता है और चक्षु आदि इन्द्रियाँ घट पटादि के ज्ञान में सहायक होती हैं, इसी प्रकार आत्मा का अनन्त सुख रूप गुण पाप कर्मों द्वारा ढका रहता है। पुण्य कर्म समय समय पर क्षणिक सुखानुभव के लिए सहायक होते हैं। जिस प्रकार पूर्ण ज्ञान ज्ञानावरणीय के सर्वथा नाश होने पर ही होता है और फिर इन्द्रियादि करणों की आवश्यकता नहीं रहती, इसी प्रकार आत्मा को पूर्ण-

सुख की प्राप्ति पाप कर्मों के सर्वथा नाश होने पर ही होती है और फिर पुण्य की अपेक्षा नहीं रहती। सिद्धावस्था में विषयसुख से विलक्षण परमसुख की प्राप्ति होती है। विषयसुखों में लिप्त प्राणी उस अनुपमसुख की कल्पना भी नहीं कर सकता। सिद्धों का सुख नित्य, अव्याबाध तथा वास्तविक होता है।

वेदपदों से भी यही सिद्ध होता है कि जीव जब अशरीर अर्थात् मुक्त हो जाता है तभी उसे दुःखों से छुटकारा मिलता है। इस लिए यह सिद्ध हुआ कि निर्वाण अवस्था में जीव विद्यमान रहता है। राग, द्वेष आदि विकार तथा दुःख सर्वथा क्षीण हो जाते हैं और जीव उस समय परम आत्मीय आनन्द का अनुभव करता है।

इस प्रकार समझाने पर प्रभासस्वामी का संशय दूर हो गया। वे भगवान् महावीर के शिष्य हो गए और ग्यारहवें गणधर कहलाए। (विशेषावश्यक भाष्य गाथा १५४६ से २०२४)
(हरिभद्रीयावश्यक टिप्पण) (समवायाग ११ वाँ)

७७६– ग्यारह अंग

जिस प्रकार ब्राह्मणसंस्कृति का आधार वेद, बौद्ध संस्कृति का त्रिपिटक और ईसाइयों का आधार बाइबल है उसी तरह जैन संस्कृति का आधार गणिपिटक या बारह अंगसूत्र हैं। नन्दीसूत्र में श्रुतज्ञान के चौदह भेद बताए गए हैं, उनमें तेरहवाँ अंग प्रविष्ट है। मुख्य रूप से श्रुतज्ञान के दो भेद हैं–अंग प्रविष्ट और अंगबाह्य। आचाराङ्ग आदि बारह अंगप्रविष्ट हैं। इनके अतिरिक्त सभी सूत्र अंगबाह्य गिने जाते हैं। जिस प्रकार पुरुष के शरीर में २ पैर, २ जंघाएं, २ ऊरु, २ गात्रार्द्ध (पसवाड़े), २ बाहें, १ गरदन और और १ सिर बारह अंग हैं उसी प्रकार श्रुतरूपी पुरुष के १२ अंग हैं। अथवा जिन शास्त्रों को तीर्थंकरों के उपदेशानुसार गणधर भगवान् स्वयं रचते हैं, वे अंगसूत्र कहे जाते हैं। गणधरों के अतिरिक्त

विद्या सम्पन्न आचार्यों द्वारा रचे गए शास्त्र अंगबाह्य कहे जाते हैं। अंगप्रविष्ट के बारह भेद हैं— (१) आचाराङ्ग, (२) सूयगडांग, (३) ठाणांग, (४) समवायांग, (५) विवाहपन्नत्ती (व्याख्याप्रज्ञप्ति या भगवती), (६) नायाधम्मकहाओ (ज्ञाताधर्मकथा), (७) उवासगदसाओ, (८) अंतगडदसाओ, (९) अणुत्तरोववाइअदसाओ, (१०) पण्हवागरणाइं (प्रश्नव्याकरण), (११) विवागसुअं (विपाकश्रुत), (१२) दिट्ठिवाओ (दृष्टिवाद)।

इनमें बारहवाँ दृष्टिवाद आज कल उपलब्ध नहीं है। दूसरे सूत्रों के भी कुछ अंश नहीं मिलते। नंदी सूत्र के अनुसार उनकी गाथा आदि की संख्या देकर उपलब्ध सूत्रों की विषयसूची दी जाएगी।

(१) आचारांग—महापुरुषों के द्वारा सेवन की गई ज्ञान, दर्शन आदि के आराधन करने की विधि को आचार कहते हैं। आचार को प्रतिपादन करने वाला आगम आचारांग कहा जाता है। नन्दी सूत्र के अनुसार इसका स्वरूप निम्नलिखित है। मुख्य रूप से इसमें साधुओं की चर्या से सम्बन्ध रखने वाली सभी शिक्षाएं हैं। वे इस प्रकार हैं--

आचार–ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूप मोक्ष मार्ग को आराधना के लिए किया जाने वाला विविध आचार।

गोचरी–भिक्षा ग्रहण करने की विधि।

विनय–ज्ञान और ज्ञानी आदि की विनय भक्ति।

विनेय–शिष्यों का स्वरूप और उनका आचार।

भाषा–सत्या और असत्यामृषारूप भाषा का स्वरूप।

अभाषा–मृषा और सत्यामृषा (मिश्र) रूप अभाषा का स्वरूप।

चरण–पाँच महाव्रत, दस प्रकार का श्रमण धर्म, सत्रह प्रकार का संयम, दस प्रकार का वैयावृत्य, नव बाड़ ब्रह्मचर्य की, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, बारह प्रकार का तप और चार कषायों का निग्रह चरण

कहलाते हैं।

करण–चार पिंडविशुद्धि, पाँच समिति, बारह भावना, बारह भिक्खु पडिमा, पाँच इन्द्रियों का निरोध, पच्चीस प्रकार की पडिलेहणा, तीन गुप्तियाँ और चार अभिग्रह करण कहलाते हैं।

यात्रा–संयमरूप यात्रा का पालन।

मात्रा–संयम की रक्षा के लिए परिमित आहार लेना।

वृत्ति–विविध अभिग्रहों को धारकर संयम की पुष्टि करना।

इन में कुछ विषयों का एक दूसरे में अन्तर्भाव होने पर भी जहाँ जिसका प्रधान रूप से वर्णन है, वहाँ वह दुबारा दे दिया गया है।

आचार के संक्षेप से पाँच भेद हैं–(१) ज्ञानाचार (२) दर्शनाचार (३) चारित्राचार (४) तप आचार (५) वीर्याचार।

उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी रूप एक काल चक्र की अपेक्षा से आचाराङ्ग सूत्र की वाचनाएं परिमित हुई हैं। भूत और भविष्यत् काल की अपेक्षा से अनन्त वाचनाएं हैं। उपक्रम आदि अनुयोग संख्यात हैं। प्रत्येक अध्ययन के प्रारम्भ में अनुयोग आता है। इसलिए आचारांग के संख्यात अध्ययन होने के कारण अनुयोग भी संख्यात हैं। संख्यात वेढ (एक प्रकार का छन्द) हैं। संख्यात श्लोक हैं। संख्यात निर्युक्तियाँ हैं। संख्यात प्रतिपत्तियाँ (द्रव्यादि पदार्थों को स्वीकार करना अथवा पडिमा या अभिग्रह अङ्गीकार करना) हैं।

ज्ञान की अपेक्षा क्रिया का प्राधान्य होने से क्रियारूप आचार बताने वाला यह सूत्र भी प्रधान है, इसी लिए यह पहला अंग है। अथवा शुद्ध आचार के लिए ज्ञान और क्रिया दोनों की आवश्यकता होती है, इसी लिए आचार का प्रतिपादक यह अंग पहले बताया गया है।

इसमें दो श्रुतस्कन्ध (अध्ययनों का समुदाय) हैं। पहले श्रुतस्कन्ध में नौ अध्ययन हैं और दूसरे में सोलह। पचासी उद्देशे हैं।

प्रत्येक अध्ययन का नाम, उद्देशे और विषय नीचे लिखे अनुसार हैं—

प्रथम श्रुतस्कन्ध

पहला अध्ययन-शस्त्रपरिज्ञा। जीवों की हिंसा के कारण को शस्त्र कहते हैं। इसके दो भेद हैं-द्रव्य शस्त्र और भावशस्त्र। तलवार आदि द्रव्यशस्त्र हैं और अशुभयोग भावशस्त्र हैं। इस अध्ययन में भावशस्त्रों की परिज्ञा अर्थात् जानकारी है। परिज्ञा दो तरह की होती है- ज्ञपरिज्ञा अर्थात् अशुभ योग आदि कर्मबन्ध के कारणों को जानना। प्रत्याख्यान परिज्ञा अर्थात् समझ कर उनका त्याग करना। पहले अध्ययन में सात उद्देशे हैं। एक अध्ययन में आए हुए नवीन विषय के प्रारम्भ को उद्देश कहते हैं।

(१) उ०-आत्मा तथा कर्मबन्धहेतु विचार।

(२) उ०-पृथ्वीकाय की हिंसा का परिहार। दुःख के अनुभव के लिए अन्धवधिर का दृष्टान्त।

(३) उ०-अप्काय की हिंसा का परिहार।

(४) उ०-अग्निकाय की हिंसा का परिहार।

(५) उ०-वनस्पतिकाय की हिंसा का परिहार। मनुष्य शरीर की समानता से वनस्पतिकाय में जीवसिद्धि।

(६) उ०-त्रस जीवों की हिंसा का परिहार। त्रस जीवों की हिसा के कारण।

(७) उ०-वायुकाय की हिंसा का परिहार।

दूसरा अध्ययन- लोक विजय। संसार और उसके कारणों पर विजय प्राप्त करना। इसमें छह उद्देशे हैं—

(१) उ०-माता, पिता आदि लोक को जीत कर संयम पालना।

(२) उ०-अरति टालकर संयम में दृढ़ रहना।

(३) उ०-मान छोड़ना तथा भोगों से विरक्ति।

(४) उ०-भोगों से रोग की उत्पत्ति।

(५) उ०–विषयभोग छोड़कर जनता से आहार आदि प्राप्त करना।
(६) उ०–संयम के लिए लोक का ध्यान रखते हुए भी ममता न रखना।

तीसरा अध्ययन–शीतोष्णीय। सरदी गरमी या सुख दुःख की अधिक परवाह न करके सब जगह समभाव रखना। इसमें चार उद्देशे हैं–

(१) उ०–वास्तव में सोया हुआ कौन है?
(२) उ०–पाप का फल तथा हित उपदेश।
(३) उ०–लज्जा आदि के कारण पाप का परिहार तथा परिषह सहने मात्र से कोई मुनि नहीं बनता। उसके लिए हृदय में संयम चाहिए।
(४) उ०– कषायों का त्याग।

चौथा अध्ययन– सम्यक्त्व। इस में चार उद्देशे हैं–

(१) उ०– सत्यवाद।
(२) उ०– दूसरे मतों का विचार पूर्वक खण्डन।
(३) उ०– तप का अनुष्ठान।
(४) उ०– संयम में स्थिर रहना।

पाँचवाँ अध्ययन– लोकसार। इस में छः उद्देश हैं–

(१) उ०–प्राणियों की हिंसा करने वाला, विषयों के लिए आरम्भ में प्रवृत्त होने वाला और विषयों में आसक्ति रखने वाला मुनि नहीं हो सकता।
(२) उद्देश– हिंसा आदि पापों से निवृत्त होने वाला ही मुनि कहा जा सकता है।
(३) उ०–मुनि किसी प्रकार का परिग्रह न रक्खे तथा कामभोगों की इच्छा भी न करे।
(४) उ०– अव्यक्त (आयु और विद्या की योग्यता से रहित),

अगीतार्थ तथा सूत्रार्थ में निश्चय रहित साधु को अकेले विचरने में बहुत दोष लगने की सम्भावना है।

(५) उद्देश– मुनि को सदाचार से रहना चाहिए। उसके लिए जलाशय का दृष्टान्त।

(६) उद्देश– उन्मार्ग में न जाना तथा रागद्वेष का त्याग करना।

छठा अध्ययन–धूत। पापकर्मों को धोना। इस में पाँच उद्देशे हैं–

(१) उद्देश–स्वजन सम्बन्धियों को छोड़ कर धर्म में प्रवृत्त होना।

(२) उद्देश– कर्मों को आत्मा से दूर करना।

(३) उद्देश– मुनि को अल्प उपकरण रखने चाहिएं और जहाँ तक हो सके कायाक्लेश आदि करता रहे।

(४) उद्देश– मुनि को सुखों में मूर्च्छित नहीं होना चाहिए।

(५) उद्देश–मुनि को संकटों से डरना नहीं चाहिए और प्रशंसा सुन कर प्रसन्न न होना चाहिए। उपदेश के योग्य आठ बातें।

सातवाँ अध्ययन–महापरिज्ञा। नन्दीसूत्र की मलयगिरि टीका और निर्युक्ति के अनुसार यह आठवाँ अध्ययन है। इसमें सात उद्देशे हैं। यह अध्ययन विच्छिन्न होगया है, आज कल उपलब्ध नहीं है।

आठवाँ अध्ययन--विमोक्ष या विमोह। संसार के कारणों को या मोह को छोड़ना। मलयगिरि टीका के अनुसार यह अध्ययन सातवाँ है। इसमें आठ उद्देशे हैं–

(१) उ०– कुशीलपरित्याग। लोक ध्रुव है या अध्रुव?

(२) उ०–अकल्पनीय वस्तुओं का परित्याग।

(३) उ०– मिथ्या शंका का निवारण। परिषहों से न डरना।

(४) उ०–मुनियों को कारणविशेष से वैखानसादि (फांसी आदि) बालमरण भी करना चाहिए।

(५) उ०–बीमार पड़ने पर मुनि को भक्त परिज्ञा से मरना चाहिए।

(६) उ०– धैर्यवाले मुनि को इंगितमरण (नियत भूमि) करना

चाहिए।
(७) उ०– पदोपगमन मरण।
(८) उ०– कालपर्याय से तीनों मरणों की विधि।
नवाँ अध्ययन–इस में चार उद्देशे हैं। प्रथम उद्देशे में भगवान् महावीर स्वामी की विहारचर्या का वर्णन किया है जैसे कि तेरह महीने के पश्चात् देवदूष्य वस्त्र का परित्याग, क्षुद्र जीवों द्वारा दिये गये अनेक कष्टों का सहन, छः काय की रक्षा, त्रस स्थावर जीवों की गतागत पर विचार, कभी भी हिंसा का न करना, शुद्ध आहार का ग्रहण, परवस्त्र और परपात्र का अग्रहण, शीत और उष्ण परिषह का सहन, ईर्या समिति और भाषासमिति पर अत्यन्त विवेक इत्यादि विषय वर्णित किए गये हैं।
(२) उ०– वस्तिविषय। आवेसन (शून्यगृह), सभा, प्रपा, पणीय शाला, सराय, आराम (बाग), नगर, श्मशान, सूने घर, वृक्ष के मूल इत्यादि स्थानों में रात दिन यतना करते हुए अप्रमत्तभाव से विचरते थे। निद्रा से अभिभूत न होते हुए रात्रि को खड़े रह कर ध्यान करते थे। उक्त वस्तियों में अनेक प्रकार के सर्पादि द्वारा किये गये कष्टों को सहन करते थे। भगवान् को अनेक पुरुष नाना प्रकार से पीड़ित करते थे। भगवान् मौन वृत्ति से आत्मध्यान में निमग्न रहते थे। कारणवशात् 'मैं भिक्षु हूँ' इस प्रकार से बोलते थे। शीत आदि परिषह का सहन करते हुए विचरते थे। इस प्रकार वर्णन किया गया है।
(३) उ०–परिषह सहन। तृणस्पर्श, शीतस्पर्श, उष्णस्पर्श, दंशमशक स्पर्श, आक्रोश, वध इत्यादि परिषहों को सहन करते हुए विचरते थे। लाट देश की वज्रभूमि में नाना प्रकार के परिषहों को सहन किया। कुत्तों के परिषहों को सहन करते हुए तथा अनार्यों द्वारा केश लुञ्चन होने पर भी ध्यान से विचलित न होते थे। कठोर वचन के परिषह को सहन करते हुए शूरवीर हाथी की तरह परि-

षह रूपी संग्राम में जय विजय करते हुए विचरते थे। इत्यादि वर्णन किया गया है।

(४) उद्देश– तपश्चर्या। अनशन आदि तप करते हुए रोग की चिकित्सा न करते हुए, और न शरीर का शृङ्गार करते हुए मौन वृत्ति से विचरते थे। शीत उष्ण को सहन करते हुए सूर्य की आतापना लेते थे। ओदन, मन्थु, कुल्माष (उड़द के बाकले आदि) इन तीन पदार्थों को मास और अर्द्धमास के पारणे में ग्रहण करते थे। मास, द्विमास त्रिमास यावत् छः मास के पारणों में भी उक्त आहार को ही ग्रहण करते थे। तत्त्व को जानने वाले भगवान् महावीर ने छद्मस्थ चर्या (अवस्था) में आपने स्वयं पापकर्म नहीं किया, दूसरे से नहीं करवाया और करते हुए को भी भला न जाना। ग्राम और नगर में शुद्ध आहार के लिए किसी भी जीव का वृत्तिच्छेद न करते हुए आहार ग्रहण करते थे। मन्दगति से चलते हुए, हिंसा से निवृत्त होते हुए, जिस प्रकार का भी आहार मिलता था उससे ही निर्वाह करते थे। दृढ़ासन लगा कर आत्मान्वेषण करते हुए ध्यान में लीन हो जाते थे। शब्दादि पदार्थों में मूर्च्छित न होते हुए कभी भी प्रमाद न करते थे इत्यादि विषयों का वर्णन किया गया है।

दूसरा श्रुतस्कन्ध

इस श्रुतस्कन्ध में तीन चूलिकाएं हैं। पहली चूलिका में दस से सोलह तक सात अध्ययन हैं। दूसरी में सतरह से तेईस तक सात। तीसरी में २३ और २४ दो। अध्ययनों के नाम, उद्देशे और विषय नीचे लिखे अनुसार हैं–

पहली चूलिका।

दसवाँ अध्ययन–पिंडेषणा। गोचरी के नियम तथा सदोष निर्दोष आहार का विवेचन। इसमें ग्यारह उद्देशे हैं–

(१) उ०– मुनियों को कैसा आहार लेना चाहिये और कैसा

नहीं। गृहस्थ के घर में प्रवेश करने की विधि।
(२) उ०– मुनियों को अशुद्ध आहार नहीं लेना चाहिए।
(३) उ०– जीमन वार आदि में जाने से हानि।
(४) उ०– मुनि को जीमनवार में नहीं जाना चाहिए।
(५) उ०– मुनि को कैसा आहार लेना और कैसा नहीं लेना चाहिए।
(६) उ०– ग्राह्य और अग्राह्य आहार के लिए नियम।
(७) उ०– कैसा आहार कैसे लेना चाहिए और कैसा आहार कैसे छोड़ना चाहिए।
(८) उ०– पानी, फल, फूल तथा दूसरे प्रकार का आहार लेने और न लेने के नियम।
(९) उ०– कैसा आहार लेना और कैसा न लेना चाहिए।
(१०) उ०– आहार पानी लाने के लिए मुनि को कैसे वर्तना चाहिए।
(११) उ०–मिले हुए आहार की सात शिक्षाएं। सात पिंडेषणाएं (अभिग्रह विशेष) और सात पाणैषणाएं।
ग्यारहवाँ अध्ययन– शय्या। ठहरने के स्थान और पाट पाटलादि के लिए नियम। इसमें तीन उद्देशे हैं–
(१) उ०– वसति अर्थात् ठहरने के स्थान के दोष।
(२) उ०– गृहस्थ के साथ मुनि के रहने पर दोष तथा नव प्रकार की वसति।
(३) उ०– मुनि को कैसे स्थान में रहना चाहिए और कैसे स्थान में नहीं। शय्या (पाट, पाटला मकान आदि) की चार प्रतिज्ञाएं।
वारहवाँ अध्ययन– ईर्या। मुनि के लिए गमनागमन तथा विहार करने के नियम। इसमें भी तीन उद्देशे हैं–
(१) उ०–विहार के नियम। मुनि को नौका पर कब बैठना चाहिए।

(२) उ०– नाव पर बैठने और नदी आदि पार करने की विधि।
(३) उ०– विहार करने की विधि।
तेरहवाँ अध्ययन–भाषाजात। भाषा कितने प्रकार की है तथा मुनि को कैसी भाषा बोलनी चाहिए। इसमें दो उद्देशे हैं–
(१) उ०– भाषा के सोलह वचन तथा चार प्रकार।
(२) उ०– मुनि को कैसे बोलना चाहिए।
चौदहवाँ अध्ययन– वस्त्रैषणा। इस में दो उद्देशे हैं–
(१) उ०– मुनि को कैसे और किस प्रकार के वस्त्र लेने चाहिएं।
(२) उ०–वस्त्र सम्बन्धी आज्ञाएं।
पन्द्रहवाँ अध्ययन– पात्रैषणा। इसके भी दो उद्देशे हैं–
(१) उ०– पात्र कैसे और किस प्रकार लेने चाहिएं।
(२) उ०– पात्र विषयक आज्ञाएं।
सोलहवाँ अध्ययन– अवग्रह प्रतिमा। इसमें भी दो उद्देशे हैं–
(१) उ०– साधु के योग्य उपाश्रय देखना।
(२) उ०– साधु के योग्य उपाश्रय देखने की विधि।

दूसरी चूलिका

इसके सभी अध्ययनों में एक एक उद्देशा है।
सत्रहवाँ अध्ययन– स्थान। खड़े रहने के स्थान की विधि।
अठारहवाँ अध्ययन– निशीथिका। अभ्यास करने के लिए कैसा स्थान अवलोकन करना चाहिए।
उन्नीसवाँ अध्ययन–उच्चारपासवण। स्थंडिल के लिए कैसा स्थान अवलोकन करना चाहिए।
बीसवाँ अध्ययन– शब्द। मुनि को शब्द में मोहित नहीं होना चाहिए।
इक्कीसवाँ अध्ययन– रूप। सुन्दर रूप देख कर मोहित न होना चाहिए।

बाईसवाँ अध्ययन– परक्रिया। मुनि के शरीर में कोई गृहस्थ कर्म वन्ध करने वाली क्रिया करे तो कैसे वर्तना चाहिए।
तेईसवाँ अध्ययन– अन्योऽन्यक्रिया। मुनियों को आपस में होने वाली कर्मबन्धन की क्रियाओं में कैसे रहना चाहिए।

तीसरी चूलिका

चौवीसवाँ अध्ययन–भावना। महावीर प्रभु का चारित्र तथा पाँच महाव्रतों की भावनाएं।
पच्चीसवाँ अध्ययन– विमुक्ति। हित शिक्षा की गाथाएं।

(२) सूयगडांग सूत्र

दर्शन शास्त्र के विकास में सूयगडांग सूत्र का महत्व पूर्ण स्थान है। इसका संस्कृत नाम 'सूत्रकृताङ्ग' या 'सूचाकृताङ्ग' है। इसमें भगवान् महावीर के समय में प्रचलित ३६३ मतों का सूत्ररूप से या सूचनारूप से निर्देश किया गया है।

इसमें दो श्रुतस्कन्ध हैं। पहले श्रुतस्कन्ध में सोलह अध्ययन हैं और दूसरे में सात। इनमें निम्न लिखित विषयों का वर्णन है–

प्रथम श्रुतस्कन्ध– पहला अध्ययन– विभिन्नवादों की चर्चा।
(१) उ०–गाथा १–५ वन्ध तथा वन्धकारण। ६–८ भौतिकवादियों का मत। ९ ब्रह्मवाद। १० एकात्मवाद का खण्डन। ११–१२ दूसरे भौतिकवादी। १३ अक्रियावादी। १४ अक्रियावादियों का खण्डन। १५ वैशेषिकमत का प्रारम्भिक रूप। १६ द्रव्यों की नित्यता। १७ बौद्ध। १८ ज्ञानक (जानय)।
(२) उ०– गा० १–१६ भाग्यवाद और उसका खण्डन। १७ भौतिकवाद। २४ क्रियावाद। २५–२८ बौद्ध।
(३) उ०–गा० १–४ मुनि के लिए अग्राह्य आहार। ५–१० पौराणिक। ११–१३ गोशालक के अनुयायी। १४ वैनयिक।
(४) उ०– बहुत से प्रचलित मत। उपसंहार।

दूसरा अध्ययन–कर्मनाश। इसके तीन उद्देशे हैं। तीनों में कर्मों को नष्ट करने का उपाय बताया गया है।

तीसरा अध्ययन– भिक्षुजीवन के विघ्न। इसमें चार उद्देशे हैं। इनमें दुःखों का वर्णन है।

(१) उ०– साधु पर आने वाले कष्ट।

(२) उ०– साधु किस तरह गृहस्थ जीवन की ओर आकृष्ट किया जाता है।

(३) उ०– साधु किस तरह फिसल जाता है। साधु को समान समाचारी वाले रोगी की भोजन आदि से सेवा नहीं करनी चाहिए, इस बात का खण्डन।

(४) उ०– विरोधों का परिहार।

चौथा अध्ययन– स्त्रीप्रसंग। इसमें दो उद्देशे हैं और स्त्रीचरित्र का वर्णन है।

(१) उ०– स्त्रियाँ साधु को कैसे फुसलाती हैं।

(२) उ०– बाद में उसके साथ कैसा वर्ताव करती हैं।

पाँचवाँ अध्ययन– पाप का फल। इसमें दो उद्देशे हैं। दोनों में नरक तथा उसके दुःखों का वर्णन है।

छठा अध्ययन– भगवान् महावीर। इसमें भगवान् महावीर की स्तुति है।

सातवाँ अध्ययन– अधर्मियों का वर्णन। पापों का वर्णन। जीव हिंसा का त्याग। यज्ञ तथा अग्नि में होम आदि कार्यों की व्यर्थता। साधु को स्वार्थी न होना चाहिए।

आठवाँ अध्ययन--सच्ची वीरता। कायाक्लेश, अकाम निर्जरा।

नवाँ अध्ययन– धर्म। संयम। साधु को किन बातों से अलग रहना चाहिए।

दसवाँ अध्ययन–समाधि। जयणा का स्वरूप। साधु को क्या

आदि परिग्रह पर्यन्त, क्रोध, मान, माया, लोभ। राग, द्वेष यावत् परपरिवाद। अरति मायामोसो, मिथ्यादर्शन शल्य। प्राणातिपात आदि से विरमण। क्रोध से लेकर मिथ्यादर्शन शल्य तक का विवेक। अवसर्पिणी, सुषमसुषमा आदि आरे, उत्सर्पिणी, दुषमदुषमा आदि आरे। नारकी से लेकर वैमानिक तक २४ दण्डकों में प्रत्येक की एक वर्गणा, भवसिद्धि, अभवसिद्धि, भवसिद्धि नारकी आदि वैमानिक तक की वर्गणा, सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और मिश्रदृष्टि जीवों की वर्गणा, सम्यग्दृष्टि तथा मिथ्यादृष्टि आदि नारकी जीव, कृष्णपक्षी, शुक्लपक्षी, कृष्णलेश्या, नीललेश्या, यावत् शुक्ललेश्या वाले जीव, नारकी आदि जीवों में लेश्या, कृष्णलेश्या और तीनों दृष्टियाँ इसी प्रकार आठ प्रकार से २४ दंडकों की वर्गणा। तीर्थसिद्ध यावत् अनेकसिद्ध, प्रथम समय सिद्ध यावत् अनन्त समय सिद्ध, परमाणुपुद्गल यावत् अनन्तप्रादेशिकस्कन्ध एक प्रदेशावगाढ यावत् असंख्यात प्रदेशावगाढ, एक समय स्थिति वाले यावत् असंख्यात समय स्थिति वाले एक गुणकाल यावत् असंख्यात गुणकाल तथा अनन्तगुणकाल वाले पुद्गलों की वर्गणा, इसी तरह वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श आदि वाले पुद्गल, जघन्य प्रदेशों वाले स्कन्ध, उत्कृष्ट प्रदेशों वाले स्कन्ध, मध्यम प्रदेशों वाले स्कन्ध, जघन्य, उत्कृष्ट तथा मध्यम अवगाहना वाले, जघन्य, मध्यम तथा उत्कृष्ट स्थितिवाले, जघन्य मध्यम तथा उत्कृष्ट काल वाले इसी प्रकार जघन्य वर्णादि वाले पुद्गलों की वर्गणा। जम्बूद्वीप और सभी द्वीप समुद्रों की परिधि, अन्तिम तीर्थङ्कर भगवान् महावीर, अनुत्तरौपपतिक देवों की ऊँचाई एक रत्नि प्रमाण। एक तारे वाले नक्षत्र, एक प्रदेशावगाढ, एक समय स्थिति वाले, एक गुण काल वाले यावत् एक गुण रूखे अनन्त पुद्गल।

दूसरा अध्ययन (द्विस्थानक)– लोक में दो पदार्थ– जीव,

अजीव। त्रस, स्थावर। सयोनिक, अयोनिक। सायु, निरायु। सेन्द्रिय, अनिन्द्रिय। सवेदक, अवेदक। सरूप, अरूप। सपुद्गल, अपुद्गल। संसारी, सिद्ध। शाश्वत, अशाश्वत। आकाश, नोआकाश। धर्म, अधर्म। बन्ध, मोक्ष। पुण्य, पाप। आश्रव, संवर। वेदना, निर्जरा। दो जीव क्रियाएं– सम्यक्त्वक्रिया, मिथ्यात्वक्रिया। दो अजीव क्रियाएं–ईर्यावहिकी, साम्परायिकी। दो क्रियाएं–कायिकी, आधिकरणिकी। कायिकी के दो भेद– अनुपरतकायक्रिया, दुष्प्रयुक्तकायक्रिया। आधिकरणिकी के दो भेद– संयोजनाधिकरणिकी, निर्वर्तनाधिकरणिकी। दो क्रियाएं– प्राद्वेषिकी, पारितापनिकी। प्राद्वेषिकी के दो भेद– जीवप्राद्वेषिकी, अजीवप्राद्वेषिकी। पारितापनिकी के दो भेद– स्वहस्तपारितापनिकी, परहस्तपारितापनिकी। दो क्रियाएं– प्राणातिपातक्रिया, अप्रत्याख्यानक्रिया। प्राणातिपातक्रिया के दो भेद–स्वहस्तप्राणातिपातक्रिया, परहस्तप्राणातिपातक्रिया। अप्रत्याख्यानक्रिया के दो भेद–जीव अप्रत्याख्यानक्रिया, अजीव अप्रत्याख्यानक्रिया। दो क्रियाएं–आरम्भिकी, पारिग्रहिकी। आरम्भिकी के दो भेद– जीवारम्भिकी, अजीवारम्भिकी। इसी तरह पारिग्रहिकी के भी दो भेद हैं। दो क्रियाएं–मायाप्रत्यया, मिथ्यादर्शनप्रत्यया। मायाप्रत्यया के दो भेद–आत्मभाववञ्चनता, परभाववञ्चनता। मिथ्यादर्शनप्रत्यया के दो भेद– ऊनातिरिक्तमिथ्यादर्शनप्रत्यया, तद्व्यतिरिक्तमिथ्यादर्शनप्रत्यया। दो क्रियाएं– दृष्टिजा, पृष्टिजा। दृष्टिजा के दो भेद– जीवदृष्टिजा, अजीवदृष्टिजा। इसी तरह पृष्टिजा के दो भेद हैं। दो क्रियाएं– प्रातीत्यिकी, सामन्तोपनिपातिकी। प्रातीत्यिकी के दो भेद–जीवप्रातीत्यिकी, अजीवप्रातीत्यिकी। इसी तरह सामन्तोपनिपातिकी के दो भेद हैं। दो क्रियाएं– स्वाहस्तिकी, नैसृष्टिकी। स्वाहस्तिकी के दो भेद– जीव स्वाहस्तिकी, अजीवस्वाहस्तिकी। इसी तरह नैसृष्टिकी के दो भेद

हैं। दो क्रियाएं- आज्ञापनी, वैदारिणी। स्वाहस्तिकी की तरह प्रत्येक के दो भेद हैं। दो क्रियाएं- अनाभोगप्रत्यया, अनवकांक्षाप्रत्यया। अनाभोगप्रत्यया के दो भेद- अनायुक्तादानता, अनायुक्तप्रमार्जनता। अनवकांक्षाप्रत्यया के दो भेद- आत्मशरीरानवकांक्षाप्रत्यया, परशरीरानवकांक्षाप्रत्यया। दो क्रियाएं- रागप्रत्यया, द्वेषप्रत्यया। रागप्रत्यया के दो भेद-मायाप्रत्यया, लोभ प्रत्यया। द्वेषप्रत्यया के दो भेद- क्रोध, मान।

गर्हा के दो भेद- मन से, वचन से, अथवा दीर्घ काल तक गर्हा, थोड़े काल तक गर्हा। प्रत्याख्यान के दो भेद- मन से, वचन से, अथवा दीर्घ काल के लिए, अल्पकाल के लिए। संसार सागर को पार करने के दो मार्ग- ज्ञान, चारित्र। आरम्भ और परिग्रह रूप दो बातों का त्याग किए विना आत्मा केवली के धर्म को प्राप्त नहीं कर सकता, उसे समझ नहीं सकता, शुद्ध दीक्षा का पालन नहीं कर सकता, ब्रह्मचर्य का पालन नहीं कर सकता, संयम नहीं पाल सकता, संवर नहीं कर सकता अर्थात् नए कर्मों के आगमन को नहीं रोक सकता, मतिज्ञान आदि पॉच ज्ञानों को प्राप्त नहीं कर सकता, इन्हीं दो बातों का त्याग करके जीव ऊपर लिखी ग्यारह बातों को प्राप्त कर सकता है। दो काल- उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी। दो उन्माद-यक्षावेश से होने वाला और मोहनीय कर्म के उदय से होने वाला, इन दोनों का भेद। दो दंड- अर्थदंड, अनर्थदंड। दो दर्शन- सम्यग्दर्शन, मिथ्यादर्शन। दो सम्यग्दर्शन- निसर्गसम्यग्दर्शन, अभिगमसम्यग्दर्शन। निसर्गसम्यग्दर्शन के दो भेद- प्रतिपाती, अप्रतिपाती। अभिगमसम्यग्दर्शन के दो भेद- प्रतिपाती, अप्रतिपाती। मिथ्यादर्शन के दो भेद- आभिग्रहिक मिथ्यादर्शन, अनाभिग्रहिक मिथ्यादर्शन। आभिग्रहिक मिथ्यादर्शन के दो भेद- सपर्यवसित, अपर्यवसित। इसी तरह अनाभिग्रहिक के भी दो भेद हैं। दो

ज्ञान-प्रत्यक्ष, परोक्ष। प्रत्यक्ष के दो भेद- केवलज्ञान, नो केवलज्ञान। केवलज्ञान के दो भेद- भवस्थकेवलज्ञान, सिद्धकेवलज्ञान। भवस्थकेवलज्ञान के दो भेद- सयोगिभवस्थकेवलज्ञान, अयोगिभवस्थकेवलज्ञान। सयोगिभवस्थकेवलज्ञान के दो भेद- प्रथमसमयसयोगिभवस्थकेवलज्ञान, अप्रथमसमयसयोगिभवस्थकेवलज्ञान, अथवा चरमसमय और अचरमसमय के भेद से भी प्रत्येक के दो भेद हैं। अयोगिभवस्थकेवलज्ञान के भी इसी प्रकार भेद हैं। सिद्धकेवलज्ञान के दो भेद- अनन्तरसिद्धकेवलज्ञान, परम्परासिद्धकेवलज्ञान। अनन्तरसिद्धकेवलज्ञान के दो भेद-एकानन्तरसिद्धकेवलज्ञान, अनेकानन्तरसिद्धकेवलज्ञान। परम्परासिद्धकेवलज्ञान के दो भेद हैं-एकपरम्परासिद्धकेवलज्ञान, अनेकपरम्परासिद्धकेवलज्ञान। नोकेवलज्ञान के दो भेद- अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान। अवधिज्ञान के दो भेद- भवप्रत्यय, क्षयोपशमनिमित्त। भवप्रत्यय वाले जीवों के दो भेद-देव, नारकी। क्षयोपशमनिमित्त वालों के दो भेद- मनुष्य, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च। मनःपर्ययज्ञान के दो भेद- ऋजुमति, विपुलमति। परोक्षज्ञान के दो भेद- मतिज्ञान, श्रुतज्ञान। मतिज्ञान के दो भेद-श्रुतनिःसृत, अश्रुतनिःसृत। श्रुतनिःसृत के दो भेद- अर्थावग्रह, व्यञ्जनावग्रह। अश्रुतनिःसृत के भी इसी तरह दो भेद हैं। श्रुतज्ञान के दो भेद- अंगप्रविष्ट, अंगबाह्य। अंगबाह्य के दो भेद- आवश्यक, आवश्यकव्यतिरिक्त। आवश्यकव्यतिरिक्त के दो भेद-कालिक, उत्कालिक। धर्म के दो भेद- श्रुतधर्म, चारित्रधर्म। श्रुतधर्म के दो भेद-सूत्रश्रुतधर्म, अर्थश्रुतधर्म। चारित्रधर्म के दो भेद- आगारचारित्रधर्म, अनागारचारित्रधर्म। संयम के दो भेद- सरागसंयम, वीतरागसंयम। सरागसंयम के दो भेद- सूक्ष्मसम्परायसरागसंयम, बादरसम्परायसरागसंयम। सूक्ष्मसम्परायसरागसंयम के दो भेद- प्रथमसमयसूक्ष्मसम्पराय

सरागसंयम, अप्रथमसमयसूक्ष्मसम्परायसरागसंयम , अथवा चरमसमय०,अचरमसमय०, अथवा संक्लिश्यमान,विशुध्यमान। वादरसम्परायसरागसंयम के दो भेद–प्रथमसमयवादर०,अप्रथम समयवादर०, अथवा चरमसमय०, अचरमसमय०, अथवा प्रतिपाती, अप्रतिपाती। वीतरागसंयम के दो भेद– उपशान्तकषायवीतरागसंयम, क्षीणकषायवीतरागसंयम । उपशान्तकषायवीतरागसंयम के दो भेद–प्रथमसमयउपशान्त०,अप्रथमसमयउपशान्त० अथवा चरमसमय०,अचरमसमय०। क्षीणकषायवीतरागसंयम के दो भेद– छद्मस्थक्षीणकषायवीतरागसंयम, केवलिक्षीणकषाय वीतरागसंयम। छद्मस्थक्षीणकषायवीतरागसंयम के दो भेद– स्वयम्बुद्धछद्मस्थ, बुद्धबोधितछद्मस्थ। स्वयम्बुद्धछद्मस्थ के दो भेद– प्रथमसमय०,अप्रथमसमय०,अथवा चरमसमय०,अचरमसमय०। केवलिक्षीणकषायवीतरागसंयम के दो भेद–सयोगिकेवलिक्षीणकषाय, अयोगिकेवलिक्षीणकषाय। सयोगिकेवलिक्षीणकषायसंयम के दो भेद– प्रथमसमय०, अप्रथमसमय० , अथवा चरम समय०,अचरमसमय०। अयोगिकेवलिक्षीणकषायसंयम के दो भेद- प्रथमसमय०,अप्रथमसमय०,अथवा चरमसमय०,अचरमसमय०।

पृथ्वीकाय के दो भेद–सूक्ष्म, वादर। इसी तरह वनस्पतिकाय तक प्रत्येक के दो भेद हैं , अथवा पर्याप्तक, अपर्याप्तक; परिणत, अपरिणत;गतिसमापन्न,अगतिसमापन्न;अनन्तरावगाढ,परम्परावगाढ इस प्रकार भी दो दो भेद हैं। परिणत, अपरिणत आदि भेद द्रव्य के भी हैं। काल के दो भेद– उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी। आकाश के दो भेद– लोकाकाश, अलोकाकाश।

नारकी, देव, पृथ्वीकाय यावत् वनस्पतिकाय, वेइन्द्रिय,तेइन्द्रिय, चौरिन्द्रिय, तिर्यञ्चपंचेन्द्रिय, मनुष्य तथा विग्रहगति वाले जीवों के दो शरीर– आभ्यन्तर, वाह्य। प्रत्येक की व्याख्या।

नारकी आदि जीवों की शरीरोत्पत्ति तथा शरीर निर्वर्तन के दो कारण- राग, द्वेष। दो काय- त्रसकाय, स्थावरकाय। त्रस-काय के दो भेद- भवसिद्धिक, अभवसिद्धिक। इसी तरह स्थावर काय के भी दो भेद हैं। पूर्व और पश्चिम इन दो दिशाओं की तरफ मुँह करके साधु साध्वी को प्रव्रज्या आदि १७ बातें करनी चाहिए।

द्वितीय स्थान (२) उद्देश- देव, नारकी आदि २४ दण्डकों के जीव सुख, दुःख आदि भोगते हुए जो पाप करते हैं उसका फल उस गति में भी भोगते हैं, दूसरी गति में भी। नारकी जीव मर कर दो गतियों में उत्पन्न होते हैं तथा दो गतियों से आते हैं- मनुष्य, तिर्यञ्च। इसी प्रकार देवों की गतागत भी जाननी चाहिए। पृथ्वी-काय आदि मनुष्य पर्यन्त गतागत.।

नारकी आदि सभी जीवों के १६ प्रकार से दो दो भेद। दो प्रकार से आत्मा अधोलोक, तिर्यग्लोक, ऊर्ध्वलोक तथा केवलकल्पलोक को जानता देखता है- समुद्घात में, बिना समुद्घात के अथवा विक्रिया से, बिना विक्रिया के। दो स्थानों से आत्मा शब्द आदि सुनता है- देश से, सर्वरूप से। इसी तरह रूप, रस और गन्ध के विषय में भी जानना चाहिए। दो स्थानों से आत्मा प्रकाशित होता है- देश से, सर्व से। इसी प्रकार भासना आदि नौ बातें हैं। दो स्थानों से शब्द सुनता है--देश से, सर्व से। देवों के दो भेद- एक शरीर वाले और दो शरीर वाले।

द्वितीय स्थान (३) उद्देश- शब्द के दो भेद- भाषाशब्द, नो भाषाशब्द। भाषाशब्द के दो भेद-अक्षरसम्बद्ध, नो अक्षरसम्बद्ध। नोभाषाशब्द के दो भेद-आतोद्यशब्द, नो आतोद्यशब्द। आतो-द्यशब्द के दो भेद-तत, वितत। तत के दो भेद- घन, शुषिर। इसी तरह वितत के दो भेद हैं। नो आतोद्यशब्द के दो भेद-भूषण-शब्द, नो भूषणशब्द। नो भूषणशब्द के दो भेद-तालशब्द, कांस्य-

शब्द। शब्द की उत्पत्ति के दो कारण है-पुद्गलों का संघात होना, अलग होना।

पुद्गलों का संघात दो कारणों से होता है-स्वयमेव, पर निमित्त से। इन्हीं दो कारणों से पुद्गलों का भेद,पतन,गलन या विनाश होता है। बारह प्रकार से पुद्गलों के दो दो भेद हैं- भेद वाले,विना भेद वाले। नाशस्वभाव वाले, विना नाश स्वभाव वाले। परमाणु पुद्गल,नो परमाणु पुद्गल। सूक्ष्म,बादर। बद्धपार्श्वस्पृष्ट,नोबद्धपार्श्व स्पृष्ट। पर्यायातीत, अपर्यायातीत। आत्त, अनात्त। इष्ट, अनिष्ट। कान्त, अकान्त। प्रिय,अप्रिय। मनोज्ञ,अमनोज्ञ। मणाम,अमणाम। शब्द के दो भेद- आत्त, अनात्त। यावत् मणाम, अमणाम। इसी प्रकार रूप, रस,गंध, स्पर्श के भी भेद जानने चाहिएं।

आचार के दो भेद-ज्ञानाचार, नोज्ञानाचार। नोज्ञानाचार के दो भेद-दर्शनाचार, नोदर्शनाचार। नोदर्शनाचार के दो भेद-चारित्राचार,नोचारित्राचार। नोचारित्राचार के दो भेद-तपाचार, वीर्याचार। दो पडिमाएं-समाधिपडिमा, उपधानपडिमा, अथवा विवेकपडिमा, व्युत्सर्गपडिमा, अथवा भद्रा, सुभद्रा, अथवा महाभद्रा, सर्वतोभद्रा, अथवा क्षुद्रमोकप्रतिमा, महती मोकप्रतिमा, अथवा यवमध्यचन्द्रप्रतिमा, वज्रमध्यचन्द्रप्रतिमा। सामायिक के दो भेद-आगार सामायिक, अनागारसामायिक।

उपपात जन्म के दो स्थान-देव,नारकी। उद्वर्तना के दो स्थान-नारकी,भवनवासी देव। च्यवन के दो स्थान-ज्योतिषी,वैमानिक देव। मनुष्य और पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च इन दो स्थानों में पाई जाने वाली १२ बातें-गर्भोत्पत्ति,गर्भ में रहते हुए आहार,गर्भ में वृद्धि, हास, विकुर्वणा,गतिपर्याय, समुद्धात, कालसंयोग, आयाति (गर्भ से निकल जाना), मरण, चर्मवाला शरीर और शुक्र शोणित से उत्पत्ति। दो प्रकार की स्थिति-कायस्थिति, भवस्थिति। काय-

स्थिति के दो स्थान–मनुष्य, पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च। भवस्थिति के दो स्थान–देव, नारकी। आयु के दो भेद–अद्धायु, भवायु। अद्धायु के दो स्थान–मनुष्य, पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च। भवायु के दो स्थान–देव, नारकी। कर्म के दो भेद–प्रदेशकर्म, अनुभावकर्म। दो गति वाले जीव पूरी आयु प्राप्त किए बिना नहीं मरते– देव, नारकी। दो गतियों में आयु का अपवर्तन होता है अर्थात् बीच में भी टूट जाती अर्थात् अकाल में मृत्यु हो जाती है–मनुष्य, पंचेन्द्रियतिर्यञ्च।

जम्बूद्वीप में क्षेत्र, देव तथा अन्य वस्तुएं।

भरत और ऐरावत में सुषम दुषमा नामक आरा दो कोडा-कोडी सागरोपम का होता है। सुषमा आरे में मनुष्यों की अवगाहना दो कोस की होती है और २ पल्योपम की पूर्णायु। इसी तरह दो संख्या वाले वास, क्षेत्र, हृद, जीव आदि।

जम्बूद्वीप में दो चन्द्र, दो सूर्य आदि सभी ग्रह, नक्षत्रों के नाम।

जम्बूद्वीप की वेदिका २ कोस ऊँची है। लवणसमुद्र का चक्रवाल विष्कम्भ दो लाख योजन है। लवण समुद्र की वेदिका दो कोस ऊँची है। धातकी खंड का वर्णन, उसमें पर्वत, हृद, कूट, वास आदि। इसी तरह पुष्करार्द्ध का वर्णन।

असुरकुमारों के दो इन्द्र–चमर, बली। नागकुमारों के दो इन्द्र–धरण, भूतानन्द। सुपर्णकुमारों के दो इन्द्र– वेणुदेव, वेणुदारी। विद्युत्कुमारों के दो इन्द्र–हरि, हरिसह। अग्निकुमारों के दो इन्द्र–अग्निशिख, अग्निमाणव। द्वीपकुमारों के दो इन्द्र–पुण्य, विशिष्ट। उदधिकुमारों के दो इन्द्र–जलकान्त, जलप्रभ। दिशाकुमारों के दो इन्द्र– अमितगति, अमितवाहन। वायुकुमारों के दो इन्द्र–वेलम्ब, प्रभञ्जन। स्तनितकुमारों के दो इन्द्र– घोष, महाघोष। पिशाचों के दो इन्द्र–काल, महाकाल। भूतों के दो इन्द्र–सुरूप, प्रतिरूप। यक्षों के दो इन्द्र–पूर्णभद्र, मणिभद्र। राक्षसों के दो

इन्द्र– भीम, महाभीम। किन्नरों के दो इन्द्र– किन्नर, किम्पुरुष। किंपुरुषों के दो इन्द्र–सत्पुरुष, महापुरुष। महोरगों के दो इन्द्र– अतिकाय, महाकाय। गन्धर्वों के दो इन्द्र–गीतरति, गीतयशा। अन्नपणिकों के दो इन्द्र–सन्निधि, सामान्य। पानपणिकों के दो इन्द्र–धाता, विधाता। ऋषिवादियों के दो इन्द्र– ऋषि, ऋषि-पालक। भूतवादियों के दो इन्द्र–ईश्वर, महेश्वर। कन्द नामक देवों के दो इन्द्र–सुवत्स, विशाल। महाकन्द देवों के दो इन्द्र–हास्य, हास्यरति। कुहण्ड देवों के दो इन्द्र–श्वेत, महाश्वेत। प्रेतों के दो इन्द्र–प्रेत, प्रेतपति। ज्योतिषी देवों के दो इन्द्र–चन्द्र, सूर्य। सौधर्म और ईशानकल्प में दो इन्द्र–शक्र, ईशान। इसी प्रकार सनत्कुमार और माहेन्द्रकल्प में दो इन्द्र–सनत्कुमार, माहेन्द्र। ब्रह्मदेवलोक और लान्तककल्प में दो इन्द्र–ब्रह्म, लान्तक। महाशुक्र और सहस्रार कल्प में दो इन्द्र– महाशुक्र, सहस्रार। आनत, प्राणत और आरण, अच्युत कल्पों में दो इन्द्र–प्राणत, अच्युत। महाशुक्र और सहस्रारकल्प में विमानों के दो रंग हैं–पीत, श्वेत। ग्रैवेयक देवों की ऊँचाई दो रत्नियाँ होती है।

द्वितीय स्थान (४) उद्देश–समय से लेकर सागरोपम तक काल, ग्राम, नगर, निगम, राजधानी आदि निवासस्थान, छाया, धूप, प्रकाश अन्धकार आदि सब जीव तथा अजीव दोनों कहे जाते हैं। दो राशि–जीवराशि, अजीवराशि। शरीर से निकलते समय आत्मा दो प्रकार से शरीर को छूता है– देश से, सर्व रूप से। इसी तरह आत्मा का शरीर में स्फुरण, स्फोटन, संवर्तन या निर्वर्तन दो प्रकार से होता है।

दो स्थानों से आत्मा को केवलिप्ररूपित धर्म की यावत् मनः-पर्यवज्ञान की प्राप्ति होती है– क्षय, क्षयोपशम।

काल की दो उपमाएं– पल्योपम, सागरोपम। इन दोनों का

स्वरूप।

क्रोध के दो भेद—आत्मप्रतिष्ठित, परप्रतिष्ठित। चौवीस दण्डकों में क्रोधके इसी प्रकार दो दो भेद। मान, माया आदि मिथ्यादर्शन शल्य तक सभी के ऊपर लिखे दो दो भेद जानने चाहिए। संसारी जीवों के दो भेद– त्रस, स्थावर। सब जीवों के दो भेद– सिद्ध, असिद्ध। सेन्द्रिय, अनिन्द्रिय। सकाय, अकाय। सयोग, अयोग। सवेद, अवेद। सकषाय, अकषाय। सलेश्य, अलेश्य। सज्ञान, अज्ञान। सोपयोग, निरुपयोग। साहार, निराहार। भाषक, अभाषक। चरमशरीरी, अचरम शरीरी। सशरीर, अशरीर।

दो प्रकार का अशुभ मरण– वलन्मरण, वशार्तमरण। इसी तरह निदानमरण, तद्भवमरण; अथवा गिरिपतन, तरुपतन। जलप्रवेश, ज्वलनप्रवेश। विषभक्षण, शस्त्रावपातन। दो प्रकार का मरण अशुभ होने पर भी कारणविशेष होने पर निषिद्ध नहीं है–वैहायस, गृध्रस्पृष्ट। दो प्रकार का प्रशस्त मरण– पादोपगमन, भक्तप्रत्याख्यान। पादोपगमन के दो भेद—नीहारिम अनीहारिम। भक्तप्रत्याख्यान के दो भेद– नीहारिम, अनीहारिम।

लोक क्या है? जीव और अजीव। लोक में अनन्त और शाश्वत क्या है? जीव और अजीव। बोधि के दो भेद– ज्ञानबोधि, दर्शन बोधि। दो प्रकार के बुद्ध– ज्ञानबुद्ध, दर्शनबुद्ध। इसी प्रकार मोह और मूढ के भी दो दो भेद हैं।

ज्ञानावरणीयकर्म के दो भेद– देशज्ञानावरणीय, सर्वज्ञानावरणीय। इसी प्रकार दर्शनावरणीय के भी दो भेद। वेदनीय के दो भेद—सातावेदनीय, असातावेदनीय। मोहनीय के दो भेद—दर्शनमोहनीय, चारित्रमोहनीय। आयु के दो भेद—अद्धायु (कालायु), भवायु। नामके दो भेद—शुभनाम, अशुभनाम। गोत्र के दो भेद— उच्चगोत्र, नीचगोत्र। अन्तराय के दो भेद– प्रत्युत्पन्नविनाशी,

पिहितागामिपथ।

मूर्छा के दो भेद– प्रेमप्रत्यया, द्वेषप्रत्यया। प्रेमप्रत्यया के दो भेद–माया, लोभ। द्वेषप्रत्यया के दो भेद–क्रोध, मान। दो प्रकार की आराधना– धार्मिकाराधना, केवलिकाराधना। धार्मिकाराधना के दो भेद– श्रुतधर्माराधना, चारित्रधर्माराधना। केवलिकाराधना के दो भेद–अन्तक्रिया, कल्पविमानोपपत्तिका। दो तीर्थङ्करों का वर्ण नील उत्पल के समान है– मुनिसुव्रत, अरिष्टनेमि। दो तीर्थङ्करों का रंग प्रियंगु के समान श्याम है– मल्लिनाथ, पार्श्वनाथ। दो तीर्थङ्कर पद्म के समान गौर हैं– पद्मप्रभ, वासुपूज्य। दो तीर्थङ्कर चन्द्र के समान गौर हैं– चन्द्रप्रभ, पुष्पदन्त।

सर्वप्रवाद पूर्व में दो वस्तु हैं। दो भाद्रपदा– पूर्वभाद्रपदा, उत्तरभाद्रपदा। दो फाल्गुनी– पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी। मनुष्य क्षेत्र में दो समुद्र हैं–लवण, कालोद। दो चक्रवर्ती सातवीं नरक में उत्पन्न हुए– सुभूम, ब्रह्मदत्त।

दो पल्योपम या सागरोपम स्थिति वाले देव। दो कल्पों में कल्पस्त्रियाँ होती हैं–सौधर्म, ईशान। दो कल्पों में तेजोलेश्या वाले देव होते हैं–सौधर्म, ईशान। इन्हीं दो कल्पों के देव कायप्रवीचार वाले होते हैं। दो कल्पों में देव स्पर्शप्रवीचार वाले होते हैं– सनत्कुमार, माहेन्द्र। दो कल्पों में रूपप्रवीचार वाले होते हैं– ब्रह्मलोक, लान्तक। दो कल्पों में शब्दप्रवीचार वाले होते हैं– महाशुक्र, सहस्रार। दो मन प्रवीचार वाले होते हैं– प्राणत, अच्युत। कर्मों के उपचय, बन्ध, उदीरणा, वेदना और निर्जरा के दो स्थान–त्रस, स्थावर। द्विप्रादेशिक, द्विप्रदेशावगाढ– जाव द्विगुण रूक्ष पुद्गल अनन्त हैं।

तीसरा अध्ययन (त्रिस्थानक)

(१) उद्देश– तीन इन्द्र– नामेन्द्र, स्थापनेन्द्र, द्रव्येन्द्र, अथवा ज्ञानेन्द्र, दर्शनेन्द्र, चारित्रेन्द्र, अथवा देवेन्द्र, असुरेन्द्र, मनुष्येन्द्र। तीन

प्रकार से तीन तीन तरह की विकुर्वणाएं। तीन प्रकार के नारकी। इसी प्रकार एकेन्द्रियों को छोड़ कर वैमानिक तक सभी दण्डकों के तीन तीन भेद। तीन प्रकार की परिचारणा। तीन प्रकार का मैथुन। तीन मैथुन प्राप्त करने वाले तथा तीन सेवन करने वाले।

तीन योग। तीन प्रयोग। तीन करण दो प्रकार से। अल्पायु बाँधने के तीन कारण। दीर्घायु बाँधने के तीन कारण। अशुभ दीर्घायु बाँधने के तीन कारण। शुभ दीर्घायु बाँधने के तीन कारण। (सूत्र १२४-१२५)

तीन गुप्ति। तीन अगुप्ति। तीन दण्ड। तीन गर्हा, दो प्रकार से। तीन प्रत्याख्यान। तीन वृक्ष। तीन पुरुष पाँच प्रकार से। तीन उत्तम पुरुष। तीन मध्यमपुरुष। तीन जघन्यपुरुष। (सूत्र १२६-१२८)

तीन प्रकार के मत्स्य। अंडज मत्स्य के तीन भेद। पोतज मत्स्य के तीन भेद। पक्षियों के तीन भेद तथा अंडज और पोतज के फिर तीन तीन भेद। इसी प्रकार उरपरिसर्प और भुजपरिसर्प के भी तीन तीन भेद। स्त्रियों के तीन भेद। तिर्यञ्च स्त्री और मनुष्य स्त्री के तीन तीन भेद। मनुष्य तथा नपुँसकों के भेद प्रभेद। तिर्यञ्च के तीन भेद। (सूत्र १२९-१३१)

नारकी आदि दंडकों में लेश्याएं। तीन कारणों से तारे अपने स्थान से विचलित होते हैं, तीन कारणों से देव बिजली की विकुर्वणा करते हैं और तीन कारणों से गर्जना करते हैं। लोक में अन्धकार के तीन कारण, उद्योत के तीन कारण, इसी प्रकार देवान्धकार, देवोद्योत, देवसंनिपात, देवोत्कलिका, देवकहकहा के तीन कारण। तीन कारणों से देवेन्द्र मनुष्यलोक में आते हैं। इसी तरह सामानिक, त्रायस्त्रिंश, लोकपाल, अग्रमहिषियाँ आदि के भी तीन कारण हैं। तीन कारणों से देव, उनके सिंहासन और चैत्यवृक्ष आदि विचलित होते हैं और वे मनुष्यलोक में आते हैं। (सूत्र १३२-३४)

माता पिता, सेठ, गुरु तीनों के द्वारा किए हुए उपकार का बदला नहीं चुकाया जा सकता। तीन स्थानों पर रहा हुआ अनगार संसार समुद्र को पार करता है। तीन प्रकार की उत्सर्पिणी। तीन प्रकार की अवसर्पिणी। तीन प्रकार से पुद्गल विचलित होता है। तीन प्रकार की उपधि। तीन प्रकार का परिग्रह (दो प्रकार से)। (सूत्र १३५-१३८)

तीन प्रणिधान। तीन सुप्रणिधान। तीन दुष्प्रणिधान। तीन योनि (चार प्रकार से)। तीन गर्भज उत्तम पुरुष। तृणवनस्पतिकाय के तीन भेद। भारतवर्ष में तीनतीर्थ मागध, वरदाम, प्रभास। इसी प्रकार धातकीखंड तथा पुष्करार्द्ध के क्षेत्रों में जानना चाहिए। (सूत्र १३९-१४२)

तीन सागरोपम स्थिति वाले आरे। तीन पल्योपम आयु तथा तीन कोस की अवगाहना वाले मनुष्य। तीन वंश। तीन उत्तम पुरुष। तीन अनपवर्त्य तथा मध्यम आयु वाले।

तीन दिन अग्निकाय के जीवों की आयु। तीन वर्ष की आयु वाले अनाज के जीव। तीन पल्योपम या तीन सागरोपम आयु वाले देव तथा नारकी जीव। उष्णवेदना वाले पहले तीन नरक। अप्रतिष्ठान नरक, जम्बूद्वीप और सर्वार्थ सिद्ध विमान लम्बाई चौड़ाई में समान हैं। इसी तरह सीमन्तक नरक, अढाई द्वीप और सिद्धशिला भी लम्बाई चौड़ाई में समान हैं। स्वाभाविक रस वाले पानी से युक्त तीन समुद्र– कालोद, पुष्करोद, स्वयंभूरमण। अधिक मत्स्य, कच्छपादि वाले तीन समुद्र– लवण, कालोद, स्वयंभूरमण। (सू० १४३-१४९)

सातवीं नरक में उत्पन्न होने वाले तीन। सर्वार्थसिद्ध विमान में उत्पन्न होने वाले तीन। ब्रह्मलोक और लान्तक कल्प में विमानों के तीन रंग। आणत, प्राणत, आरण और अच्युत कल्पों में देवों की भवधारणी अवगाहना तीन रत्नियाँ। तीन सूत्र–जम्बूद्वीप पण्ण-

त्ति, सूर पण्णत्ति, चन्द पण्णत्ति दिन की पहली या अन्तिम पौरुषी में पढ़े जाते हैं।(सूत्र १५०–१५२)।

द्वितीय उद्देश– तीन लोक (तीन प्रकार से)। चमरेन्द्र की तीन परिषदाएं। चमरेन्द्र के सामानिक देवों की तीन परिषदाएं। इसी प्रकार त्रायस्त्रिंश, अग्रमहिषियाँ तथा दूसरे इन्द्रों की सभाएं।(सू० १५३–१५४)।

तीन याम। तीन व्रत। तीन बोधि। तीन बुद्ध। तीन प्रव्रज्या (चार प्रकार से)। तीन निर्ग्रन्थ नोसञ्ज्ञोपयुक्त। तीन सञ्ज्ञा नो-सञ्ज्ञोपयुक्त। तीन शैक्षभूमियाँ। तीन स्थविर।(सू० १५५–१५९)

अनेक अपेक्षाओं से पुरुष के तीन तीन भेद। कुल १२७ भेद। शील व्रत आदि से रहित व्यक्ति तीन स्थानों से निन्दित होता है। शील, व्रत आदि वाला तीन स्थानों से प्रशस्त माना जाता है। तीन संसारी जीव। तीन प्रकार के सर्वजीव (तीन अपेक्षाओं से)। तीन प्रकार से लोकस्थिति। तीन दिशाएं। तीन दिशाओं में जीवों की आगति आदि १३ बोल। (सू० १६०–१६३)।

तीन त्रस। तीन स्थावर। तीन अच्छेद्य। इसी प्रकार तीन अभेद्य, अदाह्य आदि आठ बातें। श्रमण भगवान् महावीर द्वारा कहे हुए तीन वाक्य–प्राणी दुःख से डरते हैं, प्रमादवश जीव दुःख को पैदा करता है, दुःख अप्रमाद के द्वारा भोगा जाता है।(सू० १६४–१६६)।

क्रिया और फलभोग के विषय में अन्यतीर्थिकों का प्रश्न तथा उत्तर। (सू० १६७)।

तृतीय उद्देश– तीन कारणों से (तीन प्रकार) मायावी माया करके आलोचना आदि नहीं करता। तीन कारणों से (तीन प्रकार) आलोचना आदि करता है। तीन प्रधान पुरुष। साधु साध्वियों को तीन प्रकार के वस्त्र कल्पते हैं। तीन प्रकार के पात्र। तीन कारणों से वस्त्र धारण करने चाहिएं।(सू० १६८–१७१)।

आत्मा के राग द्वेष आदि पाप या संसार समुद्र से बचने के तीन स्थान-(१) जब आत्मा किसी बुरे रास्ते पर जा रहा हो उस समय किसी धार्मिक व्यक्ति द्वारा उपदेश मिलने पर आत्मा की रक्षा हो जाती है अर्थात् वह बुरे मार्ग में जाने से बच जाता है। (२) अपनी वाणी को वश में रखने वाला अर्थात् मौन रहने वाला या समय पर हित, मित और प्रिय वचन बोलने वाला आत्मा की रक्षा करता है। (३) किसी प्रकार का विवाद खड़ा होने पर अगर शान्त रहने की शक्ति न हो, उपेक्षा करने की सामर्थ्य न रहे तो उस स्थान से उठकर किसी एकान्त स्थान में चले जाने से आत्मरक्षा होती है, अथवा हमेशा एकान्त सेवन करने वाला आत्मरक्षा करता है। ग्लायमान साधु शरीररक्षा के लिए तीन प्रकार से पेय वस्तुएं ग्रहण करे। (सू० १७२)

संभोगी को विसंभोगी करने के तीन कारण। तीन अनुज्ञा। तीन समनुज्ञा। तीन विजहणा अर्थात् त्याग। (सू० १७३-१७४)

तीन वचन। तीन अवचन। तीन प्रकार का मन। तीन प्रकार का अमन। अल्पवृष्टि के तीन कारण। सुवृष्टि के तीन कारण। देव द्वारा मनुष्य लोक में न आ सकने के तीन कारण। देव द्वारा मनुष्यलोक में आने के तीन कारण। (सू० १७५-१७७)

देव तीन बातों की अभिलाषा करता है। तीन कारणों से देव पश्चात्ताप करता है। तीन कारणों से देव अपने च्यवन को जान जाता है। तीन बातों से देव उद्विग्न होता है। विमानों के तीन संस्थान। विमानों के तीन आधार। तीन प्रकार के विमान। (सू० १७८-८०)

तीन प्रकार के नारकी आदि दण्डक। तीन दुर्गतियाँ। तीन सुगतियाँ। तीन दुर्गत। तीन सुगत। चउत्थ, छट्ठ और अट्ठ भत्त करने वाले साधु को कल्पनीय तीन पेय द्रव्य। तीन उपहृत। तीन अवगृहीत। तीन ऊनोदरी। उपकरणोनोदरी के तीन भेद। साधु,

साध्वियों के लिए तीन अहितकर स्थान तथा तीन हितकर स्थान। तीन शल्य। तेजोलेश्या के संकोच और विस्तार के तीन कारण। तीन मास की भिक्खुपडिमावालों को आहार और पानी की तीन तीन दत्तियाँ कल्पती हैं। एक रात्रिकी भिक्षुप्रतिमा सम्यक् न पालने वाले अनगार को तीन प्रकार से हानि होती है तथा सम्यक् पालने वाले को तीन प्रकार से लाभ होता है। (सू० १८१-१८२)।

तीन कर्मभूमियाँ। तीन दर्शन। तीन रुचि। तीन प्रयोग। तीन व्यवसाय (तीन अपेक्षाओं से)। इहलौकिक व्यवसाय के तीन भेद। लौकिक व्यवसाय के तीन भेद। वैदिक व्यवसाय के तीन भेद। सामयिक व्यवसाय के तीन भेद- ज्ञान, दर्शन, चारित्र। तीन अर्थयोनि- साम, दण्ड, भेद। तीन प्रकार के पुद्गल। पृथ्वी के तीन आधार। तीन मिथ्यात्व। तीन अक्रियाएं। तीन प्रयोगक्रियाएं। तीन समुदानक्रियाएं। तीन अज्ञानक्रियाएं। तीन अविनय। तीन अज्ञान। तीन धर्म। तीन उपक्रम (दो अपेक्षाओं से)। इसी तरह वैयावच, अनुग्रह, अनुशिष्टि और उपालम्भ के भी तीन तीन भेद हैं। तीन कथा। तीन विनिश्चय। साधु सेवा के फल। (सू० १८३-१९०)

चतुर्थ उद्देश- पडिमाधारी साधु के लिए प्रतिलेखना योग्य तीन उपाश्रय तथा तीन संस्तारक (शय्या)। तीन काल। तीन समय। तीन पुद्गलपरावर्तन। तीन वचन (तीन अपेक्षाओं से)। तीन प्रज्ञापना। तीन सम्यक्-ज्ञानसम्यक्, दर्शनसम्यक्, चारित्र सम्यक्। तीन उपघात। तीन विशुद्धि। तीन आराधना। ज्ञानाराधना के तीन भेद। इसी प्रकार दर्शनाराधना और चारित्राराधना के तीन तीन भेद। तीन संक्लेश। इसी तरह असंक्लेश, अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार के भी तीन तीन भेद हैं। तीन का अतिक्रमण आदि होने पर आलोचना आदि करना चाहिए। तीन प्रकार का प्रायश्चित्त। मेरु के दक्षिण में तीन अकर्म-

भूमियाँ। मेरु के उत्तर में तीन अकर्मभूमियाँ। उत्तर में तीन वास। दक्षिण में तीन वास। उत्तर और दक्षिण में तीन तीन वर्षधर पर्वत। दक्षिण तथा उत्तर में तीन तीन महाद्रह तथा वहाँ रहने वाले देव। दक्षिणी तथा उत्तरी महाद्रह से निकलने वाली नदियाँ तथा उनकी उपनदियाँ। (सू० १६१-१६७)।

एक देश से भूचाल के तीन कारण। सर्वदेश से भूचाल के तीन कारण। किल्विषी देवों के तीन भेद तथा उनके निवास। तीन पल्योपम स्थिति वाले देव तथा देवियाँ। तीन प्रकार का प्रायश्चित्त। तीन अनुद्घातिम। तीन पारंचित। तीन अनवस्थाप्य। दीक्षा, शिक्षा आदि के अयोग्य तीन। सू० (१६८-२०३)।

तीन मांडलिक पर्वत। तीन महातिमहालय। तीन कल्पस्थिति (दो अपेक्षाओं से)। तीन शरीर वाले जीव। तीन गुरुप्रत्यनीक। तीन गतिप्रत्यनीक। तीन समूहप्रत्यनीक। तीन अनुकम्पाप्रत्यनीक। तीन भावप्रत्यनीक। तीन श्रुतप्रत्यनीक। तीन पिता के अंग। तीन माता के अंग। (सू० २०४-२०६)।

साधु के लिए महानिर्जरा के तीन स्थान। श्रावक के लिए महानिर्जरा के तीन स्थान। तीन पुद्गल प्रतिघात। तीन चक्षु। तीन अभिसमागम। तीन ऋद्धि। तीनों ऋद्धियों के दो अपेक्षाओं से तीन तीन भेद। तीन गारव। तीन करण। तीन धर्म। तीन व्यावृत्ति। तीन अन्त। तीन जिन। तीन केवली। तीन अरिहन्त। तीन दुर्गन्धि वाली लेश्याएं। तीन सुगन्धि वाली लेश्याएं।। इसी तरह दुर्गति और सुगति में लेजाने वाली, संक्लिष्ट और असंक्लिष्ट अमनोज्ञ और मनोज्ञ, अविशुद्ध और विशुद्ध, अप्रशस्त और प्रशस्त, शीतरूक्ष और स्निग्धोष्ण तीन तीन लेश्याएं। तीन प्रकार का मरण। तीन प्रकार का बालमरण। तीन प्रकार का पण्डितमरण। तीन प्रकार का बालपण्डितमरण (सू० २१०-२२२)।

दृढ़ श्रद्धा रहित व्यक्ति के लिए तीन स्थान अशुभ होते हैं। निश्चय वाले के लिए हितकर स्थान तीन। प्रत्येक पृथ्वी के चारों ओर तीन वलय। विग्रहगति उत्कृष्ट तीन समयों की होती है। मोहनीय कर्म का क्षय होने पर अरिहन्तों के तीन कर्म एक साथ नष्ट हो जाते हैं। तीन तारों वाले नक्षत्र। धर्मनाथ भगवान् के बाद ३-४ पल्योपम कम तीन सागरोपम बीतने पर शान्तिनाथ भगवान् पैदा हुए। भगवान् महावीर के बाद तीसरे पाट तक केवली हुए। भगवान् मल्लिनाथ और पार्श्वनाथ ने तीन सौ पुरुषों के साथ दीक्षा ली। भगवान् महावीर के शासन में तीन सौ चौदह पूर्वधारी थे। तीन तीर्थङ्कर चक्रवर्ती थे। ग्रैवेयक विमानों के तीन पाथड़े और भेद। पापकर्म के तीन स्थान। तीन प्रदेशों वाले जाव तीन गुण रूक्ष पुद्गल अनन्त हैं। (सूत्र २२३-२३४)

चौथा अध्ययन (चतुःस्थानक)

प्रथम उद्देश– चार अन्त क्रियाएं। चार वृक्ष और उनकी उपमा वाले चार पुरुष (चार अपेक्षाओं से)। पडिमाधारी साधु को कल्पनीय चार भाषाएं। भाषा के चार भेद। चार प्रकार का वस्त्र और उसकी उपमा वाले चार प्रकार के पुरुष। चार श्रुत। पुरुषों के चार भेद। चार वस्त्र और पुरुष। चार कोरम (फल विशेष) और उनकी उपमा वाले पुरुष। चार प्रकार के घुण (धान को थोथा करने वाला जीव) और भिक्षुक। (सू० २३५-२४३)

चार तृणवनस्पतिकाय। चार कारणों से नारकी जीव मनुष्य-लोक में आना चाहता है किन्तु आ नहीं सकता। साधु साध्वी के लिए कल्पनीय वस्त्र चार। चार ध्यान। आर्त तथा रौद्रध्यान के चार चार भेद तथा लक्षण। धर्म तथा शुक्लध्यान के चार चार भेद, लक्षण, आलम्बन, तथा अनुप्रेक्षाएं। देवों की स्थिति तथा संवास। चार कषाय तथा उनके आधार, उत्पत्ति के कारण,

भेद और प्रकार। कर्मबन्ध के चार कारण। चार पडिमाएं (तीन अपेक्षाओं से)। (सू० २४४–२५१)। चार अजीव अस्तिकाय। चार अरूपी अस्तिकाय। चार फल और पुरुष। चार प्रकार का सत्य। चार प्रकार का मृषावाद। चार प्रणिधान। चार सुप्रणिधान। चार दुष्प्रणिधान। चार अपेक्षाओं से चार चार प्रकार के पुरुष। देवेन्द्रों के चार चार लोकपाल। चार प्रकार के देव। चार प्रमाण। चार प्रधान दिशाकुमारियाँ। चार प्रधान विद्युत्कुमारियाँ। चार पल्योपम स्थिति वाले देव। चार प्रकार का संसार। चार प्रकार का दृष्टिवाद। चार प्रकार का प्रायश्चित्त (दो अपेक्षाओं से)। (सूत्र २५२–२६३)

चार प्रकार का काल। चार पुद्गल परिणाम। बाईस तीर्थङ्कर और महाविदेह क्षेत्र में चातुर्याम धर्म। चार दुर्गतियाँ। चार सुगति। चार दुर्गतिवाले। चार सुगतिवाले। केवलियों के क्षीण होने वाले चार कर्म तथा स्थिर रहने वाले चार कर्म। सिद्ध होते समय एक साथ क्षीण होने वाले चार कर्म। हास्योत्पत्ति के चार कारण। चार प्रकार का अन्तर। स्त्री का पुरुष से अन्तर। चार प्रकार का भृत्य (नौकर)। चार प्रकार के पुरुष। (सू० २६४–२७२)

चमर आदि इन्द्रों की अग्रमहिषियाँ (पटरानियाँ)। चार गोरस-विगय। चार स्नेहविगय। चार महाविगय। चार कूटागार और चार पुरुष। चार कूटागारशालाएं तथा स्त्रियाँ। चार प्रकार की अवगाहना। चार अंगबाह्य पन्नत्तियाँ। (सू० २७३–२७७)

(२) उद्देश। चार प्रतिसंलीनता। चार अप्रतिसंलीनता। चार प्रतिसंलीन। चार अप्रतिसंलीन। चार प्रकार के पुरुष (१६ अपेक्षाओं से)। चार प्रकार के पुरुष (१८ अपेक्षाओं से)। चार प्रकार के वृषभ और उनके सदृश पुरुष (७ अपेक्षाओं से)। चार प्रकार के हाथी और उनकी उपमा वाले पुरुष (पाँच अपेक्षाओं से)।

चार विकथाएं। स्त्रीकथा के चार भेद। भक्त कथा के चार भेद। देश कथा के चार भेद। राजकथा के चार भेद। धर्मकथा के चार भेद। फिर प्रत्येक के चार चार भेद। चार प्रकार के पुरुष (तीन अपेक्षाओं से)। चार कारणों से साधु साध्वियों को तत्काल उत्पन्न होने वाले ज्ञान, दर्शन रुक जाते हैं। चार कारणों से उत्पन्न हो जाते हैं। चार महापडवाएं तथा सन्ध्याएं जिन में शास्त्र की सज्झाय वर्जित है। चार लोकस्थिति। चार प्रकार के पुरुष (चार अपेक्षाओं से)। चार प्रकार की गर्हा। (सू० २७८-२८८)।

चार प्रकार के पुरुष। चार मार्ग। सतरह समानताओं से चार चार प्रकार के पुरुष। चार कारणों से साधु साध्वी के साथ संलाप करता हुआ नियम का उल्लंघन नहीं करता। तमस्काय के चार नाम (तीन अपेक्षाओं से)। तमस्काय के द्वारा आवृत चार कल्प। चार प्रकार के पुरुष। चार प्रकार की सेना और उसके समान पुरुष (चार अपेक्षाओं से)। (सू० २८९-२९२)।

चार वक्र अर्थात् टेढी वस्तुएं और उनकी समानता से चार प्रकार की माया तथा फल। चार प्रकार के स्तम्भ तथा मान। चार प्रकार का वस्त्र तथा लोभ। चार प्रकार का संसार। चार प्रकार की आयु। चार प्रकार का भव। चार प्रकार का आहार (दो अपेक्षाओं से)। चार प्रकार का बन्ध। चार प्रकार का उपक्रम, प्रत्येक के चार चार भेद। चार प्रकार का अल्पबहुत्व। चार प्रकार का संक्रम। चार प्रकार का निधत्त। चार प्रकार का निकाचित। (सू० २९३-९६)

चार एक। चार कति। चार सर्व। मानुषोत्तर पर्वत के चार कूट। चार कोडाकोडी सागरोपम स्थिति वाले आरे। चार अकर्मभूमियाँ। चार वृत्तवैताढ्यपर्वत तथा वहाँ रहने वाले देव। चार महाविदेह। चार सौ योजन ऊंचाई तथा चार कोस उद्वेध वाले पर्वत। वक्षस्कार पर्वत। मेरुपर्वत पर चार वन। चार अभिषेक शिलाएं। सभी मेरु

पर्वतों की चूलिका ऊपर से चार योजन विष्कम्भ वाली है। (सू० २६७-३०२)।

जम्बूद्वीप के चार द्वार, उनका विष्कम्भ तथा उन पर रहने वाले देव। अन्तर द्वीप तथा उनमें रहने वाले मनुष्य। पाताल तथा वहाँ रहने वाले देव। आवासपर्वत तथा उन पर रहने वाले देव। लवण समुद्र के चार द्वार, उनका विस्तार तथा वहाँ रहने वाले देव। धातकी खंड द्वीप का चक्रवालविष्कम्भ। जम्बूद्वीप से बाहर चार भरत और चार ऐरवत। नन्दीश्वरद्वीप का विचार। वहाँ के पर्वत, नदियाँ, राजधानियाँ आदि। (सूत्र ३०३-३०७)

चार सत्य। आजीविकों के चार तप। चार संयम। चार त्याग। चार अकिंचनता। (सूत्र ३०८-३१०)।

(३) उद्देश-चार राजियाँ (रेखाएं), उनकी उपमा से चार प्रकार का क्रोध तथा प्रत्येक का फल। चार प्रकार का पानी, उसके समान चार भाव तथा उनका फल। चार प्रकार के पक्षी तथा उन के समान चार प्रकार के पुरुष (पाँच अपेक्षाओं से)। चार प्रकार के वृक्ष और उनके समान चार पुरुष। भार वहने वाले के लिए चार विश्रामस्थान, इसी तरह श्रावक के लिए चार विश्रामस्थान। (सूत्र ३११-३१४)।

चार प्रकार के पुरुष तथा उनके उदाहरण। चार युग्म। चार शूर। चार प्रकार के पुरुष। चार लेश्या वाले जीव। चार यान (चार अपेक्षाओं से), चार युग्म, चार सारथि, चार घोड़े, चार हाथी, चार युग्मचर्या, चार पुष्प तथा इन सब की समानता वाले चार पुरुष। चार प्रकार के पुरुषों के २१ भांगे। चार फल और उनके समान आचार्य। चार पुरुष (१० अपेक्षाओं से)। चार प्रकार के आचार्य (दो अपेक्षाओं से)। चार प्रकार के शिष्य (दो अपेक्षाओं से)। चार प्रकार के निर्ग्रन्थ। चार प्रकार की साध्वियाँ। चार

प्रकार के श्रावक। चार प्रकार की श्राविकाएं। (सूत्र ३१५–३२०)।

चार प्रकार के श्रावक (दो अपेक्षाओं से)। श्रमण भगवान् महावीर के श्रमणोपासकों की अरुणाभ नामक विमान में चार पल्योपम स्थिति है। नया उत्पन्न हुआ देव मनुष्यलोक में आने की इच्छा होने पर भी चार कारणों से नहीं आ सकता और चार कारणों से आ सकता है। चार कारणों से लोक में अन्धकार हो जाता है तथा चार कारणों से प्रकाश होता है, इसी प्रकार दिव्यान्धकार, दिव्योद्योत, दिव्यसन्निपात, दिव्योत्कलिका और देवकहकहा रूप पाँच बोल जानने चाहिएं। चार कारणों से देव मनुष्यलोक में आते हैं। (सूत्र ३२१–३२४)

चार दुःखशय्याएं तथा चार सुखशय्याएं। चार अवाचनीय। चार प्रकार के पुरुष। तेरह अपेक्षाओं से चार प्रकार के पुरुष। चार प्रकार के घोड़े (सात अपेक्षाओं से) तथा उनकी उपमा वाले पुरुष। चार प्रकार के पुरुष। चार लोक समान हैं। चार लोक सभी दिशा तथा विदिशाओं में समान हैं। उर्ध्व और अधोलोक में दो शरीर वाले चार चार जीव। चार प्रकार के पुरुष। चार शय्या पडिमाएं। चार वस्त्र पडिमाएं। चार पात्र पडिमाएं। चार स्थान पडिमाएं। चार शरीर जीव से स्पृष्ट हैं। लोक चार अस्तिकायों से स्पृष्ट है। उत्पन्न होते हुए चार बादरकायों से लोक स्पृष्ट है। चार के प्रदेश तुल्य हैं। चार कायों का शरीर आँखों से नहीं दीखता। चार इन्द्रियाँ पदार्थ को छूकर जानती हैं। चार कारणों से जीव और पुद्गल लोक के बाहर नहीं जा सकते। (सूत्र ३२५–३३७)

चार दृष्टान्त। प्रत्येक के चार भेद। हेतु के चार भेद (तीन अपेक्षाओं से) चार प्रकार का गणित। अधोलोक में अन्धकार करने वाले चार पदार्थ। तिर्छे लोक में प्रकाश करने वाले चार पदार्थ। ऊर्ध्व-

लोक में प्रकाश करने वाले चार पदार्थ। (सूत्र ३३८)
(४) उद्देश– चार प्रसर्पक। चारों गतियों में आहार। चार आशीविष। चार प्रकार की व्याधि। चार प्रकार की चिकित्सा। चार प्रकार के चिकित्सक। तीन अपेक्षाओं से चार चार प्रकार के पुरुष। चार प्रकार के व्रण (दो अपेक्षाओं से) और उनके समान पुरुष। छः प्रकार से चार चार प्रकार के पुरुष। चार प्रकार की वृत्तविकुर्वणा। चार प्रकार के वादी नैरयिक आदि दण्डकों में। (सू० ३३९–४५)

सात अपेक्षाओं से चार प्रकार के मेघ और उनकी उपमा वाले पुरुष, माता पिता तथा राजा। चार प्रकार के मेघ। चार करण्डक और उनके समान आचार्य। दो तरह से चार प्रकार के वृक्ष और तत्समान आचार्य। चार प्रकार के मत्स्य और उनके समान भिक्षुक। तीन अपेक्षाओं से चार प्रकार के गोले और तत्समान पुरुष। चार प्रकार के पत्ते और उनके समान पुरुष। चार प्रकार की चटाइयाँ और तत्समान पुरुष। चार प्रकार के चौपाएं। चार प्रकार के पक्षी। चार प्रकार के क्षुद्र प्राणी। चार प्रकार के पक्षी और उनके समान भिक्षुक। पाँच अपेक्षाओं से चार प्रकार के पुरुष।(सू० ३४६–५२)

सात अपेक्षाओं से चार प्रकार का संवास (मैथुन)। चार अपध्वंस। आसुरी, आभियोगिकी, संमोहनी और कैल्विपिकी प्रवृत्तियों के चार चार कारण। आठ प्रकार से प्रव्रज्या के चार चार भेद। (सू० ३५३–३५५)

चार संज्ञाएं और उनके चार चार कारण। चार काम। चार प्रकार के जल और समुद्र तथा उनके समान पुरुष। चार प्रकार के तैराक। सात अपेक्षाओं से चार चार प्रकार के कुम्भ और उनके समान पुरुष तथा चारित्र। चार उपसर्ग तथा प्रत्येक के चार चार भेद। (सू० ३५६–३६१)

तीन अपेक्षाओं से चार प्रकार के कर्म। चार प्रकार का संघ।

चार प्रकार की बुद्धि। चार प्रकार की मति। चार प्रकार के संसारी जीव। चार प्रकार के सब जीव तीन अपेक्षाओं से। (सू० ३६२-३६५)

चार अपेक्षाओं से चार प्रकार के पुरुष। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च और मनुष्यों की गति तथा आगति। बेन्द्रिय जीवों के अनारम्भ मे चार प्रकार का संयम और आरम्भ में असंयम। सम्यग्दृष्टि नारकी आदि जीवों की चार क्रियाएं। चार कारणों से गुण नष्ट होते हैं और चार कारणों से उद्दीप्त होते हैं। नारकी आदि शरीरोत्पत्ति के चार कारण। (सू० ३६६-३७१)

चार धर्मद्वार। नरक आदि के योग्य कर्म बाँधने के चार चार कारण। चार चार प्रकार के वाद्य, नाट्य, गेय, मल्ल, अलङ्कार और अभिनय। चार वर्णवाले विमान। चार रत्नियों की उत्कृष्ट अवगाहना। (सू० ३७२-३७५)

भावी वर्षा की सूचक चार बातें। चार मानुषीगर्भ। उत्पादपूर्व की चार मूल वस्तुएं। चार प्रकार का काव्य। नारकी जीवों के चार समुद्घात। (सू० ३७६-३८०)

अरिष्टनेमि भगवान् के शासन में चार सौ पूर्वधर थे। भगवान् महावीर के शासन में चार सौ वादियों की सम्पत् थी। अर्द्धचन्द्राकार वाले विमान। पूर्णचन्द्राकार विमान। चार समुद्र प्रत्येक अर्थात् भिन्न भिन्न रस वाले। चार आवर्त। चार तारों वाले नक्षत्र। चार स्थानों से जीव पुद्गलों का चय, उपचय, बन्ध, उदीरणा, वेदना तथा निर्जरा करता है। चार प्रदेशों वाले पुद्गल। (सू० ३८१-३८८)

पंचम स्थानक– पाँच महाव्रत। पाँच अणुव्रत। पाँच वर्ण। पाँच रस। पाँच कामगुण। पाँच आसक्ति, सुगति, दुर्गति आदि के कारण। पाँच पडिमाएं। पाँच स्थावरकाय। पहले पहल अवधिदर्शन उत्पन्न होने पर क्षोभ के पाँच कारण। (सू० ३८९-३९४)

नारकी शरीरों के पाँच वर्ण तथा ५ रस। पाँच शरीर। प्रथम और अन्तिम तीर्थङ्कर के शासन में पाँच दुर्गम तथा दूसरे तीर्थङ्करों के शासन में पाँच सुगम बोल। भगवान् द्वारा कहे हुए आचरणीय पाँच बोल। पाँच महानिर्जरा के कारण। (सू० ३६५-३६७)।

सम्भोगी को विसम्भोगी करने तथा पारंचित प्रायश्चित्त देने के पाँच कारण। गण में विग्रह तथा अविग्रह के पाँच स्थान। पाँच निषद्याएं। पाँच आर्जवस्थान। पाँच ज्योतिषी। पाँच देव। पाँच परिचारणा। असुरेन्द्र तथा बलीन्द्र की पाँच अग्रमहिषियाँ। पाँच चमरेन्द्र, बलीन्द्र, धरणेन्द्र, भूतानन्द नाम के नाग कुमारेन्द्र, वेणु देव नामक सुवर्णेन्द्र, शक्रेन्द्र, ईशानेन्द्र तथा दूसरे इन्द्रों की सेनाएं। पाँच पल्योपम की स्थिति वाले देव। (सू० ३६८-४०५)

पाँच प्रतिघात। पाँच आजीवक। पाँच राजचिह्न। छद्मस्थ तथा केवली द्वारा परिषह सहन करने के पाँच प्रकार। पाँच हेतु तथा अहेतु। केवली के पाँच अनुत्तर। चौदह तीर्थङ्करों के एक एक नक्षत्र में पाँचों कल्याणक। सू० (४०६-४११)

साधु द्वारा पार करने के लिए वर्जित पाँच नदियाँ। ऐसी नदियों को भी पार करने के विशेष पाँच कारण। साधु तथा साध्वी के लिए चतुर्मास में विहार करने के पाँच कारण। पाँच अनुद्घातिक। साधु द्वारा राजा के अन्तःपुर में प्रवेश के पाँच कारण। (सू० ४१२-१५)

पुरुषसंयोग के बिना गर्भधारण के पाँच कारण। साधु साध्वियों के एक ही मकान आदि में ठहरने के पाँच कारण। पाँच आस्रवद्वार। पाँच संवर द्वार। पाँच दण्ड। क्रिया के पाँच भेद। पाँच परिज्ञा। पाँच व्यवहार। संयत मनुष्य के सोने पर पाँच जागृत और जागने पर पाँच सुप्त तथा असंयत मनुष्य के इससे उल्टे। कर्मरज संग्रह तथा विनाश के पाँच कारण। पाँच उपघात। पाँच विशुद्धि। (सू. ४१६-२५)

दुर्लभ बोधि कर्म बाँधने के पाँच कारण। सुलभबोधि के पाँच

कारण। पाँच प्रतिसंलीन। पाँच अप्रतिसंलीन। पाँच संवर। पाँच असंवर। पाँच संयम। पाँच एकेन्द्रिय जीवों का संयम और असंयम। पंचेन्द्रियों की रक्षा से पाँच संयम तथा हिंसा से पाँच असंयम। पाँच असंयम। पाँच तृणवनस्पतिकाय। पाँच आचार। पाँच आचार प्रकल्प। पाँच आरोपणा। पाँच वक्षस्कार पर्वत। पाँच महाहृद। अढ़ाई द्वीप में पाँच क्षेत्र । भगवान ऋषभदेव की अवगाहना पाँच सौ धनुष की। इसी तरह भरतचक्रवर्ती, बाहुबली अनगार, ब्राह्मी और सुन्दरी की भी पाँच पाँच सौ धनुष की अवगाहना। (सू० ४२६-४३५)

जागने के पाँच कारण। साधु द्वारा साध्वी के छूए जाने के पाँच विशेष कारण। आचार्य और उपाध्याय के पाँच अतिशय। पाँच गणापक्रमण। पाँच ऋद्धि वाले मनुष्य। (सू० ४३६-४४०)

(३) उद्देश- पाँच अस्तिकाय। प्रत्येक के पाँच भेद। पाँच गति। पाँच इन्द्रियार्थ। पाँच मुंडित (दो प्रकार से)। तीनों लोकों में पाँच बादर। पाँच बादर तेउकाय। पाँच बादर वायुकाय। पाँच अचित्त वायुकाय। पाँच निर्ग्रन्थ। प्रत्येक के पाँच भेद। पाँच वस्त्र। पाँच रजोहरण। धर्मात्मा के पाँच आलम्बन स्थान। पाँच निधि। पाँच शौच। छद्मस्थ द्वारा पूर्ण रूप से देखने तथा जानने के अयोग्य पाँच बातें। (सू० ४४१-४५०)

पाँच महानरक। पाँच महाविमान। पाँच पुरुष। पाँच मत्स्य। पाँच भिक्षुक। पाँच वनीपक। अचेल पाँच बातों से प्रशंसनीय होता है। पाँच उत्कट। पाँच समितियाँ। पाँच संसारी जीव। एकेन्द्रिय आदि जीवों की पाँच गतागत। पाँच सर्वजीव। उत्कृष्ट पाँच वर्ष की स्थिति वाले धान्य। पाँच संवत्सर। युगसंवत्सर, प्रमाणसंवत्सर और लक्षणसंवत्सर के पाँच पाँच भेद। (सू० ४५१-४६०)

पाँच निर्याणमार्ग। पाँच छेदन। पाँच आनन्तर्य। पाँच अनन्त।

पाँच अनन्तक। पाँच ज्ञान। पाँच ज्ञानावरणीय। पाँच स्वाध्याय। पाँच प्रत्याख्यान। पाँच प्रतिक्रमण। सूत्र वाचन के पाँच प्रयोजन। सूत्र सिखाने के पाँच प्रयोजन। पाँच वर्णों वाले पाँच विमान। पाँच सौ योजन अवगाहना। पाँच रत्नी की उत्कृष्ट अवगाहना। बन्धयोग्य पंचवर्ण पुद्गल। गंगा, सिन्धु, रक्ता और रक्तवती महानदी में मिलने वाली पाँच नदियाँ। कुमारावस्था में दीक्षा लेने वाले पाँच तीर्थङ्कर। चमरचंचा की पाँच सभाएं। इन्द्रस्थान की पाँच सभाएं। पाँच तारों वाले नक्षत्र। बन्ध आदि के योग्य पाँच पुद्गल। (सू० ४६१-४७४)

छठा स्थानक

गण धारण करने वाले के छः गुण। साधु द्वारा साध्वी के ग्रहण, अवलम्बन आदि के छः कारण। साधु साध्वी के एक साथ रात बिताने के छः कारण। छद्मस्थ द्वारा अज्ञेय तथा अद्रष्टव्य छः बातें। छः अशक्य। छः जीवनिकाय। छः तारों वाले ग्रह। छः संसारी जीव। छः सर्वजीव। छः तृण वनस्पतिकाय। छः दुर्लभ। छः इन्द्रियार्थ। छः संवर। छः असंवर। छः सुख। छः प्रायश्चित्त। (सू० ४७५-४८६)

छः मनुष्य। छः ऋद्धिमान् मनुष्य। छः ऋद्धि रहित मनुष्य। छः उत्सर्पिणी। छः अवसर्पिणी। सुषम सुषमा में अवगाहना और आयु। देवकुरु और उत्तरकुरु में अवगाहना तथा आयु। छः संघयन। छः संस्थान। सकषायी के लिए अशुभ तथा अकषायी के लिए शुभ छः बातें। छः जात्यार्य। छः कुलार्य। छः लोकस्थिति। छः दिशाएं। छः आहार करने तथा छोड़ने के स्थान। (सू० ४६०-५००)

उन्मादप्राप्ति के छः कारण। छः प्रमाद। छः प्रमाद प्रतिलेखना। छः अप्रमाद प्रतिलेखना। छः लेश्या। छः अग्रमहिषियाँ। छः पल्योपम की स्थिति। छः दिक्कुमारियाँ। धरणेन्द्र की छः अग्रमहिषियाँ। भूतानन्द आदि की छः अग्रमहिषियाँ। छः हजार सामानिकों वाले

देव। अवग्रह,ईहा,अवाय,धारणा के छः छः भेद। (सू० ५०१–१०)

छः बाह्यतप। छः आभ्यन्तर तप। छः विवाद। छः क्षुद्र प्राणी। छः गोचरी। छः अपक्रान्त महानरक। ब्रह्मलोक में छः पाथड़े। चन्द्र के साथ रहने वाले छः नक्षत्र। अभिचन्द्र कुलकर की अवगाहना। भरत चक्रवर्ती का राज्यकाल। भगवान् पार्श्वनाथ की वादि परिषत्। वासुपूज्य भगवान् छः सौ पुरुषों के साथ दीक्षित हुए। भगवान् चन्द्रप्रभ छः मास तक छद्मस्थ रहे। तेइन्द्रिय जीवों की हिंसा में छः असंयम तथा अहिंसा में छः संयम।(सू० ५११–५२१)

छः अकर्मभूमियाँ। छः वास। छः वर्षधर पर्वत। छः कूट। छः महाद्रह और वहाँ रहने वाले देव। छः महानदियाँ। छः अन्तरनदियाँ। छः अकर्मभूमियाँ। छः ऋतु। न्यूनरात्रि तथा अधिक रात्रि वाले छः पर्व। छः अर्थावग्रह। छः प्रकार का अवधिज्ञान। साधु साध्वियों के लिए नहीं बोलने योग्य छः कुवचन। छः कल्पप्रस्तार। छः कल्पपरिमन्थु। छः कल्पस्थिति। भगवान् महावीर की दीक्षा, केवलज्ञान और मोक्ष बेले (छट्ट भक्त) के बाद हुए। सनत्कुमार तथा माहेन्द्रकल्प में विमान तथा शरीर की अवगाहना।(सू० ५२२–५३२)।

छः भोजन परिणाम। छः विष परिणाम। छः प्रश्न। उत्कृष्ट छः छः मास विरह वाले स्थान। छः प्रकार का आयुबन्ध। छः भाव। छः प्रतिक्रमण। छः तारों वाले नक्षत्र। छः प्रकार से कर्मबन्ध। (सू० ५३३–५४०)।

सप्तम स्थानक

सात गणापक्रमण। सात विभंगज्ञान। सात योनिसंग्रह। सात अंडज आदि की गतागत। आचार्य और उपाध्याय के सात संग्रहस्थान। सात असंग्रहस्थान। सात पिंडैषणाएं। सात पाणैषणाएं। सात अवग्रहप्रतिमाएं। सप्तसप्तिका। सात महाध्ययन।

सात भिक्षुप्रतिमाएं। सात पृथ्वियाँ। सात घनोदधि। सात घन-वात। सात तनुवात। सात आकाशान्तर। सात पृथ्वियों के नाम और गोत्र। सात बादरवनस्पतिकाय। सात संस्थान। सात भयस्थान। छद्मस्थ तथा केवली को पहचानने के सात चिह्न। (सू० ५४१-५५०)

सात मूलगोत्र। प्रत्येक के भेद। सात मूलनय। सात स्वर। सात स्वरस्थान। सात जीवनिःसृत स्वर। सात अजीवनिःसृत स्वर। सात स्वरों के शुभाशुभ लक्षण। सात स्वरों के ग्राम। प्रत्येक ग्राम की सात मूर्छनाएं। सात स्वरों के स्थान, योनि, श्वास, आकार, दोष, गुण, वृत्त, भणितियाँ। कौन कैसा गाता है। स्वरमण्डल। (सू० ५५१-५५३)

सात कायाक्लेश। सात वास। सात वर्षधर पर्वत। सात महा-नदियाँ। धातकीखंड में सात वास, पर्वत और नदियाँ। पुष्करार्द्ध में वास आदि। सात कुलकर तथा उनकी भार्याएं। सात कल्प-वृक्ष। सात दण्ड। चक्रवर्ती के सात सात रत्न। दुषमा तथा सुषमा काल आया हुआ जानने के सात चिह्न। सात संसारी जीव। सात आयुभेद। सात सर्वजीव। (सू० ५५४-५६२)

ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती सात धनुष की अवगाहना और सात हजार वर्ष की आयु प्राप्त कर सातवीं नरक में गए। मल्लिनाथ भगवान् ने छः राजाओं के साथ दीक्षा ली। सात दर्शन। छद्मस्थ वीतराग द्वारा वेदने योग्य सात कर्म प्रकृतियाँ। छद्मस्थ द्वारा अज्ञेय तथा अदर्शनीय सात बातें। भगवान् महावीर की ऊँचाई सात रत्नियाँ। सात विकथाएं। आचार्य तथा उपाध्याय के सात अतिशय। सात संयम। सात असंयम। सात आरम्भ। सात वर्ष, सात हजार वर्ष तथा सात सागरोपम स्थिति वाले देव। सोम और यम की सात सात अग्रमहिषियाँ। सात पल्योपम स्थिति वाले देव। सात सौ, सात हजार देवों वाले विमान। सात सागरोपम स्थिति वाले देव।

सात सौ योजन ऊँचाई वाले विमान। सात रत्नियों की ऊँचाई वाले सात देव। सात द्वीप। सात समुद्र। सात श्रेणियाँ। चमरेन्द्र की सात सेनाएं तथा सात सेनापति। बलीन्द्र, धरणेन्द्र, भूतानन्द आदि इन्द्रों की सात सात सेनाएं, सेनापति और कक्षाएं। (सू० ५६३-५८३)

सात वचनविकल्प। सात विनय। सात मन विनय, सात वचन विनय, सात काय विनय, सात लोकोपचार विनय। सात समुद्घात। सात निह्नव। सात सातावेदनीय का अनुभाव। सात असातावेदनीय का अनुभाव। प्रत्येक दिशा में उदित होने वाले सात नक्षत्र। सात तारों वाले नक्षत्र। पर्वतों के सात कूट। बेइन्द्रिय की सात लाख कुलकोटि। कर्मपुद्गल ग्रहण करने के सात स्थान। सात समादेशिकस्कन्ध। (सू० ५८४-५९३)

आठवाँ स्थानक

एकलविहार पडिमा के आठ स्थान। योनिसंग्रह आठ। कर्म आठ। माया की आलोचना न करने के आठ स्थान। माया की आलोचना के आठ स्थान। माया का स्वरूप तथा आलोचना न करने के आठ फल। आठ संवर। आठ स्पर्श। आठ लोकस्थिति। आठ गणिसम्पदा। आठ महानिधि। आठ समितियाँ। (सू० ५९४-६०३)

आलोचना देने वाले के आठ गुण। आलोचना करने वाले में आठ गुण। आठ प्रायश्चित्त। आठ मदस्थान। आठ अक्रियावादी। आठ महानिमित्त। आठ वचनविभक्ति। छद्मस्थ द्वारा अज्ञेय आठ बातें। आठ आयुर्वेद। शक्रेन्द्र, ईशानेन्द्र तथा वैश्रमण की आठ आठ अग्रमहिषियाँ। आठ महाग्रह। आठ तृणवनस्पतिकायिक। चउरिन्द्रिय जीवों की हिंसा में आठ असंयम तथा अहिंसा में आठ संयम। आठ सूक्ष्म। भरत चक्रवर्ती के साथ आठ सिद्ध। भगवान् पार्श्वनाथ के आठ गणधर। (सू० ६०४-६१७)

आठ दर्शन। काल की आठ उपमाएं। भगवान् नेमिनाथ के शासन में आठवें पाट तक आठ केवली हुए तथा भगवान् के केवली होने पर दो वर्ष बाद आठ सिद्ध हुए। भगवान् महावीर के पास आठ राजाओं ने दीक्षा ली। आठ आहार। आठ कृष्णराजियाँ। आठ लौकान्तिक देव। धर्मास्तिकाय आदि के आठ प्रदेश। भावी उत्सर्पिणी के प्रथम तीर्थङ्कर भगवान् महापद्म के पास आठ राजा दीक्षित होंगे। कृष्ण की आठ अग्रमहिषियाँ। वीर्यपूर्व की आठ वस्तुएं। (सू० ६१८-६२७)

आठ गतियाँ। आठ योजन विस्तार वाले द्वीप। कालोदधि समुद्र का चक्रवाल विष्कम्भ आठ लाख योजन। पुष्करार्द्ध का विष्कम्भ आठ लाख योजन। प्रत्येक चक्रवर्ती का काकिणी रत्न आठ सुवर्ण जितना भारी होता है। मगधदेश का योजन आठ हजार धनुष लम्बा होता है। आठ वक्षस्कार पर्वत। चक्रवर्तिविजय आठ। आठ राजधानियाँ। सीता तथा सीतोदा महानदियों के किनारे होने वाले आठ तीर्थङ्कर। इन नदियों के किनारे होने वाली दूसरी आठ बातें। इसी प्रकार द्वीप, समुद्र, नदियों आदि का वर्णन। (सू० ६२८-६४४)

अट्ठमी भिक्खुपडिमा। आठ प्रकार के संसारी जीव। सर्वजीव आठ। संयम आठ। पृथ्वियाँ आठ। प्रयत्न करने योग्य आठ बातें। आठ सौ योजन ऊँचाई वाले विमान। भगवान् अरिष्टनेमि की वादिपरिषत्। आठ केवलिसमुद्घात। भगवान् महावीर के शासन में अनुत्तरोपपातिक देव बनने वाले आठ साधु। आठ वाणव्यन्तर। आठ चैत्यवृक्ष। रत्नप्रभा से सूर्य की ऊँचाई। नक्षत्र। जम्बूद्वीप के आठ द्वार। पुरुषवेदनीय, यशस्कीर्ति और उच्चगोत्र की स्थिति। तेइन्द्रिय जीवों की कुलकोटि। बँधने वाले कर्मपुद्गल। (सू० ६४५-६६०)

नवाँ स्थानक

संभोगी को विसंभोगी करने के नौ स्थान। नौ ब्रह्मचर्य। नौ

ब्रह्मचर्य गुप्तियाँ। अभिनन्दन भगवान् से सुमतिनाथ भगवान् नौ कोडाकोडी सागरोपम बाद हुए। नौ सद्भाव पदार्थ या तत्त्व। नौ संसारी जीव। पृथ्वी आदि की गतागत। नौ सर्वजीव। रोगोत्पत्ति के नौ कारण। दर्शनावरणीय कर्म नौ। चन्द्र के साथ योग करने वाले नौ नक्षत्र। रत्नप्रभा से तारामण्डल की ऊँचाई। नव योजन मत्स्य। बलदेव और वासुदेवों के माता पिता। चक्रवर्ती की महा निधियाँ। (सू० ६६१-६७३)

नौ विगय। नौ स्रोतपरिस्रव। नौ पुण्य। नौ पापस्थान। नौ पापश्रुत। नौ नैपुणिक वस्तु। भगवान् महावीर के नौ गण। नव कोटिपरिशुद्ध भिक्षा। ईशानेन्द्र की अग्रमहिषियाँ और उनकी स्थिति। नौ देवनिकाय। नवग्रैवेयक। ग्रैवेयक विमानों के नाम। नौ आयुपरिणाम। नवनवमिका भिक्खुपडिमा। नौ प्रायश्चित्त। नौ कूट। पार्श्वनाथ भगवान् की अवगाहना नौ रत्नियाँ। भगवान् महावीर के शासन में तीर्थङ्कर गोत्र बाँधने वाले नव जीव। आगामी उत्सर्पिणी में होने वाले नव तीर्थङ्कर तथा उनकी कथाएं। (सू० ६७४-६८३)

चन्द्र के पीछे होने वाले नौ नक्षत्र। नव सौ योजन ऊँचाई वाले विमान। विमलवाहन कुलकर की ऊँचाई नव सौ धनुष। इस आरे के नव कोडाकोडी सागरोपम बीतने पर भगवान् ऋषभ देव हुए। नव सौ योजन वाले द्वीप। शुक्र महाग्रह की नव वीथियाँ। नौ नोकषायवेदनीय। नव कुलकोटि वाले जीव। नव प्रकार से कर्मबन्ध। नव प्रादेशिक स्कन्ध। (सू० ६८४-७०३)

दसवाँ स्थानक

दस लोकस्थिति। दस शब्द। दस अतीत और अनागत इन्द्रियार्थ। पुद्गल चलन के दस कारण। क्रोधोत्पत्ति के दस कारण। दस संयम। दस असंयम। दस संवर। दस असंवर। अहंकार के

की दस लाख कुलकोटि। उरपरिसर्प की दस लाख कुलकोटि। दस प्रकार के पुद्गलों का कर्मबन्ध। दस प्रादेशिक स्कन्ध।

(४) समवायांग सूत्र

तीसरे अङ्ग के पश्चात् चौथा अङ्ग समवायांग सूत्र है। इसमें जीव, अजीव और जीवाजीव का निरूपण तथा अपना सिद्धान्त परसिद्धान्त तथा स्वपरसिद्धान्त का कथन है। इसमें एक से लेकर एक सौ उनसठ तक भेद वाले बोल एक एक भेद की वृद्धि करते हुए क्रमशः बताए हैं। इसमें एक अध्ययन, एक श्रुतस्कन्ध, एक उद्देश तथा एक ही समुद्देश है। समवायांग सूत्र में एक लाख चौवालीस हजार पद हैं।

नोट—पदों की यह संख्या नन्दीसूत्र के अनुसार है। पूरे समवायांग सूत्र में इतने पद थे। आज कल जितना उपलब्ध है, उस में पदों की संख्या इतनी नहीं है।

समवायांग सूत्र में नीचे लिखे विषय हैं—

१ आत्मा, १ अनात्मा, १ दण्ड, १ अदण्ड, १ क्रिया, १ अक्रिया, १ लोक, १ अलोक, १ धर्म, १ अधर्म, १ पुण्य, १ पाप, १ बन्ध, १ मोक्ष, १ आश्रव, १ संवर, १ वेदना और १ निर्जरा।

जम्बूद्वीप, अप्रतिष्ठान नरक, पालक विमान और सर्वार्थसिद्ध की लम्बाई चौड़ाई एक लाख योजन है। आर्द्रा, चित्रा और स्वाति नक्षत्र एक तारे वाले हैं। एक पल्योपम या एक सागरोपम की स्थिति वाले देव, मनुष्य, तिर्यञ्च तथा नारकी जीव।

२ दण्ड, २ राशि, २ बन्धन, २ तारों वाले नक्षत्र, २ पल्योपम या २ सागरोपम की आयु वाले जीव।

३ दण्ड, ३ गुप्तियाँ, ३ शल्य, ३ गारव, ३ विराधना, ३ तारों वाले नक्षत्र, ३ पल्योपम या ३ सागरोपम की आयु वाले जीव।

४ कषाय, ४ ध्यान, ४ विकथा, ४ संज्ञा, ४ बन्ध, ४ कास का एक योजन, ४ तारों वाले नक्षत्र, ४ पल्योपम या ४ सागरोपम की स्थिति वाले देव तथा नारक।

५ क्रियाएं,५ महाव्रत,५ कामगुण,५ आश्रवद्वार,५ संवरद्वार, ५ निर्जरास्थान, ५ समिति, ५ अस्तिकाय, ५ तारों वाले नक्षत्र, ५ पल्योपम या ५ सागरोपम की आयु वाले देव तथा नारकी जीव।

६ लेश्या, ६ जीवनिकाय, ६ बाह्य तप, ६ आभ्यन्तर तप, ६ समुद्घात, ६ अर्थावग्रह, ६ तारों वाले नक्षत्र, ६ पल्योपम तथा ६ सागरोपम की आयु वाले देव और नारकी जीव।

७ भयस्थान, ७ समुद्घात, भगवान् महावीर की ऊँचाई ७ रत्नि प्रमाण, ७ वर्षधर पर्वत, ७ तारों वाले नक्षत्र, ७ पल्योपम तथा ७ सागरोपम की स्थिति वाले देव और नारकी जीव।

८ मदस्थान, ८ प्रवचनमाता, ८ योजन की ऊँचाई वाले पदार्थ, केवली समुद्घात के ८ समयों का क्रम, भगवान् पार्श्वनाथ के ८ गण और ८ गणधर, ८ नक्षत्रों से चन्द्र का योग होता है, ८ पल्योपम तथा ८ सागरोपम की स्थिति वाले देव तथा नारकी जीव।

९ ब्रह्मचर्य गुप्ति, ९ ब्रह्मचर्य अगुप्ति, ९ ब्रह्मचर्य, पार्श्वनाथ भगवान् की अवगाहना ९ रत्नि प्रमाण, अभिजित् नक्षत्र का कुछ अधिक ९ मुहूर्त तक चन्द्र के साथ योग होता है, अभिजित् आदि नौ नक्षत्रों का उत्तर में चन्द्र के साथ योग होता है, रत्नप्रभा पृथ्वी से ९ सौ योजन की ऊँचाई में तारामण्डल है, जम्बूद्वीप में ९ योजन के मत्स्य (मच्छ) हैं, जम्बूद्वीप के विजय नामक द्वार की प्रत्येक दिशा में नौ नौ मभले महल हैं, सुधर्मा सभा की ऊँचाई ९ योजन है। दर्शनावरणीय कर्म की ९ प्रकृतियाँ, ९ पल्योपम तथा ९ सागरोपम की स्थिति वाले देव और नारकी जीव।

१० श्रमणधर्म, १० चित्तसमाधि स्थान, १० हजार योजन

मन्दर पर्वत का विष्कम्भ, १० धनुष की अवगाहना वाले शलाका पुरुष, १० नक्षत्र ज्ञान की वृद्धि करने वाले, १० कल्पवृक्ष, १० पल्योपम तथा १० सागरोपम की स्थिति वाले देव और नारकी जीव।

श्रावक की ११ पडिमाएं, लोक के अन्तिम भाग से ज्योतिषी चक्र ११११ योजन है, मेरुपर्वत से ११२१ योजन की दूरी पर ज्योतिश्चक्र घूमता रहता है, भगवान् महावीर के ११ गणधर, मूला नक्षत्र ११ तारों वाला होता है, नीचे वाले ग्रैवेयक देवों में १११ विमान होते हैं, मेरुपर्वत का विष्कम्भ ऊपर ऊपर अंगुल के ग्यारहवें भाग कम होता जाता है अर्थात् एक अंगुल की ऊंचाई पर अंगुल का ग्यारहवाँ भाग मोटाई कम हो जाती है, ११ अंगुल के वाद एक अंगुल, ११ योजन के वाद एक योजन इसी परिमाण से विष्कम्भ (मोटाई) घटती जाती है, ग्यारह पल्योपम तथा सागरोपम की स्थिति वाले देव और नारकी जीव।

१२ भिक्खुपडिमा, १२ सम्भोग, १२ कीर्तिकर्म (वन्दना), विजया नामक राजधानी की लम्बाई चौड़ाई १२ हजार योजन है, राम बलदेव की आयु १२ हजार वर्ष, मन्दराचल पर्वत की चूलिका मूल में १२ हजार योजन है, जम्बूद्वीप की वेदिका मूल में १२ योजन विस्तार वाली है, सब से छोटी रात और छोटा दिन १२ मुहूर्त के होते हैं, सर्वार्थसिद्ध नामक महाविमान के ऊपर वाले विमानों से ईषत्प्राग्भारा नाम की पृथ्वी १२ योजन ऊपर है। ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी के १२ नाम, १२ पल्योपम तथा १२ सागरोपम की स्थिति वाले देव और नारकी जीव।

१३ क्रियास्थान, सौधर्म और ईशान कल्प देवलोक में १३ पाथड़े हैं, सौधर्म देवलोक में सौधर्मावतंसक नामक विमान साढ़े बारह लाख योजन विस्तार वाला है, ईशान देवलोक का ईशानावतंसक भी इतने ही विस्तार वाला है, जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों

की कुलकोटियों के साढ़े बारह लाख उत्पत्तिस्थान हैं, बारहवें प्राणायु नाम के पूर्व में तेरह वस्तु (अध्याय) हैं, गर्भज पंचेन्द्रियों के १३ योग हैं, सूर्य के विमान का घेरा एक योजन का $\frac{४८}{६१}$ वाँ भाग है। १३ पल्योपम तथा १३ सागरोपम स्थिति वाले देव तथा नारकी जीव।

१४ भूतग्राम, १४ पूर्व, दूसरे पूर्व में १४ वस्तु हैं; भगवान् महावीर के पास उत्कृष्ट १४ हजार साधु थे, १४ गुणठाणे, भरत और ऐरावत की जीवा १४४०१$\frac{६}{१९}$ योजन है, चक्रवर्ती के १४ रत्न, लवण समुद्र में गिरने वाली १४ महानदियाँ, १४ पल्योपम और १४ सागरोपम की स्थिति वालें देव तथा नारकी जीव।

१५ परमाधामी, नमिनाथ भगवान् की अवगाहना १५ धनुष, ध्रुवराहु कृष्णपक्ष में एकम से लेकर प्रतिदिन चन्द्र का १५वाँ भाग ढकता जाता है, शुक्लपक्ष में १५वाँ भाग प्रतिदिन छोड़ता जाता है, छः नक्षत्रों का चन्द्र के साथ १५ मुहूर्त योग होता है, चैत्र और आश्विन मास में १५ मुहूर्त का दिन होता है, चैत्र में १५ मुहूर्त की रात्रि होती है, विद्यानुप्रवाद नामक पूर्व में १५ वस्तु हैं, मनुष्यों में १५ योग, १५ पल्योपम अथवा १५ सागरोपम की स्थिति वाले देव और नारकी जीव।

सूयगडांग सूत्र प्रथम श्रुतस्कन्ध के १६ अध्ययन, १६ कषाय, मेरु पर्वत के १६ नाम, पार्श्वनाथ भगवान् के उत्कृष्ट १६ हजार साधु थे, सातवें आत्मप्रवाद नामक पूर्व में १६ वस्तु है, चमरेन्द्र और बलीन्द्र के विमानों का विस्तार १६ हजार योजन है, लवण समुद्र की उत्सेध परिवृद्धि १६ हजार योजन है, १६ पल्योपम तथा १६ सागरोपम की आयु वाले देव तथा नारकी जीव।

१७ प्रकार का असंयम, १७ प्रकार का संयम, मानुपोत्तर पर्वत की ऊँचाई १७२१ योजन है, सभी वेलंधर और अनुवेलंधर नाग

मन्दर पर्वत का विष्कम्भ, १० धनुष की अवगाहना वाले शलाका पुरुष, १० नक्षत्र ज्ञान की वृद्धि करने वाले, १० कल्पवृक्ष, १० पल्योपम तथा १० सागरोपम की स्थिति वाले देव और नारकी जीव।

श्रावक की ११ पडिमाएं, लोक के अन्तिम भाग से ज्योतिषी चक्र ११११ योजन है, मेरुपर्वत से ११२१ योजन की दूरी पर ज्योतिश्चक्र घूमता रहता है, भगवान् महावीर के ११ गणधर, मूला नक्षत्र ११ तारों वाला होता है, नीचे वाले ग्रैवेयक देवों में १११ विमान होते हैं, मेरुपर्वत का विष्कम्भ ऊपर ऊपर अंगुल के ग्यारहवें भाग कम होता जाता है अर्थात् एक अंगुल की ऊंचाई पर अंगुल का ग्यारहवाँ भाग मोटाई कम हो जाती है, ११ अंगुल के वाद एक अंगुल, ११ योजन के वाद एक योजन इसी परिमाण से विष्कम्भ (मोटाई) घटती जाती है, ग्यारह पल्योपम तथा सागरोपम की स्थिति वाले देव और नारकी जीव।

१२ भिक्खुपडिमा, १२ सम्भोग, १२ कीर्तिकर्म (वन्दना), विजया नामक राजधानी की लम्वाई चौड़ाई १२ हजार योजन है, राम वलदेव की आयु १२ हजार वर्ष, मन्दराचल पर्वत की चूलिका मूल में १२ हजार योजन है, जम्बूद्वीप की वेदिका मूल में १२ योजन विस्तार वाली है, सव से छोटी रात और छोटा दिन १२ मुहूर्त के होते हैं, सर्वार्थसिद्ध नामक महाविमान के ऊपर वाले विमानों से ईषत्प्राग्भारा नाम की पृथ्वी १२ योजन ऊपर है। ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी के १२ नाम, १२ पल्योपम तथा १२ सागरोपम की स्थित्ति वाले देव और नारकी जीव।

१३ क्रियास्थान, सौधर्म और ईशान कल्प देवलोक में १३ पाथड़े हैं, सौधर्म देवलोक में सौधर्मावतंसक नामक विमान साढ़े वारह लाख योजन विस्तार वाला है, ईशान देवलोक का ईशानावतंसक भी इतने ही विस्तार वाला है, जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों

की कुलकोटियों के साढ़े बारह लाख उत्पत्तिस्थान हैं, बारहवें प्राणायु नाम के पूर्व में तेरह वस्तु (अध्याय) हैं, गर्भज पंचेन्द्रियों के १३ योग हैं, सूर्य के विमान का घेरा एक योजन का $\frac{४८}{६१}$ वाँ भाग है। १३ पल्योपम तथा १३ सागरोपम स्थिति वाले देव तथा नारकी जीव।

१४ भूतग्राम, १४ पूर्व, दूसरे पूर्व में १४ वस्तु हैं; भगवान् महावीर के पास उत्कृष्ट १४ हजार साधु थे, १४ गुणठाणे, भरत और ऐरावत की जीवा १४४०१$\frac{६}{१९}$ योजन है, चक्रवर्ती के १४ रत्न, लवण समुद्र में गिरने वाली १४ महानदियाँ, १४ पल्योपम और १४ सागरोपम की स्थिति वाले देव तथा नारकी जीव।

१५ परमाधामी, नमिनाथ भगवान् की अवगाहना १५ धनुष, ध्रुवराहु कृष्णपक्ष में एकम से लेकर प्रतिदिन चन्द्र का १५वाँ भाग ढकता जाता है, शुक्लपक्ष में १५वाँ भाग प्रतिदिन छोड़ता जाता है, छः नक्षत्रों का चन्द्र के साथ १५ मुहूर्त योग होता है, चैत्र और आश्विन मास में १५ मुहूर्त का दिन होता है, चैत्र में १५ मुहूर्त की रात्रि होती है, विद्यानुप्रवाद नामक पूर्व में १५ वस्तु हैं, मनुष्यों में १५ योग, १५ पल्योपम अथवा १५ सागरोपम की स्थिति वाले देव और नारकी जीव।

सूयगडांग सूत्र प्रथम श्रुतस्कन्ध के १६ अध्ययन, १६ कषाय, मेरु पर्वत के १६ नाम, पार्श्वनाथ भगवान् के उत्कृष्ट १६ हजार साधु थे, सातवें आत्मप्रवाद नामक पूर्व में १६ वस्तु है, चमरेन्द्र और बलीन्द्र के विमानों का विस्तार १६ हजार योजन है, लवण समुद्र की उत्सेध परिवृद्धि १६ हजार योजन है, १६ पल्योपम तथा १६ सागरोपम की आयु वाले देव तथा नारकी जीव।

१७ प्रकार का असंयम, १७ प्रकार का संयम, मानुषोत्तर पर्वत की ऊँचाई १७२१ योजन है, सभी वेलंधर और अनुवेलंधर नाग

राजाओं के आवासपर्वतों की ऊँचाई १७२१ योजन है, रत्नप्रभा पृथ्वी से कुछ अधिक १७००० योजन ऊँचा उड़ने के बाद चारण लब्धि वालों की तिरछी गति होती है, चमर असुरेन्द्र का तिगिंच्छ कूट नामक उत्पात पर्वत १७२१ योजन ऊँचा है, बलि असुरेन्द्र का रुचकेन्द्र नामक उत्पात पर्वत १७२१ योजन ऊँचा है, १७ प्रकार का मरण, सूक्ष्मसम्पराय गुणस्थान में वर्तमान जीव १७ कर्मप्रकृतियाँ बाँधता है, १७ पल्योपम तथा १७ सागरोपम की स्थिति वाले देव तथा नारकी जीव।

१८ ब्रह्मचर्य, अरिष्टनेमि भगवान् की उत्कृष्ट १८ हजार साधु सम्पदा, साधु साध्वियों के लिए सेवन अथवा परिहार करने योग्य १८ स्थान, आचाराङ्ग के १८ हजार पद हैं, १८ लिपियाँ, चौथे पूर्व अस्तिनास्तिप्रवाद में १८ वस्तु हैं, धूमप्रभा पृथ्वी की मोटाई एक लाख अठारह हजार योजन है, पौष मास में उत्कृष्ट १८ मुहूर्त की रात तथा आषाढ मास में उत्कृष्ट १८ मुहूर्त का दिन होता है, १८ पल्योपम या १८ सागरोपम की आयु वाले देव और नारकी जीव।

ज्ञातासूत्र के १९ अध्ययन, जम्बूद्वीप में सूर्य की उत्कृष्ट ऊँचाई १९०० योजन है, शुक्र महाग्रह १९ नक्षत्रों के साथ उदित तथा अस्त होता है, जम्बूद्वीप की कलाएं योजन का १९ वाँ भाग हैं, १९ तीर्थङ्करों ने गृहस्थावास तथा राज्य भोग कर दीक्षा ली, १९ पल्योपम तथा १९ सागरोपम आयु वाले देव तथा नारकी जीव।

२० असमाधिस्थान, मुनिसुव्रत भगवान् की अवगाहना २० धनुष, घनोदधि का बाहल्य २० हजार योजन, प्राणत नामक इन्द्र के २० हजार सामानिक देव हैं, नपुंसकवेदनीय कर्म की बन्ध-स्थिति २० कोडाकोडी सागरोपम है, नवें पच्चक्खाण पूर्व में २० वस्तु हैं, उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी का एक कालचक्र २० कोडा-

कोडी सागरोपम का होता है, २० पल्योपम और २० सागरोपम की स्थिति वाले देव और नारकी जीव।

२१ शबल दोष, आठवें निवृत्ति बादर नामक गुणस्थान में रहने वाले जीव में विद्यमान मोहनीय की २१ प्रकृतियाँ, २१ हजार वर्ष वाले आरे, २१ पल्योपम तथा २१ सागरोपम की स्थिति वाले देव तथा नारकी जीव।

२२ परिषह, दृष्टिवाद नामक १२ वें अंग में भिन्न भिन्न विषयों को लेकर बाईस बाईस सूत्र, २२ प्रकार का पुद्गलपरिणाम, २२ पल्योपम तथा २२ सागरोपम स्थिति वाले देव तथा नारकी जीव।

२३ सूयगडांग सूत्र के कुल अध्ययन, २३ तीर्थङ्करों को सूर्योदय के समय केवलज्ञान हुआ, २३ तीर्थङ्कर पूर्वभव में ग्यारह अंगों के ज्ञान वाले थे, २३ तीर्थङ्कर पूर्वभव में माण्डलिक राजा थे, २३ पल्योपम अथवा सागरोपम की आयु वाले देव तथा नारकी जीव।

२४ देवाधिदेव तीर्थङ्कर, जम्बूद्वीप में लघुहिमवान् और शिखरी पर्वतों की ज्या २४९३२$\frac{१}{३८}$ योजन झाझेरी है, २४ देवलोक इन्द्रों से युक्त हैं, सूर्य के उत्तरायण में होने पर पोरिसी २४ अंगुल की होती है, गंगा और सिन्धु महानदियों का पाट कुछ अधिक २४ कोस विस्तार वाला है, रक्ता और रक्तवती महानदियों का विस्तार भी कुछ अधिक २४ कोस है, २४ पल्योपम तथा २४ सागरोपम स्थिति वाले देव तथा नारकी जीव।

२५ भावनाएं, मल्लिनाथ भगवान् की अवगाहना २५ धनुष थी, दीर्घ वैताढ्य पर्वतों की ऊँचाई २५ योजन है और वे २५ गव्यूति (दो कोस) पृथ्वी में धंसे हुए हैं, दूसरी पृथ्वी शर्कराप्रभा में २५ लाख नरकावास हैं, चूलिका सहित आचारांग सूत्र के २५ अध्ययन हैं, संक्लिष्ट परिणाम वाला अपर्याप्त मिथ्यादृष्टि विकलेन्द्रिय नामकर्म की २५ प्रकृतियाँ बाँधता है, गंगा, सिन्धु, रक्ता और

रक्तवती नदियाँ २५ कोस की चौड़ाई वाली होकर अपने अपने कुण्ड में गिरती हैं, लोकबिन्दुसार नामक चौदहवें पूर्व में २५ वस्तु हैं, २५ सागरोपम तथा पल्योपम स्थिति वाले देव तथा नारकी जीव।

दशाश्रुतस्कन्ध, व्यवहार और बृहत्कल्प सूत्र तीनों के मिला कर २६ उद्देशे हैं, अभवि जीवों के मोहनीय कर्म की २६ प्रकृतियों का बन्ध होता है, २६ सागरोपम तथा २६ पल्योपम स्थिति वाले देव तथा नारकी जीव।

साधु के २७ गुण, जम्बूद्वीप में अभिजित् नक्षत्र को छोड़ कर बाकी २७ नक्षत्रों से व्यवहार होता है, नक्षत्र मास सत्ताईस दिन रात का होता है, सौधर्म और ईशानकल्प में विमानों का बाहल्य २७ सौ योजन है, वेदकसम्यक्त्व से रहित जीव के मोहनीय कर्म की २७ प्रकृतियाँ सत्ता में रहती हैं, श्रावण शुक्ला सप्तमी को पौरुषी २७ अंगुल की होती है, २७ पल्योपम तथा सागरोपम आयु वाले देव और नारकी जीव।

२८ आचारकल्प, भव्यजीवों के मोहनीय कर्म की २८ प्रकृतियाँ सत्ता में रहती हैं, मतिज्ञान के २८ भेद, ईशानकल्प में २८ लाख विमान हैं, देवगति का बन्ध होते समय जीव नाम कर्म की २८ प्रकृतियाँ बाँधता है, नारक जीव भी २८ प्रकृतियाँ बाँधते हैं, २८ पल्योपम या सागरोपम स्थिति वाले देव तथा नारकी जीव।

२९ पापश्रुतप्रसंग, २९ दिन रात वाले महीने, चन्द्रमास में २९ दिन होते हैं, शुभपरिणामों वाला सम्यग्दृष्टि भव्य जीव २९ प्रकृतियाँ बाँधता है, २९ पल्योपम तथा २९ सागरोपम स्थिति वाले देव तथा नारकी जीव।

३० महामोहनीय स्थान, मंडितपुत्र स्थविर ३० वर्ष की दीक्षा-पर्याय पाल कर सिद्ध हुए, ३० मुहूर्त का एक अहोरात्र होता है, ३० मुहूर्तों के ३० नाम, अरनाथ भगवान् की अवगाहना ३०

धनुष की थी, सहस्रार देवलोक के इन्द्र के अधीन ३० हजार सामानिक देव हैं, भगवान् पार्श्वनाथ और महावीर ३० वर्ष तक गृहस्थावास में रह कर साधु हुए, रत्नप्रभा में ३० लाख नरकावास हैं, ३० पल्योपम तथा सागरोपम की स्थिति वाले देव तथा नारकी जीव।

सिद्धों के ३१ गुण, मन्दराचल पर्वत का घेरा पृथ्वी पर कुछ कम ३१६२३ योजन है, सूर्य का सर्व बाह्यमण्डल में चक्षुःस्पर्श गति प्रमाण ३१८३१ $\frac{३०}{६०}$ योजन है, अभिवर्द्धित मास कुछ अधिक ३१ रात दिन का होता है, आदित्य मास कुछ कम ३१ रातदिन का होता है, ३१ पल्योपम तथा सागरोपम की स्थिति वाले देव तथा नारकी जीव।

३२ योगसंग्रह, ३२ देवेन्द्र, कुन्थुनाथ भगवान् के शासन में ३२ सौ ३२ केवली थे, ३२ प्रकार का नाट्य, ३२ पल्योपम अथवा ३२ सागरोपम की आयु वाले देव तथा नारकी जीव।

३३ आशातनाएं, चमरचंचा राजधानी में ३३ मझले महल हैं। महाविदेह क्षेत्र की चौड़ाई ३३ हजार योजन, तृतीय बाह्यमंडल में सूर्य का चक्षुःस्पर्श गति प्रमाण कुछ कम ३३ हजार योजन, ३३ पल्योपम तथा सागरोपम की स्थिति वाले देव तथा नारकी जीव।

३४ अतिशय, ३४ चक्रवर्ती विजय, जम्बूद्वीप में ३४ दीर्घवैताढ्य, जम्बूद्वीप में उत्कृष्ट ३४ तीर्थङ्कर होते हैं, चमरेन्द्र के अधीन ३४ लाख भवन हैं, पहली, पाँचवीं, छठी और सातवीं पृथ्वियों में ३४ लाख नरकावास हैं।

वाणी के ३५ अतिशय, कुन्थुनाथ भगवान् और नन्दन बलदेव की अवगाहना ३५ धनुष, सौधर्मकल्प के सौधर्मावतंसक नामक विमान में ३५ सभाएं हैं, दूसरी और चौथी नारकी में ३५ लाख नरकावास हैं।

३६ अध्ययन उत्तराध्ययन के, सुधर्मा सभा की ऊँचाई ३६ योजन, भगवान् महावीर के शासन में ३६ हजार आर्याएं, चैत्र

और आसोज मास में ३६ अंगुल की पोरिसी होती है।

कुन्थुनाथ भगवान् के ३७ गण और गणधर, हैमवत और हैरण्यवत पर्वतों की जीवा कुछ कम ३७६७४ $\frac{१६}{१९}$ योजन है, विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित राजधानियों के प्राकार ३७ योजन ऊँचे हैं, क्षुद्रविमान प्रविभक्ति के प्रथम वर्ग में ३७ उद्देशे हैं, कार्तिक कृष्ण सप्तमी को पोरिसी की छाया ३७ अंगुल होती है।

पार्श्वनाथ भगवान् की ३८ हजार आर्याएं थीं, हैमवत और हैरण्यवत की जीवाओं का धनु.पृष्ठ कुछ कम ३८७४० $\frac{१०}{१९}$ योजन है, अस्ताचल पर्वत का दूसरा कांड ३८ हजार योजन ऊँचा है, क्षुद्रविमान प्रविभक्ति के दूसरे वर्ग में ३८ उद्देशे हैं।

नमिनाथ भगवान् के शासन में ३९ सौ अवधिज्ञानी थे, ३९ कुलपर्वत, दूसरी, चौथी, पाँचवीं, छठी और सातवीं नरक में ३९ लाख नरकावास हैं, ज्ञानावरणीय, मोहनीय, गोत्र और आयुष्य इन चार कर्मों की ३९ प्रकृतियाँ हैं।

अरिष्टनेमि भगवान् के ४० हजार आर्यिकाएं थीं, मन्दर पर्वत की चूलिका ४० योजन ऊँची है, शान्तिनाथ भगवान् की अवगाहना ४० धनुष है, भूतानन्द नामक नागराज के राज्य में ४० लाख भवनपतियों के आवास हैं, क्षुद्रविमान प्रविभक्ति के तीसरे वर्ग में ४० उद्देशे हैं, फाल्गुन और कार्तिक की पूर्णिमा को ४० अंगुल की पोरिसी होती है, महाशुक्र कल्प में ४० हजार विमान हैं।

नमिनाथ भगवान् के शासन में ४१ हजार आर्यिकाएं थीं, चार पृथ्वियों में ४१ लाख नरकावास हैं, महालयाविमान प्रविभक्ति के पहले वर्ग में ४१ उद्देशे हैं।

श्रमण भगवान् महावीर कुछ अधिक ४२ वर्ष दीक्षापर्याय पाल कर सिद्ध हुए, जम्बूद्वीप की बाह्य परिधि से गोस्तूभ नामक पर्वत का ४२ हजार योजन अन्तर है, कालोद समुद्र में ४२ चन्द्र

तथा ४२ सूर्य हैं, सम्मूर्च्छिम भुजपरिसर्प की उत्कृष्ट आयु ४२ हजार वर्ष है, नामकर्म की ४२ प्रकृतियाँ, लवण समुद्र में ४२ हजार नाग देवता जम्बूद्वीप के अन्दर समुद्र के पानी की वेला को रोकते हैं। महालयाविमान प्रविभक्ति के दूसरे वर्ग में ४२ उद्देशे हैं, अवसर्पिणी के पाँचवें और छठे आरे मिला कर तथा उत्सर्पिणी के पहले और दूसरे आरे मिला कर ४२ हजार वर्ष के हैं।

कर्मविपाक के ४३ अध्ययन, पहली, दूसरी और पाँचवीं पृथ्वी में ४३ लाख नरकावास हैं, जम्बूद्वीप के बाहर दूसरे गोस्तूभ पर्वत का अन्तर ४३ हजार योजन है, महालयाविमान प्रविभक्ति के तीसरे वर्ग में ४३ उद्देशे हैं।

४४ अध्ययन ऋषिभाषित हैं, विमलनाथ भगवान् के पाटानुपाट ४४ पुरुष सिद्ध हुए, धरणेन्द्र के अधीन ४४ लाख भवनपतियों के आवास हैं, महालयाविमान प्रविभक्ति के चौथे वर्ग में ४४ उद्देशे हैं।

मनुष्य क्षेत्र, सीमन्तक नरक तथा ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी की ४५ लाख योजन लम्बाई चौड़ाई है, धर्मनाथ भगवान् की अवगाहना ४५ धनुष थी, मेरु पर्वत के चारों तरफ लवण समुद्र की परिधि का ४५ हजार योजन अन्तर है, छः नक्षत्रों का चन्द्र के साथ ४५ मुहूर्त योग होता है, महालयाविमान प्रविभक्ति के पाँचवें वर्ग में ४५ उद्देशे हैं।

दृष्टिवाद में ४६ मातृकापद हैं, ब्राह्मी लिपि में ४६ अक्षर हैं, प्रभञ्जन नामक वायुकुमारेन्द्र के अधीन ४६ लाख भवनावास हैं, सूर्य का सर्वाभ्यन्तर मण्डलचार होने पर ४७२६३ $\frac{21}{60}$ योजन चक्षुःस्पर्शगति परिमाण होता है, अग्निभूति अनगार ने ४७ वर्ष गृहस्थ में रह कर दीक्षा ली।

प्रत्येक चक्रवर्ती के राज्य में ४८ हजार पत्तन होते हैं, धर्मनाथ

भगवान् के ४८ गण तथा ४८ गणधर थे, सूर्यमण्डल का विष्कम्भ $\frac{४८}{६१}$ योजन है।

सप्तसप्तमिका भिक्षुपडिमा ४९ दिन में पूरी होती है, देवकुरु और उत्तरकुरु में युगलिए ४९ दिन में जवान हो जाते हैं, तेइन्द्रिय जीवों की उत्कृष्ट स्थिति ४९ दिन है।

मुनिसुव्रत भगवान् के ५० हजार आर्यिकाएं थीं, अनन्तनाथ भगवान् तथा पुरुषोत्तम वासुदेव की अवगाहना ५० धनुष थी, दीर्घ वैताढ्य पर्वतों की चौड़ाई मूल में ५० योजन है, लान्तक कल्प में ५० हजार विमान हैं, ५० योजन लम्बी गुफाएं, कंचन पर्वतों के शिखर ५० योजन चौड़े हैं।

आचारांग प्रथम श्रुतस्कन्ध में ५१ उद्देशे हैं, चमरेन्द्र और बलीन्द्र की सभा में ५१ सौ खम्भे हैं, सुप्रभ बलदेव ५१ लाख वर्षों की परमायु प्राप्त करके सिद्ध हुए, दर्शनावरणीय और नाम कर्म की मिला कर ५१ उत्तरप्रकृतियाँ हैं।

मोहनीय कर्म के ५२ नाम, गोस्तूभ नामक पर्वत का अन्तर ५२ हजार योजन, ज्ञानावरणीय, नाम और अन्तराय की मिला कर ५२ प्रकृतियाँ हैं, सौधर्म, सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्प में मिला कर ५२ लाख विमान हैं।

देवकुरु और उत्तरकुरु की जीवाएं कुछ अधिक ५३ हजार योजन लम्बी हैं, महाहिमवंत और रुक्मी पर्वत की जीवाएं ५३९३१ $\frac{६}{१९}$ योजन लम्बी हैं, भगवान् महावीर के शासन में एक साल की दीक्षा पर्याय वाले ५३ अनगार पाँच अनुत्तर विमानों में उत्पन्न हुए, सम्मूर्च्छिम उरपरिसर्प की उत्कृष्ट स्थिति ५३ हजार वर्ष है।

५४ उत्तम पुरुष, अरिष्टनेमि भगवान् ५४ वर्ष छद्मस्थ पर्याय का पालन कर सिद्ध हुए, भगवान् महावीर ने एक ही आसन से बैठे हुए ५४ प्रश्नों का उत्तर दिया, अनन्तनाथ भगवान् के ५४ गणधर थे।

मल्लिनाथ भगवान् ५५ हजार वर्ष की परमायु प्राप्त कर सिद्ध हुए, मन्दराचल से विजय आदि द्वारों का अन्तर ५५ हजार योजन है, भगवान् महावीर अन्तिमरात्रि में ५५ अध्ययन वाला सुखविपाक और ५५ अध्ययन वाला दुःखविपाक पाठ कर सिद्ध हुए, पहली और दूसरी नरक में ५५ लाख नरकावास, दर्शनावरणीय, नाम और आयु तीन कर्मों की उत्तरप्रकृतियाँ ५५ हैं।

जम्बूद्वीप में ५६ नक्षत्र, विमलनाथ भगवान् के ५६ गणधर, आचारांग की चूलिका छोड़ कर तीन गणिपिटकों में ५७ अध्ययन हैं, गोस्तूभ पर्वत का अन्तर ५७ हजार योजन, मल्लिनाथ भगवान् के शासन में ५७ सौ मनःपर्ययज्ञानी थे, महाहिमवंत और रुक्मी पर्वतों की जीवा का धनुःपृष्ठ ५७२०३$\frac{10}{19}$ योजन है।

पहली, दूसरी और पाँचवीं पृथ्वियों में ५८ लाख नरकावास हैं, ज्ञानावरणीय, वेदनीय, आयुष्य, नाम और अन्तराय इन पाँचों कर्मों की ५८ उत्तरप्रकृतियाँ हैं, गोस्तूभ पर्वत का अन्तर ५८ हजार योजन है।

चन्द्र संवत्सर की एक ऋतु ५९ रात दिन की है, सम्भवनाथ भगवान् ५९ लाख पूर्व गृहस्थ में रह कर दीक्षित हुए, मल्लिनाथ भगवान् के शासन में ५९ सौ अवधिज्ञानी थे।

६० मुहूर्तों में सूर्य एक मण्डल पूरा करता है, लवण समुद्र में ६० हजार नाग देवता समुद्रवेला की रक्षा करते हैं, विमलनाथ भगवान् की अवगाहना ६० धनुष थी, बलीन्द्र तथा ब्रह्म देवेन्द्र के ६० हजार सामानिक देव हैं, सौधर्म और ईशान दोनों कल्पों में ६० लाख विमान हैं।

पाँच साल में ६१ ऋतुमास होते हैं, मेरु पर्वत का पहला कांड ६१ हजार योजन ऊँचा है, चन्द्रमण्डल और सूर्यमण्डल का समांश योजन का ६१वाँ भाग है।

पाँच साल के युग में ६२ पूर्णिमाएं तथा ६२ अमावस्याएं होती हैं, वासुपूज्य भगवान् के ६२ गणधर थे, शुक्लपक्ष का चन्द्र प्रतिदिन ६२वॉ भाग बढ़ता है और कृष्णपक्ष का घटता है, सौधर्म और ईशान कल्पों के पहले पाथड़े में पहली आवली की प्रत्येक दिशा में ६२ विमान हैं, सभी वैमानिकों में ६२ पाथड़े हैं।

भगवान् ऋषभनाथ ६३ लाख पूर्व गृहस्थ रहे, हरिवास और रम्यकवास में युगलिए ६३ दिन में जवान हो जाते हैं, निषध और नीलवान पर्वत पर ६३ सूर्योदय के स्थान हैं।

अट्ठमिया भिक्खुपडिमा ६४ दिनरात तथा १८८ भिक्षाओं में पूरी होती है, असुरकुमारों के ६४ लाख आवास हैं, चमरेन्द्र के ६४ हजार सामानिक देव हैं, प्रत्येक दधिमुख पर्वत ६४ हजार योजन चौड़ाई तथा ऊँचाई वाला है, सौधर्म, ईशान और ब्रह्मलोक तीन कल्पों में मिला कर ६४ लाख विमान हैं। प्रत्येक चक्रवर्ती के पास ६४ लड़ियों वाला महामूल्य मोतियों का हार होता है।

जम्बूद्वीप में ६५ सूर्य मण्डल, मौर्यपुत्र नामक सातवें गणधर ६५ वर्ष गृहस्थ रहे, सौधर्मावतंसक विमान की प्रत्येक बाहु पर ६५ मझले भौम (महल) हैं।

मनुष्य क्षेत्र के दक्षिणार्द्ध और उत्तरार्द्ध रूप प्रत्येक भाग में ६६ सूर्य तथा ६६ चन्द्र हैं। श्रेयांसनाथ भगवान् के ६६ गणधर थे। मतिज्ञान की उत्कृष्ट स्थिति ६६ सागरोपम है।

पाँच साल में ६७ नक्षत्रमास होते हैं, हैमवत और हैरण्यवत की प्रत्येक बाहु ६७५५ $\frac{३}{१९}$ योजन लम्बी है, मेरु पर्वत का अन्तर ६७ हजार योजन है। सभी नक्षत्रों की क्षेत्रसीमा का समांश योजन का ६७ वाँ भाग है।

धातकी खंड द्वीप में ६८ चक्रवर्तीविजय, ६८ राजधानियाँ हैं, ६८ अरिहन्त, ६८ चक्रवर्ती, ६८ बलदेव और ६८ वासुदेव होते

हैं। पुष्करार्द्ध में भी ये सभी अड़सठ अड़सठ होते हैं।

समय क्षेत्र में ६९ वर्ष और ६९ वर्षधर पर्वत हैं। मंदर पर्वत से गौतमद्वीप का अन्तर ६९ हजार योजन है। मोहनीय को छोड़ बाकी सात कर्मों की ६९ उत्तरप्रकृतियाँ हैं।

भगवान् महावीर के शासन में पचास दिन बीतने पर ७० रात-दिन का वर्षाकल्प होता है। भगवान् पार्श्वनाथ ७० वर्ष श्रमण पर्याय में रह कर सिद्ध हुए। वासुपूज्य भगवान् की अवगाहना ७० धनुष की थी। मोहनीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति ७० कोड़ाकोड़ी सागरोपम है। माहेन्द्र देवलोक में ७० हजार सामानिक देव हैं।

चौथे चन्द्र संवत्सर की हेमन्त ऋतु में ७१ दिन रात बीतने पर सूर्य आवृत्ति करता है। तीसरे वीर्यप्रवाद नामक पूर्व में ७१ प्राभृत हैं। अजितनाथ भगवान् ७१ लाख पूर्व गृहस्थ रह कर दीक्षित हुए। सगर चक्रवर्ती भी ७१ लाख पूर्व गृहस्थ रह कर दीक्षित हुए।

सुवर्णकुमारों के ७२ लाख आवास हैं। लवण समुद्र की बाह्य वेला को ७२ हजार नाग देवता धारण करते हैं। भगवान् महावीर की आयु ७२ वर्ष की थी। स्थविर अचलभ्राता की आयु भी ७२ वर्ष की थी। पुष्करार्द्ध में ७२ चन्द्र हैं। प्रत्येक चक्रवर्ती के पास ७२ हजार पुर होते हैं। ७२ कलाएं। सम्मूर्च्छिम खेचर पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चों की उत्कृष्ट आयु ७२ हजार वर्ष की होती है।

हरिवास और रम्यकवास पर्वतों की जीवाएं ७३९०१ $\frac{६७}{१९} + \frac{१}{२}$ योजन लम्बी हैं। विजय नामक बलदेव ७३ लाख वर्ष की आयु पूरी करके सिद्ध हुए।

अग्निभूति गणधर ७४ वर्ष की आयु पूरी करके सिद्ध हुए। सीता और सीतोदा महानदियों की लम्बाई ७४ सौ योजन है। छठी को छोड़ कर बाकी छः पृथ्वियों में मिला कर ७४ लाख नरकावास हैं।

सुविधिनाथ भगवान् के शासन में ७५ सौ केवली हुए। शीतलनाथ भगवान् ७५ हजार पूर्व गृहस्थ रह कर दीक्षित हुए। शान्तिनाथ भगवान् ७५ हजार वर्ष गृहस्थ रह कर दीक्षित हुए।

विद्युत्कुमारों के ७६ लाख आवास हैं।

भरत चक्रवर्ती ७७ लाख पूर्व युवराज रहने के बाद सिंहासन पर बैठे। अंगवंशीय ७७ राजाओं ने दीक्षा ली। गर्दतोय और तुषित दोनों के मिला कर ७७ हजार देवों का परिवार है। एक मुहूर्त में ७७ लव होते हैं।

शक्र देवेन्द्र का वैश्रमण नामक दिक्पाल ७८ लाख सुवर्णकुमार और द्वीपकुमारों के आवासों पर शासन करता है। अकम्पित महास्थविर ७८ वर्ष की आयु पूरी करके सिद्ध हुए। सूर्य के दक्षिणायन में जाने पर दिन मुहूर्त का $\frac{६१}{७८}$ वां भाग प्रतिदिन घटता जाता है और उतनी ही रात्रि बढ़ती जाती है। उत्तरायण होने पर उतना ही दिन बढ़ता और रात्रि घटती है।

वडवामुख, केतुक, यूप और ईश्वर नामक पातालकलश और रत्नप्रभा के अन्तिम भाग का अन्तर ७९ हजार योजन है। छठी पृथ्वी के मध्यभाग से घनोदधि का अन्तिम भाग ७९ हजार योजन है। जम्बूद्वीप के द्वारों में परस्पर कुछ अधिक ७९ हजार योजन का अन्तर है।

श्रेयांसनाथ भगवान्, त्रिपृष्ठ वासुदेव और अचल बलदेव की अवगाहना ८० धनुष थी। त्रिपृष्ठ वासुदेव ने ८० लाख वर्ष राज्य किया। रत्नप्रभा के अब्बहुल काण्ड की मोटाई ८० हजार योजन है। ईशानदेवेन्द्र के ८० हजार सामानिक देव हैं। जम्बूद्वीप में १८० योजन अवगाहन कर सूर्य उत्तर दिशा में उदित होता है।

नवनवमिका नामक भिक्षुपडिमा ८१ दिन में पूरी होती है। कुन्थुनाथ भगवान् के समय ८१ सौ मनःपर्यवज्ञानी थे। भगवती

सूत्र में ८१ शतक हैं।

सूर्य १८२ मण्डलों को दो बार संक्रमण करता हुआ गति करता है। श्रमण भगवान् महावीर का ८२ दिन के बाद दूसरे गर्भ में संक्रमण हुआ था। महाहिमवन्त और रुक्मी पर्वत के ऊपरी भागों से सौगन्धिक कांड के नीचे तक ८२ सौ योजन का अन्तर है।

भगवान् महावीर का ८३ वीं रात्रि में गर्भपरिवर्तन हुआ। शीतलनाथ भगवान् के ८३ गण और ८३ गणधर थे। मंडितपुत्र स्थविर ८३ वर्ष की आयु पूरी करके सिद्ध हुए। ऋषभदेव भगवान् ८३ लाख पूर्व गृहस्थ रह कर दीक्षित हुए। भरत चक्रवर्ती ८३ लाख पूर्व गृहस्थ रह कर सर्वज्ञ हुए।

कुल नरकावास ८४ लाख हैं। ऋषभदेव भगवान्, ब्राह्मी और सुन्दरी की पूर्ण आयु ८४ लाख पूर्व थी। श्रेयांसनाथ भगवान् ८४ लाख वर्ष की पूर्णायु प्राप्त कर सिद्ध हुए। त्रिपृष्ठ वासुदेव ८४ लाख वर्ष आयु पूरी करके अप्रतिष्ठान नरक में उत्पन्न हुआ। शक्र देवेन्द्र के ८४ हजार सामानिक देव हैं। जम्बूद्वीप से बाहर के मेरु पर्वतों की ऊँचाई ८४ हजार योजन है। सभी अंजन पर्वतों की ऊँचाई ८४ हजार योजन है। हरिवास और रम्यकवास की जीवाओं का धनुःपृष्ठ भाग ८४०१६ $\frac{4}{19}$ योजन है। पङ्कबहुल काण्ड की मोटाई ८४ हजार योजन है। भगवती सूत्र में ८४ हजार पद हैं। ८४ लाख नागकुमारों के आवास। ८४ लाख प्रकीर्णक ग्रन्थों की संख्या है। ८४ लाख जीवों की योनियाँ हैं। पूर्वाङ्ग से लेकर शीर्षप्रहेलिका संख्या तक उत्तरोत्तर संख्या ८४ गुणी होती जाती है। भगवान् ऋषभदेव के पास ८४ हजार साधु थे। सब विमान ८४९७०२३ हैं।

आचारांग सूत्र के कुल ८५ उद्देशे हैं। धातकीखंड और पुष्करार्द्ध के मेरु पर्वतों का तथा रुचक नाम के मांडलिक पर्वत का सर्वाङ्ग

८५ हजार योजन है। नन्दन वन के अधोभाग से सौगन्धिक कांड का अधोभाग ८५ सौ योजन अन्तर पर है।

सुविधिनाथ भगवान् के ८६ गणधर थे। सुपार्श्वनाथ भगवान् के ८६०० वादी थे। दूसरी पृथ्वी के मध्यभाग से घनोदधि का अधोभाग ८६००० योजन अन्तर पर है।

मेरु पर्वत के पूर्वीय अन्त से गोस्तूभ आवास पर्वत का पश्चिमी अन्त ८७००० योजन अन्तर पर है, इसी तरह मेरु पर्वत के दक्षिणी अन्त से उदकभास नामक पर्वत का उत्तरी अन्त, मेरु पर्वत के पश्चिमी अन्त से शंख नामक पर्वत का पूर्वीय अन्त, मेरु के उत्तरी अन्त से उदकसीम पर्वत का दक्षिणी अन्त ८७००० योजन अन्तर पर है। ज्ञानावरणीय और अन्तराय को छोड़ कर बाकी छः कर्मों की उत्तरप्रकृतियाँ मिला कर ८७ हैं। महाहिमवंत कूट और रुक्मि-कूट के ऊपरी भाग से सौगन्धिक काण्ड का अधोभाग ८७०० योजन है।

प्रत्येक चन्द्र और सूर्य के ८८ महाग्रहों का परिवार है। दृष्टि-वाद के ८८ सूत्र हैं। मेरु के पूर्वीय अन्त से गोस्तूभ का पूर्वीय अन्त ८८ हजार योजन है। इसी तरह चारों दिशाओं में समझना चाहिए। दक्षिणायन में आया हुआ सूर्य ४४ वें मंडल में मुहूर्त का $\frac{६१}{८८}$ भाग दिन को कम कर देता है और उतनी ही रात को बढ़ा देता है। उत्तरायण में आने पर उतना ही दिन को बढ़ा देता है और रात को घटा देता है।

भगवान् ऋषभदेव सुषमदुषमा आरे के और भगवान् महावीर दुषमसुषमा आरे के ८९ पक्ष बाकी रहने पर सिद्ध हुए। हरिषेण चक्रवर्ती ने ८९०० वर्ष राज्य किया। भगवान् शान्तिनाथ के अधीन ८९००० आर्याएं थीं।

शीतलनाथ भगवान् की अवगाहना ९० धनुष की थी। अजित-

नाथ और शान्तिनाथ भगवान् के ९० गणधर थे। स्वयंभू वासुदेव ९० वर्ष तक देश विजय करते रहे। सभी गोल वैताढ्य पर्वतों के ऊपरी शिखर से लेकर सौगन्धिक काण्ड का अधोभाग ९००० योजन अन्तर पर है।

दूसरे की वैयावृत्य करने की ९१ पडिमाएं हैं। कालोदधि समुद्र की परिधि कुछ अधिक ९१ लाख योजन है। कुन्थुनाथ भगवान् के साथ ९१०० अवधिज्ञानी थे। आयु और गोत्र कर्म को छोड़ कर बाकी छः कर्मों की कुल ९१ उत्तरप्रकृतियाँ हैं।

९२ पडिमाएं, स्थविर इन्द्रभूति ९२ वर्ष की पूर्णायु प्राप्त कर सिद्ध हुए। मेरु पर्वत के मध्यभाग से गोस्तूभ आदि चारों आवास पर्वतों का ९२००० योजन अन्तर है।

चन्द्रप्रभ स्वामी के ९३ गण तथा ९३ गणधर थे। शान्तिनाथ भगवान् के पास ९३ सौ पूर्वधर थे। सूर्य के ९३ वें मण्डल में प्रवेश करते तथा निकलते समय दिन और रात बराबर होते हैं।

निषध और नीलवान् पर्वतों की जीवाएं ९४१५६ $\frac{२}{१९}$ योजन लम्बी हैं। अजितनाथ भगवान् के ९४०० अवधिज्ञानी थे।

सुपार्श्वनाथ भगवान् के ९५ गण तथा ९५ गणधर थे। जम्बूद्वीप की सीमा से ९५००० योजन लवण समुद्र में चार महापाताल-कलश हैं। लवणसमुद्र के प्रत्येक ओर ९५ प्रदेशों के बाद एक प्रदेश ऊँचाई कम होती जाती है। कुंथुनाथ भगवान् ९५००० वर्ष आयु पाल कर सिद्ध हुए। स्थविर मौर्यपुत्र ९५ वर्ष की आयु प्राप्त करके सिद्ध हुए।

प्रत्येक चक्रवर्ती के ९६ करोड़ गाँव होते हैं। वायुकुमारों के कुल ९६ लाख आवास हैं। कोस आदि नापने के लिए व्यावहारिक दंड ९६ अंगुल का होता है। इसी तरह धनुष, नालिका (लाठी), जूआ, मूसल आदि भी ९६ अंगुल के होते हैं। सूर्य के सर्वा-

भ्यन्तर मण्डल में होने पर पहले मुहूर्त की छाया ९६ अंगुल होती है।

मेरु पर्वत के पश्चिमी अन्त से गोस्तूभ पर्वत का पश्चिमी अन्त ९७ हजार योजन है। इसी प्रकार चारों दिशाओं में अन्तर जानना चाहिए। आठों कर्मों की ९७ उत्तरप्रकृतियाँ हैं। हरिषेण चक्रवर्ती कुछ कम ९७ वर्ष गृहस्थावास में रह कर दीक्षित हुए।

नन्दन वन के ऊपरी अन्त से पण्डक वन का अधोभाग ९८ हजार योजन दूर है। मेरु पर्वत के पश्चिमी अन्त से गोस्तूभ का पूर्वीय अन्त ९८ हजार योजन अन्तर पर है। इसी प्रकार चारों दिशाओं में जानना चाहिए। दक्षिण भरत का धनुःपृष्ठ कुछ कम ९८ सौ योजन है। दक्षिणायन के ४९ वें मण्डल में रहा हुआ सूर्य मुहूर्त का $\frac{६१}{९८}$ भाग दिन को घटा देता है और रात को बढ़ा देता है। उत्तरायण में उतना ही दिन को घटा तथा रात को बढ़ा देता है। रेवती से लेकर ज्येष्ठा तक नक्षत्रों के कुल ९८ तारे हैं।

मेरु पर्वत ९९ हजार योजन ऊँचा है। नन्दन वन के पूर्वीय अन्त से उसका पश्चिमी अन्त ९९ सौ योजन है। इसी प्रकार दक्षिणी अन्त से उत्तरी अन्त ९९ सौ योजन है। उत्तर में पहले सूर्य मण्डल की ९९ हजार योजन भाभेरी लम्बाई चौड़ाई है। दूसरा और तीसरा सूर्य-मण्डल ९९ हजार योजन लम्बा चौड़ा है। रत्नप्रभा पृथ्वी के अंजन नामक कांड के नीचे के चरमान्त से वाणव्यन्तर देवों के ऊपर के चरमान्त का ९९ सौ योजन अन्तर है।

दशदशमिका नाम भिक्खुपडिमा १०० दिन में पूरी होती है। शतभिषा नक्षत्र के १०० तारे हैं। सुविधिनाथ भगवान् की अवगाहना १०० धनुष की थी। पार्श्वनाथ भगवान् १०० वर्ष की पूर्णायु प्राप्त कर सिद्ध हुए। स्थविर आर्यसुधर्मा भी १०० वर्ष की पूर्णायु प्राप्त कर सिद्ध हुए। प्रत्येक दीर्घ वैताढ्य पर्वत की ऊँचाई १०० कोस है। प्रत्येक चुल्लहिमवान्, शिखरी और वर्षधर पर्वत १००

योजन ऊँचा तथा १०० कोस उद्वेध वाला है। सभी कांचन पर्वत १०० योजन ऊँचे, १०० कोस उद्वेध वाले तथा मूल में १०० योजन विष्कम्भ वाले हैं।

भगवान् चन्द्रप्रभ की १५० धनुष की अवगाहना थी। आरण कल्प में १५० विमान हैं। अच्युतकल्प में भी १५० विमान हैं।

सुपार्श्वनाथ भगवान् की अवगाहना २०० धनुष है। प्रत्येक महाहिमवान्, रुक्मी और वर्षधर पर्वत २०० योजन ऊँचा है तथा २०० कोस उद्वेध वाला है। जम्बूद्वीप में २०० कांचन पर्वत हैं।

भगवान् पद्मप्रभ की अवगाहना २५० धनुष की थी। असुर-कुमारों के मुख्य प्रासाद २५० योजन ऊँचे हैं।

सुमतिनाथ भगवान् की अवगाहना ३०० धनुष की थी। अरिष्ट-नेमि भगवान् ३०० वर्ष गृहस्थावास में रह कर दीक्षित हुए। वैमानिक देवों के विमानों का प्राकार ३०० योजन ऊँचा है। भगवान् महावीर के पास ३०० चौदह पूर्वधारी थे। पाँच सौ धनुष अवगाहना वाले चरम शरीरी जीव की मोक्ष में कुछ अधिक ३०० धनुष अवगाहना रह जाती है।

पार्श्वनाथ भगवान् के पास ३५० चौदह पूर्वधारी थे। अभि-नंदन भगवान् की अवगाहना ३५० धनुष की थी।

संभवनाथ भगवान् की अवगाहना ४०० धनुष की थी। प्रत्येक निषध तथा नीलवान् पर्वत ४०० योजन ऊँचा और ४०० कोस उद्वेध वाला है। आनत और प्राणत कल्पों में मिला कर ४०० विमान हैं। श्रमण भगवान् महावीर के पास ४०० वादी थे।

अजितनाथ भगवान् और सगर चक्रवर्ती की अवगाहना ४५० धनुष की थी। सभी वक्षस्कार पर्वत सीता आदि नदियों के किनारे तथा मेरु पर्वत के समीप ५०० योजन ऊँचे तथा ५०० कोस उद्वेध वाले हैं। सभी वर्षधर पर्वत ५०० योजन ऊँचे तथा ५०० योजन

मूल में विष्कंभ वाले हैं। भगवान् ऋषभदेव और भरत चक्रवर्ती की अवगाहना ५०० धनुष थी। सौमनस, गंधमादन, विद्युत्प्रभ और मालवन्त पर्वतों की ऊँचाई ५०० योजन तथा उद्वेध ५०० कोस है। हरि और हरिसह को छोड़ कर बाकी सभी वक्षस्कार पर्वतों के कूट ५०० योजन ऊँचे और ५०० योजन लम्बाई चौड़ाई वाले हैं। बलकूट को छोड़ कर सभी नंदनकूट भी ५०० योजन ऊँचे तथा मूल में ५०० योजन लम्बाई चौड़ाई वाले हैं। सौधर्म और ईशानकल्प में प्रत्येक विमान ५०० योजन ऊँचा है।

सनत्कुमार और माहेन्द्रकल्प के विमान ६०० योजन ऊँचे हैं। चुल्लहिमवान् पर्वत के ऊपरी अन्त से नीचे समतल ६०० योजन अन्तर पर है, इसी तरह शिखरीकूट में भी जानना चाहिए। पार्श्वनाथ भगवान् के पास ६०० वादिसम्पदा थी। अभिचन्द्र कुलकर की अवगाहना ६०० धनुष की थी। वासुपूज्य भगवान् ६०० पुरुषों के साथ दीक्षित हुए।

ब्रह्म और लान्तक कल्पों में विमानों की ऊँचाई ७०० योजन है, श्रमण भगवान् महावीर के पास ७०० जिन तथा ७०० वैक्रियलब्धिधारी मुनि थे, अरिष्टनेमि भगवान् ७०० वर्ष की केवलिपर्याय पाल कर सिद्ध हुए, महाहिमवंतकूट के ऊपरी अन्त से महाहिमवंत वर्षधर पर्वत का सम भूमितल ७०० योजन अन्तर पर है, रुक्मिकूट भी इसी प्रकार जानना चाहिए।

महाशुक्र और सहस्रार कल्प में विमान ८०० योजन ऊँचे हैं, रत्नप्रभा के पहले काण्ड में ८०० योजन तक वाणव्यन्तरों के भूमिग्रह हैं, भगवान् महावीर के पास ८०० व्यक्ति अनुत्तरोववाई देवों में उत्पन्न होने वाले थे। रत्नप्रभा से ८०० योजन की ऊँचाई पर सूर्य की गति होती है। अरिष्टनेमि भगवान् के पास ८०० वादिसम्पदा थी।

आनत, प्राणत, आरण और अच्युत कल्पों में विमान ९०० योजन ऊँचे हैं। निषधकूट के ऊपरी शिखर से निषध वर्षधर का समतल भूभाग ९०० योजन है। इसी तरह नीलवंत कूट का जानना चाहिए। विमलवाहन कुलकर की ऊँचाई ९०० धनुष की थी। रत्नप्रभा के समतल भाग से तारामण्डल ९०० योजन ऊँचा है। निषध और नीलवंत के ऊपरी शिखर से रत्नप्रभा के पहले काण्ड का मध्य भाग ९०० योजन अन्तर पर है।

ग्रैवेयक विमानों की ऊँचाई १००० योजन है। यमक पर्वतों की ऊँचाई १००० योजन तथा उद्वेध १००० कोस है। मूल में लम्बाई चौड़ाई १००० योजन है। चित्र और विचित्र कूट भी इसी तरह समझने चाहिएं। प्रत्येक वर्तुल वैताढ्य पर्वत की ऊँचाई १००० योजन, उद्वेध १००० कोस तथा मूल में लम्बाई चौड़ाई १००० योजन है। वक्षस्कार कूटों को छोड़ कर सभी हरि और हरिसह कूट १००० योजन ऊँचे तथा मूल में १००० योजन विष्कम्भ वाले हैं। नन्दन कूट को छोड़ कर सभी बलकूट भी इसी तरह जानने चाहिएं। अरिष्टनेमि भगवान् १००० वर्ष की पूर्णायु प्राप्त कर सिद्ध हुए। पार्श्वनाथ भगवान् के पास १००० केवली थे। पार्श्वनाथ भगवान् के १००० शिष्य सिद्ध हुए। पद्म द्रह और पुण्डरीक द्रह १००० योजन विस्तार वाले हैं।

अनुत्तरोववाई देवों के विमान ११०० योजन ऊँचे हैं। पार्श्वनाथ भगवान् के पास ११०० वैक्रिय लब्धिधारी थे।

महापद्म और महापुंडरीक द्रह २००० योजन विस्तार वाले हैं।

रत्नप्रभा में वज्रकाण्ड के ऊपरी भाग से लोहिताक्ष काण्ड का अधोभाग ३००० योजन है।

तिगिच्छ और केसरी द्रह ४००० योजन विस्तार वाले हैं।

मेरु का मध्य भाग रुचक नाभि से प्रत्येक दिशा में ५०००

योजन अन्तर पर है।

सहस्रार कल्प में ६००० विमान हैं।

रत्नप्रभा पृथ्वी में रत्नकाण्ड के ऊपरी अन्त से पुलक काण्ड का अधोभाग ७००० योजन अन्तर पर है।

हरिवास और रम्यकवासों का विस्तार कुछ अधिक ८००० योजन है।

दक्षिणार्द्ध भरतक्षेत्र की जीवा ९००० योजन लम्बी है।

मेरु पर्वत पृथ्वी पर १०००० विष्कम्भ वाला है।

लवणसमुद्र का चक्राकार विष्कम्भ २ लाख योजन है।

पार्श्वनाथ भगवान् के पास ३ लाख २७ हजार उत्कृष्ट श्राविका-सम्पद् थी।

धातकीखण्ड द्वीप का गोल घेरा ४ लाख योजन है।

लवणसमुद्र के पूर्वी अन्त से पश्चिमी अन्त का अन्तर ५ लाख योजन है।

भरत चक्रवर्ती ६ लाख पूर्व राज्य करने के बाद साधु हुए।

जम्बूद्वीप की पूर्वीय वेदिका के अन्त से धातकीखण्ड का पश्चिमी अन्त ७ लाख योजन अन्तर पर है।

माहेन्द्रकल्प में ८ लाख विमान हैं।

अजितनाथ भगवान् के पास कुछ अधिक ९ हजार अवधि-ज्ञानी थे।

पुरुषसिंह वासुदेव दस लाख वर्ष की पूर्णायु प्राप्त कर पाँचवीं नरक में उत्पन्न हुए।

भगवान् महावीर छठे पूर्वभव में पोट्टिल अनगार के रूप में एक करोड़ वर्ष की साधुपर्याय पाल कर सहस्रार कल्प के सर्वार्थसिद्ध विमान में उत्पन्न हुए।

ऋषभदेव भगवान् और महावीर भगवान् के बीच एक कोडा-

कोडी सागरोपम का अन्तर है।

१२ गणिपिटक अर्थात् १२ अङ्ग और उनके विषयों का निरूपण। दृष्टिवाद के विवेचन में १४ पूर्वों का वर्णन।

दो राशियाँ तथा उनके भेद। सात नरक तथा देवों का वर्णन। भवनपति आदि देवों के आवास, नरकों के दुःख, अवगाहना, स्थिति आदि का निरूपण।

पाँच शरीर। प्रत्येक शरीर के भेद तथा अवगाहना। अवधिज्ञान के भेद। नरकों में वेदना। छः लेश्याएं। नारकी जीवों का आहार।

आयुबन्ध के छः भेद। सभी गतियों का विरहकाल।

छः संघयण। नारकी, तिर्यञ्च और देवों के संघयण। छः संठाण। नारकी आदि के संठाण। तीन वेद। चारों गतियों में वेद।

गत उत्सर्पिणी के ७ कुलकर। गत अवसर्पिणी के १० कुलकर। वर्तमान अवसर्पिणी के ७ कुलकर। सात वर्तमान कुलकरों की भार्याएं। वर्तमान अवसर्पिणी के २४ तीर्थङ्करों के पिता। २४ तीर्थङ्करों की माताएं। २४ तीर्थङ्कर। इनके पूर्वभव के नाम। तीर्थङ्करों की २४ पालकियाँ तथा उनका वर्णन। तीर्थङ्करों के निष्क्रमण (संसारत्याग) का वर्णन। तीर्थङ्करों की पहली भिक्षाओं का वर्णन। २४ चैत्यवृक्षों का वर्णन। तीर्थङ्करों के प्रथम शिष्य और शिष्याएं।

१२ चक्रवर्ती, उनके माता पिता तथा स्त्री रत्न।

६ बलदेव तथा ६ वासुदेवों के माता पिता, उनका स्वरूप तथा नाम, पूर्वभव के नाम, वासुदेवों के पूर्वभव के धर्माचार्य, नियाणा करने के स्थान तथा कारण, नौ प्रतिवासुदेव, वासुदेवों की गति, बलदेवों की गति।

ऐरावत में इस अवसर्पिणी के २४ तीर्थङ्कर। भरत क्षेत्र में आगामी उत्सर्पिणी के ७ कुलकर। ऐरावत में आगामी उत्सर्पिणी के १० कुलकर। भरत क्षेत्र में आगामी उत्सर्पिणी के २४ तीर्थङ्कर। उन

के पूर्वभव, तथा माता पिता आदि। आगामी उत्सर्पिणी के १२ चक्रवर्ती, नौ बलदेव, नौ वासुदेव, नौ प्रतिवासुदेव। ऐरावत में आगामी उत्सर्पिणी के २४ तीर्थङ्कर, चक्रवर्ती आदि का वर्णन।

(५) श्रीभगवती सूत्र (व्याख्या प्रज्ञप्ति)

(शतक संख्या ४१)

ग्यारह अङ्गों के अन्दर भगवती सूत्र पाँचवाँ अंग है। इसका खास नाम व्याख्या प्रज्ञप्ति है। इसमें स्वसमय, परसमय, स्वपरसमय, जीव, अजीव, जीवाजीव, लोक, अलोक, लोकालोक, भिन्न भिन्न जाति के देव, राजा, राजर्षि आदि का वर्णन है। देव और मनुष्यों द्वारा पूछे गये छत्तीस हजार प्रश्न हैं। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने उनका विस्तार पूर्वक उत्तर दिया है। इसमें एक श्रुतस्कन्ध है। कुछ अधिक सौ अध्ययन हैं। दस हजार उद्देशक, दस हजार समुद्देशक, ३६ हजार प्रश्न और ८४ हजार पद हैं।

प्रथम शतक

(१) उद्देशा– णमोकार महामन्त्र, दस उद्देशों के नाम, नमुत्थुणं (शक्रस्तव), गौतम स्वामी का वर्णन, चलमान चलित इत्यादि प्रश्न का निर्णय, नारकी जीवों की स्थिति, श्वासोच्छ्वास, आहार आदि विषयक प्रश्न, नारकी जीवों द्वारा पूर्वकाल में ग्रहण किये हुए पुद्गलों के परिणमन की चौभङ्गी, नारकी जीवों द्वारा पूर्वकाल में ग्रहण किये हुए पुद्गलों का चय, उपचय, उदीरणा, निर्जरा आदि की चौभङ्गी, नारकी जीवों द्वारा कौन से काल में तैजस कार्मण के पुद्गल ग्रहण किये जाते हैं, नारकी चलित कर्म बाँधते हैं या अचलित, बंध, उदय, वेदना आदि विषयक प्रश्न, असुर कुमारों की स्थिति, श्वासोच्छ्वास आदि विषयक प्रश्न, जीव आत्मारम्भी, परारम्भी, तदुभयारम्भी या अनारम्भी है इत्यादि प्रश्न, २४ दंडकों के ऊपर भी उपरोक्त प्रश्न, जीव में जो ज्ञान, दर्शन,

चारित्र, तप, संयम है वह इहभव सम्बन्धी, परभव सम्बन्धी या उभय-भव सम्बन्धी है इत्यादि विषयक प्रश्न, असंवृत (जिसने आश्रवों को नहीं रोका है) साधु और संवृत (आश्रवों को रोकने वाला) साधु सिद्ध, बुद्ध और मुक्त होता है या नहीं, असंयत, अविरत, अप्रत्याख्यानी जीव मर कर देवलोक में उत्पन्न होता है या नहीं, वाणव्यन्तर देवताओं के विमान कैसे हैं? इत्यादि प्रश्नोत्तर।

(२) उद्देशा– जीव स्वकृत कर्मों को भोगता है या परकृत? २४ दंडक के विषय में पृथक् पृथक् रूप से यही प्रश्न, जीव अपना बांधा हुआ आयुष्य भोगता है या नहीं? २४ दण्डक के विषय में यही प्रश्न, सब नारकी जीवों का आहार, श्वासोच्छ्वास, शरीर, कर्म, वर्ण, लेश्या, वेदना, क्रिया, उत्पत्ति समय, आयु आदि समान हैं या भिन्न भिन्न? उत्पत्ति समय और आयु के विषय में चौभङ्गी। २४ दण्डक पर आहार, लेश्या आदि चार बोल विषयक प्रश्न। उत्तर के लिए पन्नवणा के दूसरे उद्देशे का निर्देश। संसार संचिट्ठणा काल, जीव की अन्त क्रिया विषयक प्रश्न और उत्तर के लिए पन्नवणा के अन्त क्रिया पद का निर्देश (भलामण)। विराधक, अविराधक, संयती असंयती आदि कौन से देवलोक तक उत्पन्न हो सकते हैं? असंज्ञी की आयु के चार भेद इत्यादि का वर्णन है।

(३) उद्देशा– जीव कांक्षामोहनीय कर्म किस प्रकार बांधता और भोगता है? वीतराग प्ररूपित तत्त्व सत्य एवं यथार्थ है इस प्रकार श्रद्धान करता हुआ जीव भगवान् की आज्ञा का आराधक होता है। जीव किस निमित्त से मोहनीय कर्म बांधता है? नारकी जीव कांक्षामोहनीय कर्म बांधता और वेदता है या नहीं? इत्यादि प्रश्न।

(४) उद्देशा–कर्मों की प्रकृतियों के विषय में प्रश्न, उत्तर के लिए पन्नवणा के 'कम्मपयडि' नामक प्रथम उद्देशे का निर्देश। जीव

मोहनीय कर्म के उदय से परलोक जाने योग्य कर्म बांधता है। नारकी आदि सभी जीव अपने किये हुए कर्म भोगे विना छुटकारा नहीं पा सकते। कर्मों के प्रदेशबन्ध, अनुभागबन्ध, वेदना आदि का वर्णन, पुद्गल की नित्यता, जीव तप, संयम, ब्रह्मचर्य्य, और आठ प्रवचन माता का यथावत् पालन करने से सिद्ध, बुद्ध यावत् मुक्त हो जाता है। अधोवधि और परमाधोवधि के तथा केवली आदि के विषय में प्रश्नोत्तर।

(५) उ०– पृथ्वी (नारकी), नरकावास, असुर कुमार, असुर कुमारों के आवास, पृथ्वीकाय के आवास, ज्योतिषी, ज्योतिषी देवों के आवास, वैमानिक देव, वैमानिक देवों के आवास, नारकी जीवों की स्थिति, नैरयिक क्रोध, मान, माया, लोभ सहित हैं इत्यादि के २७ भांगे तथा ८० भांगे, चौवीस दण्डक पर इसी तरह २७ भांगे, स्थिति, स्थान आदि का विचार।

(६) उद्देशा– उदय होता हुआ सूर्य्य जितनी दूर से दिखाई देता है, अस्त होता हुआ भी उतनी ही दूर से दिखाई देता है। सूर्य्य तपता है, प्रकाशित होता है, स्पर्श करता है इत्यादि। लोकान्त अलोकान्त को स्पर्श करता है और अलोकान्त लोकान्त को। द्वीप समुद्र का स्पर्श करता है और समुद्र द्वीप का। जीव प्राणातिपात आदि क्रियाएं स्पृष्ट या अस्पृष्ट करता है? रोहक अणगार के प्रश्नोत्तर। लोकस्थिति पर मसक का दृष्टान्त, जीव और पुद्गलों के पारस्परिक सम्बन्ध के लिए नौका (नाव) का दृष्टान्त। सदा प्रमाणोपेत सूक्ष्म स्नेहकाय (एक प्रकार का पानी) गिरता है इत्यादि विचार।

(७) उ०– नरक में उत्पन्न होता हुआ जीव क्या सर्वरूप से उत्पन्न होता है या देश से इत्यादि चौभङ्गी, इस प्रकार चौवीस दण्डक पर विचार। तीनों काल की अपेक्षा चौवीस दण्डक में

आहार और उपस्थान का विचार। विग्रहगति समापन्न और अवि-ग्रहगति समापन्न का चौवीस दण्डक में विचार। जीव सेन्द्रिय, अनिन्द्रिय, सशरीर, अशरीर, आहारी या अनाहारी, उत्पन्न होता है ? पुत्र के शरीर में रुधिर, मस्तक और मस्तक की मींजी, फेफड़ा (कलेजा) ये तीन माता के अङ्ग हैं और अस्थि (हड्डी), अस्थिमिंजा, केश नख आदि तीन पिता के अङ्ग हैं। गर्भ में रहा हुआ जीव मर कर देवलोक और नरक में जाता है या नहीं ? गर्भगत जीव माता के सोने से सोता है, माता के बैठने से बैठता है। माता के सुखी होने से सुखी और दुःखी होने से दुःखी। इत्यादि का विस्तृत विचार।

(८) उ०—एकान्त बालजीव (मिथ्यादृष्टि जीव) मर कर चारों गतियों में जाता है। एकान्त पण्डितजीव (सर्व विरत साधु) मर कर वैमानिक देव होता है अथवा मोक्ष में जाता है। बालपण्डित जीव (देश विरत सम्यग्दृष्टि श्रावक) मर कर वैमानिक देवताओं में उत्पन्न होता है। मृग मारने वाले मनुष्य को तीन चार या ५ क्रियाएं लगती हैं। बाण लगने के बाद यदि मृग ६ महीने में मर जाय तो पाँच क्रियाएं लगती हैं और यदि मृग ६ महीने के बाद मरे तो ४ क्रियाएं लगती हैं। यदि पुरुष पुरुष को मारे तो पाँच क्रियाएं लगती हैं। चौवीस दण्डक में सवीर्य और अवीर्य का विचार।

(९) उ०—जीव अधोगति का कारणभूत गुरुपना और ऊर्ध्व-गति का कारणभूत लघुपना कैसे प्राप्त करता है ? संसार को अल्प, प्रचुर, दीर्घ, ह्रस्व, अनन्त, परित्त आदि करने का विचार। सातवीं नारकी के नीचे का प्रदेश गुरुलघु अगुरुलघु है इत्यादि प्रश्न। साधु के लिए लघुता, अमूर्च्छा, अगृद्धता, अप्रतिबद्धता, अक्रोधता, अमानता, अमायित्व, निर्लोभता आदि प्रशस्त हैं। राग द्वेष से रहित निर्ग्रन्थ संसार का अन्त करता है। अन्ययूथिकों

का कथन है कि जीव एक ही समय में इहभव सम्बन्धी और पर-भव सम्बन्धी आयु का बंध करता है। कालासवेशित नामक साधु के प्रश्नोत्तर। सेठ, दरिद्र, कृपण, राजा, आदि को एक अप्रत्याख्यानी क्रिया लगती है। आधाकर्मी आहार विषयक विचार, आधाकर्मी आहार भोगने वाले साधु को बंधने वाली कर्मप्रकृतियों का विचार।

(१०) उ०- चलमाणे चलिए, निजरिज्माणे निज्जिएणे इत्यादि विषयक प्रश्नोत्तर एवं विस्तृत विचार। एक जीव एक समय में दो क्रियाएं करने में समर्थ है या नहीं? इत्यादि का विस्तृत विचार। नरकगति में नारकी कितने विरह काल से उत्पन्न होते हैं।

दूसरा शतक

(१) उ०- पृथ्वीकायिक आदि एकेन्द्रिय और बेइन्द्रिय आदि जीवों के श्वासोच्छ्वास का विचार। वायुकाय की उत्पत्ति का विचार। मड़ाई (प्रासुकभोजी) निर्ग्रन्थ का विचार। प्राण, भूत, जीव, सत्त्व का विचार, स्कन्दक परिव्राजक, पिङ्गल निर्ग्रन्थ और वैसाली श्रावक का अधिकार, बालमरण और पण्डितमरण का विस्तृत विचार।

(२) उ०- समुद्घात के भेदों के लिए प्रश्न। उत्तर के लिए पन्नवणा के ३६ वें पद का निर्देश।

(३) उ०- पृथ्वीकायिक जीवों के विषय में प्रश्न। उत्तर के लिए जीवाभिगम के दूसरे उद्देशे का निर्देश।

(४) उ०- इन्द्रियाँ कितनी हैं? उत्तर के लिए पन्नवणा के पन्द्रहवें पद के पहले उद्देशे का निर्देश।

(५) उ०- अन्य यूथिक निर्ग्रन्थ मर कर देवगति में जाता है या नहीं? एक समय में एक जीव दो वेदों को (स्त्रीवेद और पुरुषवेद) वेदता है या नहीं? उदकगर्भ (वर्षा का गर्भ) और

स्त्रीगर्भ कितने समय तक रहता है? मनुष्य और तिर्यञ्च सम्बन्धी और भी विचार। एक समय में कितने जीव पुत्ररूप से उत्पन्न होते हैं? मैथुनसेवी पुरुष को कौन सा असंयम होता है? तुँगिया नगरी के श्रावकों का वर्णन, पाँच अभिगम, पूर्वकृत संयम और तप के फल विषयक प्रश्न, राजगृह नगर के द्रह का वर्णन।

(६) उ०– भाषा विषयक प्रश्न। उत्तर के लिए पन्नवणा के ११ वें भाषापद का निर्देश।

(७) उ०– देवों के भेद और स्थान विषयक प्रश्न। उत्तर के लिए पन्नवणा के स्थान पद का निर्देश।

(८) उ०– चमरेन्द्र और चमरेन्द्र की सभा का वर्णन।

(९) उ०– समयक्षेत्र विषयक प्रश्न। उत्तर के लिए जीवाभिगम की भलामण।

(१०) उ०– पञ्चास्तिकाय का वर्णन, जीव उत्थान, कर्म, बल, वीर्य से आत्मभाव को प्रकट करता है, लोकाकाश और अलोकाकाश में जीवादि हैं इत्यादि प्रश्न। दूसरे अस्तिकाय धर्मास्तिकाय के कितने भाग को स्पर्श करते हैं?

तीसरा शतक

(१) उद्देशा–दस उद्देशों के नाम, चमरेन्द्र की ऋद्धि और विकुर्वणा की शक्ति का वर्णन, चमरेन्द्र के सामानिक देव, त्रायस्त्रिंश, लोकपाल, अग्रमहिषी आदि की ऋद्धि का वर्णन, बलेन्द्र, धरणेन्द्र, ज्योतिषी देवों के इन्द्र, शक्रेन्द्र की ऋद्धि, विकुर्वणा, सामानिक देव, आत्मरक्षक देव आदि की ऋद्धि का वर्णन, आठ वर्ष श्रमण पर्याय का पालन कर इन्द्र के सामानिक देव बनने वाले तिष्यक अनगार का अधिकार, ईशानेन्द्र की ऋद्धि एवं विकुर्वणाशक्ति का वर्णन, छः महीने श्रमण पर्याय का पालन कर ईशानेन्द्र के सामानिक देव बनने वाले कुरुदत्त अनगार का वर्णन, सनत्कुमार इन्द्र से ऊपर

के सब लोकपालों की विकुर्वणा शक्ति का वर्णन, मौका नगरी, ईशानेन्द्र, तामली बालतपस्वी, मौर्य्यपुत्र आदि का अधिकार, शक्रेन्द्र और ईशानेन्द्र के विमान, उनके आपस में होने वाले आलाप-संलाप, मिलन, विवाद आदि का वर्णन, सनत्कुमारेन्द्र भव्य है या अभव्य ? इत्यादि प्रश्नोत्तर।

(२) उ०—चमरेन्द्र का सौधर्म देवलोक में गमन, वहाँ से भाग कर भगवान् महावीर स्वामी की शरण लेना, चमरेन्द्र पूर्वभव में पूरण नाम का बालतपस्वी था इत्यादि वर्णन।

(३) उ०—मंडितपुत्र अनगार का अधिकार, आरम्भी अवस्था तक जीव को मोक्ष नहीं, प्रमादी और अप्रमादी की कालस्थिति अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या, पूर्णिमा आदि पर्वों पर लवण समुद्र के घटने और बढ़ने का कारण।

(४) उ०— अवधिज्ञानी अनगार के वैक्रिय समुद्घात का वर्णन तथा चौभङ्गी, लब्धिधारी मुनिराज वृक्ष, काष्ठ तथा कन्द, मूल और फल, पत्र, बीज आदि के देखने विषयक तीन चौभङ्गियाँ, वायुकाय स्त्री और पुरुष के आकार विकुर्वणा नहीं कर सकता किन्तु अनेक योजन तक पताका रूप विकुर्वणा कर सकता है। मेघ की विकुर्वणा शक्ति विषयक प्रश्न। मर कर नरक में जाते समय कौन सी लेश्या होती है ? २४ दण्डक पर यही प्रश्न। भावितात्मा अनगार बाहरी पुद्गलों को लेकर वैभार गिरि को उल्लंघन करने में समर्थ होता है या नहीं ? मायी विकुर्वणा करता है अमायी नहीं इत्यादि विचार।

(५) उ०—भावितात्मा अनगार द्वारा स्त्री, हाथी, घोड़ा आदि अनेक प्रकार की विकुर्वणा का विस्तृत विचार।

(६) उ०— मायी मिथ्यादृष्टि अनगार की विकुर्वणा, तथाभाव के स्थान में अन्यथा भावरूप देखना अर्थात् वाणारसी के

स्थान पर राजगृह और राजगृह के स्थान पर वाणारसी (बनारस) का भ्रम होना, सम्यग्दृष्टि अनगार की विकुर्वणा, सब स्थानों में याथातथ्यभाव से देखना, चमरेन्द्र के आत्मरक्षक देवों का वर्णन।

(७) उ०- शक्रेन्द्र के लोकपालों का विचार और विमानों का विचार।

(८) उ०- असुरकुमार आदि दस भवनपतियों के नाम, उनके अधिपति देवों के नाम, पिशाच, ज्योतिषी और वाणव्यन्तर देवों के अधिपतियों के नाम और उन पर विचार।

(९) उ०- पाञ्च इन्द्रियों के कितने विषय हैं? उत्तर के लिए श्री जीवाभिगम सूत्र की भलामण।

(१०) उ०- चमरेन्द्र की सभा से लेकर अच्युतेन्द्र की सभा तक का विचार।

चौथा शतक

(१-८) उ०-दस उद्देशों के नाम की गाथा। पहले से चौथे उद्देशे तक ईशानेन्द्र के लोकपाल और विमानों का प्रश्नोत्तर। पाँचवें से आठवे उद्देशे तक लोकपालों की राजधानियों का वर्णन।

(९) उ०- नरक में नैरयिक उत्पन्न होते हैं या अनैरयिक, इत्यादि विचार।

(१०) उ०- कृष्ण लेश्या, नील लेश्या आदि को प्राप्त कर जीव क्या तद्वर्णरूप से परिणत होता है? उत्तर के लिए पन्नवणा के लेश्यापद की भलामण।

पाँचवाँ शतक

(१) उ०-दस उद्देशों के नाम की गाथा, सूर्य्य की गति विषयक प्रश्न, सूर्य्य की उत्तरार्द्ध एवं दक्षिणार्द्ध में गति आदि का विचार।

(२) उ०-पुरोवात, पश्चाद्वात, मंदवात, महावात आदि वायु सम्बन्धी विचार, वायुकुमारों द्वारा वायु की उदीरणा, वायु मर

कर वायु होना, स्पृष्ट, अस्पृष्ट, सशरीरी, अशरीरी आदि वायु सम्बन्धी विस्तृत विचार। ओदन, कुल्माष, मदिरा आदि के शरीर सम्बन्धी प्रश्न। लवण समुद्र का चक्रवाल विष्कम्भ, लोकस्थिति आदि का विचार।

(३) उ०—जाल में दी हुई ग्रन्थियों (गाँठों) का दृष्टान्त देकर एक ही भव में और एक ही समय में एक ही जीव इस भव और पर भव सम्बन्धी आयुष्य का वेदन करता है, अन्य तीर्थिकों के इस प्रकार के कथन का खण्डन।

(४) उ०— छद्मस्थ मनुष्य शंख, शृङ्ग, मृदङ्ग आदि का शब्द सुनता है। छद्मस्थ कषाय मोहनीय के उदय से हँसता है और सात या आठ कर्मों को बाँधता है। केवली नहीं हँसता। छद्मस्थ मनुष्य दर्शनावरणीय कर्म के उदय से निद्रा लेता है। निद्रा लेता हुआ सात आठ कर्म बाँधता है, किन्तु केवली नहीं बाँधता। हिरणगमेषी देव द्वारा स्त्री के गर्भ के संहरण विषयक विचार। अतिमुक्त कुमार का जल में पात्री तिराने का अधिकार। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से महाशुक्र के देवता मन द्वारा प्रश्नोत्तर करते हैं। देवों की भाषा विषयक विचार। केवली अन्तिम शरीर को देखते हैं। केवली की तरह छद्मस्थ भी अन्तिम शरीर को देखने में समर्थ होता है या नहीं? केवली प्रकृष्ट मन और वचन को धारण करता है। अनुत्तर विमानवासी देव अपने विमान में बैठा हुआ ही केवली के साथ आलाप संलाप करने में समर्थ होता है। अनुत्तरोपपातिक देव उदीर्णमोह, क्षीणमोह नहीं होते किन्तु उपशान्तमोह होते हैं। क्या केवली इन्द्रियों से जानते और देखते हैं। चौदह पूर्वधारी एक घड़े से हजार घड़े, एक कपड़े से हजार कपड़े निकालने में समर्थ है इत्यादि प्रश्न।

(५) उ०— छद्मस्थ मनुष्य अतीत, अनागत समय में सिद्ध होता है इत्यादि प्रश्न। उत्तर के लिए पहले शतक के चौथे उद्देशे की

भ्रामण। सर्व प्राणी भूत जीव सत्त्व एवंभूत वेदना को वेदते हैं। नरक आदि २४ दण्डक में एवंभूत वेदना का प्रश्न। जम्बूद्वीप के इस अवसर्पिणी काल के सात कुलकर, तीर्थङ्करों के माता, पिता बलदेव, वासुदेव, प्रतिवासुदेव आदि के विषय में प्रश्न।

(६) उ०—जीव किस प्रकार से दीर्घायु, अल्पायु, शुभ दीर्घायु, अशुभ दीर्घायु का बन्ध करता है इत्यादि विचार। चोर, बाण, धनुष को कितनी क्रिया लगती हैं? शय्यातर पिण्ड, आधाकर्मी पिण्ड, आराधना, विराधना आदि विषयक प्रश्न। आचार्य, उपाध्याय अपने साधुओं को सूत्रार्थ देते हुए कितने भव करके मोक्ष जाते हैं? दूसरे पर झूठा कलङ्क चढ़ाने वाले का भव भ्रमण आदि।

(७) उ०— परमाणु पुद्गल, अनन्तप्रदेशी स्कन्ध का विस्तृत विचार। परस्पर स्पर्शना, संस्थिति, अन्तरकाल आदि का विचार। चौवीस दण्डक सारम्भी, सपरिग्रही का विचार। पाँच हेतु और पाँच अहेतु का कथन।

(८) उ०—श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के अन्तेवासी शिष्य नारदपुत्र और निर्ग्रन्थीपुत्र की विस्तार पूर्वक चर्चा। जीव घटते, बढ़ते या अवस्थित रहते हैं? चौवीस दण्डक के विषय में यही प्रश्न। जीव सोपचय, सापचय, निरुपचय, निरपचय है, इत्यादि का चौवीस दण्डक पर विचार।

(९) उ०—राजगृह नगर की वक्तव्यता। दिन में प्रकाश और रात्रि में अन्धकार का प्रश्न। सात नरक और असुर कुमारों में अन्धकार क्यों? अशुभ पुद्गलों के कारण पृथ्वीकायादि से लेकर तेइन्द्रिय तक अन्धकार। चौरिन्द्रिय, मनुष्य यावत् वैमानिक देवों में शुभ पुद्गल, समय, आवलिका आदि काल का ज्ञान मनुष्य आदि को है, नैरयिक जीवों को नहीं। पार्श्वनाथ भगवान् के शिष्यों को भगवान् महावीर का परिचय, चार महाव्रत से पाँच महाव्रत का

का कथन है कि जीव एक ही समय में इहभव
भव सम्बन्धी आयु का बंध करता है।
के प्रश्नोत्तर। सेठ, दरिद्र, कृपण, राजा, आदि
ख्यानी क्रिया लगती है। आधाकर्मी आहार
आधाकर्मी आहार भोगने वाले साधु को बंधने वा
का विचार।

(१०) उ०- चलमाणे चलिए, निजरि
इत्यादि विषयक प्रश्नोत्तर एवं विस्तृत विचार
समय में दो क्रियाएं करने में समर्थ है या नहीं?
विचार। नरकगति में नारकी कितने विरह का

दूसरा शतक

(१)उ०-पृथ्वीकायिक आदि एकेन्द्रि
जीवों के श्वासोच्छ्वास का विचार। वायु
विचार। मड़ाई (प्रासुकभोजी) निर्ग्रन्थ क
जीव, सत्त्व का विचार, स्कन्दक परिव्राज
वैसाली श्रावक का अधिकार, वालमरण
विस्तृत विचार।

(२)उ०- समुद्घात के भेदों के
पन्नवणा के ३६ वें पद का निर्देश।

(३) उ०- पृथ्वीकायिक जीवों
के लिए जीवाभिगम के दूसरे उद्देशे

(४) उ०- इन्द्रियाँ कितनी हैं
पन्द्रहवें पद के पहले उद्देशे का निर्दे

(५)उ०- अन्य यूथिक
है या नहीं? एक समय में एक
पुरुषवेद) वेदता है या नहीं?

कांग, राल, सण, सरसों आदि धान्य सात वर्ष तक बीजोत्पत्ति के योग्य रहते हैं। एक मुहूर्त के ३७७३ उच्छ्वास। आवलिका, उच्छ्वास निश्वास, प्राण, स्तोक, लव, मुहूर्त्त, अहोरात्र, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर, युग, वर्षशत, वर्षसहस्र, वर्षशतसहस्र, पूर्वाङ्ग, पूर्व, त्रुटितांग, त्रुटित, अटटांग, अटट, अववांग, अवव, हूहूकांग, हूहूक, उत्पलांग, उत्पल, पद्मांग, पद्म, नलिनांग, नलिन, अर्थनुपूरांग, अर्थनुपूर, अयुतांग, अयुत, प्रयुतांग, प्रयुत, नयुतांग, नयुत, चूलिकांग, चूलिका, शीर्षप्रहेलिकांग, शीर्षप्रहेलिका इत्यादि गणनीय काल का स्वरूप, पल्योपम, सागरोपम आदि उपमेय काल, भरतक्षेत्र का आकार, भरतक्षेत्र के मनुष्यों का स्वरूप आदि।

(८) उ०— रत्नप्रभा से ईषत्प्रागभारा तक ८ पृथ्वियों का स्वरूप एवं विस्तृत वर्णन, पृथ्वियों के नीचे मेघ, बादर अग्निकाय आदि का प्रश्न, सौधर्म, ईशान आदि देवलोकों के नीचे मेघ आदि का प्रश्न। लवण समुद्र सम्बन्धी प्रश्न, उत्तर के लिए श्री जीवाभिगम की भलामण। द्वीप समुद्रों के नाम।

(९) उ०— जीव ज्ञानावरणीय कर्म का बन्ध करता हुआ साथ में कितनी अन्य कर्म प्रकृतियों का बन्ध करता है? उत्तर के लिए पन्नवणा के बन्धोद्देशक की भलामण। महर्द्धिक देव बाह्य पुद्गलों को लेकर किस रूप की विकुर्वणा कर सकता है? विशुद्ध लेश्या वाले, अविशुद्ध लेश्या वाले देव के जानने और देखने विषयक बारह भङ्ग।

(१०) उ०— जीवों के सुख दुःखादि को कोई भी बाहर निकाल कर नहीं दिखला सकता। देव तीन चुटकी में जम्बूद्वीप की २१ प्रदक्षिणा कर सकता है। जीव के प्राण धारण करने विषयक प्रश्न। इसी तरह चौवीस दण्डक में प्रश्न। नैरयिकों का आहार, केवली और केवली की इन्द्रियाँ, केवली ज्ञान से ही देखते और जानते हैं।

ग्रहण। देवताओं के भेद और देवलोकों का वर्णन।

(१०) उ०- चन्द्रमा का विचार। पाँचवें शतक के प्रथम उद्देशे की भलामण।

छठा शतक

(१) उ०-दस उद्देशों की नाम सूचक गाथा, महावेदना और महानिर्जरा आदि विचार। महावेदना और महानिर्जरा पर चौभङ्गी।

(२) उ०-आहार विषयक प्रश्न। उत्तर के लिए पन्नवणा के आहार उद्देशे की भलामण।

(३) उ०- वस्त्र के उदाहरण से महाकर्म और अल्पकर्म का विचार, पुद्गलों का चय, उपचय, विस्रसा और प्रयोगसा गति। वस्त्र और जीव की सादि सान्तता का विचार, कर्म और कर्मों की स्थिति। कौनसा जीव कितने कर्म बाँधता है। स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी और नपुंसकवेदी जीवों का अल्पबहुत्व।

(४) उ०- कालादेश की अपेक्षा जीव सप्रदेश है या अप्रदेश इत्यादि भङ्ग। २४ दण्डक में प्रत्याख्यानी अप्रत्याख्यानी का विचार।

(५) उ०- तमस्काय का स्वरूप, स्थान, आकार, तमस्काय की लम्बाई चौड़ाई, तमस्काय के ग्राम, नगर, गृहादि का विचार, मेघ की उत्पत्ति, चन्द्र सूर्य सम्बन्धी विचार। तमस्काय के तेरह नाम। कृष्णराजियों के नाम, कृष्णराजियों की वक्तव्यता, आठ कृष्णराजियों के बीच में आठ लोकान्तिक देवों के विमान।

(६) उ०- रत्नप्रभा आदि सात पृथ्वियों के नाम, आवास। पाँच अनुत्तर विमान। मारणान्तिक समुद्घात का वर्णन।

(७) उ०-शालि, जौ, गेहूं इत्यादि धान्य कोठे में सुरक्षित रखे रहने पर कितने समय तक अङ्कुरोत्पत्ति के योग्य रहते हैं? कलाय, मसूर, तिल, मूंग, उड़द, कुलथ, चँवला, तुवर, चना आदि धान्य पाँच वर्ष तक बीजोत्पत्ति के योग्य रहते हैं। अलसी, कुसुम, कोदूं,

कांग, राल, सण, सरसों आदि धान्य सात वर्ष तक बीजोत्पत्ति के योग्य रहते हैं। एक मुहूर्त के ३७७३ उच्छ्वास। आवलिका, उच्छ्वास निश्वास, प्राण, स्तोक, लव, मुहूर्त्त, अहोरात्र, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर, युग, वर्षशत, वर्षसहस्र, वर्षशतसहस्र, पूर्वाङ्ग, पूर्व, त्रुटितांग, त्रुटित, अटटांग, अटट, अववांग, अवव, हूहूकांग, हूहूक, उत्पलांग, उत्पल, पद्मांग, पद्म, नलिनांग, नलिन, अर्थनुपूरांग, अर्थनुपूर, अयुतांग, अयुत, प्रयुतांग, प्रयुत, नयुतांग, नयुत, चूलिकांग, चूलिका, शीर्षप्रहेलिकांग, शीर्षप्रहेलिका इत्यादि गणनीय काल का स्वरूप, पल्योपम, सागरोपम आदि उपमेय काल, भरतक्षेत्र का आकार, भरतक्षेत्र के मनुष्यों का स्वरूप आदि।

(८) उ०– रत्नप्रभा से ईषत्प्रागभारा तक ८ पृथ्वियों का स्वरूप एवं विस्तृत वर्णन, पृथ्वियों के नीचे मेघ, बादर अग्निकाय आदि का प्रश्न, सौधर्म, ईशान आदि देवलोकों के नीचे मेघ आदि का प्रश्न। लवण समुद्र सम्बन्धी प्रश्न, उत्तर के लिए श्री जीवाभिगम की भलामण। द्वीप समुद्रों के नाम।

(९) उ०– जीव ज्ञानावरणीय कर्म का बन्ध करता हुआ साथ में कितनी अन्य कर्म प्रकृतियों का बन्ध करता है? उत्तर के लिए पन्नवणा के बन्धोद्देशक की भलामण। महर्द्धिक देव बाह्य पुद्गलों को लेकर किस रूप की विकुर्वणा कर सकता है? विशुद्ध लेश्या वाले, अविशुद्ध लेश्या वाले देव के जानने और देखने विषयक बारह भङ्ग।

(१०) उ०– जीवों के सुख दुःखादि को कोई भी बाहर निकाल कर नहीं दिखला सकता। देव तीन चुटकी में जम्बूद्वीप की २१ प्रदक्षिणा कर सकता है। जीव के प्राण धारण करने विषयक प्रश्न। इसी तरह चौबीस दण्डक में प्रश्न। नैरयिकों का आहार, केवली और केवली की इन्द्रियाँ, केवली ज्ञान से ही देखते और जानते हैं।

सातवाँ शतक

(१)उ०– जीव के अनाहारी होने का समय, लोक, संस्थान, सामायिकमें रहे हुए श्रमणोपासक श्रावक को ईर्यावही क्रिया लगती है या साम्परायिकी,पृथ्वी को खोदने से त्रसकाय अथवा वनस्पति की हिंसा होती है। तथारूप श्रमण, माहण और साधु को शुद्ध आहार देने से जीव समाधि को प्राप्त करता है यावत् मुक्ति को प्राप्त करता है। कर्मरहित जीव की गति। दुःखी जीव दुःख से स्पृष्ट (व्याप्त) होता है। उपयोग रहित चलते हुए अनगार को ईर्यावही क्रिया लगती है या साम्परायिकी। सदोष आहार पानी, निर्दोष आहार पानी, क्षेत्रातिक्रान्तादि आहार पानी,अग्नि आदि शस्त्र परिणत आहार पानी आदि का निर्णय।

(२)उ०– सर्व प्राणी, भूत, जीव, सत्त्व की हिंसा का पच्चक्खाण सुपच्चक्खाण है या दुःपच्चक्खाण। मूलगुण पच्चक्खाण, उत्तरगुण पच्चक्खाण इत्यादि का विस्तृत विवेचन।

(३)उ०–वनस्पतिकाय अल्पाहारी और महाहारी,वनस्पतिकाय किस प्रकार आहार ग्रहण करती है? अनन्तकाय वनस्पतिकाय के भेद, कृष्ण लेश्या वाले और नील लेश्या वाले नैरयिक के विषय में अल्पकर्म वाला और महाकर्म वाला आदि प्रश्न, इसी तरह २४ दण्डक में प्रश्न, नरक की वेदना निर्जरा है या नहीं? इसी प्रकार २४ दण्डक में प्रश्न। नैरयिक शाश्वत है या अशाश्वत इत्यादि प्रश्नोत्तर।

(४) उ०– संसार समापन्न जीव के भेद आदि। श्री जीवाभिगम सूत्र की भलामण।

(५) उ०– खेचर तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय के योनिसंग्रह विषयक प्रश्न। उत्तर के लिए श्री जीवाभिगम की भलामण।

(६)उ०– नैरयिक जीव कब आयुबंध करता है। उत्पन्न होने

के पहले, पीछे या उत्पन्न होते समय ? इसी प्रकार २४ दण्डकों में प्रश्न। नैरयिक जीव को उत्पन्न होने के पहले पीछे या उत्पन्न होते समय महावेदना होती है ? कर्कशवेदनीय और अकर्कशवेदनीय, सातावेदनीय और असातावेदनीय का बंध किन किन जीवों को होता है ? इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र के अवसर्पिणी काल के दुषमदुषमा नामक छठे आरे का विस्तृत वर्णन।

(७) उ०- संवृत अनगार को ईर्यापथिकी क्रिया लगती है या साम्परायिकी ? काम रूपी है या अरूपी ? काम सचित्त है या अचित्त ? काम जीव के होते हैं या अजीव के ? भोगों के लिए रूपी, अरूपी, सचित्त, अचित्त, जीव, अजीव आदि के प्रश्न। कामी, अकामी, भोगी, अभोगी पुरुषों का अल्पबहुत्व, असंज्ञी प्राणी अकाम वेदना वेदता है या सकाम ? इत्यादि विचार।

(८) उ०- क्या छद्मस्थ जीव सिर्फ संयम से ही मुक्ति जा सकता है ? उत्तर के लिए पहले शतक के चौथे उद्देशे की भलामण। हाथी और कुंथुए का जीव बराबर है या छोटा बड़ा ? राजप्रश्नीय सूत्र की भलामण। नारकी जीव जो कर्म बाँधता है और बाँधेगा वह दुःख रूप है और जिसकी निर्जरा कर दी वह सुख रूप है। आहार संज्ञा आदि दस संज्ञाओं के नाम, नरक की दस वेदना। हाथी और कुंथुए के जीव को समान रूप से अप्रत्याख्यानी क्रिया लगती है। आधाकर्मी आहार के भोगने वाले को क्या बंध होता है ? उत्तर के लिए प्रथम शतक के नवें उद्देशे की भलामण।

(९) उ०- असंवृत अनगार की विकुर्वणा का विचार, कोणिक राजा के साथ चेड़ा राजा एवं काशी देश और कौशल देश के नव मल्लि और नव लच्छी अठारह गण राजाओं के महाशिला कंटक संग्राम का वर्णन, संग्राम में ८४ लाख मनुष्य मारे गये और वे प्रायः नरक और तिर्यञ्च गति में उत्पन्न हुए। रथमूसल

संग्राम का वर्णन। वरुणनागनत्तुए नामक श्रावक की युद्ध के लिए तय्यारी, संग्राम में पहले बाण प्रहार करने वाले पर ही बाण प्रहार करने का अभिग्रह, युद्ध में वरुण को सख्त प्रहार, युद्ध से वापिस लौट कर वरुण का संलेखना संथारा कर प्रथम सौधर्म देवलोक में जाना, देवलोक से चव कर महाविदेह में जन्म लेना और वहाँ से मोक्ष में जाना। इसी तरह वरुण नागनत्तुए के बालमित्र का भी सारा वर्णन।

(१०) उ०—कालोदायी, शैलोदायी, सेवालोपायी, उदय, नामोदय, नर्मोदय, अन्यपालक, शैलपालक, शंखपालक, सुहस्ती आदि अन्य यूथिकों के नाम। उनका पञ्चास्तिकाय के विषय में सन्देह। भगवान् महावीर स्वामी के पास कालोदायी का आगमन और पञ्चास्तिकाय के विषय में प्रश्न, पापकर्म अशुभ विपाक सहित होते हैं और कल्याणकारी कर्म कल्याण फलयुक्त होते हैं? क्या अचित्त पुद्गल प्रकाश करते हैं?

आठवाँ शतक

(१) उ०— पुद्गलों के परिणाम। २४ दण्डक के परिणाम विषयक प्रश्न और विस्तार पूर्वक विवेचन। प्रयोगसा, विस्रसा और मिश्र परिणाम विषयक वर्णन और अल्प बहुत्व।

(२) उ०—वृश्चिक आशीविष, मण्डूक आशीविष, उरग आशीविष आदि आशीविषों का वर्णन। छद्मस्थ दस स्थानों को नहीं जानता और देखता है। ज्ञान के भेद और विस्तार पूर्वक विवेचन। जीव ज्ञानी है या अज्ञानी? २४ दण्डक में यही प्रश्नोत्तर। ज्ञानलब्धि आदि लब्धि के दस भेद। ज्ञानलब्धि के पाँच भेद, दर्शन लब्धि के तीन भेद, अज्ञान लब्धि के तीन भेद, चारित्र लब्धि के पाँच भेद, वीर्य लब्धि के तीन भेद, लब्धिवान् जीव ज्ञानी है या अज्ञानी? पाँच ज्ञानों का विषय नन्दीसूत्र की भलामण। मति-

ज्ञान आदि ज्ञानों के पर्यायों का अल्प बहुत्व।

(३) उ०- संख्यात जीविक, असंख्यात जीविक, अनन्त जीविक वनस्पति के भेद, जीव प्रदेशों से स्पृष्ट, अस्पृष्ट आदि का विचार। रत्नप्रभा आदि पृथ्वियाँ चरम प्रान्तवर्ती हैं या अचरम? उत्तर के लिए श्रीपन्नवणा के चरमपद की भलामण।

(४) उ०- पाँच क्रियाओं का वर्णन। श्रीपन्नवणा के क्रियापद की भलामण।

(५) उ०- सामायिक में स्थित श्रावक की स्त्री उसकी जाया कहलाती है या अजाया? स्थूल प्राणातिपात के प्रत्याख्यान की विधि, अतीत प्राणातिपात आदि के प्रतिक्रमण के ४९ भांगे। आजीविक (गोशालक) का सिद्धान्त, आजीविक के १२ श्रमणोपासकों के नाम। श्रावक के लिए त्याज्य इंगालकम्मे आदि पन्द्रह कर्मादान। देवलोकों के चार भेद।

(६) उ०- तथारूप श्रमण माहण को प्रासुक और एषणीय आहार पानी देने से एकान्त निर्जरा और अप्रासुक और अनेषणीय आहार पानी देने से बहुत निर्जरा और अल्प पाप तथा असंयती और अविरति को गुरुबुद्धि से किसी प्रकार का आहार पानी देने से एकान्त पाप कर्म होता है। जिस साधु का नाम लेकर भिक्षुक को आहार पानी दिया जावे वह उसी को ले जाकर देना चाहिए। आराधक और विराधक। निर्ग्रन्थ के समान निर्ग्रन्थी (साध्वी) का भी आलापक। दीपक जलता है या ज्योत जलती है या ढकन इत्यादि प्रश्न। घर जलता है तो क्या भीत जलती है या टाटी? जीव औदारिक आदि पाँच शरीरों से कितनी क्रिया कर सकता है? इसी प्रकार २४ दण्डक में प्रश्न।

(७) उ०- अन्य यूथिक त्रिविध असंयत और त्रिविध अविरत हैं वे अदत्त आदि का ग्रहण करते हैं, पृथ्वी आदि की हिंसा

संग्राम का वर्णन। वरुणनागनत्तुए नामक श्रावक की युद्ध के लिए तय्यारी, संग्राम में पहले बाण प्रहार करने वाले पर ही बाण प्रहार करने का अभिग्रह, युद्ध में वरुण को सख्त प्रहार, युद्ध से वापिस लौट कर वरुण का संलेखना संथारा कर प्रथम सौधर्म देवलोक में जाना, देवलोक से चव कर महाविदेह में जन्म लेना और वहाँ से मोक्ष में जाना। इसी तरह वरुण नागनत्तुए के बाल-मित्र का भी सारा वर्णन।

(१०) उ०—कालोदायी, शैलोदायी, सेवालोपायी, उदय, नामोदय, नर्मोदय, अन्यपालक, शैलपालक, शंखपालक, सुहस्ती आदि अन्य यूथिकों के नाम। उनका पञ्चास्तिकाय के विषय में सन्देह। भगवान् महावीर स्वामी के पास कालोदायी का आगमन और पञ्चास्तिकाय के विषय में प्रश्न, पापकर्म अशुभ विपाक सहित होते हैं और कल्याणकारी कर्म कल्याण फलयुक्त होते हैं? क्या अचित्त पुद्गल प्रकाश करते हैं?

आठवाँ शतक

(१) उ०— पुद्गलों के परिणाम। २४ दण्डक के परिणाम विषयक प्रश्न और विस्तार पूर्वक विवेचन। प्रयोगसा, विस्रसा और मिश्र परिणाम विषयक वर्णन और अल्प बहुत्व।

(२) उ०—वृश्चिक आशीविष, मण्डूक आशीविष, उरग आशीविष आदि आशीविषों का वर्णन। छद्मस्थ दस स्थानों को नहीं जानता और देखता है। ज्ञान के भेद और विस्तार पूर्वक विवेचन। जीव ज्ञानी है या अज्ञानी? २४ दण्डक में यही प्रश्नोत्तर। ज्ञानलब्धि आदि लब्धि के दस भेद। ज्ञानलब्धि के पाँच भेद, दर्शन लब्धि के तीन भेद, अज्ञान लब्धि के तीन भेद, चारित्र लब्धि के पाँच भेद, वीर्य लब्धि के तीन भेद, लब्धिवान् जीव ज्ञानी है या अज्ञानी? पाँच ज्ञानों का विषय नन्दीसूत्र की भलामण। मति-

ज्ञान आदि ज्ञानों के पर्यायों का अल्प बहुत्व।

(३) उ०- संख्यात जीविक, असंख्यात जीविक, अनन्त जीविक वनस्पति के भेद, जीव प्रदेशों से स्पृष्ट, अस्पृष्ट आदि का विचार। रत्नप्रभा आदि पृथ्वियाँ चरम प्रान्तवर्ती हैं या अचरम? उत्तर के लिए श्रीपन्नवणा के चरमपद की भलामण।

(४) उ०- पाँच क्रियाओं का वर्णन। श्रीपन्नवणा के क्रियापद की भलामण।

(५) उ०- सामायिक में स्थित श्रावक की स्त्री उसकी जाया कहलाती है या अजाया? स्थूल प्राणातिपात के प्रत्याख्यान की विधि, अतीत प्राणातिपात आदि के प्रतिक्रमण के ४६ भांगे। आजीविक (गोशालक) का सिद्धान्त, आजीविक के १२ श्रमणोपासकों के नाम। श्रावक के लिए त्याज्य इंगालकम्मे आदि पन्द्रह कर्मादान। देवलोकों के चार भेद।

(६) उ०- तथारूप श्रमण माहण को प्रासुक और एषणीय आहार पानी देने से एकान्त निर्जरा और अप्रासुक और अनेषणीय आहार पानी देने से बहुत निर्जरा और अल्प पाप तथा असंयती और अविरति को गुरुबुद्धि से किसी प्रकार का आहार पानी देने से एकान्त पाप कर्म होता है। जिस साधु का नाम लेकर भिक्षुक को आहार पानी दिया जावे वह उसी को ले जाकर देना चाहिए। आराधक और विराधक। निर्ग्रन्थ के समान निर्ग्रन्थी (साध्वी) का भी आलापक। दीपक जलता है या ज्योत जलती है या ढक्कन इत्यादि प्रश्न। घर जलता है तो क्या भीत जलती है या टाटी? जीव औदारिक आदि पाँच शरीरों से कितनी क्रिया कर सकता है? इसी प्रकार २४ दण्डक में प्रश्न।

(७) उ०- अन्य यूथिक त्रिविध असंयत और त्रिविध अविरत हैं वे अदत्त आदि का ग्रहण करते हैं, पृथ्वी आदि की हिंसा

करते हैं। गति प्रपात का वर्णन, इसके लिए श्री पन्नवणा के प्रयोग पद की भलामण।

(८) उ०—प्रत्यनीक का स्वरूप, गुरुप्रत्यनीक, गतिप्रत्यनीक, समूहप्रत्यनीक, अनुकम्पा प्रत्यनीक, श्रुतप्रत्यनीक, भावप्रत्यनीक, इन छहों के अवान्तर तीन तीन भेद, व्यवहार के पाँच भेद, बंध के भेद, २२ परिषह और उन परिषहों का ज्ञानावरणीयादि चार कर्मों की अवान्तर प्रकृतियों में अन्तर्भाव। कर्म बन्ध रहित अयोगी केवली को कितने परिषह होते हैं? उगता हुआ सूर्य्य दूर होते हुए भी पास कैसे दिखाई देता है? इत्यादि सूर्य्य सम्बन्धी प्रश्न। चन्द्र, सूर्य्य, ग्रह, नक्षत्र आदि के उगने सम्बन्धी प्रश्न। मानुषोत्तर पर्वत से बाहर सूर्य्य चन्द्र आदि का प्रश्न। उत्तर के लिए श्री जीवाभिगम की भलामण।

(९) उ०—बन्ध के दो भेद—विस्रसा बन्ध, प्रयोगबन्ध। विस्रसा के दो भेद—सादि, अनादि। प्रयोग बन्ध के तीन भेद—अनादि अपर्यवसित, सादि अपर्यवसित, सादि सपर्यवसित। सादि सपर्यवसित के चार भेद—आलापन बन्ध, आलीन बन्ध, शरीर बन्ध, शरीर प्रयोग बन्ध। बन्धों के अवान्तर भेद और स्थितिकाल आदि का विस्तृत विचार।

(१०) उ०—शील श्रेष्ठ है या श्रुत, इस पर चौभङ्गी। ज्ञान, दर्शन और चारित्र की जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट तीन आराधना, और उनके फल, पुद्गल परिणाम के भेद वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, संस्थान परिणाम के भेद, पुद्गलास्तिकाय का द्रव्य देश क्या है? दो तीन चार आदि आठ भङ्ग, लोकाकाश के प्रदेश, सब जीवों के आठ कर्मप्रकृतियाँ हैं, ज्ञानावरणीय के अनन्त अविभाग परिच्छेद, आठों कर्मों का पारस्परिक संबंध, जीव पुद्गल है या पुद्गल वाला? सिद्धों तक यही प्रश्न और इसका विचार।

नवाँ शतक

(१) उ०– इस शतक के ३४ उद्देशों के नाम की गाथा. जम्बूद्वीप के संस्थान आदि के विषय में प्रश्न। उत्तर के लिए श्री जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति की भलामण।

(२) उ०– जम्बूद्वीप में और लवण समुद्र में कितने चन्द्रमा हैं और उनका कितना परिवार है? इत्यादि प्रश्न, उत्तर के लिए श्री जीवाभिगम सूत्र की भलामण।

(३–३०) उ०–एकोरुक आदि २८ द्वीपों के नाम, उनकी लम्बाई चौड़ाई आदि का विस्तार पूर्वक विवेचन। समझने के लिए श्री जीवाभिगम सूत्र की भलामण। इन २८ द्वीपों के २८ उद्देशे हैं।

(३१) उ०–केवली से धर्मप्रतिपादक वचन सुन कर किसी जीव को धर्म का बोध होता है? बोधि का कारण प्रव्रज्या, प्रव्रज्या का कारण ब्रह्मचर्य्य, ब्रह्मचर्य्य का हेतु संयम, संयम का हेतु संवर, संवर का हेतु शास्त्रश्रवण। केवली से धर्म प्रतिपादक वचन सुने विना भी किसी जीव को धर्म की प्राप्ति होती है। सोच्चाकेवली और उनके शिष्य, प्रशिष्यों द्वारा दूसरों को प्रव्रज्या देने आदि का प्रश्न।

(३२) उ०– श्री पार्श्वनाथ भगवान् के शिष्य श्री गांगेय अनगार के भांगों सम्बन्धी प्रश्नों का विस्तृत विवेचन। श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास गांगेय अनगार का चार महाव्रत से पाँच महाव्रत ग्रहण करना।

(३३) उ०– ब्राह्मणकुण्ड ग्राम के निवासी ऋषभदत्त ब्राह्मण और उसकी पत्नी देवानन्दा ब्राह्मणी का अधिकार। जमाली का अधिकार अर्थात् जमाली की प्रव्रज्या, अभिनिष्क्रमण महोत्सव, प्रव्रजित होकर ज्ञान उपार्जन करना, फिर अपने आपको अरिहन्त, जिन, केवली बतलाना, भगवान् महावीर स्वामी से अलग विचरना। जमाली मर कर तेरह सागर की स्थिति वाला किल्वि-

षिक देव हुआ। कुछ समय तक संसार परिभ्रमण करके सिद्ध, बुद्ध यावत् मुक्त होगा।

(३४) उ०– कोई मनुष्य, मनुष्य, अश्व आदि को मारता हुआ मनुष्य और अश्व को मारता है या नोमनुष्य नोअश्व को मारता है? त्रस, ऋषि आदि को मारने सम्बन्धी अनेक प्रश्न। वृक्ष और वनस्पति आदि को हिलाते हुए वायुकाय को कितनी क्रिया लगती है?

दसवाँ शतक

(१) उ०– इस शतक के चौंतीस उद्देशों के नामों की संग्रह गाथा, दस दिशाओं का विस्तार पूर्वक विवेचन। औदारिकादि पाँच शरीरों के संस्थान अवगाहना आदि का प्रश्न। उत्तर के लिए श्री पन्नवणा के 'ओगाहण संठाण' पद की भलामण।

(२) उ०–संवृत (संवुडा) असंवृत (असंवुडा) को कौन सी क्रिया लगती है? उत्तर के लिए सातवें शतक के पहले उद्देशे की भलामण। योनि के भेद, पन्नवणा के योनि पद की भलामण। वेदना कितने प्रकार की? उत्तर के लिए दशाश्रुतस्कन्ध की भिक्खुपडिमा तक के अधिकार की भलामण। आराधक विराधक का विचार।

(३) उ०– देवता अपनी आत्मशक्ति से अपने से महर्द्धिक, समर्द्धिक और अल्पऋद्धिक देवताओं के कितने आवासों का उल्लंघन कर सकता है और उनके बीच में होकर निकल सकता है, इत्यादि प्रश्न। दौड़ता हुआ घोड़ा 'खुखु' शब्द क्यों करता है? भाषा के आमंत्रणी, आज्ञापनी आदि बारह भेद।

(४) उ०–श्याम हस्ती अनगार का अधिकार, चमरेन्द्र, बलीन्द्र धरणेन्द्र, शक्रेन्द्र, ईशानेन्द्र आदि इन्द्रों के त्रायस्त्रिंश देवों का अधिकार।

(५) उ०– चमरेन्द्र, शक्रेन्द्र आदि इन्द्रों की तथा इनके सब

लोकपालों की अग्रमहिषियों का अधिकार, उनका परिवार। सभा में इन्द्र अपनी अग्रमहिषी के साथ भोग भोगने में समर्थ है या नहीं?

(६) उ०— शक्रेन्द्र की सुधर्मा सभा की लम्बाई चौड़ाई आदि के विषय में प्रश्न। राजप्रश्नीय सूत्र में वर्णित सूर्याभ देव की सभा की भलामण।

(७-३४) उ०—उत्तर दिशा सम्बन्धी २८ अन्तर्द्वीपों के २८ उद्देशे हैं। श्री जीवाभिगम सूत्र की भलामण।

ग्यारहवाँ शतक

(१) उ०— इस शतक के बारह उद्देशों के नाम सूचक संग्रह गाथा, कमल का पत्ता एकजीवी है या अनेकजीवी? इत्यादि विस्तृत अधिकार।

(२) उ०—शालूक (कमल का कन्द) एक जीवी है या अनेक जीवी?

(३-८) उ०— पलाश-पत्र, कुम्भिक वनस्पति, नालिका वनस्पति, पद्मपत्र, कर्णिका वनस्पति, नलिन वनस्पति एकजीवी है या अनेकजीवी? इत्यादि प्रश्नोत्तर।

(९) उ०— हस्तिनापुर का वर्णन, शिवराजा, शिवराजा का संकल्प, उसके पुत्र शिवभद्र को राज्याभिषेक, शिवराजा की प्रव्रज्या, अभिग्रह, शिवराजर्षि का विभंगज्ञान, शिवराजर्षि का सात द्वीप समुद्र तक का ज्ञान, शिवराजर्षि का भगवान् महावीर के पास आगमन, प्रश्नोत्तर, तापसोचित उपकरणों का त्याग कर भगवान् के पास दीक्षा लेकर आत्मकल्याण करना।

(१०) उ०—लोक के भेद, अधोलोक, ऊर्ध्वलोक और तिर्यग्लोक। लोक के संस्थान आदि का विवेचन। लोक का विस्तार, जीव प्रदेशों का अल्पबहुत्व आदि।

(११) उ०— वाणिज्यग्राम, दूतिपलाश चैत्य, भगवान् को

वन्दन के लिए सुदर्शन सेठ का आगमन, काल सम्बन्धी प्रश्न, बल राजा का अधिकार, रानी प्रभावती के देखे हुए सिंह के स्वप्न का फल, गर्भ का रक्षण, पुत्र जन्म, पुत्र जन्मोत्सव, पुत्र का नाम-स्थापन (महाबल), महाबल का पाणिग्रहण, धर्मघोष अनगार का आगमन, धर्मश्रवण, महाबल कुमार की प्रव्रज्या, संयम का पालन कर ब्रह्मदेवलोक में उत्पन्न होना, वहाँ दस सागरोपम की स्थिति को पूर्ण करके वाणिज्यग्राम में सुदर्शन सेठ रूप से जन्म लेना, सुदर्शन सेठ को जाति स्मरण ज्ञान होना और दीक्षा अङ्गीकार कर आत्म कल्याण करना।

(१२) उ०– आलम्भिका नगरी के ऋषिभद्र नामक श्रावक का अधिकार, पुद्गल नामक परिव्राजक को विभंगज्ञान, शेष अधिकार शिवराजर्षि के समान है।

वारहवाँ शतक

(१) उ०– श्रावस्ती नगरी के शंख और पुष्कली (पोखली) श्रावकों का अधिकार, श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दन के लिए जाना, अशन पानादि का सेवन करते हुए पौषध करना, शंख का प्रतिपूर्ण पौषध करना, तीन प्रकार की जागरिकाओं का फल, क्रोध और निन्दा का दुष्फल। शंख श्रावक प्रव्रज्या लेने में समर्थ है या नहीं ? शेष वृत्तान्त ऋषिभद्रपुत्र की तरह है।

(२) उ०– कौशाम्बी नगरी, शतानीक राजा, मृगावती रानी, जयंती श्रमणोपासिका का वर्णन, भगवान् के पास प्रश्नोत्तर, जयंती श्रमणोपासिका ने प्रव्रज्या अङ्गीकार की। शेष वर्णन देवानन्दा की तरह है।

(३) उ०– रत्नप्रभा आदि सात नारकियों का वर्णन। श्री जीवाभिगम सूत्र की भलामण।

(४) उ०– दो परमाणु पुद्गल से लेकर संख्यात, असंख्यात और अनन्त पुद्गल परमाणुओं तक की वक्तव्यता, पुद्गल परिवर्तन के भेद प्रभेद आदि का विस्तृत वर्णन।

(५) उ०– प्राणातिपातादि, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग-द्वेष, चार प्रकार की मति आदि कितने वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श वाले होते हैं? नैरयिक, पृथ्वीकायिक, मनुष्य, वाणव्यन्तर, धर्मास्तिकाय, कृष्णलेश्या आदि में वर्ण, गन्ध, रस आदि विषयक प्रश्न।

(६) उ०– चन्द्रमा और राहु का विचार, चन्द्रमा का ग्रहण कैसे होता है? चन्द्रमा सूर्य्य और राहु के कामभोगों का विचार।

(७) उ०– लोक का विस्तार, लोक का एक भी परमाणु-प्रदेश ऐसा नहीं है जहाँ पर यह जीव न जन्मा और न मरा हो। इस जीव का इस संसार में प्रत्येक प्राणी के साथ शत्रु, मित्र, माता, पिता, स्त्री, पुत्र आदि रूप से सम्बन्ध हो चुका है।

(८) उ०– क्या महर्द्धिक देवता देवलोक से चव कर सर्प और हाथी के भव में जा सकता है और एक भवावतारी हो सकता है? वानर, कुक्कुट (कूकड़ा) आदि मर कर रत्नप्रभा आदि नरकों में उत्कृष्ट स्थिति वाला नैरयिक रूप से उत्पन्न हो सकता है या नहीं? इत्यादि प्रश्नोत्तर।

(९) उ०– देवता के भविक द्रव्यदेव, नरदेव, धर्मदेव आदि पाँच भेद, ये देव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं? कितनी स्थिति होती है? आयु पूर्ण करके कहाँ जाते हैं? इनका अन्तर काल, विकुर्वणा, तथा अल्पबहुत्व का विस्तार पूर्वक विवेचन।

(१०) उ०– ज्ञानात्मा, दर्शनात्मा आदि आत्मा के आठ भेद, इनका पारस्परिक सम्बन्ध, अल्पबहुत्व, द्विप्रदेशी, त्रिप्रदेशिक, चतुःप्रदेशिक, पंचप्रदेशिक स्कन्ध और इनके भंग आदि का विस्तृत विवेचन।

तेरहवाँ शतक

(१) रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा आदि सात नरकों में नरकावासों की संख्या,उनका विस्तार। कितने जीव एक साथ नरक में उत्पन्न हो सकते हैं और कितने वहाँ से निकल सकते हैं? किस लेश्या वाला जीव किस नरक में उत्पन्न होता है इत्यादि विचार।

(२) उ०– देवताओं के भेद,देवताओं के विमानों की संख्या, उनकी लम्बाई चौड़ाई। असुरकुमारावास में एक समय में कितने जीव उत्पन्न हो सकते हैं ? इसी तरह अनुत्तर विमानों तक उत्पाद और उद्वर्तना विषयक प्रश्न, किस लेश्या वाला जीव कौनसे देवलोक में उत्पन्न हो सकता है ? इत्यादि अनेक प्रश्नोत्तर ।

(३) उ०– नारकी जीवों के आहार आदि के विषय में प्रश्न। उत्तर के लिए श्री पन्नवणा के परिचारणा पद की भलामण।

(४) उ०– नरक, नरकावास, वेदना, नरकों का विस्तार। ऊर्ध्वलोक और तिर्यग्लोक का विस्तार आदि। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय आदि का जीवों और अजीवों के प्रति उपकार, अस्तिकायों के एक प्रदेश,दो प्रदेश,तीन प्रदेश आदि की वक्तव्यता। आठ रुचक प्रदेश और उनसे दिशाओं का विचार। लोक संस्थान सम विषम आदि का विचार ।

(५) उ०– नैरयिक,सचित्त, अचित्त या मिश्र आहार करते हैं। उत्तर के लिए श्री पन्नवणा सूत्र आहार पद की भलामण।

(६) उ०– नैरयिक अन्तर सहित उत्पन्न होते हैं या अन्तर रहित ? चमरेन्द्र और उसकी चमरचञ्चा राजधानी का वर्णन। चम्पा नगरी, सिन्धुसौवीर देश, उदायन राजा, प्रभावती रानी। उदायन राजा का भगवान् महावीर स्वामी के वन्दन के लिए जाना। अपने भाणेज केशीकुमार को राज्य भार देकर दीक्षा लेने का संकल्प, दीक्षा ग्रहण करना। उदायन राजा के पुत्र अभिचि-

कुमार का उदायन के प्रति द्वेष भाव। मर कर रत्नप्रभा नारकी के पास असुरकुमारों के आवासों में जन्म लेना। वहाँ से निकल कर महाविदेह क्षेत्र में सिद्ध गति को प्राप्त करना।

(७) उ०—भाषा क्या है अर्थात् भाषा आत्मा या अनात्मा, रूपी या अरूपी, सचित्त या अचित्त, जीव या अजीव ? इसी तरह काया और मन के विषय में भी प्रश्नोत्तर। मरण के पाँच भेद, आवीचिकमरण, अवधिमरण, आत्यन्तिकमरण, बालमरण, पंडितमरण, प्रत्येक के क्रमशः ५, ५, ५, १२, २ भेद होते हैं। पण्डितमरण के पादोपगमन और भक्त प्रत्याख्यान रूप दो भेद। इनके भी निर्हारिम और अनिर्हारिम, सप्रतिकर्म और अप्रतिकर्म आदि भेदों का विस्तार पूर्वक वर्णन।

(८) उ०— कर्म एवं कर्मप्रकृतियों के विषय में प्रश्न। उत्तर के लिए पन्नवणा के 'बन्धस्थिति' नामक उद्देशे की भलामण।

(९) उ०— लब्धिधारी अनगार जलोक, बीजंबीजक पक्षी, बिडालक, जीवंजीवक (चकोर) पक्षी, हंस, समुद्रकाक, चक्रहस्त (जिसके हाथ में चक्र है), रत्नहस्त आदि अनेक प्रकार के रूप की विकुर्वणा करने की शक्ति रखता है इत्यादि अधिकार।

(१०) उ०—छाद्मस्थिक समुद्घात के भेदों के विषय में प्रश्न। उत्तर के लिए श्री पन्नवणा सूत्र के 'समुद्घात' पद की भलामण।

चौदहवाँ शतक

(१) उ०— इस शतक के दस उद्देशों की नाम सूचक संग्रह गाथा, भावितात्मा अनगार जो चरम देवावास का उल्लंघन कर परम देवावास को पहुंचा नहीं, वह काल करके कहाँ उत्पन्न हो ? इसी प्रकार असुरकुमार आदि के विषय में भी प्रश्नोत्तर। नैरयिकों की शीघ्रगति, नैरयिक आदि २४ दण्डक के जीव अनन्तरोपपन्न हैं परम्परोपपन्न हैं या अनन्तर परम्परानुपपन्न हैं ? इनका

आयुबन्ध आदि प्रश्न।

(२) उ०– उन्माद के भेद, नारकियों को कितनी तरह का उन्माद होता है? क्या असुरकुमार,इन्द्र,ईशानेन्द्र आदि वृष्टि और तमस्काय करते हैं ? इत्यादि प्रश्नोत्तर।

(३) उ०–महाकाय देव या असुरकुमार भावितात्मा अनगार के बीच में होकर जाने में समर्थ है या नहीं? क्या नैरयिक,असुर-कुमार, तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय आदि में विनय, सत्कार, आसनप्रदान आदि हैं ? क्या मनुष्य में विनय,सत्कारादि हैं? अल्प ऋद्धि वाला देवता महर्द्धिक देवों के बीच से, समर्द्धिक देवता समर्द्धिक देवों के बीच से जाने में समर्थ है या नहीं? बीच से जाने वाला देव शस्त्र प्रहार करके जा सकता है या बिना शस्त्र प्रहार किए ही जा सकता है?

(४) उ०–भूत,भविष्यत् और वर्तमान में पुद्गल का परिणाम, भूत, भविष्यत् और वर्तमान में जीव का परिणाम,परमाणुपुद्गल, शाश्वत, अशाश्वत, चरम, अचरम आदि प्रश्नोत्तर।

(५) उ०– क्या नैरयिक, असुरकुमार यावत् स्तनितकुमार अग्निकाय के बीच से होकर जाने में समर्थ हैं? नैरयिक अनिष्ट रूप, अनिष्टशब्द आदि दस स्थानों को भोगते है। पृथ्वीकायिक छः स्थानों को, बेइन्द्रिय दस स्थानों को, तेइन्द्रिय आठ स्थानों को, चौरिन्द्रिय नव स्थानों को,तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय,मनुष्य,वाणव्यन्तर, ज्योतिषी वैमानिक दस दस इष्ट अनिष्ट रूप स्थानों को भोगते हैं। महर्द्धिक देव क्या बाहरी पुद्गलों को लिए बिना पर्वत, भीत आदि को उल्लंघन करने में समर्थ है ? इत्यादि प्रश्नोत्तर।

(६) उ०–नैरयिक वीचि द्रव्य का आहार करते है या अवीचि द्रव्य का? नैरयिकों के परिणाम,आहार,योनि, स्थिति आदि का विचार। शक्रेन्द्र और ईशानेन्द्र को भोग भोगने की इच्छा होने पर किस प्रकार की विकुर्वणा करते हैं? इत्यादि प्रश्नोत्तर।

(७) उ०– केवल ज्ञान की प्राप्ति न होने से खिन्न चित्त हुए गौतम स्वामी को भगवान् महावीर का आश्वासन। द्रव्य तुल्यता, क्षेत्र तुल्यता आदि छः भेद, भक्तप्रत्याख्यानी अनगार आहार में मूर्च्छित नहीं होता। लवसप्तम देवों का अर्थ।

(८) उ०– रत्नप्रभा पृथ्वी का अन्य छः पृथ्वियों से अन्तर, रत्नप्रभा का सौधर्म देवलोक आदि से अन्तर। बारह देवलोकों का और अनुत्तर विमान आदि का पारस्परिक अन्तर, शालवृक्ष, शाल यष्टिका, उंबर यष्टिका, अंबड़ परिव्राजक मर कर कहाँ उत्पन्न होंगे? जृम्भक देवों के भेद, स्थिति, स्थान आदि के विषय में प्रश्नोत्तर।

(९) उ०– भावितात्मा अनगार क्या अपनी कर्मलेश्या को जानता और देखता है? क्या पुद्गल प्रकाशित होता है? नैरयिक यावत् असुरकुमार आदि को आत्त और अनात्त पुद्गल सुखकारी या दुःखकारी होते हैं? महर्द्धिक देव हजार रूप की विकुर्वणा कर हजार भाषा बोलने में समर्थ हो सकता है? सूर्य्य और सूर्य्य की प्रभा, श्रमणों के सुख की तुलना।

(१०) उ०–केवली और सिद्ध, छद्मस्थ को, अवधिज्ञानी को तथा रत्नप्रभा यावत् ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी को जानते और देखते हैं। केवली शरीर को संकुचित एवं प्रसारित करते हैं तथा आँख को खोलते और बन्द करते हैं इत्यादि प्रश्नोत्तर।

पन्द्रहवाँ शतक

(१) उ०– इस शतक में एक ही उद्देशा है। इसमें श्रमण भगवान् महावीर के शिष्य गोशालक का अधिकार है। भगवान् के पास दीक्षा लेना, ज्ञान पढ़ना, तेजोलेश्या प्रकट करना, भगवान् को जलाने के लिए भगवान् पर तेजोलेश्या फेंकना, सर्वानुभूति और सुनक्षत्र मुनि को जला कर भस्म कर डालना। इसके सात दिन बाद गोशालक का काल कर जाना। मरते समय गोशालक

का पश्चात्ताप। भगवान् के शरीर में पीड़ाकारी दाह, उसकी शान्ति के लिए रेवती श्राविका से बिजोरापाक मंगा कर सेवन करना, रोग की शान्ति। सुनक्षत्र, सर्वानुभूति और गोशालक मर कर कहाँ गये और वहाँ से चव कर कहाँ जावेंगे इत्यादि प्रश्नोत्तर।

सोलहवाँ शतक

(१) उ०— चौदह उद्देशों के नाम सूचक गाथा, वायुकाय की उत्पत्ति, वायुकाय का मरण, लोहे के चोट मारने वाले को कितनी क्रियाएं लगती हैं ? जीव अधिकरणी है या अधिकरण, जीव आत्माधिकरणी, पराधिकरणी या तदुभयाधिकरणी है ? शरीर, इन्द्रिय, योग आदि के भेद।

(२) उ०— जीवों को जरा और शोक होने का कारण। जरा और शोक का प्रश्न २४ दण्डकों में, पाँच प्रकार के अवग्रह का प्रश्न, शक्रेन्द्र सत्यवादी है या मिथ्यावादी ? शक्रेन्द्र सावद्य भाषा बोलता है या निरवद्य ? शक्रेन्द्र भवसिद्धिक है या अभवसिद्धिक। कर्म चैतन्यकृत है या अचैतन्यकृत इत्यादि प्रश्नोत्तर।

(३) उ०— कर्मप्रकृतियाँ, ज्ञानावरणीय कर्म को वेदता हुआ जीव कितनी प्रकृतियों को वेदता है ? काउसग्ग में स्थित मुनि के अर्श को काटने वाले वैद्य और मुनि को कौनसी और कितनी क्रियाएँ लगती हैं ? आतापना की विधि।

(४) उ०—एक उपवास से साधु जितनी कर्म निर्जरा करता है, नारकी जीव हजार वर्ष में भी उतनी निर्जरा नहीं कर सकता है। श्रमण के अधिक कर्मक्षय होने का कारण तथा प्रश्नोत्तर।

(५) उ०— क्या देव बाह्य पुद्गलों को ग्रहण किए बिना यहाँ आने में या अन्य क्रिया करने में समर्थ है ? गंगदत्त देव का भगवान् के पास आगमन। गंगदत्त देव भवसिद्धिक है या अभवसिद्धिक। गंगदत्त देव को यह ऋद्धि कैसे मिली ? गंगदत्त देव के

पूर्वभव का कथन और उसकी स्थिति आदि का वर्णन।

(६) उ०- स्वप्नों का वर्णन। तीर्थङ्कर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, माण्डलिक राजा की माता कितने स्वप्न देखती है? छद्मस्थावस्था में देखे हुए भगवान् महावीर के दस स्वप्न और उनका फल। दूसरे सामान्य स्वप्नों के फल आदि का कथन।

(७) उ०- उपयोग के भेद, श्री पन्नवणा सूत्र के 'उपयोग' पद की भलामण।

(८) उ०-लोक का पूर्व, दक्षिण, ऊपर, नीचे का चरमान्त, रत्नप्रभा आदि के पूर्व चरमान्त आदि की वक्तव्यता, कायिकी आदि क्रियाओं का कथन। देव अलोक में हाथ फैलाने में समर्थ है या नहीं?

(९) उ०- बलीन्द्र की सभा का अधिकार।

(१०) उ०-अवधिज्ञान के भेद। श्री पन्नवणा सूत्र के तेतीसवें अवधि पद की भलामण।

(११) उ०-द्वीपकुमारों के आहार, लेश्या आदि का प्रश्नोत्तर।

(१२-१४) उ०-बारहवें उद्देशे में उदधिकुमार, तेरहवें उद्देशे में दिशाकुमार और चौदहवें उद्देशे में स्तनितकुमारों के आहार, लेश्या आदि का अधिकार है।

सतरहवाँ शतक

(१) उद्देशा- उदायी हस्ती कहाँ से मर कर आया है और मर कर कहाँ जायगा? कायिकी आदि क्रियाओं का अधिकार, ताड़ वृक्ष को तथा वृक्ष के मूल को और कन्द को हिलाने वाले को कितनी क्रियाएं लगती हैं? शरीर, इन्द्रिय, योग इत्यादि का कथन, औदयिक, पारिणामिक आदि छः भावों का कथन।

(२) उ०- संयत, विरत जीव धर्म, अधर्म या धर्माधर्म में स्थित होता है? २४ दण्डकों में यही प्रश्न। बालमरण पण्डित

मरण आदि के विषय में प्रश्न, क्या देव रूपी और अरूपी पदार्थ की विकुर्वणा करने में समर्थ है ? इत्यादि प्रश्नोत्तर।

(३) उ०—क्या शैलेशी अवस्था प्राप्त अनगार एजना (कंपना) आदि क्रिया करता है ? एजना के पाँच भेद, 'चलना' के तीन भेद, शरीर चलना, इन्द्रिय चलना और योग चलना। चलना के कारण, संयोग आदि का फल।

(४) उ०— जीव प्राणातिपातादि रूप क्रिया क्या स्पृष्ट करता है या अस्पृष्ट ? २४ दण्डक में यही प्रश्न। क्या दुःख और वेदना आत्मकृत, परकृत या उभयकृत है ? जीव आत्मकृत दुःखादि का ही वेदन करता है, परकृत का नहीं।

(५) उ०— ईशानेन्द्र की सभा की वक्तव्यता।

(६) उ०— रत्नप्रभा आदि पृथ्वियों में पृथ्वीकाय के जीव मरण समुद्घात करके सौधर्म आदि देवलोकों में उत्पन्न होते हैं तो उत्पत्ति के पश्चात् और पहले भी वे आहार ग्रहण करते हैं।

(७) उ०—सौधर्म देवलोक में पृथ्वीकायिक जीव मरण समुद्घात करके रत्नप्रभा यावत् ईषत्प्राग्भारा आदि पृथ्वियों में उत्पन्न होते हैं। वे उत्पत्ति के पहले और पश्चात् दोनों तरह से आहार के पुद्गल ग्रहण करते हैं।

(८) उ०— अप्कायिक जीव रत्नप्रभा से सौधर्म देवलोक में अप्काय रूप से उत्पन्न होते हैं इत्यादि प्रश्नोत्तर।

(९) उ०—अप्कायिक जीव के सौधर्म देवलोक से रत्नप्रभा के घनोदधि वलय में अप्काय रूप से उत्पन्न होने की वक्तव्यता।

(१०–११) उ०— वायुकाय जीवों की रत्नप्रभा से सौधर्म देवलोक में और सौधर्म देवलोक से रत्नप्रभा में उत्पत्ति के समय आहारादि की वक्तव्यता।

(१२–१७) उ०— बारहवें से सतरहवें उद्देशे तक प्रत्येक में

क्रमशः एकेन्द्रिय, नागकुमार, सुवर्णकुमार, विद्युत्कुमार, वायुकुमार, अग्निकुमारों के समान आहार, लेश्या का अल्पबहुत्व और ऋद्धि की अल्पबहुत्व की वक्तव्यता।

अठारहवाँ शतक

(१) उद्देशा– जीव जीवभाव से और सिद्ध सिद्धभाव से प्रथम हैं या अप्रथम? इसी तरह आहारक, अनाहारक, भवसिद्धिक, संज्ञी, लेश्या, दृष्टि, संयम, कषाय, ज्ञान, योग, उपयोग, वेद, शरीर, पर्याप्त आदि द्वारों से प्रथम और अप्रथम की वक्तव्यता, और इन्हीं द्वारों से चरम और अचरम की वक्तव्यता।

(२) उ०– कार्तिक सेठ का अधिकार।

(३) उ०–माकन्दी पुत्र अनगार का अधिकार। भगवान् से किये गये प्रश्नों का उत्तर। पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय से निकल कर जीव मनुष्य भव को प्राप्त कर मोक्ष जा सकता है। निर्जरित पुद्गल सर्वलोक व्यापी हैं। छद्मस्थ निर्जरा के पुद्गलों का वर्ण आदि देख सकता है। बन्ध के प्रयोग बन्ध, विस्रसा बन्ध आदि भेद तथा इनका वर्णन।

(४) उ०–प्राणातिपात मृषावाद आदि जीव के परिभोग में आते भी हैं और नहीं भी आते, कषाय के वर्णन के लिए पन्नवणा के कषाय पद की भलामण। क्या नैरयिक यावत् स्तनितकुमार आदि कृतयुग्म, कल्योज, द्वापरयुग्म आदि राशि रूप हैं। इसी प्रकार चौवीस दण्डकों तक प्रश्नोत्तर।

(५) उ०– असुरकुमारों में उत्पन्न होने वाले दो देवों में से एक के विशिष्ट रूपवान् सुन्दर और दूसरे के सामान्य रूपवान् होने का कारण, नरक में उत्पन्न होने वाले दो नैरयिकों में एक मिथ्यादृष्टि, महाकर्मा और महावेदना वाला और दूसरा सम्यग्दृष्टि, अल्पकर्मा और अल्पवेदना वाला क्यों होता है? चौवीस दण्डकों में

यही प्रश्नोत्तर। नैरयिक आदि जीव आगे के भव का आयुष्य बाँध कर मरते हैं। देवों की इष्ट और अनिष्ट विकुर्वणा।

(६) उ०– गुड़, भ्रमर, कोयल आदि निश्चय नय से पाँच वर्ण, दो गन्ध, पाँच रस और आठ स्पर्श वाले होते हैं। इसी प्रकार द्विप्रादेशिक, त्रिप्रादेशिक यावत् अनन्त प्रादेशिक स्कन्ध में वर्णादि की वक्तव्यता की गई है।

(७) उ०– यक्षाविष्ट केवली सत्य और असत्य, सावद्य और निरवद्य भाषा बोलता है ऐसा अन्ययूथिकों का मन्तव्य। उपधि के सचित्त अचित्त और सचित्ताचित्त तीन भेद, प्रणिधान के दो भेद, मद्दुक श्रमणोपासक का अधिकार। देवों का विकुर्वण। सामर्थ्य, देवासुर संग्राम, देवों का गमन सामर्थ्य, देवों के पुण्यकर्म के क्षय का तारतम्य।

(८) उ०– भावितात्मा अनगार के पैर नीचे दब कर यदि कोई जीव मर जाय तो ईर्यापथिकी क्रिया लगती है। छद्मस्थ के ज्ञान का विषय, अन्य यूथिकों का गौतम स्वामी से प्रश्नोत्तर, अवधिज्ञानी के ज्ञान का विषय, ज्ञान और दर्शन के समय की भिन्नता।

(९) उ०– भव्य द्रव्य नैरयिक यावत् वैमानिक देवों तक के आयुष्य का कथन।

(१०) उ०– वैक्रिय लब्धि का सामर्थ्य, वस्ति और वायुकाय की स्पर्शना, रत्नप्रभा और सौधर्म देवलोक के नीचे के द्रव्य, वाणिज्य ग्राम के सोमिल ब्राह्मण की यात्रा, यापनीय, अव्याबाध और प्रासुक विहार आदि के विषय में प्रश्न, सरीसव (सरसों) और कुलत्था भक्ष्य हैं या अभक्ष्य इत्यादि का निर्णय।

उन्नीसवाँ शतक

(१-२) उ०– लेश्या [illegible] । [illegible] के

सतरहवें 'लेश्या पद' के पाँचवें 'गर्भोद्देशक' की भलामण।

(३) उ०- चार पाँच पृथ्वीकायिक मिल कर प्रत्येक शरीर बाँधते हैं। इनमें लेश्या द्वार, दृष्टि द्वार, ज्ञान द्वार, योग, उपयोग, किमाहार, स्थिति, उत्पाद द्वार, समुद्घात, उद्वर्तना द्वार आदि का वर्णन। इसी प्रकार अप्कायिक, अग्निकायिक, वनस्पतिकायिक जीवों में भी कहना चाहिए। पृथ्वीकायिक आदि की अवगाहना का अल्पबहुत्व, पृथ्वीकायिक आदि की पारस्परिक सूक्ष्मता, बादरपन, शरीर-प्रमाण अवगाहना आदि का कथन। पृथ्वीकायिक, अप्कायिक आदि को कैसी पीड़ा होती है? इत्यादि विचार।

(४) उ०-महाआस्रव, महाक्रिया, महावेदना और महानिर्जरा की अपेक्षा नैरयिकों में १६ भाँगे। इसी प्रकार २४ दण्डकों में कथन करना चाहिए।

(५) उ०- नैरयिकों में अल्पस्थिति और महास्थिति, अल्प वेदना, महावेदना आदि का कथन।

(६) उ०- द्वीप समुद्रों के संस्थान आदि के विषय में प्रश्न। उत्तर के लिए श्री जीवाभिगम सूत्र की भलामण।

(७) उ०- भवनवासियों से वैमानिक देवों तक विमानों की संख्या, उनकी बनावट आदि के विषय में प्रश्नोत्तर। वे सब रत्नों के बने हुए हैं।

(८) उ०- जीव, कर्म, शरीर, सर्वेन्द्रिय, भाषा, मन, कषाय, वर्ण, संस्थान, संज्ञा, लेश्या, दृष्टि, ज्ञान, अज्ञान, योग, उपयोग आदि निर्वृत्तियों का स्वरूप।

(९) उ०-शरीरकरण, इन्द्रियकरण, पुद्गलकरण, वर्णकरण संस्थानकरण आदि का विवेचन।

(१०) उ०- वाणव्यन्तर देवों के सम आहार का प्रश्न। सोलहवें शतक के द्वीपकुमारों के उद्देशे की भलामण।

बीसवाँ शतक

(१) उ०– बेइन्द्रिय आदि जीवों के शरीर बन्ध का क्रम, लेश्या, संज्ञा, प्रज्ञा आदि का कथन, तेइन्द्रिय और चौरिन्द्रिय जीवों के विषय में भी प्रश्न। पन्नवणा सूत्र की भलामण। पञ्चेन्द्रिय जीव चार पाँच मिल कर एक शरीर नहीं बाँधते इत्यादि।

(२) उ०– धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय आदि के अभिवचनों (पर्याय नामों) का कथन।

(३) उ०–प्राणातिपात आदि आत्मा के सिवाय नहीं परिणमते हैं। गर्भ में उपजता हुआ जीव कितने वर्ण, गन्ध आदि से परिणत होता है? बारहवें शतक के पाँचवें उद्देशे की भलामण।

(४) उ०– इन्द्रियोपचय कितने प्रकार का है? पन्नवणा के पन्द्रहवें इन्द्रिय पद के दूसरे उद्देशे की भलामण।

(५) उ०– परमाणु में वर्णादि की वक्तव्यता, वर्ण, गन्ध आदि की अपेक्षा द्विप्रादेशिकस्कन्ध के ४२ भाँगे, त्रिप्रादेशिकस्कन्ध के १२० भाँगे, चतुःप्रादेशिक स्कन्ध के २२२ भाँगे, पञ्चप्रादेशिक स्कन्ध के ३२४ भाँगे, छःप्रादेशिक स्कन्ध के ४१४ भाँगे, सातप्रादेशिक स्कन्ध के ४७४ भाँगे, अष्टप्रादेशिक स्कन्ध के ५०४ भाँगे नवप्रादेशिक स्कन्ध के ५१४ भाँगे। दसप्रादेशिक स्कन्ध के ५१६ भाँगे। मृदु कर्कश आदि स्पर्शों के भाँगे। बादरस्कन्ध के स्पर्श की अपेक्षा १२९६ भांगे। परमाणु के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा भिन्न भिन्न रीति से भाँगे।

(६) उ०–रत्नप्रभा और शर्कराप्रभा के बीच से मर कर सौधर्म आदि में उत्पन्न होने वाले पृथ्वीकायिक, अप्कायिक आदि जीवों की उत्पत्ति और आहार का पौर्वापर्य्य (पहले पीछे) का वर्णन।

(७) उ०–ज्ञानावरणीय कर्म का बन्ध, उदय, स्त्रीवेद का बन्ध, दर्शनमोहनीय कर्म के बन्ध आदि का कथन।

(८) उ०– १५ कर्म भूमि, ३० अकर्म भूमि का अधिकार। वर्तमान अवसर्पिणी के २४ तीर्थङ्करों के नाम, इनका पारस्परिक अन्तर, कालिकश्रुत और दृष्टिवाद के विच्छेद का अधिकार। भगवान् महावीर स्वामी का तीर्थ(शासन)इक्कीस हजार वर्ष तक चलेगा। भावी तीर्थङ्करों में अन्तिम तीर्थङ्कर के शासन की स्थिति।

(९) उ०– जंघाचारण और विद्याचारण लब्धि का अधिकार। इनकी ऊपर, नीचे और तिर्छी गति का विषय। लब्धि का उपयोग करने वाले मुनि के आराधक विराधक का निर्णय।

(१०) उ०– सोपक्रम और निरुपक्रम आयुष्य का वर्णन, जीव आत्मोपक्रम,परोपक्रम या निरुपक्रम से उत्पन्न होता है। इसी प्रकार उद्वर्तन और च्यवन के सम्बन्ध में भी जानना चाहिए। कति संचित,अकति संचित और अवक्तव्य संचित की वक्तव्यता, इनका पारस्परिक अल्पबहुत्व, समर्जित की वक्तव्यता और अल्पबहुत्व।

इक्कीसवाँ शतक

इस शतक में आठ वर्ग हैं। प्रत्येक वर्ग में दस दस उद्देशे हैं अर्थात् कुल ८० उद्देशे हैं।

प्रथम वर्ग, (१) उ०–शालि व्रीहि आदि धान्य एक समय में कितने उत्पन्न हो सकते हैं? इनकी अवगाहना, कर्मबन्ध, लेश्या आदि का वर्णन। इनके मूल में जीव कहाँ से उत्पन्न होते हैं? पन्नवणा के व्युत्क्रान्ति पद की भलामण।

(२–१०) उ०–कन्द,मूल के जीव कैसे और कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं? इसका सारा अधिकार पहले उद्देशे की तरह है। स्कन्ध, त्वचा, शाखा, प्रवाल,कोंपल और पत्ते आदि का वर्णन एक एक उद्देशे में है। आठवें, नवें और दसवें उद्देशे में क्रमशः फूल, फल और बीज का वर्णन है।

दूसरा वर्ग, (१–१०) उ०– कलाय (मटर), मसूर, तिल, मूँग,

उड़द, वाल, कुलत्थी, आलिसंदक, साटन और पलिमंथक इन दस प्रकार के धान्य विशेषों का वर्णन इन दस उद्देशों में किया गया है। इसका सारा अधिकार पहले वर्ग के पहले उद्देशे में बताए गए शालि धान की तरह जानना चाहिए।

तीसरा वर्ग, (१-१०) उ०--इन दस उद्देशों में क्रम से अलसी, कुसुंभ, कोद्रव, कांगणी, राल, तुअर, कोदूसा, सण, सरिसव और मूलबीजक इन दस वनस्पति विशेषों का वर्णन है। इनमें भी पहले शालि उद्देशे की भलामण है।

चौथा वर्ग, (१-१०) उ०- बाँस, वेणु, कनक, कर्कावंश, चारुवंश, दंडा, कुँडा, विमा, चंडा, वेणुका और कल्याणी इन वनस्पतियों के मूल में उत्पन्न होने वाले जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं? उत्तर के लिए पहले शालि उद्देशे की भलामण।

पाँचवाँ वर्ग, (१-१०) उ०-इक्षु (सेलडी), इक्षुवाटिका, वीरण, इक्कड, भमास, सूँठ, शर, वेत्र, तिमिर, सतपोरग और नड इन वनस्पतियों के मूल में उत्पन्न होने वाले जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं? उत्तर के लिये पहले शालि उद्देशे की भलामण।

छठा वर्ग, (१-१०) उ०- सेडिय, भंतिय, दर्भ, कोंतिय, दर्भकुश, पर्वक, पोदेइल, अर्जुन, आषाढक, रोहितक, समु, अवखीर, भुस, एरंड, कुरुकुंद, करकर, सूँठ, विभंग, मधुरयण, थुरग, शिल्पिक और सुंकलितृण, इन सब वनस्पतियों के मूल में उत्पन्न होने वाले जीवों की वक्तव्यता।

सातवाँ वर्ग, (१-१०) उ०-अभ्ररुह, वायण, हरितक, तांदलज, तृण, वत्थुल, पोरक, मार्जारक, बिल्ली, पालक, दगपिप्पली, दर्वी, स्वस्तिक, शाकमंडुकी, मूलक, सरसव, अंबिलशाक, जियंतग, इन सब वनस्पतियों के मूल में उत्पन्न होने वाले जीवों की वक्तव्यता।

आठवाँ वर्ग, (१-१०) उ०-तुलसी, कृष्ण, दराल, फणेज्जा,

अज्जा, चोरा, जीरा, दमणा, मरुया, इंदीवर और शतपुष्पा इन वनस्पतियों के मूल में उत्पन्न होने वाले जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं। उत्तर के लिए पहले शालि उद्देशे की भलामण।

बाईसवाँ शतक

बाईसवें शतक में छः वर्ग हैं। एक एक वर्ग में दस दस उद्देशे हैं। प्रथम वर्ग के दस उद्देशों में ताल, तमाल आदि वृक्षों के समुच्चय रूप से नाम दिए गए हैं। दूसरे वर्ग में एक बीज वाले वृक्ष–नीम, आम आदि का वर्णन है। तीसरे वर्ग में अगस्तिक, तिन्दुक आदि बहुबीज वाले (जिसके एक फल में बहुत बीज हों) वृक्षों का वर्णन है। चौथे वर्ग में बैंगण आदि गुच्छ वनस्पति विशेष का वर्णन है। पाँचवें वर्ग में नवमालिका, कोरण्टक आदि गुल्म वनस्पति का वर्णन है। छठे वर्ग में पूसफली, कालिंगी, तुम्बी आदि लताओं का वर्णन है। इनके मूल में उत्पन्न होने वाले जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं? इत्यादि प्रश्न किए गए हैं। उत्तर के लिए प्रायः शालि उद्देशे की भलामण दी गई है।

तेईसवाँ शतक

तेईसवें शतक में पाँच वर्ग हैं। प्रत्येक वर्ग में दस दस उद्देशे हैं। प्रथम वर्ग में आलू, मूला आदि साधारण वनस्पतियों के नाम बताए गए हैं। दूसरे वर्ग में लोही, नीहू, अश्वकर्णी, सिंहकर्णी, मुसुंढी आदि अनन्तकायिक वनस्पति का वर्णन है। आय, काय, कुन्दरुक, कुहुणा आदि वनस्पतियों का वर्णन तीसरे वर्ग में है। मधुरसा, राजवल्ली, दन्ती आदि वनस्पतियों का वर्णन चौथे वर्ग में है। मासपर्णी, मुद्गपर्णी, काकोली आदि वनस्पतियों का वर्णन पाँचवें वर्ग में है। इन वनस्पतियों के मूल में उत्पन्न होने वाले जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं? इत्यादि प्रश्नोत्तर हैं।

चौवीसवाँ शतक

(१) उ०– रत्नप्रभा आदि सात पृथ्वियों में जीव किस गति से आकर उत्पन्न होता है ? उत्पन्न होने वाले जीव में परिमाण, संहनन, अवगाहना, संस्थान, लेश्या, दृष्टि, ज्ञान, अज्ञान, योग, उपयोग, संज्ञा, कषाय, इन्द्रिय, समुद्घात, वेदना, वेद, आयु, अध्यवसाय, अनुबन्ध, कायसंवेध, स्थिति आदि का विस्तृत वर्णन।

(२–२४) उ०– असुरकुमारों में भी परिमाण, संहनन आदि की वक्तव्यता है। इसके आगे प्रत्येक उद्देशे में एक एक दण्डक का वर्णन किया गया है। इस प्रकार २४ उद्देशों में चौवीस दण्डक पर उपरोक्त बीस बातों का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है।

पच्चीसवाँ शतक

(१) उ०– लेश्या के छः भेद, संसारी जीव के चौदह भेद, योग की अपेक्षा संसारी जीवों का अल्पबहुत्व, योग के १५ भेद, योगों का पारस्परिक अल्पबहुत्व। एक साथ उत्पन्न होने वाले जीव समयोगी हैं या विषमयोगी ? इत्यादि प्रश्नोत्तर।

(२) उ०– अजीव द्रव्यों के भेद, जीव द्रव्य की अनन्तता का कारण, जीव और अजीव द्रव्य का पारस्परिक भोग, असंख्य लोकाकाश में अनन्त द्रव्यों की स्थिति, औदारिक शरीर स्थित और अस्थित दोनों प्रकार के द्रव्यों को ग्रहण करता है।

(३) उ०– छः संस्थानों का विस्तृत विवेचन, इनका परिमाण, प्रदेशावगाढ़ता, स्थिति, वर्णादि पर्याय आदि का कथन, लोक की श्रेणी, अलोक की श्रेणी, लोकाकाश की श्रेणी, अलोकाकाश की श्रेणी, श्रेणी के सात भेद, गणिपिटक के १२ भेद, नरक आदि गतियों का अल्पबहुत्व।

(४) उ०–युग्म के चार भेद, २४ दण्डक में कृतयुग्म का कथन, धर्मास्तिकाय आदि छः द्रव्यों में कृतयुग्मादि का विचार, सिद्धों

में कृतयुग्म का कथन। जीव कृतयुग्मादि प्रदेशावगाढ़ हैं। २४ दण्डक में इसी प्रकार कथन। जीव काला, नीला आदि पर्यायों में कृतयुग्मादि रूप है। परमाणु और द्विप्रादेशिक स्कन्ध का, द्विप्रादेशिक और त्रिप्रादेशिक स्कन्ध का, दसप्रादेशिक, संख्यात, असंख्यात और अनन्त प्रादेशिक स्कन्ध का अल्पबहुत्व। सर्व जीव सकम्प और निष्कम्प हैं इत्यादि विचार, परमाणुओं के कम्पन और अकम्पन के समय का निर्णय, धर्मास्तिकाय आदि तथा जीव आदि के मध्य प्रदेशों का कथन।

(५) उ०– जीव पर्याय और अजीव पर्यायों का कथन। श्री पन्नवणा के अजीव पद की भलामण। आवलिका, पुद्गल परावर्तन, स्तोक आदि के संख्यात, असंख्यात समय का कथन, अतीत, अनागत और वर्तमान काल के समय की वक्तव्यता। निगोद का वर्णन, श्री जीवाभिगम सूत्र की भलामण। औदयिक आदि छः भावों का कथन।

(६) उ०– निर्ग्रन्थ के ५ भेद– पुलाक, बकुश, कुशील, निर्ग्रन्थ और स्नातक। पुलाक के ५ भेद– ज्ञान, दर्शन, चारित्र, लिङ्ग और यथासूक्ष्म पुलाक। बकुश के ५ भेद– आभोग बकुश, अनाभोग बकुश, संवृत बकुश, असंवृत बकुश और यथासूक्ष्म बकुश। कुशील के दो भेद– प्रतिसेवना कुशील और कषाय कुशील। प्रतिसेवना कुशील के ५ भेद– ज्ञान प्रतिसेवना कुशील, दर्शन प्रतिसेवना कुशील, चारित्र प्रतिसेवना कुशील, लिङ्ग प्रतिसेवना कुशील और यथासूक्ष्म प्रतिसेवना कुशील। कषाय कुशील के ५ भेद– ज्ञान, दर्शन, चारित्र, लिङ्ग और यथासूक्ष्म कषाय कुशील। निर्ग्रन्थ के ५ भेद– प्रथमसमय निर्ग्रन्थ, अप्रथमसमय निर्ग्रन्थ, चरमसमय निर्ग्रन्थ, अचरमसमय निर्ग्रन्थ और यथासूक्ष्म निर्ग्रन्थ। स्नातक के ५ भेद– अच्छवि, अशबल, अकर्मांश, संशुद्ध ज्ञान दर्शनवान् अरि-

हन्त जिन केवली, अपरिस्रावी (कर्मबन्ध रहित)।

उपरोक्त पाँचों निर्ग्रन्थों में निम्न लिखित ३६ बातों का कथन इस उद्देशे में किया गया है-

प्रज्ञापन, वेद, राग, कल्प, चारित्र, प्रतिसेवना, ज्ञान, तीर्थ, लिङ्ग, शरीर, क्षेत्र, काल, गति, संयम, निकाश (संन्निकर्ष), योग, उपयोग, कषाय, लेश्या, परिणाम, बन्ध, वेद (कर्मों का वेदन), उदीरणा, उपसंपद्-हान (स्वीकार और त्याग), संज्ञा, आहार, भव, आकर्ष, कालमान, अन्तर, समुद्घात, क्षेत्र, स्पर्शना, भाव, परिमाण और अल्पबहुत्व।

(७) उ०- संयम के भेद, सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहार विशुद्धि, सूक्ष्म सम्पराय, यथाख्यात। सामायिक के दो भेद- इत्वरिक (अल्प कालीन), यावत्कथिक (जीवन पर्यन्त)। छेदोपस्थापनीय के दो भेद- सातिचार और निरतिचार। परिहारविशुद्धि के दो भेद- निर्विशमानक (तप करने वाला), निर्विष्टकायिक (वैयावृत्य करने वाला)। सूक्ष्म सम्पराय के दो भेद- संक्लिश्यमानक और विशुद्ध्यमानक। यथाख्यात के दो भेद- छद्मस्थ और केवली। इन पाँचों संयमों में भी उपरोक्त प्रज्ञापन, वेद, राग, कल्प, चारित्र आदि ३६ बातों का कथन इस उद्देशे में किया गया है।

(८) उ०-नारकी जीवों की उत्पत्ति, गति और इनका कारण। परभव, आयुष्यबन्ध का कारण। असुरकुमार आदि की उत्पत्ति और गति आदि का कथन।

(९-१२) उ०-भवसिद्धिक, अभवसिद्धिक, सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि नैरयिकों की उत्पत्ति का कथन क्रमशः नवें, दसवें, ग्यारहवें और बारहवें उद्देशे में किया गया है। २४ दण्डक में भी इसी प्रकार का कथन किया गया है।

छब्बीसवाँ शतक

(१) उ०-सामान्य जीव की अपेक्षा बन्ध वक्तव्यता। लेश्या, कृष्णपाक्षिक, शुक्लपाक्षिक, दृष्टि, ज्ञान, अज्ञान, संज्ञा, वेद, कषाय योग और उपयोगयुक्त जीव की अपेक्षा बन्ध वक्तव्यता। नैरयिक आदि दण्डकों में ज्ञानावरणीयादि कर्मों की बन्ध वक्तव्यता।

(२-११) उ०-दूसरे से ग्यारहवें उद्देशे तक क्रमशः निम्न विषय वर्णित हैं-अनन्तरोपपन्न नैरयिक का पापकर्म बन्ध, परम्परोपपन्न, अनन्तरावगाढ, परम्परावगाढ, अनन्तराहारक, अनन्तर पर्याप्तक, परम्परापर्याप्तक, चरम और अचरम नैरयिकों के पापकर्म की बन्ध वक्तव्यता। इन सब में इसी शतक के पहले उद्देशे की भलामण दी गई है।

सत्ताईसवाँ शतक

(१-११) उ०- सत्ताईसवें शतक के ग्यारह उद्देशे हैं जिनमें निम्न विषय वर्णित हैं- जीव ने पाप कर्म किया है, करता है और करेगा, पाप कर्म नहीं किया, नहीं करता है और नहीं करेगा इत्यादि प्रश्नोत्तर हैं और अनन्तरोपपन्न परम्परोपपन्न इत्यादि का कथन छब्बीसवें शतक की तरह किया गया है।

अठाईसवाँ शतक

(१-११) उ०- अट्ठाईसवें शतक में ग्यारह उद्देशे हैं जिनमें निम्न विषय हैं- सामान्य जीव की अपेक्षा से कहा गया है कि इस जीव ने कहाँ और किस तरह से पाप कर्म उपार्जन किये हैं और कहाँ और किस तरह से भोगेगा? इस प्रकार प्रश्नोत्तर करके अनन्तरोपपन्न परम्परोपपन्न इत्यादि का कथन जिस तरह २६ वें शतक में किया गया है उसी तरह यहाँ भी सभी उद्देशों में समझना चाहिए।

उनतीसवाँ शतक

(१-११)उ०-इस शतक में ग्यारह उद्देशे हैं। क्या जीव पाप

कर्म का प्रारम्भ एक ही समय (समकाल) में करते हैं और उनका अन्त भी समकाल में ही करते हैं ? इत्यादि प्रश्न करके अनन्तरोपपन्न परम्परोपपन्न इत्यादि का कथन ग्यारह उद्देशों में छब्बीसवें शतक की तरह किया गया है।

तीसवाँ शतक

(१-११) उ०- तीसवें शतक में ग्यारह उद्देशे हैं। पहले उद्देशे में चार प्रकार के समवसरण, क्रियावादी, अक्रियावादी, अज्ञानवादी, विनयवादी। सलेश्य, सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, मिश्रदृष्टि पृथ्वीकायिक आदि जीवों में क्रियावादित्व आयुबन्ध आदि के प्रश्नोत्तर हैं। दूसरे उद्देशे से ग्यारहवें उद्देशे तक अनन्तरोपपन्नक परम्परोपपन्नक आदि का कथन २६ वें शतक की तरह किया गया है।

इकतीसवाँ शतक

(१-२८) उ०- इस शतक में २८ उद्देशे हैं। जिनमें निम्न विषय वर्णित हैं। जिस संख्या में से चार चार बाकी निकालते हुए अन्त में चार बचें वह क्षुद्रकृतयुग्म, तीन बचें तो त्र्योज, दो बचें तो द्वापरयुग्म और एक बचे तो कल्योज कहलाता है। नैरयिकों के उपपात, उपपात संख्या, उपपात के भेद इत्यादि का कथन किया गया है। दूसरे से आठवें उद्देशे तक क्रमशः कृष्णलेश्या नीललेश्या कापोतलेश्या वाले नैरयिक, कृष्णलेश्या वाले भवसिद्धिक, कापोतलेश्या वाले भवसिद्धिक, नीललेश्या वाले भवसिद्धिक जीवों का कथन कृतयुग्म आदि की अपेक्षा से किया गया है।

जिस प्रकार ऊपर भवसिद्धिक जीव की अपेक्षा चार उद्देशे कहे गये हैं उसी तरह अभवसिद्धिक, सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, कृष्णपाक्षिक और शुक्लपाक्षिक प्रत्येक के चार चार उद्देशे कहे गये हैं, उनमें कृतयुग्म, त्र्योज, द्वापरयुग्म और कल्योज की अपेक्षा उपपात आदि का वर्णन किया गया है।

बत्तीसवाँ शतक

(१-२८) उ०- बत्तीसवें शतक के २८ उद्देशे हैं। इकतीसवें शतक में क्षुद्र कृतयुग्म नैरयिकों की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है। इस बत्तीसवें शतक में नैरयिकों की उद्वर्तना की अपेक्षा से २८ उद्देशे कहे गये हैं। क्षुद्रकृतयुग्म आदि जीव नरक से निकल कर कहाँ जाते हैं, एक समय में कितने जीव निकलते हैं, इत्यादि बातों का कथन किया गया है।

तेतीसवाँ शतक

तेतीसवें शतक में एकेन्द्रिय जीवों का वर्णन है। इस शतक के अन्तर्गत बारह शतक हैं। प्रत्येक शतक में ग्यारह ग्यारह उद्देशे हैं। इस प्रकार इस तेतीसवें शतक में कुल १३२ उद्देशे हैं।

प्रथम शतक (१-११) उ०- एकेन्द्रिय के पृथ्वीकाय अप्काय आदि पाँच भेद, पृथ्वीकाय के सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त और अपर्याप्त चार भेद हैं। इनको ज्ञानावरणीयादि आठों ही कर्मों का बन्ध होता है और वेदन भी होता है। इस प्रकार पहले उद्देशे में सामान्य रूप से कथन किया गया है। दूसरे से ग्यारहवें उद्देशे तक क्रमशः अनन्तरोपपन्न परम्परोपपन्न अनन्तरावगाढ़ परम्परावगाढ़ अनन्तराहारक परम्पराहारक अनन्तर पर्याप्तक परम्परा पर्याप्तक चरम और अचरम की अपेक्षा से एकेन्द्रिय का कथन किया गया है और उनमें एकेन्द्रिय जीवों में कर्मप्रकृतियों के बन्ध और वेदन का वर्णन किया गया है।

दूसरे शतक में कृष्णलेश्या वाले एकेन्द्रिय की अपेक्षा अनन्तरोपपन्नक और परम्परोपपन्नक के भेद से उपरोक्त रीति से ग्यारह उद्देशे कहे गये हैं। इसी प्रकार तीसरे शतक में नील लेश्या वाले एकेन्द्रिय, चौथे शतक में कापोतलेश्या वाले एकेन्द्रिय, पाँचवें शतक में भवसिद्धिक एकेन्द्रिय, छठे शतक में कृष्णलेश्या वाले भव-

सिद्धिक एकेन्द्रिय, सातवें शतक में नील लेश्या वाले भवसिद्धिक एकेन्द्रिय, आठवें शतक में कापोत लेश्या वाले भवसिद्धिक एकेन्द्रिय, नवें शतक में सामान्य रूप से अभवसिद्धिक एकेन्द्रिय, दसवें शतक में कृष्ण लेश्या वाले अभवसिद्धिक एकेन्द्रिय, ग्यारहवें शतक में नील लेश्या वाले अभवसिद्धिक एकेन्द्रिय और बारहवें शतक में कापोत लेश्या वाले अभवसिद्धिक एकेन्द्रिय जीवों के कर्म बन्ध और वेदन आदि का कथन किया गया है। प्रत्येक शतक के ग्यारह ग्यारह उद्देशों में अनन्तरोपपन्नक परम्परोपपन्नक आदि की अपेक्षा से वर्णन किया गया है।

चौंतीसवाँ शतक

चौंतीसवें शतक के अन्तर्गत बारह शतक हैं। प्रत्येक शतक में ग्यारह ग्यारह उद्देशे हैं। इस प्रकार इसके भी कुल १३२ उद्देशे हैं। पहले शतक के पहले उद्देशे में निम्न विषय वर्णित हैं-

एकेन्द्रिय जीवों के पाँच भेद। पृथ्वीकाय के सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त, अपर्याप्त चार भेद हैं। इनकी गति, विग्रहगति, गति और विग्रहगति का कारण, उपपात आदि का विस्तृत वर्णन है। दूसरे से ग्यारहवें उद्देशे तक प्रत्येक में क्रमशः अनन्तरोपपन्न परम्परोपपन्न आदि की अपेक्षा एकेन्द्रियों का वर्णन किया गया है। आगे दूसरे से बारहवें शतक तक तेतीसवें शतक की तरह वर्णन है।

पैंतीसवाँ शतक

इस शतक के अन्तर्गत बारह शतक हैं। एक एक शतक में ग्यारह ग्यारह उद्देशे हैं। जिन में निम्न विषय वर्णित हैं- पहले शतक के पहले उद्देशे में १६ महायुग्म का वर्णन है। कृतयुग्मकृतयुग्म एकेन्द्रियों का उपपात, जीवों की संख्या, बन्ध, सातावेदनीय, असातावेदनीय, लेश्या, शरीरादि के वर्ण, अनुबन्ध काल, संवेध आदि का कथन किया गया है। दूसरे से ग्यारहवें उद्देशे तक प्रथम

समयोत्पन्न कृतयुग्मकृतयुग्म एकेन्द्रिय, अप्रथम समयोत्पन्न, चरम समयोत्पन्न, अचरमसमयोत्पन्न, प्रथमप्रथमसमयकृतयुग्म कृतयुग्म, अप्रथम प्रथम समयवर्ती, प्रथम चरम समयवर्ती, प्रथम अचरम समयवर्ती, चरम चरम समयवर्ती, चरम अचरम समयवर्ती कृतयुग्म कृतयुग्म एकेन्द्रिय जीवों के उत्पात आदि का वर्णन किया गया है। आगे दूसरे से बारहवें शतक तक में भवसिद्धिक कृष्ण लेश्या वाले भवसिद्धिक कृतयुग्म कृतयुग्म एकेन्द्रिय आदि का वर्णन तेतीसवें शतक की तरह किया गया है।

छत्तीसवाँ शतक

छत्तीसवें शतक के अन्तर्गत बारह शतक हैं। एक एक शतक में ग्यारह ग्यारह उद्देशे हैं। पहले शतक के पहले उद्देशे में निम्न-विषय वर्णित हैं।

कृतयुग्म कृतयुग्म बेइन्द्रिय जीवों के उत्पाद, अनुबन्ध काल आदि का वर्णन है। दूसरे से ग्यारहवें उद्देशे तक प्रथमसमयोत्पन्न अप्रथमसमयोत्पन्न आदि का कथन है।

दूसरे से बारहवें शतक तक भवसिद्धिक, भवसिद्धिक कृष्ण-लेश्या वाले, नीललेश्या वाले, बेइन्द्रिय जीवों का वर्णन तेतीसवे शतक की तरह किया गया है।

सैंतीसवाँ शतक

इस शतक के अन्तर्गत बारह शतक हैं। प्रत्येक में ग्यारह ग्यारह उद्देशे हैं अर्थात् इस शतक में कुल १३२ उद्देशे हैं। इस शतक में तेइन्द्रिय जीवों का वर्णन है। इसका सारा अधिकार तेतीसवें शतक की तरह ही है, किन्तु इसमें गति, स्थिति आदि का कथन तेइन्द्रिय जीवों की अपेक्षा किया गया है।

अड़तीसवाँ शतक

इसमें भी बारह शतक हैं जिनके १३२ उद्देशे हैं। इस शतक

में चौरिन्द्रिय जीवों की गति, स्थिति आदि का वर्णन किया गया है। शेष अधिकार और वर्णन शैली तेतीसवें शतक की तरह है।

उनतालीसवाँ शतक

इसमें बारह शतक हैं जिनमें १३२ उद्देशे हैं। इनमें असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय की गति, स्थिति आदि का कथन किया गया है। वर्णन शैली और अधिकार तेतीसवें शतक की तरह ही है।

चालीसवाँ शतक

इस शतक के अन्तर्गत २१ शतक हैं। प्रत्येक शतक में ग्यारह ग्यारह उद्देशे हैं। पहले शतक के पहले उद्देशे में निम्न विषय वर्णित हैं— कृतयुग्मकृतयुग्म रूप संज्ञी पञ्चेन्द्रिय का उत्पाद, कर्म का बन्ध, संज्ञा, गति आदि का वर्णन है। दूसरे शतक से इक्कीसवें शतक तक कृष्णलेश्या, नील लेश्या, कापोत लेश्या, तेजो लेश्या, शुक्ल लेश्या वाले पंचेन्द्रिय, भवसिद्धिक सामान्य जीव, भवसिद्धिक कृष्ण, नील, कापोत, तेजो, पद्म, शुक्ल लेश्या वाले और अभवसिद्धिक की अपेक्षा कृष्ण, नील आदि लेश्या वाले पंचेन्द्रिय की गति, स्थिति आदि का वर्णन है अर्थात् सात शतकों में औघिक (समुच्चय) रूप से वर्णन किया गया है। सात शतक भवसिद्धिक पंचेन्द्रिय की अपेक्षा और सात शतक अभवसिद्धिक पंचेन्द्रिय की अपेक्षा से कहे गये हैं। इस तरह संज्ञी पंचेन्द्रिय महायुग्म के २१ शतक हैं।

इकतालीसवाँ शतक

इकतालीसवें शतक में १९६ उद्देशे हैं जिनमें निम्न विषय हैं—

कृतयुग्म आदि राशि के चार भेद, कृतयुग्म नैरयिकों का उपपात उपपात का अन्तर, कृतयुग्म राशि और त्र्योज का पारस्परिक सम्बन्ध, कृतयुग्म और द्वापरयुग्म राशि का तथा कृतयुग्म और कल्योज राशि का पारस्परिक सम्बन्ध। सलेश्य सक्रिय होता है या अक्रिय? कृतयुग्म राशि रूप असुरकुमारों की उत्पत्ति, सलेश्य

मनुष्यों की सक्रियता। सक्रिय जीवों में से कुछ जीव उसी भव में मुक्ति प्राप्त करते हैं और कुछ नहीं, इत्यादि का वर्णन है।

(२) उ०—त्र्योज राशि रूप नैरयिकों की उत्पत्ति का कथन। कृतयुग्म और त्र्योज राशि का पारस्परिक सम्बन्ध, त्र्योज और द्वापरयुग्म राशि का पारस्परिक सम्बन्ध। श्री पन्नवणा सूत्र के व्युत्क्रान्ति पद की भलामण।

(३) उ०—द्वापरयुग्म राशि प्रमाण नैरयिकों का उत्पाद, द्वापरयुग्म और कृतयुग्म का पारस्परिक सम्बन्ध।

(४) उ०– कल्योज प्रमाण नैरयिकों का उत्पाद, कल्योज और कृतयुग्म राशि का पारस्परिक सम्बन्ध।

(५–८) उ०– कृष्णलेश्या वाले कृतयुग्म, त्र्योज, द्वापरयुग्म और कल्योज राशि प्रमाण नैरयिकों की उत्पत्ति का कथन किया गया है। नवें से अट्ठाईसवें उद्देशे तक नील, कापोत, तेजो, पद्म और शुक्ललेश्या प्रत्येक के चार चार उद्देशे हैं। इनमें सामान्य चार उद्देशे हैं और छः लेश्याओं की अपेक्षा २४ उद्देशे हैं। इसी प्रकार भवसिद्धिक की अपेक्षा २८, अभवसिद्धिक की अपेक्षा २८, कृतयुग्म राशि प्रमाण सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा २८, कृतयुग्म राशि प्रमाण मिथ्यादृष्टि की अपेक्षा २८, कृतयुग्म राशि प्रमाण कृष्णपाक्षिक की अपेक्षा २८, कृतयुग्म राशि प्रमाण शुक्लपाक्षिक की अपेक्षा २८ उद्देशे कहे गए हैं। इस प्रकार इस शतक में कुल १९६ उद्देशे हैं।

सम्पूर्ण भगवती में कुल १३८ शतक और १९२५ उद्देशे हैं। प्रकृष्ट ज्ञान और दर्शन के धारक केवलज्ञानियों ने इस भगवती सूत्र के अन्दर दो लाख अट्ठासी हजार पद कहे हैं और अनन्त (अपरिमित) भाव और अभावों (विधि निषेधों) का कथन किया है।

सूत्र के अन्त में संघ की स्तुति की गई है, तप, नियम और विनय से संयुक्त, निर्मल ज्ञान रूपी जल से परिपूर्ण, सैकड़ों हेतु रूप महान्

वेग वाला, अनेक गुण सम्पन्न होने से विशाल यह संघ (साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका) रूपी समुद्र सदा जय को प्राप्त हो।

सूत्र की समाप्ति के पश्चात् इस सूत्र को पढ़ने की मर्यादा इस प्रकार बतलाई है—

इस सूत्र में कुल १३८ शतक हैं अर्थात् पहले शतक से ३२ शतक तक अवान्तर (पेटा) शतक नहीं हैं। तेतीसवें शतक से उनतालीसवें शतक तक अर्थात् सात शतकों में बारह बारह अवान्तर शतक हैं। चालीसवें शतक में २१ अवान्तर शतक हैं। इकतालीसवें शतक में अवान्तर शतक नहीं हैं। कुल मिला कर १३८ शतक हैं। इसके पठन पाठन के लिए समय की व्यवस्था इस प्रकार बतलाई गई है—

पहले से तीसरे शतक तक दो दो उद्देशे प्रतिदिन, चौथे शतक के आठ उद्देशे एक दिन में और दूसरे दिन में दो उद्देशे पढ़ने चाहिएं। नवें शतक से आगे प्रतिदिन शिष्य जितना ग्रहण कर सके उतना पढ़ाना चाहिए। उत्कृष्ट रूप से एक दिन में एक शतक, मध्यम रूप से एक शतक दो दिन में और जघन्य रूप से एक शतक तीन दिन में पढ़ाना चाहिए। पन्द्रहवाँ गोशालक का शतक एक ही दिन में पढ़ाना चाहिए, यदि एक दिन में पूरा न हो तो दूसरे दिन आयम्बिल करके उसे पूरा करना चाहिए, यदि दूसरे दिन भी पूरा न हो सके तो तीसरे दिन फिर आयम्बिल करके ही पूरा करना चाहिए। २१वें, २२वें और २३वें शतक को एक एक दिन में पूरा करना चाहिए। चौबीसवें शतक को प्रतिदिन ६, ६ उद्देशे पढ़ा कर दो दिन में पूरा करना चाहिए। इसी तरह २५वें शतक को भी दो दिन में पूरा करना चाहिये। बन्ध शतक आदि आठ शतक एक दिन में, श्रेणी शतक आदि बारह शतक एक दिन में, एकेन्द्रिय के बारह महायुग्मशतक एक दिन में पढ़ाने चाहिएं।

इसी तरह वेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौरिन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय के बारह बारह शतक तथा संज्ञी पंचेन्द्रिय के इक्कीस महायुग्म शतक और राशियुग्म शतक एक एक दिन में पढ़ने और पढ़ाने चाहिए।

(६) श्री ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र

यह छठा अङ्ग है। इसमें दो श्रुतस्कन्ध हैं–ज्ञाता और धर्मकथा। पहले श्रुतस्कन्ध में उन्नीस अध्ययन हैं। प्रत्येक अध्ययन में एक एक कथा है और अन्त में उस कथा या दृष्टान्त से मिलने वाली शिक्षा बताई गई है। कथाओं में नगर, उद्यान, महल, शय्या, समुद्र, स्वप्न आदि का सुन्दर वर्णन है।

पहला श्रुतस्कन्ध

(१) अध्ययन– मेघकुमार की कथा।

(२) अध्ययन– धन्ना सार्थवाह और विजय चोर।

(३) अध्ययन– शुद्ध समकित के लिए अण्डे का दृष्टान्त।

(४) अध्ययन– इन्द्रियों को वश में रखने या स्वच्छन्द छोड़ने वाले साधु के लिए कछुए का दृष्टान्त।

(५) अध्ययन– भूल के लिए पश्चात्ताप करके फिर संयम में दृढ होने के लिए शैलक राजर्षि का दृष्टान्त।

(६) अध्ययन– प्रमादी और अप्रमादी को समझाने के लिए तुम्बे का दृष्टान्त।

(७) अध्ययन– आराधक और विराधक के लाभालाभ बताने के लिए रोहिणी की कथा।

(८) अध्ययन– भगवान् मल्लिनाथ की कथा।

(९) अध्ययन– कामभोगों में आसक्ति और विरक्ति के लिए जिनपाल और जिनरक्ष का दृष्टान्त।

(१०) अध्ययन– प्रमादी, अप्रमादी के लिए चाँद का दृष्टान्त।

(११) अध्ययन–धर्म की आराधना और विराधना के लिए दावद्रव का दृष्टान्त।

(१२) अध्ययन– सद्‌गुरु सेवा के लिए उदकज्ञात का दृष्टान्त।

(१३) अध्ययन– सद्‌गुरु के अभाव में गुणों की हानि बताने के लिए दर्दुर का दृष्टान्त।

(१४) अध्ययन–धर्म प्राप्ति के लिए अनुकूल सामग्री की आवश्यकता बताने के लिए तेतलीपुत्र का दृष्टान्त।

(१५) अध्ययन– वीतराग के उपदेश से ही धर्म प्राप्त होता है, इसके लिए नंदीफल का दृष्टान्त।

(१६) अध्ययन– विषयसुख का कड़वा फल बताने के लिए अपरकङ्का के राजा और द्रौपदी की कथा।

(१७) अध्ययन–इन्द्रियों के विषयों में लिप्त रहने से होने वाले अनर्थों को समझाने के लिए आकीर्ण जाति के घोड़े का दृष्टान्त।

(१८) अध्ययन– संयमी जीवन के लिए शुद्ध और निर्दोष आहार निर्ममत्व भाव से करने के लिए सुषुमा कुमारी का दृष्टान्त।

(१९) अध्ययन–उत्कृष्ट भाव से पालन किया गया थोड़े समय का संयम भी अत्युपकारक होता है, इसके लिए पुँडरीक का दृष्टान्त। इन कथाओं को विस्तृत रूप से १९वें बोल संग्रह में दिया जायगा।

दूसरा श्रुतस्कन्ध

इस में धर्म कथाओं के द्वारा धर्म का स्वरूप बतलाया गया है–

(१) वर्ग– पहले वर्ग के पाँच अध्ययन हैं जिनमें क्रमशः चमरेन्द्र की काली, राजी, रजनी, विद्युत् और मेघा नाम की पाँच अग्रमहिषियों का वर्णन है।

प्रथम अध्ययन – इसमें काली अग्रमहिषी का वर्णन आता है। चमरचञ्चा राजधानी के कालावतंसक भवन में कालीदेवी अपने परिवार सहित काल नाम के आसन पर बैठी थी। उसी समय उसने

अवधिज्ञान लगा कर देखा कि राजगृह नगर के गुणशील उद्यान में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी पधारे हैं। शीघ्र ही वह अपने परिवार सहित भगवान् को वन्दना करने के लिए गई। वन्दना करने के पश्चात् सूर्य्याभ देव की तरह नाट्य विधि दिखला कर अपने स्थान पर चली गई। श्री गौतम स्वामी ने भगवान् से पूछा कि हे भगवन्! कालीदेवी को यह ऋद्धि कैसे प्राप्त हुई? तब भगवान् ने उसका पूर्व भव बतलाया कि इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में अमलकल्पा नगरी में काल नाम का गाथापति रहता था। उसके कालश्री नाम की स्त्री थी। उसके काली नाम की पुत्री थी। बड़ी उम्र की हो जाने पर भी उसका विवाह नहीं हुआ था। उसे कोई पुरुष चाहता ही नहीं था। एक समय भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी के पास धर्म श्रवण कर उसे वैराग्य उत्पन्न हो गया। माता पिता की आज्ञा लेकर उसने पुष्पचूला आर्या के पास प्रव्रज्या ग्रहण की। ग्यारह अङ्ग का ज्ञान पढ़ा। कुछ काल पश्चात् उसे शुचिधर्म पसन्द आया जिससे वह अपने शरीर के प्रत्येक अवयव को धोने लगी तथा सोने, बैठने आदि सभी स्थानों को भी धोने लगी। उसकी गुरुणी ने उसे बहुत समझाया और आलोचना करने के लिए कहा, परन्तु उस काली आर्या ने गुरुणी की एक भी बात नहीं मानी, तब उसे गच्छ से अलग कर दिया गया। वह दूसरे उपाश्रय में रह कर शौच धर्म का पालन करने लगी। बहुत वर्षों तक वह इसी तरह करती रही। अन्त समय में आलोचना और प्रतिक्रमण किये विना ही अनशन पूर्वक मरण प्राप्त कर काली देवी रूप से उत्पन्न हुई। वहाँ पर उसकी ढाई पल्योपम की स्थिति है। वहाँ से चव कर महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होगी और वहीं से सिद्धपद को प्राप्त करेगी।

दूसरा अध्ययन–इसमें राजी देवी का वर्णन है। उसके पूर्व भव के

वर्णन में बताया गया है कि अमलकल्पा नगरी में जितशत्रु राजा राज्य करता था। राजी गाथापति की राजीश्री भार्या थी। उसके राजी नाम की कन्या थी। प्रव्रज्या अङ्गीकार कर काली आर्या की तरह शुचि धर्म का पालन करती हुई मरण प्राप्त कर चमरेन्द्र की राजी नाम की अग्रमहिषी हुई है।

तीसरा, चौथा और पाँचवाँ अध्ययन--इन में क्रमशः चमरेन्द्र की अग्रमहिषी रजनी, विद्युत् और मेघा के अधिकार हैं। इनका सारा वर्णन कालीदेवी की तरह है सिर्फ पूर्वभव के नगर, माता-पिता आदि के नामों में भिन्नता है।

(२) वर्ग– इसमें पाँच अध्ययन हैं। इनमें बलीन्द्र की पाँच अग्रमहिषियों (शुंभा, निशुंभा, रंभा, निरंभा, मदना) का वर्णन है।

(३) वर्ग– इसमें ५४ अध्ययन हैं। पहले के छः अध्ययनों में दक्षिण दिशा के धरणेन्द्र की इला, सतेरा, सौदामिनी, इन्द्रा, घना और विद्युता नाम की छः अग्रमहिषियों का वर्णन है। शेष ४८ अध्ययनों में दक्षिण दिशा के ८ भवनपति इन्द्रों की ४८ अग्रमहिषियों का वर्णन है।

(४) वर्ग– इसमें ५४ अध्ययन हैं। पहले अध्ययन में उत्तर दिशा के भूतानन्द इन्द्र की रुचा देवी का वर्णन आता है। रुचानन्दा राजधानी में रुचकावतंसक भवन में बैठी हुई रुचा देवी अवधिज्ञान द्वारा भगवान् महावीर स्वामी को राजगृह नगर के गुणशील उद्यान में पधारे हुए जान कर उन्हें वन्दना नमस्कार करने आई। गौतम स्वामी द्वारा उसकी ऋद्धि के विषय में पूछा जाने पर भगवान् ने उसके पूर्व भव के विषय में फरमाया कि चम्पा नगरी में रुचक नाम का गाथापति रहता था। उसकी भार्या रुचकश्री और पुत्री रुचा थी। संयम स्वीकार कर रुचा शुचिधर्म वाली बन गई। काल कर वह रुचा देवी हुई है। यहाँ इसकी स्थिति कुछ

कम एक पल्योपम की है। तत्पश्चात् महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर मोक्ष में जायगी।

आगे पाँच अध्ययनों में सुरुचा, रुचांशा, रुचकावती, रुचकान्ता और रुचप्रभा नामक पाँच अग्रमहिषियों का वर्णन है। उत्तर दिशा के शेष आठ इन्द्रों की अग्रमहिषियों का वर्णन ४८ अध्ययनों में है।

(५) वर्ग–इसमें ३२ अध्ययन हैं। दक्षिण दिशा के आठ वाणव्यन्तर इन्द्रों की ३२ अग्रमहिषियों का वर्णन है। उनके नाम ये हैं–

(१) कमला (२) कमलप्रभा (३) उत्पला (४) सुदर्शना (५) रूपवती (६) बहुरूपा (७) सुरूपा (८) सुभगा (९) पूर्णा (१०) बहुपुत्रिका (११) उत्तमा (१२) भारिका (१३) पद्मा (१४) वसुमती (१५) कनका (१६) कनकप्रभा (१७) अवतंसा (१८) केतुमती (१९) वज्रसेना (२०) रतिप्रिया (२१) रोहिणी (२२) नवमिका (२३) ह्री (२४) पुष्पवती (२५) भुजगा (२६) भुजगवती (२७) महाकच्छा (२८) अपराजिता (२९) सुघोषा (३०) विमला (३१) सुस्वरा (३२) सरस्वती

(६) वर्ग–इसमें ३२ अध्ययन हैं, जिनमें उत्तर दिशा के वाणव्यन्तर देवों के आठ इन्द्रों की ३२ अग्रमहिषियों का वर्णन है।

(७) वर्ग–इसमें ४ अध्ययन हैं, जिनमें क्रमशः सूर्य की सूरप्रभा, आतपा, अर्चिमाली और प्रभंकरा अग्रमहिषियों का वर्णन है।

(८) वर्ग– इसमें चन्द्र की चन्द्रप्रभा, दोपीनाभा, अर्चिमाली, और प्रभंकरा नामक चार अग्रमहिषियों के चार अध्ययन हैं।

(९) वर्ग– इसमें शक्रेन्द्र की पद्मा, शिवा, सती, अंजु, रोहिणी, नवमिका, अचला और अप्सरा नामक आठ अग्रमहिषियों के ८ अध्ययन हैं।

(१०) वर्ग–इसमें आठ अध्ययन हैं, जिनमें ईशानेन्द्र की कृष्णा,

कृष्णराजी, रामा, रामरक्षिता, वसु, वसुगुप्ता, वसुमित्रा और वसुन्धरा नामक आठ अग्रमहिषियों का वर्णन है।

कुल मिला कर २०६ अग्रमहिषियों के २०६ अध्ययन इन दस वर्गों में हैं, यथा– असुरकुमार के दोनों इन्द्रों की १०, शेष नौ निकाय के १८ इन्द्रों की १०८, वाणव्यन्तर देवों के सोलह इन्द्रों की ६४, सूर्य की ४, चन्द्र की ४, शक्रेन्द्र की ८ और ईशानेन्द्र की ८ अग्रमहिषियाँ हैं। इन २०६ अग्रमहिषियों का वर्णन पहले वर्ग के पहले अध्ययन में दिए गए काली देवी के वर्णन के समान ही है। शास्त्र में उसी अध्ययन की भलामण दी गई है। सिर्फ पूर्व भव के नगर और माता-पिता के नामों में भिन्नता है। इन सब अग्रमहिषियों ने पूर्व भव में भगवान् पार्श्वनाथ के पास दीक्षा लेकर पुष्पचूला आर्या के पास कई वर्षों तक शुद्ध संयम का पालन किया था और ग्यारह अङ्ग का ज्ञान पढ़ा था किन्तु बाद में वे सब शुचिधर्म वाली बन गई थीं। बारम्बार हाथ, पैर आदि शरीर के अवयवों को धोना, सोने, बैठने आदि की जगह को जल से छिड़क कर सोना बैठना आदि क्रियाएं करने लग गई थीं। गुरुणी के समझाने पर भी इन क्रियाओं को छोड़ा नहीं और मरण के समय में भी उस पापस्थान की आलोचना एवं प्रतिक्रमण नहीं किया। मरकर ये उपरोक्त इन्द्रों की इन्द्रानियाँ हुई। वहाँ से चव कर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेंगी और पीछे संयम अङ्गीकार कर सिद्धपद प्राप्त करेंगी।

अन्त में श्री सुधर्मास्वामी ने अपने शिष्य जम्बूस्वामी से फरमाया है कि हे आयुष्मन् जम्बू! जिस तरह श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से ज्ञाताधर्म कथा का अर्थ मैंने सुना है उसी तरह से मैंने तुझे कहा है।

(७) उपासक दशांग सूत्र

उपासक दशा सातवां अङ्गसूत्र है। श्रमणों अर्थात् साधुओं की

सेवा करने वाले उपासक कहे जाते हैं। दशा नाम अध्ययन तथा चर्या का है। इस सूत्र में दस श्रावकों के अध्ययन होने से यह उपासक दशा कहा जाता है। इसके प्रत्येक अध्ययन में एक एक श्रावक का वर्णन है। इस प्रकार दस अध्ययनों में दस श्रावकों का वर्णन है। इनमें श्रावकों के नगर, उद्यान, वनखण्ड, भगवान् के समवसरण,राजा,माता पिता,धर्माचार्य,धर्मकथा,इहलौकिक और पारलौकिक ऋद्धि,भोग, भोगों का परित्याग, तप, बारह व्रत तथा उनके अतिचार,पन्द्रह कर्मादान,पडिमा,उपसर्ग,संलेखना, भक्त-प्रत्याख्यान, पादपोपगमन, स्वर्गगमन आदि विषयों का बहुत विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। इसमें एक ही श्रुतस्कन्ध है, दस अध्ययन हैं। जिनमें निम्न लिखित श्रावकों का जीवन है।

(१) आनन्द (२) कामदेव (३) चुलनिपिता (४) सुरादेव (५) चुल्लशतक (६) कुण्डकोलिक (७) सद्दालपुत्र (८) महाशतक (९) नन्दिनीपिता (१०) शालेयिकापिता।

भगवान् महावीर स्वामी के श्रावकवर्ग में ये दस श्रावक मुख्य रूप से गिनाए गए हैं। निर्ग्रन्थ प्रवचनों में उनकी दृढ़ श्रद्धा थी। भगवान् पर उनकी अपूर्व भक्ति थी और प्रभु के वचनों पर उन्हें अपूर्व श्रद्धा थी। गृहस्थाश्रम में रहते हुए उन्होंने किस प्रकार धर्म, अर्थ और मोक्ष की साधना की थी और गृहस्थावास में रहता हुआ व्यक्ति किस प्रकार आत्मविकास करता हुआ मोक्ष का अधिकारी हो सकता है। यह उनके जीवन से भली भाँति मालूम हो सकता है।

इन श्रावकों के जीवन का विस्तृत वर्णन श्री जैन सिद्धान्त बोल संग्रह, तृतीय भाग के दसवें बोल संग्रह के बोल नं० ६८५ में दिया गया है।

(८) अन्तगड दसांग सूत्र

आठ कर्मों का नाश कर संसार रूपी समुद्र से पार उतरने वाले

अन्तकृत् कहलाते हैं अथवा जीवन के अन्तिम समय में केवलज्ञान और केवलदर्शन उपार्जन कर मोक्ष जाने वाले जीव अन्तकृत् कहलाते हैं। ऐसे जीवों का वर्णन इस सूत्र में है इस लिए यह सूत्र अन्तकृद्दशा (अन्तगड दसा) कहलाता है। अन्तगड अङ्ग सूत्रों में आठवाँ है। इसमें एक ही श्रुतस्कन्ध है। आठ वर्ग हैं। ९० अध्ययन हैं जिनमें गौतमादि महर्षि और पद्मावती आदि सतियों के चरित्र हैं। प्रत्येक वर्ग में निम्न लिखित अध्ययन हैं।

(१) वर्ग– इसमें दस अध्ययन हैं। पहले अध्ययन में गौतमकुमार का वर्णन है। द्वारिका नगरी में कृष्ण वासुदेव राज्य करते थे। उसी नगरी में अन्धकविष्णु नामक राजा थे। उनकी रानी का नाम धारिणी था। उनके ज्येष्ठ पुत्र का नाम गौतमकुमार था। उनका विवाह आठ राजकन्याओं के साथ किया गया था। कुछ समय के पश्चात् भगवान् अरिष्टनेमि के पास दीक्षा लेकर बारह वर्ष संयम का पालन किया। अन्तिम समय में केवलज्ञान, केवलदर्शन उपार्जन कर मोक्ष पधारे।

आगे नौ अध्ययनों में क्रमशः समुद्रकुमार, सागर, गम्भीर, स्तिमित, अचल, कपिल, अक्षोभ, प्रसेनजित और विष्णु, इन नौ कुमारों का वर्णन है। ये सभी अन्धक विष्णु राजा और धारिणी रानी के पुत्र थे। सभी का वर्णन गौतमकुमार सरीखा ही है। सभी ने दीक्षा लेकर बारह वर्ष संयम का पालन किया। अन्तिम समय में केवली होकर मोक्ष पधारे।

(२) वर्ग– इस वर्ग के आठ अध्ययन हैं। इनमें (१) अक्षोभ (२) सागर (३) समुद्रविजय (४) हिमवन्त (५) अचल (६) धरण (७) पूरण और (८) अभिचन्द, इनका वर्णन है। इन आठों के पिता का नाम अन्धकविष्णु और माता का नाम धारिणी रानी था। इनका सारा वर्णन गौतमकुमार सरीखा ही है। सोलह वर्ष की

दीक्षा पर्याय का पालन कर मोक्ष में पधारे।

(३) वर्ग– इसके तेरह अध्ययन हैं। (१) अनीकसेन (२) अनन्तसेन (३) अजितसेन (४) अनिहत रिपु (५) देवसेन (६) शत्रुसेन (७) सारण (८) गजसुकुमाल (९) सुमुख (१०) दुर्मुख (११) कुबेर (१२) दारुक (१३) अनादिट्ठि (अनादृष्टि)।

इनमें अनीकसेन, अनन्तसेन, अजितसेन, अनिहतरिपु, देवसेन और शत्रुसेन इन छः कुमारों का वर्णन एक सरीखा ही है। वे भद्दिलपुर नगरनिवासी नाग गाथापति और सुलसा के पुत्र थे। ३२–३२ स्त्रियों के साथ विवाह हुआ था। भगवती सूत्र में कथित महाबल कुमार की तरह ३२–३२ करोड़ सोनैयों का प्रीतिदान दिया गया। बीस वर्ष दीक्षा पर्याय का पालन कर मोक्ष पधारे।

सातवें अध्ययन में सारणकुमार का वर्णन है। इनके पिता का नाम वसुदेव और माता का नाम धारिणी था। पाँच सौ कन्याओं के साथ विवाह और प्रत्येक के साथ ५००-५०० सोनैयों का प्रीतिदान दिया गया। बारह वर्ष संयम का पालन कर मोक्ष पधारे।

आठवें अध्ययन में गजसुकुमाल का वर्णन है। इनके पिता वसुदेव राजा और माता देवकी थी। कृष्ण वासुदेव इनके बड़े भाई थे। बाल वय में गजसुकुमाल ने भगवान् अरिष्टनेमि के पास दीक्षा ले ली। जिस दिन दीक्षा ली उसी दिन बारहवीं भिक्खुपडिमा अङ्गीकार की और श्मशान भूमि में ध्यान धर कर खड़े रहे। इसी समय सोमिल ब्राह्मण उधर से आ निकला। पूर्व वैर के जागृत हो जाने के कारण उसने गजसुकुमाल के शिर पर गीली मिट्टी की पाल बांध कर खैर की लकड़ी के अंगारे रख दिये जिससे उनका सिर खिचड़ी की तरह सीझने लगा किन्तु गजसुकुमाल मुनि इस तीव्र वेदना को समभाव पूर्वक सहन करते रहे। परिणामों में किसी प्रकार की चंचलता एवं कलुषता न आने दी।

परिणामों की विशुद्धता के कारण उनको तत्क्षण केवलज्ञान और केवलदर्शन उत्पन्न होगए और वे मोक्ष में पधार गये।

इसी कथा के अन्तर्गत गजसुकुमाल से बड़े ६ पुत्रों का हरिणगमेषी देव द्वारा हरण, भद्दिलपुर नगरी में नाग गाथापति की धर्मपत्नी सुलसा के पास रखना, वहाँ उनका लालन पालन होकर दीक्षा लेना, द्वारिका में गोचरी जाने पर उन्हें देख कर देवकी का आश्चर्य करना, तथा भगवान् के पास निर्णय करना, इत्यादि वर्णन बड़े ही रोचक शब्दों में विस्तार पूर्वक किया गया है। भगवान को वन्दना नमस्कार करने के लिए श्रीकृष्ण वासुदेव का आना, अपने छोटे भाई गजसुकुमाल के लिए पूछना, श्रीकृष्ण को देखते ही सोमिल ब्राह्मण की जमीन पर गिर कर मृत्यु होना आदि विषय भी बहुत विस्तार के साथ वर्णित हैं।

नौ से ग्यारह अध्ययन तक सुमुख, दुर्मुख और कुबेर कुमार का वर्णन है। ये तीनों बलदेव राजा और धारिणी रानी के पुत्र थे। बीस वर्ष तक संयम का पालन कर मोक्ष पधारे। इनकी दीक्षा भगवान् नेमिनाथ के पास हुई थी।

बारहवें और तेरहवें अध्ययन में दारुणकुमार और अनादृष्टि कुमार का वर्णन है। ये वसुदेव राजा और धारिणी रानी के पुत्र थे। शेष सारा वर्णन पहले की तरह ही है।

(४) वर्ग– इसमें दस अध्ययन हैं, यथा– जाली, मयाली, उवयाली, पुरुषसेन, वारिसेन, प्रद्युम्न, साम्ब, अनिरुद्ध, सत्यनेमि और दृढ़नेमि।

इन सब का अधिकार एक सरीखा ही है। गौतम कुमार के अध्ययन की इसमें भलामण दी गई है। सिर्फ इनके माता पिता आदि के नामों में फरक है। वह इस प्रकार है–

नाम	पिता	माता	नगरी	संयम काल
जाली	वसुदेव राजा	धारिणी रानी	द्वारिका	१६ वर्ष
मयाली	,,	,,	,,	,,
उवयाली	,,	,,	,,	,,
पुरुषसेन	,,	,,	,,	,,
वारिसेन	,,	,,	,,	,,
प्रद्युम्न कुमार	श्रीकृष्ण	रुक्मिणी	,,	,,
साम्ब कुमार	,,	जम्बूवता	,,	,,
अनिरुद्ध ,,	प्रद्युम्नकुमार	वैदर्भी	,,	,,
सत्यनेमि	समुद्रविजय	शिवादेवी	,,	,,
दृढनेमि	,,	,,	,,	,

इन सब ने सोलह वर्ष संयम का पालन किया और अन्तिम समय में केवलज्ञान केवलदर्शन उपार्जन कर मोक्ष में पधारे।

(५) वर्ग– इसके दस अध्ययन हैं। यथा–पद्मावती, गौरी, गान्धारी, लक्ष्मणा, सुषमा, जम्बूवती, सत्यभामा, रुक्मिणी, मूलश्री, मूलदत्ता। इनमें से पहले की आठ कृष्ण महाराज की रानियाँ हैं। इन्होंने भगवान् अरिष्टनेमि के पास दीक्षा ली। ग्यारह अङ्ग का ज्ञान पढ़ा। बीस वर्ष तक संयम का पालन कर अन्तिम समय में केवल ज्ञान और केवलदर्शन उपार्जन कर मोक्ष में पधारीं। इन सब में पद्मावती रानी का अध्ययन बहुत विस्तृत है। इसमें द्वारिका नगरी के विनाश का कारण, श्रीकृष्णजी की मृत्यु का कारण, श्रीकृष्णजी का आगामी चौवीसी में तीर्थङ्कर होना आदि बातों का कथन भी बहुत विस्तार के साथ है।

मूलश्री और मूलदत्ता का सारा अधिकार पद्मावती रानी सरीखा ही है। ये दोनों कृष्ण वासुदेव के पुत्र और जम्बूवती रानी के अङ्गजात श्री साम्बकुमार की रानियाँ थीं। ये भी मोक्ष में गईं।

(६) वर्ग– इसमें सोलह अध्ययन हैं। यथा– (१) मकाई (२) विक्रम (३) मुद्गरपाणि यक्ष (अर्जुन माली) (४) काश्यप (५) क्षेम (६) धृतिधर (७) कैलाश (८) हरिश्चन्द्र (९) विरक्त (१०) सुदर्शन (११) पूर्णभद्र (१२) सुमनभद्र (१३) सुप्रतिष्ठ (१४) मेघ (१५) अतिमुक्त कुमार (१६) अलख राजा।

राजगृही नगरी के अन्दर मकाई और विक्रम नाम के गाथापति रहते थे। दोनों ने श्रमण भगवान् महावीर के पास दीक्षा ली। गुणरत्न संवत्सर तप किया। सोलह वर्ष संयम का पालन कर विपुलगिरि पर सिद्ध हुए।

तीसरे अध्ययन में अर्जुनमाली का वर्णन है। उसकी भार्या का नाम बन्धुमती था। नगर के बाहर उसका एक बाग था। उसमें मुद्गरपाणि यक्ष का यक्षायतन (देहरा) था। अर्जुनमाली के वंशज परम्परा से उस यक्ष की पूजा करते आ रहे थे। अर्जुनमाली बचपन से ही उसका भक्त था। वह पुष्पादि से उसकी पूजा किया करता था। एक समय ललितादि छः गोठीले पुरुष उस बगीचे में आये और देहरे में छिप कर बैठ गए। जब अर्जुनमाली देहरे में आया, वे लोग एक दम उठे और उसको मुश्कें बाँध कर नीचे गिरा दिया और बन्धुमती भार्या के साथ यथेच्छ कामभोग भोगने लगे। इस अवस्था को देख कर वह बहुत दुःखित हुआ और यक्ष को धिक्कारने लगा कि वह ऐसे समय में भी मेरी सहायता नहीं करता है। उसी समय यक्ष ने उसके शरीर में प्रवेश किया। उसके बन्धन तोड़ डाले। बन्धन के टूटते ही एक हजार पल निष्पन्न मुद्गर को लेकर उसने अपनी स्त्री और छहों पुरुषों को मार डाला। तब से राजगृही नगरी के बाहर घूमता हुआ यक्षाधिष्ठित अर्जुनमाली प्रतिदिन छः पुरुष और एक स्त्री को मारने लगा। राजा श्रेणिक ने नगर के दरवाजे बन्द करवा दिए और शहर में ढिंढोरा पिटवा

दिया कि कोई पुरुष किसी काम के लिए शहर से बाहर न निकले।
राजगृह नगर में सुदर्शन नाम का एक सेठ रहता था। वह नव तत्त्व का ज्ञाता श्रावक था। राजगृह नगर के बाहर गुणशील चैत्य में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का आगमन सुन कर सेठ सुदर्शन अपने माता पिता की आज्ञा ले भगवान् को वन्दना करने के लिए जाने लगा। मार्ग में अर्जुनमाली उसे मारने के लिए दौड़ कर आया। इसे उपसर्ग समझ सेठ सुदर्शन ने सागारी अनशन कर लिया। अर्जुनमाली नजदीक आकर सेठ सुदर्शन पर अपना मुद्गर चलाने लगा किन्तु उसका हाथ ऊपर ही रुक गया, मुद्गर नीचे नहीं गिरा। उसने बहुत प्रयत्न किया किन्तु सुदर्शन के ऊपर मुद्गर चलाने में समर्थ नहीं हुआ। इससे यक्ष बहुत लज्जित हुआ और उसके शरीर से निकल कर भाग गया। अर्जुनमाली एक दम जमीन पर गिर पड़ा। सुदर्शन श्रावक ने अपना उपसर्ग दूर हुआ जान कर सागारी अनशन पार लिया। एक मुहूर्त के बाद अर्जुन माली को चेत आया। वह उठ कर सुदर्शन श्रावक के पास आया और उसके साथ भगवान् को वन्दना करने के लिए जाने की इच्छा प्रकट की। सुदर्शन श्रावक उसे अपने साथ लेगया। भगवान् को वन्दना नमस्कार कर अर्जुनमाली बैठ गया। भगवान् ने धर्मकथा फरमाई जिससे उसे वैराग्य भाव उत्पन्न हो गया और दीक्षा अङ्गीकार कर बेले बेले पारना करता हुआ विचरने लगा। अनगार हो कर वह भिक्षा के लिए राजगृही में गया, उसे देख कोई कहता इसने मेरे पिता को मारा, भाई को मारा, भगिनी को मारा, पुत्र को मारा, माता को मारा इत्यादि कह कर कोई निन्दा करता, कोई हल्के शब्दों का प्रयोग करता. कोई चपेटा मारता, कोई घूँसा मारता, किन्तु अर्जुनमाली अनगार इन सब को समभाव से सहन करते थे और विचार करते थे कि मैंने तो इनके सगे सम्बन्धियों को जान

जिसे नहीं जानता हूँ उसे जानता हूँ। माता पिता के आग्रह को न टालते हुए एक दिन राज्यश्री का उपभोग किया और फिर माता पिता की आज्ञा लेकर श्रमण भगवान् महावीर के पास दीक्षा अङ्गीकार की। ग्यारह अङ्ग का ज्ञान पढ़ कर गुणरत्न संवत्सर तप किया। बहुत वर्षों तक संयम का पालन कर मोक्ष पधारे।

गुणरत्न संवत्सर तप का यन्त्र

तप के दिन		पारणे के दिन	
३२	१६ १६	२	३४
३०	१५ १५	२	३२
२८	१४ १४	२	३०
२६	१३ १३	२	२८
२४	१२ १२	२	२६
३३	११ ११ ११	३	३६
३०	१० १० १०	३	३३
२७	९ ९ ९	३	३०
२४	८ ८ ८	३	२७
२१	७ ७ ७	३	२४
२४	६ ६ ६ ६	४	२८
२५	५ ५ ५ ५ ५	५	३०
२४	४ ४ ४ ४ ४ ४	६	३०
२४	३ ३ ३ ३ ३ ३ ३ ३	८	३२
२०	२ २ २ २ २ २ २ २ २ २	१०	३०
१५	१ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १ १	१५	३०
४०७		७३	

विधि— पहिले महीने एकान्तर उपवास करना, दूसरे महीने वेले वेले पारना करना, तीसरे महीने तेले तेले पारना करना। इस प्रकार बढ़ाते हुए सोलहवें महीने में सोलह सोलह उपवास कर के पारना करना। दिन को उत्कटुक आसन से बैठ कर सूर्य की आतापना लेना और रात्रि को वस्त्र रहित हो वीरासन से ध्यान करना। इसमें तप के सब दिन ४०७ और पारने के दिन ७३ हैं।

कुल मिला कर ४८० दिन होते है अर्थात् सोलह महीने में यह तप पूर्ण होता है।

नोट– मिट्टी की पाल बाँध कर वर्षा के पानी में अपने पात्र की नाव तिराने का अधिकार श्री भगवती सूत्र में है, यहाँ नहीं।

सोलहवें अध्ययन में अलख राजा का वर्णन है। ये वाराणसी नगरी में राज्य करते थे। एक समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी वहाँ पधारे। अलख राजा ने अपने ज्येष्ठ पुत्र को राज्य सौंप कर भगवान् के पास दीक्षा ग्रहण की। ग्यारह अङ्ग का ज्ञान पढ़ा। बहुत वर्षों तक संयम का पालन कर मोक्ष पधारे।

(७) वर्ग–इसमें तेरह अध्ययन हैं। उनके नाम–(१) नन्दा (२) नन्दवती (३) नन्दोत्तरा (४) नन्दसेना (५) मरुता (६) सुमरुता (७) महामरुता (८) मरुदेवी (९) भद्रा (१०) सुभद्रा (११) सुजाता (१२) सुमति (१३) भूतदीना।

उपरोक्त तेरह ही राजगृही के स्वामी श्रेणिक राजा की रानियाँ थीं। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास धर्मोपदेश सुन कर वैराग्य उत्पन्न हुआ। श्रेणिक राजा की आज्ञा लेकर प्रव्रज्या अङ्गीकार की। ग्यारह अंग का ज्ञान पढ़ीं। बीस वर्ष संयम का पालन कर मोक्ष में पधारीं।

(८) वर्ग– इसमें दस अध्ययन हैं। उनके नाम– (१) काली (२) सुकाली (३) महाकाली (४) कृष्णा (५) सुकृष्णा (६) महाकृष्णा (७) वीरकृष्णा (८) रामकृष्णा (९) पियसेनकृष्णा (१०) महासेनकृष्णा

ये सभी श्रेणिक राजा की रानियाँ और कोणिक राजा की चुल्लमाताएं (छोटी माताएं) थीं। इनका विस्तार पूर्वक वर्णन श्री जैन सिद्धान्त बोल संग्रह तीसरे भाग के दसवें बोल संग्रह के बोल नं० ६८६ में दिया गया है। यहाँ सिर्फ दीक्षापर्याय और तप

का नाम दिया जाता है-

नाम	तप	दीक्षा पर्याय
काली	रत्नावली	आठ वर्ष
सुकाली	कनकावली	नव वर्ष
महाकाली	लघुसिंहनिष्क्रीडित	दस वर्ष
कृष्णा	महासिंह निष्क्रीडित	ग्यारह वर्ष
सुकृष्णा	भिक्खु पडिमा	बारह वर्ष
महाकृष्णा	क्षुद्र सर्वतोभद्र	तेरह वर्ष
वीरकृष्णा	महा सर्वतोभद्र	चौदह वर्ष
रामकृष्णा	भद्रोत्तर पडिमा	पन्द्रह वर्ष
प्रियसेन कृष्णा	मुक्तावली	सोलह वर्ष
महासेन कृष्णा	आयम्बिल वर्द्धमान	सतरह वर्ष

इस प्रकार उग्र तप का आचरण कर अन्त में संलेखना की और केवलज्ञान केवलदर्शन उपार्जन कर मोक्ष पधारीं।

उपरोक्त ९० व्यक्तियों ने जीवन के अन्तिम समय में केवलज्ञान और केवलदर्शन उपार्जन कर मोक्ष पद प्राप्त किया।

(९) अणुत्तरोववाइयदसांग सूत्र

अनुत्तर नाम प्रधान और उपपात नाम जन्म अर्थात् जिनका सर्वश्रेष्ठ देवलोकों में जन्म हुआ है वे अनुत्तरौपपातिक (अणुत्तरोववाइय) कहलाते हैं। इसी कारण यह सूत्र अनुत्तरौपपातिक कहलाता है। इस सूत्र में ऐसे व्यक्तियों का वर्णन है जो इस संसार में तप संयम आदि शुभ क्रियाओं का आचरण कर अनुत्तर विमानों में उत्पन्न हुए हैं और वहाँ से चव कर उत्तम कुल में जन्म लेंगे और उसी भव में मोक्ष जायेंगे। इस सूत्र में कुल तीन वर्ग हैं।

(१) वर्ग- इसमें दस अध्ययन हैं। यथा- (१) जाली (२) मयाली (३) उवयाली (४) पुरुषसेन (५) वारिसेन (६) दीर्घदन्त (७)

लट्ठदन्त (८) विहल्ल कुमार (९) विहांस कुमार (१०) अभय कुमार।

राजगृही नगरी में श्रेणिक राजा राज्य करते थे। उनके धारिणी नाम की रानी थी। उनके पुत्र का नाम जाली कुमार था। एक समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी वहाँ पधारे। धर्मोपदेश सुन कर जाली कुमार को वैराग्य उत्पन्न होगया। माता पिता से आज्ञा लेकर जाली कुमार ने प्रव्रज्या अङ्गीकार की। भगवान् को वन्दना नमस्कार कर गुणरत्नसंवत्सर तप अङ्गीकार किया। सूत्रोक्त विधि से उसे पूर्ण कर और भी विचित्र प्रकार का तप करता हुआ विचरने लगा। सोलह वर्ष संयम का पालन कर अन्तिम समय में संलेखना संथारा कर विजय विमान में देवतारूप से उत्पन्न हुआ। वहाँ से चव कर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेगा और वहाँ संयम ले कर उसी भव में मोक्ष जायगा।

मयाली आदि नव ही कुमारों का वर्णन जाली कुमार सरीखा ही है। दीक्षापर्याय और विमान आदि के नाम निम्न प्रकार हैं—

नाम	माता	पिता	दीक्षापर्याय	विमान का नाम
मयाली	धारिणी	श्रेणिक	सोलह वर्ष	वैजयन्त
उवयाली	,,	,,	,,	जयन्त
पुरुषसेन	,,	,,	,,	अपराजित
वारिसेन	,,	,,	,,	सर्वार्थसिद्ध
दीर्घदन्त	,,	,,	बारह वर्ष	,,
लट्ठदन्त	,,	,,	,,	अपराजित
विहल्लकुमार	चेलणा	,,	,,	जयन्त
विहांसकुमार	,,	,,	पाँच वर्ष	वैजयन्त
अभय ,,	नन्दादेवी	,,	,,	विजय

ये सभी महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर मोक्षपद प्राप्त करेंगे।

(२) वर्ग– इसमें तेरह अध्ययन हैं। तेरह में तेरह व्यक्तियों

का वर्णन है। इन सब का वर्णन जालीकुमार जैसा ही है। नाम आदि में कुछ फरक है वह निम्न प्रकार है-

नाम	माता	पिता	दीक्षा पर्याय	विमान
दीर्घसेन	धारिणी	श्रेणिक	सोलह वर्ष	विजय
महासेन	,,	,,	,,	,,
लष्टदन्त	,,	,,	,,	वैजयन्त
गूढ़दन्त	,,	,,	,,	,,
शुद्धदन्त	,,	,,	,,	जयन्त
हल्लकुमार	,,	,,	,,	,,
द्रुम कुमार	,,	,,	,,	अपराजित
द्रुमसेन	,,	,,	,,	,,
महासेन	,,	,,	,,	सर्वार्थसिद्ध
सिंहकुमार	,,	,,	,,	,,
सिंहसेन	,,	,,	,,	,,
महा सिंहसेन	,,	,,	,,	,,
पुण्यसेन	,,	,,	,,	,,

ये सभी अनुत्तर विमानों से चवकर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेंगे और वहाँ से मोक्ष में जायेंगे।

(३) वर्ग-इसमें दस अध्ययन हैं। यथा- (१) धन्ना (२) सुनक्षत्र (३) ऋषिदास (४) पेल्लकपुत्र (५) रामपुत्र (६) चन्द्रकुमार (७) पौष्टिकपुत्र (८) पेढालपुत्र (९) पोट्टिल (१०) विहल्ल कुमार।

काकन्दी नगरी में जितशत्रु राजा राज्य करता था। उस नगरी में भद्रा नाम की एक सार्थवाही रहती थी। उसके पास बहुत ऋद्धि थी। उसके धन्ना नाम का एक पुत्र था। वह बहुत ही सुन्दर और सुरूप था। पांच धायमाताएं (दूध पिलाने वाली, मज्जन कराने वाली, भूषण पहनाने वाली, गोद में खिलाने वाली, क्रीड़ा

कराने वाली) उसका पालन पोषण कर रही थीं। धन्ना कुमार ने वहत्तर कला का ज्ञान प्राप्त किया। जब धन्ना कुमार यौवन अवस्था को प्राप्त हुआ तब भद्रा सार्थवाही ने उसका बत्तीस बड़े बड़े सेठों की ३२ कन्याओं के साथ एक ही दिन एक ही साथ विवाह किया। बत्तीस ही पुत्रवधुओं के लिए बड़े ऊंचे (सात मजले) महल बनवाये और धन्ना कुमार के लिए उन ३२ महलों के बीच में अनेक स्तम्भों वाला और बहुत ही सुन्दर एक महल बनवाया। धन्नाकुमार बहुत आनन्द पूर्वक समय बिताने लगा।

एक समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी काकन्दी नगरी में पधारे। भगवान् का आगमन सुन कर धन्नाकुमार भगवान् को वन्दना नमस्कार करने के लिए गया। भगवान् का धर्मोपदेश सुन कर धन्नाकुमार की संसार से विरक्ति होगई। अपनी माता भद्रा सार्थवाही से आज्ञा प्राप्त कर भगवान् के पास दीक्षा अङ्गीकार की। जिस दिन दीक्षा ली उसी दिन धन्ना मुनि ने ऐसा अभिग्रह किया कि आज से मैं यावज्जीवन बेले बेले पारणा करूंगा। पारने में आयम्बिल (रूक्ष आहार) करूंगा। वह रूक्षाहार भी ऐसा हो जिसके घृतादि किसी प्रकार का लेप न लगा हो, घरवालों के खा लेने के पश्चात् बचा हुआ बाहर फैंकने योग्य तथा बावा जोगी कृपण भिखारी आदि जिसकी वाञ्छा न करे ऐसे तुच्छ आहार की गवेषणा करता हुआ विचरूंगा। इस प्रकार कठोर अभिग्रह धारण कर महा दुष्कर तपस्या करते हुए धन्ना मुनि विचरने लगे। कभी आहार मिले तो पानी नहीं और पानी मिले तो आहार नहीं। जो कुछ आहार मिल जाता, धन्ना मुनि चित्त की आकुलता व्याकुलता एवं उदासीनता रहित उसी में सन्तोष करते किन्तु कभी भी मन में दीन भाव नहीं लाते। जिस प्रकार सर्प बिल में प्रवेश करते समय रगड़ लग जाने के डर से अपने शरीर का इधर

एक बार अर्ध रात्रि के समय धर्म जागरणा करते हुए धन्ना मुनि को ऐसा विचार उत्पन्न हुआ कि मेरा शरीर तपस्या से सूख चुका है। अब इस शरीर से विशेष तपस्या नहीं हो सकती, इस लिए प्रातःकाल भगवान् से पूछ कर संलेखना संथारा करना ठीक है। ऐसा विचार कर दूसरे दिन प्रातःकाल धन्ना मुनि भगवान् के पास उपस्थित हो संलेखना करने की आज्ञा माँगने लगे। भगवान् से आज्ञा प्राप्त कर कड़ाही स्थविरों (संथारे में सहायता देने वाले साधुओं) के साथ धन्ना मुनि विपुलगिरि पर आए और स्थविरों की साक्षी से संलेखना संथारा किया। एक महीने की संलेखना करके और नव महीने संयम पालन कर यथावसर काल कर गये। धन्ना मुनि काल कर गए हैं यह जान कर कड़ाही स्थविरों ने काउ-सग्ग किया। तत्पश्चात् धन्ना मुनि के भण्डोपकरण लेकर भगवान् की सेवा में उपस्थित हुए और भण्डोपकरण रख दिए।

गौतम स्वामी के पूछने पर भगवान् ने फरमाया कि धन्ना मुनि यथावसर काल करके सर्वार्थसिद्ध विमान में तेतीस सागरोपम की स्थिति से देवरूप से उत्पन्न हुआ है और वहाँ से चव कर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेगा और वहाँ से मोक्ष में जायगा।

आगे के नौ ही अध्ययनों का वर्णन एक सरीखा ही है सिर्फ नामादि का फरक है वह निम्न प्रकार है—

नाम	माता	ग्राम	विमान
सुनक्षत्र	भद्रा	काकन्दी	सर्वार्थसिद्ध
ऋषिदास	,,	राजगृही	,,
पेल्लकपुत्र	,,	,,	,,
रामपुत्र	,,	श्वेताम्बिका	,,
चन्द्रकुमार	,,	,,	,,
पोष्टिकपुत्र	,,	वाणिज्यग्राम	,,

नाम	माता	ग्राम	विमान
पेढालकुमार	भद्रा	वाणिज्यग्राम	सर्वार्थसिद्ध
पोट्टिल	,,	हस्तिनापुर	,,
विहल्लकुमार	+	राजगृही	,,

इन सब की ऋद्धि सम्पत्ति धन्नाकुमार सरीखी थी। सभी के ३२, ३२ स्त्रियाँ थीं। ऐसी ऋद्धि को छोड़ कर सभी ने भगवान् महावीर स्वामी के पास दीक्षा ली। सब का दीक्षा महोत्सव थावर्चा-पुत्र की तरह हुआ। केवल विहल्लकुमार का दीक्षा महोत्सव उसके पिता ने किया। सूत्र में विहल्लकुमार के पिता और माता का नाम नहीं दिया हुआ है। धन्नाकुमार ने नौ महीने और विहल्लकुमार ने छः महीने दीक्षापर्याय का पालन किया। बाकी आठों ने बहुत वर्षों तक दीक्षा पर्याय का पालन किया। ये सभी सर्वार्थसिद्ध विमान में गए और महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर मोक्ष में जाएंगे।

(१०) प्रश्नव्याकरण सूत्र

प्रश्न व्याकरण सूत्र दसवाँ अङ्गसूत्र है। इसके दो श्रुतस्कन्ध हैं। पहले श्रुतस्कन्ध का नाम आश्रव द्वार है जिसके पाँच अध्ययन हैं। पाँचों में क्रमशः हिंसा, झूठ, चोरी, अब्रह्मचर्य और परिग्रह का वर्णन है। दूसरे श्रुतस्कन्ध का नाम संवर द्वार है, इसके भी पाँच अध्ययन हैं। पाँचों में क्रमशः अहिंसा, सत्य, अचौर्य्य, ब्रह्मचर्य्य और निष्परिग्रह का वर्णन है।

प्रथम श्रुतस्कन्ध

(१) प्राणातिपात अध्ययन—इसमें हिंसा का स्वरूप बतलाया गया है कि हिंसा प्राणियों को त्रसकारी और उद्वेगकारी है। हिंसा इस लोक में अपयश की देने वाली है और परभव में नरक और तिर्यञ्च गति की देने वाली है। इसका वर्णन ३२ विशेषणों द्वारा

किया गया है। हिंसा के प्राणिवध, चण्ड, रौद्र, क्षुद्र आदि गुण-निष्पन्न तीस नाम हैं। हिंसा क्यों की जाती है ? इसके कारण बताए गए हैं। हिंसा करने वाले पञ्चेन्द्रियों में जलचर, स्थलचर आदि के नाम विस्तार पूर्वक दिए गए हैं। आगे चौरिन्द्रिय, तेइन्द्रिय, बेइन्द्रिय जीवों के नाम दिए हैं। आगे पृथ्वीकाय आदि पाँच स्थावर काय के आरम्भ का वर्णन दिया गया है। मंदबुद्धि जीव स्ववश या परवश होकर प्रयोजन से या बिना प्रयोजन, सार्थक या निरर्थक धनोपार्जन के लिए, धर्म के निमित्त और कामभोगों की प्राप्ति के लिए क्रोध, मान, माया और लोभ से प्राणियों की हिंसा करता है। शकरदेश, यवनदेश, बर्बरदेश आदि अनार्य देशों में उत्पन्न होने वाले जीव प्रायः हिंसक होते हैं। मर कर वे जीव नरक में उत्पन्न होते हैं। वहाँ क्षेत्र वेदना और परमाधार्मिकों की घोर वेदना को सहन करना पड़ता है। परमाधार्मिक देवताओं द्वारा दी जाने वाली वेदना का वर्णन शास्त्र में बड़े ही रोमाञ्चकारी ढङ्ग से किया गया है। उनकी दी हुई वेदना से घबरा कर नैरयिक अत्यन्त करुण विलाप करते हैं तब वे कहते हैं कि यह पूर्वभव में किये गये तेरे कर्मों का फल है। पाप कर्म करते समय तू बड़ा प्रसन्न होता था अब उन कुकृत्यों का फल भोगते समय क्यों घबराता है ? इत्यादि वचन कह कर उसकी निर्भर्त्सना करते हैं। नगर के चारों ओर आग लग जाने पर जिस प्रकार नगर में कोलाहल मचता है उसी तरह नरक में सदा काल निरन्तर कोलाहल और हाहाकार मचा रहता है। नैरयिक दीनता पूर्वक कहते हैं कि हमारा दम घुटता है हमें थोड़ा विश्राम लेने दो, हम दीनों पर दया करो किन्तु परमाधार्मिक देव उन्हें एक क्षण भर के लिए भी विश्राम नहीं लेने देते। प्यास से व्याकुल होकर वे कहते हैं हमें थोड़ा पानी पिलाओ तब वे देव उन्हें गरम किया हुआ सीसा पिला देते हैं

जिससे उन्हें अत्यन्त वेदना होती है। इस प्रकार अपने पूर्वकृत पापों का फल भोगते हुए बहुत लम्बे काल तक वहाँ रहते हैं। वहाँ से निकल कर प्रायः तिर्यञ्च गति में जन्म लेते हैं। वहाँ परवश होकर वध बन्धन आदि अनेक कष्ट सहन करने पड़ते हैं। यदि कदाचित् मनुष्य गति में जन्म ले ले तो ऐसा प्राणी प्रायः विरूप और हीन एवं विकृत अङ्ग वाला अन्धा, काना, खोड़ा, लूला, बहरा आदि होता है वह किसी को प्रिय नहीं लगता। जहाँ जाता है वहाँ निरादर पाता है। इस प्रकार हिंसा का महा दुःखकारी फल भोगता है। इसके फल को जान कर हिंसा का त्याग करना चाहिए।

(२) मृषावाद अध्ययन– इस में मृषावाद का कथन किया गया है। असत्य वचन माया, कपट एवं अविश्वास का स्थान है। अलीक, माया, मृषा, शठ आदि इसके गुणनिष्पन्न तीस नाम हैं। यह असत्य वचन असंयती अविरती कपटी क्रोधी आदि पुरुषों द्वारा बोला जाता है। कितनेक लोग अपने मत के प्रचार के लिए भी झूठे वचनों का प्रयोग करते हैं। परलोक को न मानने वाले तो यहाँ तक कह डालते हैं कि प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान परस्त्री गमन और परिग्रह इनके सेवन में कोई पाप नहीं लगता है क्योंकि स्वर्ग नरक आदि कुछ नहीं है। कितनों का कथन है कि यह जगत अण्डे से उत्पन्न हुआ है और कितनेक कहते हैं कि स्वयंभू ने सृष्टि की रचना की है इत्यादि रूप से असत्य वचन का प्रयोग करते हैं। प्राणियों की घात करने वाला वचन सत्य होते हुए भी असत्य ही है। इस प्रकार सूत्र में असत्य वचन को बहुत विस्तार के साथ बतलाया है। इसके आगे असत्य का फल बतलाया गया है। असत्यवादी पुरुष को नरक तिर्यञ्च आदि में जन्म लेकर अनेक दुःख भोगने पड़ते हैं।

(३) अदत्तादान अध्ययन- इसके प्रारम्भ में अदत्तादान (चोरी) का स्वरूप बतलाया गया है और उसके गुणनिष्पन्न तीस नाम दिये हैं। आगे यह बतलाया गया है कि चोरी करने वाले पुरुष समुद्र, जंगल आदि स्थानों में किस तरह लूटते हैं? इसका विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। संसार को समुद्र की उपमा दी गई है। आगे अदत्त का फल बताया गया है। अदत्तादान (चोरी) करने वाले प्राणियों को नरक और तिर्यञ्चगति में जन्म लेकर अनेक दुःख उठाने पड़ते हैं।

(४) अब्रह्म अध्ययन- इसमें अब्रह्म का स्वरूप बतला कर कहा गया है कि इसे जीतना बड़ा कठिन है। इसके गुणनिष्पन्न तीस नाम हैं। अब्रह्म का सेवन कायर पुरुष ही करते हैं शूरवीर नहीं। कितने ही समय तक इसका सेवन किया जाय किन्तु तृप्ति नहीं होती। जो राजा, महाराजा, बलदेव, वासुदेव, चक्रवर्ती, इन्द्र, नरेन्द्र आदि इसमें फंसे हुए हैं वे अतृप्त अवस्था में ही कालधर्म को प्राप्त हो जाते हैं। इससे निवृत्त होने पर ही सुख और संतोष प्राप्त होता है। इसमें फंसे रहने से प्राणियों को नरक और तिर्यञ्च गति में जन्म लेकर अनेक दुःख भोगने पड़ते हैं।

(५) परिग्रह अध्ययन- परिग्रह का स्वरूप। परिग्रह के गुणनिष्पन्न तीस नाम हैं। लोभ के वशीभूत होकर लोग कई प्रकार का अनर्थ करते हैं। भवनपति से लेकर वैमानिक जाति तक के देवों में लोभ की लालसा अधिक होती है। इसमें अधिक फंसने से सुख प्राप्त नहीं होता किन्तु संतोष से ही सुख की प्राप्ति होती है।

दूसरा श्रुतस्कन्ध

(१) अहिंसा अध्ययन- इसमें अहिंसा का स्वरूप बतलाया गया है। अहिंसा सब प्राणियों का क्षेम कुशल चाहने वाली है। अहिंसा के दया, रक्षा, अभया, शान्ति आदि गुणनिष्पन्न ६० नाम

हैं। अहिंसा भगवती को आठ उपमाएं दी गई हैं। अहिंसा व्रत की रक्षा के लिए पाँच भावनाएँ बतलाई गई हैं। अहिंसा का पालन मोक्ष सुखों का देने वाला है।

(२) सत्य अध्ययन– इसमें सत्य वचन का स्वरूप बतला कर उसका प्रभाव बतलाया गया है। सत्य वचन के जनपद सत्य, सम्मत सत्य आदि दस भेद। भाषा के संस्कृत, प्राकृत आदि बारह भेद। एकवचन, द्विवचन आदि की अपेक्षा वचन के सोलह भेद। सत्य व्रत की रक्षा के लिए पाँच भावनाएँ। सत्य व्रत के पालन से मोक्ष सुखों की प्राप्ति होती है।

(३) अस्तेय अध्ययन-- इसमें अस्तेय व्रत का स्वरूप है। अस्तेय व्रत सुव्रत है। अपने स्वरूप को छिपा कर अन्य स्वरूप को प्रकट करने से अस्तेय व्रत का भङ्ग होता है। इस लिए इसके तप-चोर, वयचोर, रूपचोर, कुलचोर, आचारचोर और भावचोर ये छः भेद बतलाए गए हैं। इस व्रत की रक्षा के लिए पाँच भावनाएं बतलाई गई हैं। इसका आराधक मोक्ष सुख का अधिकारी बनता है।

(४) ब्रह्मचर्य अध्ययन–ब्रह्मचर्य व्रत, ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि सब गुणों का मूल है। सब व्रतों में यह व्रत सर्वोत्कृष्ट और उत्तम है। पाँच समिति, तीन गुप्ति से अथवा नववाड़ से ब्रह्मचर्य की रक्षा करनी चाहिए। इस व्रत का आचरण धैर्यवान्, शूरवीर और इन्द्रियों को जीतने वाला पुरुष ही कर सकता है। इस व्रत के भङ्ग से सब व्रतों का भङ्ग हो जाता है। संसार के अन्दर सर्वश्रेष्ठ पदार्थों के साथ तुलना करके इसको बत्तीस उपमाएँ दी गई हैं। इस व्रत की रक्षा के लिए पाँच भावनाएँ बतलाई गई हैं।

(५) अपरिग्रह अध्ययन–साधु को निष्परिग्रही होना चाहिए। उसे किन किन बातों का त्याग करना चाहिए और कौन कौन सी बातें अङ्गीकार करनी चाहिए इसके लिए एक बोल से लगाकर

तेतीस बोल तक एक एक पदार्थ का संग्रह इस अध्ययन में किया गया है। साधु को कौनसा आहार कल्पता है और कौनसा नहीं, कितने पात्र और वस्त्र से अधिक नहीं रखना चाहिए इत्यादि बातों का कथन भी इस अध्ययन में दिया गया है। इस व्रत की रक्षा के लिए पाँच भावनाएँ बतलाई गई हैं।

उपसंहार करते हुए बतलाया गया है कि उपरोक्त पाँच संवर द्वारों की सम्यक्प्रकार आराधना करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

(११) विपाक सूत्र

ज्ञानावरणीयादि आठ कर्मों के शुभाशुभ परिणाम विपाक कहलाते हैं। ऐसे कर्मविपाक का वर्णन जिस सूत्र में हो वह विपाक सूत्र कहलाता है। यह ग्यारहवाँ अङ्गसूत्र है। इसके दो श्रुतस्कन्ध हैं।

पहला श्रुतस्कन्ध

इसका नाम दुःखविपाक है। इसमें दस अध्ययन हैं। इन में दस व्यक्तियों की कथाएं हैं। वे इस प्रकार हैं– (१) मृगापुत्र (२) उज्झितकुमार (३) अभग्नसेन चोर सेनापति (४) शकट कुमार (५) बृहस्पति कुमार (६) नन्दी वर्द्धन (७) उम्बरदत्त कुमार (८) सौर्य्यदत्त कुमार (९) देवदत्ता रानी (१०) अंजू कुमारी।

इन कथाओं में यह बतलाया गया है कि इन व्यक्तियों ने पूर्व भव में किस किस प्रकार और कैसे कैसे पाप कर्म उपार्जन किए, जिससे आगामी भव में उन्हें किसप्रकार दुःखी होना पड़ा। नरक और तिर्यञ्च के अनेक भवों में दुःखमय कर्मविपाकों को भोगने के पश्चात् मोक्ष प्राप्त करेंगे। पाप कार्य करते समय तो अज्ञानतावश जीव प्रसन्न होता है और वे पापकारी कार्य सुखदायी प्रतीत होते हैं किन्तु उनका परिणाम कितना दुःखदायी होता है और जीव को कितने दुःख उठाने पड़ते हैं इन बातों का साक्षात् चित्र इन कथाओं में खींचा गया है।

दूसरा श्रुतस्कन्ध

इसका नाम सुखविपाक है। इसमें दस अध्ययन हैं। दसों में दस व्यक्तियों की कथाएँ हैं। वे इस प्रकार हैं–(१) सुबाहुकुमार (२) भद्रनन्दीकुमार (३) सुजातकुमार (४) सुवासवकुमार (५) जिनदासकुमार (६) वैश्रमणकुमार (७) महाबलकुमार (८) भद्रनन्दीकुमार (९) महच्चन्द्रकुमार (१०) वरदत्तकुमार।

इन व्यक्तियों ने पूर्व भव में सुपात्र को दान दिया था जिसके फलस्वरूप इस भव में उत्कृष्ट ऋद्धि की प्राप्ति हुई और संसार परित्त (हल्का) किया। ऐसी ऋद्धि का त्याग करके इन सभी ने संयम अंगीकार किया और देवलोक में गए। आगे मनुष्य और देवता के शुभ भव करते हुए महाविदेह क्षेत्र से मोक्ष प्राप्त करेंगे। सुपात्र दान का ही यह महात्म्य है, यह इन कथाओं से भली प्रकार ज्ञात होता है। इन सब में सुबाहुकुमार की कथा बहुत विस्तार के साथ दी गई है। शेष नौ कथाओं के केवल नाम दिए गए हैं। वर्णन के लिए सुबाहुकुमार के अध्ययन की भलामण दी गई है। पुण्य का फल कितना मधुर और सुखरूप होता है इसका परिचय इन कथाओं से मिलता है। प्रत्येक सुखाभिलाषी प्राणी के लिए इन कथाओं के अध्ययनों का स्वाध्याय करना परम आवश्यक है।

सुखविपाक और दुःखविपाक दोनों की वीस कथाओं का विस्तृत वर्णन वीसवें बोलसंग्रह में दिया जायगा।

बारहवाँ बोल संग्रह

७७७- बारह उपांग

अङ्गों के विषयों को स्पष्ट करने के लिए श्रुतकेवली या पूर्वधर आचार्यों द्वारा रचे गए आगम उपांग कहलाते हैं। अंगों की तरह उपांग भी बारह हैं।

(१) उववाई सूत्र

यह सूत्र पहला उपाङ्ग है। यह पहले अङ्ग आचाराङ्ग का उपाङ्ग माना जाता है। अंग तथा उपाङ्ग प्रायः सभी सूत्रों में जहाँ नगर, उद्यान, यक्ष, राजा, रानी, समवसरण, प्रजा, सेठ आदि का दर्शनों के लिए जाना तथा परिषद आदि का वर्णन आता है वहाँ उववाई सूत्र का प्रमाण दिया जाता है, इस लिए यह सूत्र बहुत महत्व रखता है। इसके उत्तरार्द्ध में जीव किस करणी से किस गति में उत्पन्न होता है, नरक तथा देवलोक में जीव दस हजार वर्ष से लेकर तेतीस सागरोपम तक की आयुष्य किस करणी से प्राप्त करता है इत्यादि विस्तार पूर्वक बताया गया है। यह उत्कालिक सूत्र है। इसमें नीचे लिखे विषय वर्णित हैं-

(१) समवसरणाधिकार- चम्पा नगरी, पूर्णभद्र यक्ष, पूर्णभद्र चैत्य, अशोकवृक्ष, पृथ्वीशिला, कोणिक राजा, धारिणी रानी तथा समाचार देने वाले व्यक्ति का वर्णन। भगवान् महावीर स्वामी के गुण। सम्पूर्ण शरीर तथा नख से शिखा तक प्रत्येक अङ्ग का वर्णन।

चौंतीस अतिशय। वाणी के पैंतीस गुण। भगवान् महावीर का साधु साध्वी परिवार के साथ पधारना। भगवान् के पधारने की सूचना और बधाई। नमुत्थुणं की विधि व पाठ। बधाई के लिए पारितोषिक। भगवान् का चम्पा नगरी में पधारना। साधु के गुणों का वर्णन। लब्धि तथा तपप्रतिमा का वर्णन। साधुओं के विशेष गुण। साधुओं की उपमा। बारह तप के ३५४ भेद। साधुओं द्वारा शास्त्र के पठन पाठन का वर्णन। संसार रूपी समुद्र तथा धर्म रूपी जहाज का वर्णन। देव तथा मनुष्यों की परिषदाएँ। नगर तथा सेना का सजना। कोणिक राजा का सजधज कर वन्दन के लिए जाना। वन्दना के लिए भगवान् के पास जाना, पाँच अभिगम और वन्दना की विधि। रानियों का तैयार होना। स्त्रियों द्वारा वन्दना की विधि। तीर्थङ्कर का धर्मोपदेश। परिषद् द्वारा की गई प्रशंसा।

(२) औपपातिक अधिकार— गौतम स्वामी के गुण, संशय और प्रश्न। कर्मबन्ध, मोहबन्ध, कर्मवेद, नरकगमन, देवगमन आदि विषयक प्रश्न तथा उनके उत्तर। सुशील स्त्री और रस त्यागी का वर्णन तथा उनके लिए प्रश्नोत्तर। तापस, कंदर्पी साधु, सन्यासी, अम्बडसन्यासी, दृढप्रतिज्ञ, प्रत्यनीक साधु, तिर्यञ्च श्रावक, गोशालक मत, कौतुकी साधु, निह्नव, श्रावक, साधु तथा केवली के विषय में प्रश्न तथा उनके उत्तर।

(३) सिद्धाधिकार— केवली समुद्घात। सिद्धों के विषय में प्रश्नोत्तर। सिद्धों का वर्णन गाथा रूप में। सिद्धों के सुख का प्रमाण। जंगली का दृष्टान्त। सिद्धों के सुख।

(२) रायपसेणी सूत्र

उपाङ्ग सूत्रों में दूसरे सूत्र का नाम 'रायपसेणी' है। टीकाकार और वृत्तिकार आचार्यों का इस सूत्र के नाम के विषय

में मतभेद है। कोई आचार्य इसे 'राजप्रसेनकीय' और कोई इसे 'राजप्रसेनजित' नाम से कहते हैं किन्तु इसका 'रायपसेणीय' यह नाम ही उपयुक्त प्रतीत होता है। इसमें राजा परदेशी के प्रश्नोत्तर होने से यही नाम सार्थक है। यह सूत्र सूयगडांग सूत्र का उपाङ्ग है। सूयगडांग सूत्र में क्रियावादी अक्रियावादी आदि ३६३ पाखण्ड मतों का वर्णन है। राजा परदेशी भी अक्रियावाद को मानने वाला था और इसी के आधार पर उसने केशीश्रमण से जीवविषयक प्रश्न किये थे। अक्रियावाद का वर्णन सूयगडांग सूत्र में है उसी का दृष्टान्त द्वारा विशेष वर्णन रायपसेणी सूत्र में है यह उत्कालिक सूत्र है।

इस सूत्र में मुख्य रूप से राजा परदेशी का वर्णन दिया गया है। इसके अतिरिक्त चित्त सारथि, भगवान् महावीर, केशीकुमार श्रमण, राजा जितशत्रु, आमलकल्पा नगरी का राजा सेय और उसकी रानी धारिणी, राजा परदेशी की रानी सूर्यकान्ता, उसका पुत्र सूर्यकान्त आदि व्यक्तियों का वर्णन है। आमलकल्पा नगरी, श्रावस्ती नगरी, श्वेताम्बिका नगरी, केकय देश, कुणालदेश आदि स्थलों का भी विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। इस वर्णन से उस समय की नगर रचना, राजा और प्रजा की स्थिति, देश की स्थिति आदि का भली प्रकार ज्ञान होजाता है। सूत्र में वर्णित कथा का सारांश इस प्रकार है–

ग्रामानुग्राम विहार करते हुए भगवान् महावीर स्वामी आमलकल्पा नगरी में पधारे। आम्रशाल वन में अशोक वृक्ष के नीचे एक विशाल पृथ्वीशिलापट्ट पर विराजे। देवताओं ने समवसरण की रचना की। जनता भगवान् का धर्मोपदेश सुनने के लिये आई। सौधर्म कल्प के सूर्याभ विमान में सूर्याभ देव आनन्द पूर्वक बैठा हुआ था। उसके मन में भगवान् को वन्दना करने के लिये जाने

का विचार उत्पन्न हुआ और अपने आभियोगिक देवों को लेकर भगवान् के समवसरण में आया। भगवान् को वन्दना नमस्कार करके बैठ गया। बाद में उसने बत्तीस प्रकार के नाटक करके बतलाये और वापिस अपने स्थान पर चला गया। सूत्र में बत्तीस नाटकों का वर्णन बहुत विस्तार के साथ किया गया है।

सूर्याभ देव की ऐसी उत्कृष्ट ऋद्धि को देख कर गौतम स्वामी ने भगवान् से उसके विमान आदि के बारे में पूछा। भगवान् ने इसका विस्तार के साथ उत्तर दिया है। विमान, वनखण्ड, सभा मण्डप आदि का बहुत विस्तार से वर्णन किया गया है। सूर्याभ देव को यह ऋद्धि कैसे प्राप्त हुई? गौतम स्वामी के इस प्रश्न का उत्तर देते हुए भगवान् ने उसका पूर्वभव बतलाया। सूर्याभ देव का जीव पूर्वभव में राजा परदेशी था।

केकय देश की श्वेताम्बिका नगरी में राजा परदेशी राज्य करता था। उसकी रानी का नाम सूर्यकान्ता और पुत्र का नाम सूर्यकान्त था। राजा शरीर से भिन्न जीव को नहीं मानता था और बहुत क्रूरकर्मा था। चित्त सारथि की प्रार्थना स्वीकार कर केशीश्रमण वहाँ पधारे। घोड़ों की परीक्षा के बहाने चित्त सारथि राजा को केशीश्रमण के पास ले गया। राजा परदेशी ने जीव के विषय में छः प्रश्न किए। केशीश्रमण ने उनका उत्तर बहुत युक्ति पूर्वक दिया। (श्री जैन सिद्धान्त बोल संग्रह द्वितीय भाग के छठे बोल संग्रह के बोल नं० ४६६ में राजा परदेशी के छः प्रश्न बहुत विस्तार के साथ दिए गए हैं) जिससे राजा की शङ्काओं का भली प्रकार समाधान होगया। राजा ने मुनि के पास श्रावक के व्रत अङ्गीकार किए और अपने राज्य एवं धन की सुव्यवस्था कर उसके चार भाग कर दिए अर्थात् अपने अधीन सात हजार गाँवों को चार भागों में विभक्त कर दिया। एक विभाग राज्य की व्यवस्था के लिए, दूसरा भाग

खजाने में, तीसरा अन्तःपुर की रक्षा के लिए और चौथा भाग अर्थात् पौने दो हजार गाँवों की आमदनी दानशाला आदि परोपकार के कार्यों के लिए। इस प्रकार राज्य का विभाग कर राजा परदेशी अपनी पौषधशाला में उपवास पौषध आदि करता हुआ धर्म में तल्लीन रहने लगा। अपने विषयोपभोग में अन्तराय पड़ती देख रानी सूर्यकान्ता ने राजा को जहर दे दिया। जब राजा को इस बात का पता लगा तो वह पौषधशाला में पहुंचा। रानी पर किञ्चिन्मात्र द्वेष न करता हुआ राजा संलेखना संथारा कर धर्मध्यान ध्याने लगा। समाधि पूर्वक मरण प्राप्त कर राजा प्रथम देवलोक के सूर्याभ विमान में सूर्याभ देव रूप से उत्पन्न हुआ। वहाँ चार पल्योपम की आयु पूरी करके महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेगा। प्रव्रज्या अङ्गीकार कर मोक्ष में जायगा।

(३) जीवाभिगम सूत्र

यह सूत्र तीसरे अङ्ग ठाणांग का उपांग है। इसका नाम है जीवाभिगम। इसमें जीवों के चौवीस स्थान(दण्डक), अवगाहना, आयुष्य, अल्पबहुत्व, मुख्य रूप से ढाई द्वीप तथा सामान्य रूप से सभी द्वीप समुद्रों का कथन है। ठाणांग सूत्र में संक्षेप से कही गई बहुत सी वस्तुएँ यहाँ विस्तारपूर्वक बताई गई हैं। इसमें नीचे लिखे विषय हैं—

(१) प्रतिपत्ति—नवकार मन्त्र। जिनवाणी। जीव तथा अजीव के अभिगम अर्थात् स्वरूपविषयक प्रश्न। अरूपी और रूपी जीव के भेद। सिद्ध भगवान् के प्रकार व १५ भेद। संसारी जीवों की संक्षेप में नौ प्रतिपत्तियाँ। तीन स्थावरों के भेदानुभेद और उन पर अलग अलग तेईस द्वार।

(२) प्रतिपत्ति-- तीनों वेदों के भेद प्रभेद। स्त्रीवेद की स्थिति के विविध प्रकार। स्त्रीवेद के अन्तर तथा अल्पबहुत्व। स्त्रीवेद रूप

मोहनीय कर्म की स्थिति व विषय। पुरुषवेद की स्थिति, अन्तर, पाँच प्रकार का अल्पबहुत्व, कर्मस्थिति व विषय। नपुंसकवेद के विषय में भी ऊपर लिखी सभी बातें। तीनों वेदों को मिला कर आठ प्रकार का अल्पबहुत्व।

(३) प्रतिपत्ति– चार प्रकार के जीव। चारों गतियों के भेद प्रभेद। नरकों के नाम, गोत्र, पिण्ड आदि का वर्णन। नारकों के क्षेत्र आदि की वेदना का दृष्टान्तयुक्त वर्णन। सातों नरकों के पाथड़ों की अलग अलग अवगाहना तथा उनमें रहने वाले नारकी जीवों की स्थिति। नारकी के विषय में विविध वर्णन। तिर्यञ्चों के भेद प्रभेद तथा विशेष भेद। अनगार, अवधि तथा लेश्या के लिए प्रश्नोत्तर। एक समय में दो क्रियाएँ मानने वाले अन्यतीर्थिक का मत। अन्तर्द्वीप के मनुष्यों का अधिकार। कर्मभूमि मनुष्यों का अधिकार। भवनपति देवों का विस्तारपूर्वक वर्णन। वाणव्यन्तर देवों का वर्णन। ज्योतिषी देवों का वर्णन। असंख्यात द्वीप समुद्र व जम्बूद्वीप का वर्णन। जम्बूद्वीप की जगती (परकोटा) का विस्तार पूर्वक वर्णन। विजया राजधानी और विजय देवों का विस्तार। जम्बूद्वीप के तीनों द्वारों का वर्णन। उत्तरकुरु तथा यमक पर्वत। उत्तरकुरु के नीलवन्त आदि द्रहों का वर्णन। कञ्चनगिरि पर्वत का वर्णन। जम्बूसुदर्शन वृक्ष का विस्तार। जम्बूद्वीप में चन्द्र, सूर्य आदि की संख्या। लवणसमुद्र का अधिकार। पाताल कलशों का वर्णन। शिखाचित्र व नागदेव का अधिकार। गोस्तूभ पर्वत तथा वेलंधर, अनुवेलंधर राजा का वर्णन। सुस्थित देव व गौतमद्वीप का वर्णन। चन्द्र व सूर्य के द्वीप का अधिकार। द्वीप समुद्रों के नाम। ढाई द्वीप से बाहर के ज्योतिषी। लवणसमुद्र सम्बन्धी प्रश्नोत्तर। धातकी खण्ड द्वीप, कालोद समुद्र, पुष्करवर द्वीप और मानुषोत्तर पर्वत का वर्णन। ढाई द्वीप तथा बाहर के ज्योतिषी। मानुषोत्तर पर्वत।

मनुष्य लोक का शाश्वतपना। इन्द्र के च्यवन का अधिकार। पुष्कर समुद्र। वरुण द्वीप और वरुण समुद्र। क्षीरद्वीप और क्षीरसमुद्र। घृत द्वीप व घृत समुद्र। इक्षु द्वीप व इक्षु समुद्र। नन्दीश्वर द्वीप व नन्दीश्वर समुद्र। अनेक द्वीप समुद्रों का वर्णन। यावत् कह कर स्वयम्भूरमण समुद्र का वर्णन। असंख्यात् द्वीप समुद्रों के नाम। अलग अलग समुद्रों के पानी का स्वाद। समुद्रों में मत्स्यों का वर्णन। द्वीप समुद्रों की गिनती का प्रमाण व परिणाम। इन्द्रियों के विषय, पुद्गल परिणाम। चन्द्र और तारों की समानता। मेरु तथा समभूमि से अन्तर। आभ्यन्तर और बाह्य नक्षत्र। चन्द्र विमान का संस्थान तथा लम्बाई चौड़ाई। ज्योतिषी विमान उठाने वाले देवों का विस्तार। शीघ्र गति व मन्द गति। हीनाधिक ऋद्धि। परस्पर अन्तर। वैमानिक देव तथा देवियों का विस्तार।

(४) प्रतिपत्ति– एकेन्द्रिय आदि पाँच प्रकार के जीव।

(५) प्रतिपत्ति– पृथ्वी आदि छः काय के जीवों का वर्णन।

(६) प्रतिपत्ति– सात प्रकार के जीवों का वर्णन।

(७) प्रतिपत्ति– आठ प्रकार के जीव।

(८) प्रतिपत्ति– नौ प्रकार के जीवों का संक्षिप्त वर्णन।

(९) प्रतिपत्ति– दस प्रकार के जीव।

समुच्चय जीवाभिगम– जीवों के दो से लेकर दस तक भेद।

(४) पन्नवणा सूत्र

जीवाभिगम सूत्र के बाद पन्नवणा सूत्र आता है। अंग सूत्रों में चौथे अंग सूत्र समवायांग का यह उपांग है। समवायांग में जीव, अजीव, स्वसमय, परसमय, लोक, अलोक आदि विषयों का वर्णन किया गया है। एक एक पदार्थ की वृद्धि करते हुए सौ पदार्थों तक का वर्णन समवायांग सूत्र में है। इन्हीं विषयों का

वर्णन विशेषरूप से पन्नवणा में किया गया है। इसमें ३६ पद हैं। एक एक पद में एक एक विषय का वर्णन है।

आगमों में चार प्रकार के अनुयोगों का निरूपण किया गया है। (१) द्रव्यानुयोग (२) गणितानुयोग (३) चरणकरणानुयोग (४) धर्मकथानुयोग। द्रव्यानुयोग में जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल, द्रव्य आदि का वर्णन आता है। गणितानुयोग में मनुष्य तिर्यञ्च, देव, नारक आदि की गिनती आदि का वर्णन होता है। चरणकरणानुयोग में चारित्रसम्बन्धी और धर्मकथानुयोग में कथा द्वारा धर्म के उपदेश आदि का वर्णन आता है। पन्नवणा सूत्र में मुख्य रूप से द्रव्यानुयोग का वर्णन है। इसके सिवाय कहीं कहीं पर चरणकरणानुयोग और गणितानुयोग का विषय भी आया है। इसमें ३६ पद हैं।

पहले प्रज्ञापनापद के दो भेद हैं–अजीव प्रज्ञापना और जीव प्रज्ञापना। अजीव प्रज्ञापना में धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय आकाशास्तिकाय, काल और पुद्गलास्तिकाय के भेद प्रभेदों का वर्णन है। जीव प्रज्ञापना में जीवों के सविस्तर भेदों का वर्णन है। मनुष्यों के भेदों में आर्य (जाति आर्य, कुल आर्य आदि) और म्लेच्छ आदि का भी विस्तारपूर्वक वर्णन है। दूसरे स्थानपद में पृथ्वीकायिक से लेकर सिद्धों तक के स्थान का वर्णन है। तीसरा अल्पबहुत्व पद है। इसमें दिशाद्वार, गतिद्वार, इन्द्रियद्वार, काय द्वार आदि २६ द्वारों से अल्पबहुत्व का विचार किया गया है और २७वें महादण्डक द्वार में सब जीवों का विस्तारपूर्वक अल्प-बहुत्व कहा गया है। चौथे स्थितिपदद्वार में चौवीस दण्डकों की अपेक्षा सब जीवों की जघन्य और उत्कृष्ट आयु का वर्णन किया गया है। पांचवें पद का नाम विशेष अथवा पर्याय पद है। इसमें जीव और अजीवों के पर्यायों का वर्णन है। छठे व्युत्क्रान्ति पद में जीवों

के उपपात, उपपातविरह, उद्वर्तना, उद्वर्तनाविरह, सान्तर और निरन्तर उपपात और उद्वर्तना, परभव का आयुबन्ध इत्यादि बातों का वर्णन किया गया है। सातवें उच्छ्वासपद में चौवीस दण्डक के जीवों की अपेक्षा उच्छ्वास काल का परिमाण बतलाया गया है। आठवें संज्ञा पद में संज्ञा, उपयोग और अल्पबहुत्व का निरूपण किया गया है। नवाँ योनिपद है, इसमें शीत, उष्ण और शीतोष्ण तीन प्रकार की योनियों का वर्णन है तथा योनि के कूर्मोन्नता, शंखावर्त्ता और वंशीपत्रा आदि भेद किए गए हैं। किन जीवों के कौनसी योनि होती है और कौनसे जीव किस योनि में पैदा होते हैं इत्यादि बातों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। दसवां चरमाचरम पद है, इसमें रत्नप्रभा पृथ्वी आदि तथा परमाणु और परिमण्डल आदि संस्थानों की अपेक्षा चरम और अचरम का का निरूपण है। ग्यारहवें पद का नाम भाषापद है, इसमें सत्यभाषा, असत्यभाषा आदि भाषा सम्बन्धी भेदों का विचार किया गया है। भाषा के लिङ्ग, वचन, उत्पत्ति आदि का भी विचार किया गया है। भाषा के दो भेद- पर्याप्तभाषा और अपर्याप्तभाषा। पर्याप्त सत्यभाषा के जनपद सत्य आदि दस भेद। पर्याप्त मृषाभाषा के क्रोधनिश्रित आदि दस भेद। अपर्याप्त भाषा के दो भेद। अपर्याप्त सत्यामृषा भाषा के दस भेद। अपर्याप्त असत्यामृषा भाषा के बारह भेद। भाषाद्रव्य, भाषा द्रव्य का ग्रहण, वचन के सोलह भेद, कैसी भाषा बोलने वाला आराधक और विराधक होता है, भाषा सम्बन्धी अल्पबहुत्व आदि विषयों का विस्तारपूर्वक वर्णन है।

बारहवाँ शरीर पद है- इसमें औदारिकादि पाँच शरीरों का वर्णन है। तेरहवें परिणाम पद में जीव के दस परिणाम और अजीव के दस परिणामों का वर्णन किया गया है। चौदहवें कषाय पद में कषायों के भेद, उत्पत्तिस्थान, आठ कर्मों के चय, उपचय आदि का

(१) भरत क्षेत्र का अधिकार–जम्बूद्वीप का संस्थान व जगती। द्वारों का अन्तर। भरत क्षेत्र, वैताढ्य पर्वत व ऋषभकूट का वर्णन।

(२) काल का अधिकार–उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल का वर्णन। काल का प्रमाण (गणितभाग) समय से १९८ अङ्कों तक का गणित। पहले, दूसरे तथा तीसरे आरे का वर्णन। भगवान् ऋषभदेव का अधिकार। निर्वाण महोत्सव। चौथे आरे का वर्णन। पाँचवें और छठे आरे का वर्णन। उत्सर्पिणी काल।

(३) चक्रवर्त्यधिकार–विनीता नगरी का वर्णन। चक्रवर्ती के शरीर का वर्णन। चक्ररत्न की उत्पत्ति। दिग्विजय के लिए प्रस्थान। मागधदेव, वरदामदेव, प्रभासदेव और सिन्धुदेवी का साधन। वैताढ्य गिरि के देव का साधन। दक्षिण सिन्धु खण्ड पर विजय। तिमिस्र गुफा के द्वारों का खुलना। गुफा प्रवेश, मण्डल लेखन। उन्मग्नजला और निमग्नजला नदियों का वर्णन। आपात नाम वाले किरात राजाओं पर विजय। चुल्लहिमवन्त पर्वत के देव का आराधन। ऋषभकूट पर नामलेखन। नवमी तथा वेनवमी की आराधना। गङ्गा देवी का आराधन। खण्डप्रपात गुफा का नृत्य। मालदेव का आराधन। नौ निधियों का आराधन। विनीता नगरी में प्रवेश। राज्यारोहण महोत्सव। चक्रवर्ती की ऋद्धि। शीशमहल में अङ्गूठी का गिरना, वैराग्य और कैवल्य प्राप्ति।

(४) क्षेत्रवर्षधरों का अधिकार– चुल्लहिमवन्त पर्वत, हैमवत क्षेत्र, महाहिमवन्त पर्वत, हरिवर्ष क्षेत्र, निषध पर्वत, महाविदेह क्षेत्र, गन्धमादन गजदन्ता पर्वत, उत्तरकुरु क्षेत्र, यमक पर्वत व राजधानी, जम्बूवृक्ष, माल्यवन्त पर्वत, कच्छ आदि आठ विजय, सीतामुख व वच्छ आदि आठ विजय। सौमनस गजदन्त, देवकुरु, विद्युत्प्रभ गजदन्त, पद्म आदि १६ विजय, मेरु पर्वत, नीलवन्त पर्वत, रम्यकवास क्षेत्र, रुक्मी पर्वत, हैरण्यवत क्षेत्र, शिखरी पर्वत, ऐरावत क्षेत्र।

तीर्थङ्करों का अभिषेक। दिशाकुमारियों द्वारा किया गया उत्सव। इन्द्रों द्वारा किया गया उत्सव। तीर्थङ्करों का स्वस्थान स्थापन।

(५) खण्डयोजनाधिकार– प्रदेश स्पर्शनाधिकार। खण्ड, योजन, क्षेत्र, पर्वत, कूट, तीर्थ, श्रेणी, विजय, द्रह और नदीद्वार।

(६) ज्योतिषीचक्राधिकार– चन्द्र सूर्य आदि की संख्या। सूर्यमण्डल की संख्या, क्षेत्र, अन्तर, लम्बाई, चौड़ाई, मेरु से अन्तर, हानि, वृद्धि, गतिपरिमाण, दिन रात्रि परिमाण, तापक्षेत्र, संस्थान, दृष्टिविषय, क्षेत्र गमन तथा ऊपर नीचे और तिर्छे ताप (गरमी)। ज्योतिषी देव की उत्पत्ति तथा इन्द्रों का च्यवन। चन्द्रमण्डलों का परिमाण, मण्डलों का क्षेत्र, मण्डलों में अन्तर, लम्बाई चौड़ाई और गतिपरिमाण। नक्षत्र मण्डलों में परस्पर अन्तर, विष्कम्भ, मेरु से दूरी, लम्बाई चौड़ाई तथा गतिपरिमाण, चन्द्रगति का परिमाण तथा उदय और अस्त की रीति।

(७) संवत्सरों का अधिकार– संवत्सरों के नाम व भेद। संवत्सर के महीनों के नाम। पक्ष, तिथि तथा रात्रि के नाम। मुहूर्त व करण के नाम। चर व स्थिर करण। प्रथम संवत्सर आदि के नाम।

(८) नक्षत्राधिकार–नक्षत्र के नाम व दिशा योग। देवता के नाम व तारों की संख्या। नक्षत्रों के गोत्र व तारों की संख्या। नक्षत्र और चन्द्र के द्वारा काल का परिमाण, कुल, उपकुल, कुलोपरात्रि पूर्ण करने वाले नक्षत्रों का पौरुषी प्रमाण।

(९) ज्योतिषी चक्र का अधिकार-- नीचे तथा ऊपर के तारे तथा उनका परिवार। मेरु पर्वत से दूरी। लोकान्त तथा समतल भूमि से अन्तर। बाह्य और आभ्यन्तर तारे तथा उनमें अन्तर। संस्थान और परिमाण। विमान वाहक देवता। गति, अल्पबहुत्व, ऋद्धि, परस्पर अन्तर तथा अग्रमहिषी। सभाद्वार। ८८ ग्रहों के नाम। अल्पबहुत्व।

(१०) समुच्चय अधिकार– जम्बूद्वीप में होने वाले उत्तम पुरुष। जम्बूद्वीप में निधान। रत्नों की संख्या। जम्बूद्वीप की लम्बाई चौड़ाई। जम्बूद्वीप की स्थिति। जम्बूद्वीप में क्या अधिक है। इसका नाम जम्बूद्वीप क्यों है। इत्यादि का वर्णन।

(६) चन्द्र प्रज्ञप्ति

यह कालिक सूत्र है। चन्द्र की ऋद्धि, मंडल, गति, गमन, संवत्सर, वर्ष, पक्ष, महीने, तिथि, नक्षत्रों का कालमान, कुल और उपकुल के नक्षत्र, ज्योतिषियों के सुख वगैरह का वर्णन इस सूत्र में बहुत विस्तार से है। इस सूत्र का विषय गणितानुयोग है। बहुत गहन होने के कारण यह सरलतापूर्वक समझ में नहीं आता। इस में नीचे लिखे विषय प्रतिपादित हैं–

(१) प्राभृत– मङ्गलाचरण। २० प्राभृतों का संक्षिप्त वर्णन। प्राभृत और प्रतिप्राभृत में प्रतिपत्तियाँ, सर्वाभ्यन्तर प्राभृत। पहला प्रतिप्राभृत–मंडल का परिमाण। द्वितीय प्रतिप्राभृत–मंडल संस्थान। तृतीय प्रतिप्राभृत–मंडल क्षेत्र। चतुर्थ प्रतिप्राभृत–ज्योतिषी अन्तर। पाँचवां प्रतिप्राभृत– द्वीपादि में गति का अन्तर। छठा प्रतिप्राभृत– अहर्निश क्षेत्र स्पर्श। सातवाँ प्रतिप्राभृत– मंडल संस्थान। आठवाँ प्रतिप्राभृत– मंडल परिमाण।

(२) प्राभृत– प्रथम प्रतिप्राभृत–तिर्च्छी गति परिमाण। द्वितीय प्रतिप्राभृत–मंडल संक्रमण। तृतीय प्रतिप्राभृत–मुहूर्त गतिपरिमाण।

(३) प्राभृत– क्षेत्र परिमाण।

(४) प्राभृत– ताप, क्षेत्र संस्थान।

(५) प्राभृत– लेश्या प्रतिघात।

(६) प्राभृत– प्रकाश कथन।

(७) प्राभृत– प्रकाश संक्षेप।

(८) प्राभृत– उदय अस्त परिमाण।

(९) प्राभृत– पुरुष छाया परिमाण।

(१०) प्राभृत– इसमें बाईस प्रतिप्राभृत हैं। उनमें नीचे लिखे विषय हैं–(१)नक्षत्रों का योग।(२)नक्षत्र मुहूर्त गति। सूर्य और चन्द्र के साथ नक्षत्रों का काल। (३) नक्षत्र दिशा भाग। (४) युगादि के नक्षत्र और उनका योग। चन्द्र के साथ नक्षत्रों का योग। (५) कुल और उपकुल नक्षत्र। (६) पूर्णिमा और अमावास्या। पूर्णिमा में नक्षत्रों का योग। पर्व, तिथि तथा नक्षत्र निकालने की विधि। सभी नक्षत्रों के मुहूर्त। पाँच संवत्सरों की पूर्णिमा के नक्षत्र। बारह अमावास्याओं के नक्षत्र। अमावास्या के कुलादि नक्षत्र। पाँच संवत्सरों की अमावास्याएँ। (७) नक्षत्रों का सन्निपात। अमावास्या और पूर्णिमा के कुल तथा उपकुल में नक्षत्र। (८) नक्षत्रों के संस्थान। (९) नक्षत्रों के तारों की संख्या। (१०) अहोरात्रि में पूर्ण नक्षत्र। नक्षत्रों के महीने और दिनों का यन्त्र। (११) चन्द्र नक्षत्र मार्ग। सूर्यमण्डल के नक्षत्र। सूर्यमण्डल के ऊपर के नक्षत्र। (१२) नक्षत्रों के अधिष्ठाता देव। (१३) तीस मुहूर्त के नाम। (१४) तिथियों के नाम। (१५) तिथि निकालने की विधि। (१६) नक्षत्रों के गोत्र। (१७) नक्षत्रों में भोजन। (१८) चन्द्र सूर्य की गति। (१९) बारह महीनों के नाम। (२०) पाँच संवत्सरों का वर्णन। (२१) चारों दिशाओं के नक्षत्र। (२२) नक्षत्रों का योग तथा वियोग। नक्षत्रों के भोग का परिमाण।

(११) प्राभृत– संवत्सर के आदि और अन्त।

(१२) प्राभृत– संवत्सर का परिमाण। पाँच संवत्सरों के महीने, दिन और मुहूर्त। पाँच संवत्सरों के संयोग के २६ भांगे। ऋतुनक्षत्र का परिमाण। शेष रहने वाले चन्द्र, नक्षत्र तथा उनकी आवृत्ति आदि का वर्णन।

(१३) प्राभृत– चन्द्र की वृद्धि और अपवृद्धि।

(१४) प्राभृत– शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष।

(१५) प्राभृत–ज्योतिषियों की शीघ्र और मन्द गति। नक्षत्र-मास, चन्द्रमास, ऋतुमास और आदित्यमास में चलने वाले मण्डलों की संख्या आदि का वर्णन।

(१६) प्राभृत– उद्योत के लक्षण।

(१७) प्राभृत– चन्द्र और सूर्य का च्यवन।

(१८) प्राभृत– ज्योतिषियों की ऊँचाई।

(१९) प्राभृत– चन्द्र और सूर्यों की संख्या।

(२०) प्राभृत– चन्द्र और सूर्य का अनुभव। ज्योतिषियों के भोग की उत्तमता का दृष्टान्त। ८८ ग्रहों के नाम।

(७) सूर्य प्रज्ञप्ति

यह सातवाँ उपाङ्ग है। यह उत्कालिक सूत्र है। इसमें सूर्य की गति, स्वरूप, प्रकाश आदि विषयों का वर्णन है। सूर्यप्रज्ञप्ति में २० प्राभृत हैं। विषयों का क्रम नीचे लिखे अनुसार है।

(१) प्राभृत– प्रथम प्रतिप्राभृत– सूर्यमण्डल का परिमाण। द्वितीय प्रतिप्राभृत– मंडल का संस्थान। तृतीय प्रतिप्राभृत– मंडल का क्षेत्र। चतुर्थ प्रतिप्राभृत–ज्योतिषियों में परस्पर अन्तर। पंचम प्रतिप्राभृत– द्वीप आदि में गति का अन्तर। छठा प्रतिप्राभृत–दिन और रात में ग्रहों का स्पर्श। सातवाँ प्रतिप्राभृत–मण्डलों का संस्थान। आठवाँ प्रतिप्राभृत– मण्डलों का परिमाण।

(२) प्राभृत– प्रथम प्रतिप्राभृत– तिर्छी गति का परिमाण। द्वितीय प्रतिप्राभृत– मण्डल संक्रमण। तृतीय प्रतिप्राभृत– मुहूर्त में गति का परिमाण।

(३) प्राभृत– क्षेत्र का परिमाण।

(४) प्राभृत– क्षेत्र का संस्थान।

(५) प्राभृत– लेश्या (ताप) का प्रतिघात।

(६) प्राभृत– सूर्य के प्रकाश का वर्णन।

(७) प्राभृत– प्रकाश का संकोच।

(८) प्राभृत– उदय और अस्त का परिमाण।

(९) प्राभृत– पुरुष की छाया का परिमाण।

(१०) प्राभृत–(१) प्रतिप्राभृत– नक्षत्रों का योग। (२) प्रति प्राभृत– नक्षत्रों की मुहूर्तगति। सूर्य और चाँद के साथ नक्षत्र का काल। (३) प्रतिप्राभृत– नक्षत्रों का दिशाभाग। (४) प्रतिप्राभृत– युगादि में नक्षत्रों के साथ योग। (५) कुल और उपकुल नक्षत्र। (६) पूर्णिमा और अमावास्या। पर्व, तिथि तथा नक्षत्र निकालने की विधि। बारह अमावास्याओं के नक्षत्र। अमावास्या के कुलादि नक्षत्र। पाँच संवत्सरों की अमावास्याएं। (७) नक्षत्रों का सन्निपात। (८) नक्षत्रों के संस्थान। (९) नक्षत्रों में तारों की संख्या। (१०) अहोरात्रि में पूर्ण नक्षत्र। नक्षत्रों के महीने और दिन। (११) चन्द्र का नक्षत्र मार्ग। सूर्यमण्डल के नक्षत्र। सूर्यमण्डल से ऊपर के नक्षत्र। (१२) नक्षत्रों के अधिष्ठाता। (१३) तीस मुहूर्तों के नाम। (१४) तिथियों के नाम। (१५) तिथि निकालने की विधि। (१६) नक्षत्रों के गोत्र। (१७) नक्षत्रों में भोजन। (१८) चन्द्र और सूर्य की गति। (१९) बारह महीनों के नाम। (२०) पाँच संवत्सरों का वर्णन। (२१) चारों दिशाओं के नक्षत्र। (२२) नक्षत्रों का योग, भोग और परिमाण।

(११) प्राभृत– संवत्सर के आदि और अन्त।

(१२) प्राभृत– संवत्सर का परिमाण। पाँच संवत्सर के महीने, दिन और मुहूर्त्त। पाँच संवत्सरों के संयोग से २६ भांगे। ऋतु और नक्षत्रों का परिमाण। चन्द्र नक्षत्र के शेष रहने पर आवृत्ति।

(१३) प्राभृत– चन्द्र की वृद्धि और अपवृद्धि।

(१४) प्राभृत– कृष्णपक्ष और शुक्लपक्ष।

(१५) प्राभृत– ज्योतिषियों की शीघ्र और मन्दगति। नक्षत्र मास, चन्द्रमास, ऋतुमास और आदित्यमास में चलने वाले नक्षत्रों की संख्या आदि का वर्णन।

(१६) प्राभृत– उद्योत के लक्षण।

(१७) प्राभृत– चन्द्र और सूर्य का च्यवन।

(१८) प्राभृत– ज्योतिषियों की ऊँचाई।

(१९) प्राभृत– चन्द्र और सूर्य की संख्या।

(२०) प्राभृत– चन्द्र और सूर्य का अनुभाव। ज्योतिषियों के भोग की उत्तमता के लिए दृष्टान्त। अठासी ग्रहों के नाम।

(८) निरयावलिया

निरयावलिया, कप्पवडंसिया, पुप्फिया, पुप्फचूलिया, वण्हिदसा इन पाँच सूत्रों का एक ही समूह है। निरयावलिया सूत्र कालिक है। इसके दस अध्ययन हैं। यथा–

(१) काली कुमार (२) सुकाली कुमार (३) महाकाली कुमार (४) कृष्ण कुमार (५) सुकृष्ण कुमार (६) महाकृष्ण कुमार (७) वीर कृष्ण कुमार (८) रामकृष्ण कुमार (९) प्रियसेनकृष्ण कुमार (१०) महासेन कृष्ण कुमार।

ये सभी राजगृही के राजा श्रेणिक के पुत्र थे। अपने बड़े भाई कोणिक के साथ संग्राम में युद्ध करने के लिए गए। इनका सामना करने के लिए चेड़ा राजा अठारह देशों के राजाओं को साथ ले कर युद्ध में आया। चेड़ा राजा ने दस दिन में दसों ही कुमारों को मार डाला। कुमारों की मृत्यु का वृत्तान्त सुन कर उनकी माताओं को वैराग्य उत्पन्न हो गया। उन्होंने भगवान् महावीर स्वामी से दीक्षा ग्रहण कर आत्म कल्याण किया। रथमूसल संग्राम और

शिलाकण्टक संग्राम में एक करोड़ अस्सी लाख आदमी मारे गये। इनमें से एक देवगति में, एक मनुष्य गति में और शेष सभी नरक और तिर्यञ्च गति में गये। इस संग्राम में कोणिक राजा की जय और चेड़ा राजा की पराजय हुई।

इस अध्ययन में कोणिक राजा का वर्णन विस्तार के साथ दिया गया है। कोणिक का चेलना रानी के गर्भ में आना, चेलना रानी का दोहद (दोहला), दोहले की पूर्ति, कोणिक का जन्म, राजा श्रेणिक की मृत्यु आदि का वर्णन है।

दूसरे अध्ययन से दसवें अध्ययन तक समुच्चय रूप से रथमूसल और शिला कण्टक संग्राम का भगवती सूत्र के अनुसार संक्षेप में वर्णन किया गया है।

(९) कप्पवडंसिया सूत्र

यह सूत्र कालिक है। इसके दस अध्ययन हैं-

(१) पद्म कुमार (२) महापद्म कुमार (३) भद्र कुमार (४) सुभद्र कुमार (५) पद्मभद्र कुमार (६) पद्मसेन कुमार (७) पद्मगुल्म कुमार (८) नलिनी कुमार (९) आनन्द कुमार (१०) नन्द कुमार।

ये सभी कोणिक राजा के पुत्र काली कुमार के लड़के थे। इनकी माताओं के नाम इन कुमारों के नाम सरीखे ही हैं। सभी ने भगवान् महावीर के पास दीक्षा ली थी। श्रमण पर्याय का पालन कर ये सभी देवलोक में उत्पन्न हुए। वहाँ से चव कर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेंगे और वहाँ से मुक्ति प्राप्त करेंगे।

(१०) पुप्फिया सूत्र

यह सूत्र कालिक है। इसके दस अध्ययन हैं-

(१) चन्द्र (२) सूर्य (३) शुक्र (४) बहुपुत्रिका देवी (५) पूर्णभद्र (६) मणिभद्र (७) दत्त (८) शिव (९) बल (१०) अनादृष्टि।

ये सब देव हैं। भगवान् महावीर के समवसरण में आकर इन्होंने विविध प्रकार के नाटक करके दिखलाये। उनकी ऐसी उत्कृष्ट ऋद्धि को देख कर गौतम स्वामी ने भगवान् से प्रश्न किया कि इनको यह ऋद्धि कैसे प्राप्त हुई? तब भगवान् ने इन के पूर्व भव बतलाये। इन सब ने पूर्वभव में दीक्षा ली थी किन्तु ये विराधक होगये, इसी कारण ज्योतिषी देवों में उत्पन्न हुए। वहाँ से चव कर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेंगे और संयम लेकर मोक्ष में जायँगे।

(११) पुप्फचूलिया सूत्र

यह सूत्र कालिक है। इसके दस अध्ययन हैं—

(१) श्री देवी (२) ह्री देवी (३) धृति (४) कीर्ति (५) बुद्धि (६) लक्ष्मी देवी (७) इला देवी (८) सुरा देवी (९) रस देवी (१०) गन्ध देवी।

इन सभी देवियों ने भगवान् महावीर के समवसरण में उपस्थित होकर विविध प्रकार के नाटक दिखलाये। गौतम स्वामी के पूछने पर भगवान् ने इनका पूर्वभव बतलाया। पूर्वभव में सभी ने दीक्षा ली थी। विराधक होकर यहाँ देवीरूप से उत्पन्न हुईं। यहाँ से चव कर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेंगी और वहीं से मोक्ष प्राप्त करेंगी।

(१२) वण्हिदसा सूत्र

यह सूत्र कालिक है। इसके बारह अध्ययन हैं—

(१) निषध कुमार (२) अनिय कुमार (३) वहकुमार (४) वहे कुमार (५) प्रगति कुमार (६) मुक्ति कुमार (७) दशरथ कुमार (८) दृढरथ कुमार (९) महाधनुष कुमार (१०) सप्तधनुष कुमार (११) दसधनुष कुमार (१२) शतधनुष कुमार।

द्वारिका नगरी में कृष्ण वासुदेव राज्य करते थे। उसी नगरी में बलदेव राजा रहते थे। उनकी रानी का नाम रेवती था। उनके

पुत्र निषध कुमार ने भगवान् अरिष्टनेमि के पास दीक्षा ली। नौ वर्ष तक शुद्ध संयम का पालन कर सर्वार्थसिद्ध विमान में तेतीस सागरोपम की स्थिति वाले देव हुए। वहाँ से चव कर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेंगे और संयम लेकर मोक्ष प्राप्त करेंगे।

शेष ग्यारह अध्ययनों का वर्णन पहले अध्ययन के समान ही है।

७७८- सूत्र के बारह भेद

अल्पाक्षरमसन्दिग्धं सारवद्विश्वतो मुखं।
अस्तोभमनवद्यं च सूत्रं सूत्रविदो विदुः॥

अर्थात्-जो थोड़े अक्षरों वाला, सन्देह रहित, सारयुक्त, सब अर्थों की अपेक्षा रखने वाला, बहुत विस्तार से रहित (निरर्थक पदों से रहित) और निर्दोष हो उसे सूत्र कहते हैं। सूत्र के बारह भेद निम्न प्रकार हैं-

(१) संज्ञा सूत्र- किसी के नाम आदि को संज्ञा कहते हैं। जैसे आचारांग सूत्र के प्रथम श्रुतस्कन्ध, अध्ययन पाँच के पहले उद्देशे में कहा गया है कि-

'जे छेए से सागारियं न सेवे'

अर्थात्-जो पण्डित पुरुष है वह मैथुन सेवन नहीं करे। अथवा दूसरा उदाहरण और दिया गया है-

'आरं दुगुणेणं पारं एग गुणेण य'

अर्थात्-राग और द्वेष इन दो से संसार की वृद्धि होती है और राग द्वेष के त्याग से निर्वाण की प्राप्ति होती है।

(२) स्वसमय सूत्र- अपने सिद्धान्त में प्रसिद्ध सूत्र स्वसमय सूत्र कहलाता है। जैसे-

'करेमि भंते! सामाइयं'

(३) परसमय सूत्र- अपने सिद्धान्त के अतिरिक्त दूसरों के सिद्धान्त को परसमय सूत्र कहते हैं। जैसे-

'पंच खंधे वयंतेगे बाला उ खण जोइणो'

अर्थात्– कोई अज्ञानी क्षणमात्र स्थित रहने वाले पाँच स्कन्धों को बतलाते हैं। स्कन्धों से भिन्न आत्मा को वे नहीं मानते।

(४) उत्सर्ग सूत्र– सामान्य नियम का प्रतिपादन करने वाला सूत्र उत्सर्ग सूत्र कहलाता है। जैसे–

'अभिक्खणं निव्विगइं गया य'

अर्थात्–साधु को सदा विगय रहित आहार करना चाहिए।

(५) अपवाद सूत्र– विशेष नियम का प्रतिपादन करने वाला सूत्र अपवाद सूत्र कहलाता है। जैसे–

तिण्हमन्नयरागस्स, निसिज्जा जस्स कप्पई।
जराए अभिभूयस्स, वाहियस्स तवस्सिणो॥

अर्थात्– अत्यन्त वृद्ध, रोगी और तपस्वी इन तीन व्यक्तियों में से कोई एक कारण होने पर गृहस्थ के घर बैठ सकता है।

दशवैकालिक सूत्र के छठे अध्ययन में इस गाथा से पहले की गाथा में बतलाया गया है– 'साधु को गृहस्थ के घर में नहीं बैठना चाहिए'। यह उत्सर्ग सूत्र (सामान्य नियम) है। इसका अपवाद सूत्र (विशेष नियम) इस गाथा में बतलाया गया है।

(६) हीनाक्षर सूत्र– जिस सूत्र में किसी अक्षर की कमी हो अर्थात् किसी एक अक्षर के बिना सूत्र का अर्थ ठीक नहीं बैठता हो उसे हीनाक्षर सूत्र कहते हैं।

(७) अधिकाक्षर सूत्र– जिस सूत्र में एक आध अक्षर अधिक हो उसे अधिकाक्षर सूत्र कहते हैं।

(८) जिनकल्पिक सूत्र– जिनकल्पी साधुओं के लिए बना हुआ सूत्र जिन कल्पिक सूत्र कहलाता है। जैसे–

तेगिच्छं नाभिनंदिज्जा, संचिक्खऽत्तगवेसए।
एवं खु तस्स सामण्णं, जं न कुज्जा न कारवे॥

अर्थात्- भिक्षु अपने शरीर में उत्पन्न हुए रोग के इलाज के लिए औषधि सेवन की इच्छा न करे किन्तु आत्म शोधक बन कर शान्त चित्त से समाधि भाव में संलग्न रहे। साधु स्वयं चिकित्सा न करे और न दूसरों से करावे, इसी में उसका सच्चा साधुत्व है।

उपरोक्त नियम जिनकल्पी साधुओं के लिए है स्थविर कल्पिओं के लिये नहीं क्योंकि स्थविर कल्पी साधु अपने कल्पानुसार निरवद्य औषधि का सेवन कर सकते हैं।

(९) स्थविरकल्पिक सूत्र-स्थविरकल्पी साधुओं के लिए जो नियम हो वह स्थविरकल्पिक सूत्र कहलाता है। यथा-

'भिक्खु अ इच्छिज्जा अन्नयरिं तेगिच्छिं आउंटित्तए'

अर्थात्- स्थविरकल्पी साधु निरवद्य औषधि का सेवन करे। अथवा जो जिनकल्पी और स्थविर कल्पी साधुओं के लिए एक सरीखा सामान्य नियम हो। यथा-

'संसट्ठ कप्पेण चरिज्ज भिक्खु'

अर्थात्- साधु भिक्षा योग्य पदार्थ से संसृष्ट (खरड़े हुए) हाथ या कड़छी से दिया जाने वाला आहार ग्रहण करे।

(१०) आर्या सूत्र-साध्वियों के लिए नियम बतलाने वाला सूत्र आर्या सूत्र कहलाता है। यथा--

कप्पइ निग्गंथीणं अन्तोलित्तं घडिमत्तयं धारित्तए।

अर्थात्- साध्वियों को लघुनीति आदि परठने के लिये अन्दर से लीपा हुआ मिट्टी का बर्तन रखना कल्पता है।

(११) काल सूत्र-भूत, भविष्यत् और वर्तमान काल में से किसी एक काल के लिये बनाया गया सूत्र कालसूत्र कहलाता है। यथा-

न वा लभेज्जा निउणं सहायं गुणाहियं वा गुणओ समं वा।
इक्कोवि पावाइं विवज्जयंतो, विहरिज्ज कामेसु असज्जमाणो

अर्थात्- यदि अपने से गुणों में अधिक अथवा गुणों में तुल्य

एवं संयम क्रिया में निपुण कोई साधु न मिले तो साधु शुद्ध संयम का पालन करता हुआ अकेला ही विचरे किन्तु शिथिलाचारी साधु के संग में न रहे।

(१२) वचन सूत्र–जिस सूत्र में एक वचन, द्विवचन और बहु-वचन का प्रतिपादन किया गया हो उसे वचन सूत्र कहते हैं। जैसे–

'एगवयणं वयमाणे एगवयणं वएज्जा, दुवयणं वयमाणे दुवयणं वएज्जा, बहुवयणं वयमाणे बहुवयणं वएज्जा, इत्थीवयणं वयमाणे इत्थीवयणं वएज्जा'

अर्थात्–एक वचन के स्थान में एकवचन, द्विवचन के स्थान में द्विवचन, बहुवचन के स्थान में बहुवचन और स्त्रीवचन के स्थान में स्त्रीवचन का कथन करना चाहिए। (बृहत्कल्प उद्देशा १ भाष्यगाथा १२२१)

७७९– भाषा के बारह भेद

जिसे बोल कर या लिख कर अपने भाव प्रकट किए जायँ उसे भाषा कहते हैं। इसके बारह भेद हैं–

(१) प्राकृत (२) संस्कृत (३) मागधी (४) पैशाची (५) शौर-सेनी और (६) अपभ्रंश।

इन छहों के गद्य और पद्य के भेद से बारह भेद हो जाते हैं।

(प्रश्नव्याकरण टीका संवरद्वार, सत्यव्रत)

७८०– अननुयोग के दृष्टान्त बारह

द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव आदि के द्वारा सूत्र और अर्थ के सम्बन्ध को ठीक ठीक बैठाना अनुयोग कहलाता है। अपनी इच्छानुसार विना किसी नियम के मनमाना अर्थ करना अननुयोग कहा जाता है। अननुयोग से शब्द का अर्थ पूरा और यथार्थ रूप से नहीं निकलता और न निकलने से प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। इसके लिए बारह दृष्टान्त हैं–

(१) द्रव्य के अननुयोग तथा अनुयोग के लिए गाय और बछड़े का उदाहरण–

यदि कोई ग्वाला लाल गाय के बछड़े को चितकबरी गाय के स्तनों में और चितकबरी गाय के बछड़े को लाल के स्तनों में छोड़ दे तो वह अननुयोग कहा जायगा क्योंकि जिस गाय का जो बछड़ा हो उसे उसी के स्तनों में लगाना चाहिए। अननुयोग करने से दूध रूप इष्ट कार्य की सिद्धि नहीं होती।

इसी प्रकार अगर साधु जीव के लक्षण द्वारा अजीव की प्ररूपणा करता है अथवा अजीव के लक्षण द्वारा जीव की प्ररूपणा करता है तो वह अननुयोग है। इस प्रकार प्ररूपणा करने से वस्तु का विपरीत ज्ञान होता है। अर्थ के ज्ञान में विसंवाद अर्थात् भ्रम हो जाता है। अर्थ के भ्रम से चारित्र में दोष आने लगते हैं। चारित्र में दोष आने से मोक्ष प्राप्ति नहीं होती। मोक्ष प्राप्त न होने पर दीक्षा व्यर्थ हो जाती है।

यदि ग्वाला बछड़े को ठीक गाय के स्तनों में लगाता है तो दूध रूप इष्ट कार्य की सिद्धि हो जाती है। इसी प्रकार जो साधु जीव के लक्षण से जीव की तथा अजीव के लक्षण से अजीव की प्ररूपणा करता है उसे मोक्ष रूप प्रयोजन की प्राप्ति होती है।

(२) क्षेत्र से अननुयोग और अनुयोग के लिए कुब्जा का उदाहरण–

प्रतिष्ठान नाम के नगर में शालिवाहन नाम का राजा रहता था। वह प्रतिवर्ष भृगु कच्छ देश के राजा नभोवाहन पर चढ़ाई करके उस के नगर को घेर लेता था। वर्षा का समय आने पर वापिस लौट आता था।

एक बार राजा घेरे के बाद वापिस लौटना चाहता था। अपने सभामण्डप में उसने थूकने के बर्तन को छोड़ कर जमीन पर थूक

एवं संयम क्रिया में निपुण कोई साधु न मिले तो साधु शुद्ध संयम का पालन करता हुआ अकेला ही विचरे किन्तु शिथिलाचारी साधु के संग में न रहे।

(१२) वचन सूत्र–जिस सूत्र में एक वचन, द्विवचन और बहुवचन का प्रतिपादन किया गया हो उसे वचन सूत्र कहते हैं। जैसे–

'एगवयणं वयमाणे एगवयणं वएज्जा, दुवयणं वयमाणे दुवयणं वएज्जा, बहुवयणं वयमाणे बहुवयणं वएज्जा, इत्थीवयणं वयमाणे इत्थीवयणं वएज्जा'

अर्थात्–एक वचन के स्थान में एकवचन, द्विवचन के स्थान में द्विवचन, बहुवचन के स्थान में बहुवचन और स्त्रीवचन के स्थान में स्त्रीवचन का कथन करना चाहिए। (बृहत्कल्प उद्देशा १ भाष्यगाथा १२२१)

७७६– भाषा के बारह भेद

जिसे बोल कर या लिख कर अपने भाव प्रकट किए जायँ उसे भाषा कहते हैं। इसके बारह भेद हैं–

(१) प्राकृत (२) संस्कृत (३) मागधी (४) पैशाची (५) शौरसेनी और (६) अपभ्रंश।

इन छहों के गद्य और पद्य के भेद से बारह भेद हो जाते हैं।

(प्रश्नव्याकरण टीका संवरद्वार, सत्यव्रत)

७८०– अननुयोग के दृष्टान्त बारह

द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव आदि के द्वारा सूत्र और अर्थ के सम्बन्ध को ठीक ठीक बैठाना अनुयोग कहलाता है। अपनी इच्छानुसार बिना किसी नियम के मनमाना अर्थ करना अननुयोग कहा जाता है। अननुयोग से शब्द का अर्थ पूरा और यथार्थ रूप से नहीं निकलता और न निकलने से प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। इसके लिए बारह दृष्टान्त हैं–

(१) द्रव्य के अननुयोग तथा अनुयोग के लिए गाय और बछड़े का उदाहरण—

यदि कोई ग्वाला लाल गाय के बछड़े को चितकबरी गाय के स्तनों में और चितकबरी गाय के बछड़े को लाल के स्तनों में छोड़ दे तो वह अननुयोग कहा जायगा क्योंकि जिस गाय का जो बछड़ा हो उसे उसी के स्तनों में लगाना चाहिए। अननुयोग करने से दूध रूप इष्ट कार्य की सिद्धि नहीं होती।

इसी प्रकार अगर साधु जीव के लक्षण द्वारा अजीव की प्ररूपणा करता है अथवा अजीव के लक्षण द्वारा जीव की प्ररूपणा करता है तो वह अननुयोग है। इस प्रकार प्ररूपणा करने से वस्तु का विपरीत ज्ञान होता है। अर्थ के ज्ञान में विसंवाद अर्थात् भ्रम हो जाता है। अर्थ के भ्रम से चारित्र में दोष आने लगते हैं। चारित्र में दोष आने से मोक्ष प्राप्ति नहीं होती। मोक्ष प्राप्त न होने पर दीक्षा व्यर्थ हो जाती है।

यदि ग्वाला बछड़े को ठीक गाय के स्तनों में लगाता है तो दूध रूप इष्ट कार्य की सिद्धि हो जाती है। इसी प्रकार जो साधु जीव के लक्षण से जीव की तथा अजीव के लक्षण से अजीव की प्ररूपणा करता है उसे मोक्ष रूप प्रयोजन की प्राप्ति होती है।

(२) क्षेत्र से अननुयोग और अनुयोग के लिए कुब्जा का उदाहरण—

प्रतिष्ठान नाम के नगर में शालिवाहन नाम का राजा रहता था। वह प्रतिवर्ष भृगु कच्छ देश के राजा नभोवाहन पर चढ़ाई करके उस के नगर को घेर लेता था। वर्षा का समय आने पर वापिस लौट आता था।

एक बार राजा घेरे के बाद वापिस लौटना चाहता था। अपने सभामण्डप में उसने थूकने के बर्तन को छोड़ कर जमीन पर थूक

दिया। राजा के पास थूकने के बर्तन आदि को उठाने वाली एक कुब्जा दासी थी। इशारे और हृदय के भावों को समझने में वह बहुत चतुर थी। जमीन पर थूकने से वह समझ गई कि राजा अब इस स्थान को छोड़ देना चाहता है। कुब्जा ने राजा के दिल की बात स्कन्धावार (सेना) के अध्यक्ष को कह दी। वह कुब्जा को बहुत मानता था। राजा के जाने के लिए तैयार होने से पहले ही उसने हाथी घोड़े रथ आदि सवारियाँ सामने लाकर खड़ी कर दीं। पीछे सारा स्कन्धावार चलने के लिए तैयार हो कर आगया। सेना के कारण उड़ी हुई धूल से सारा आकाश भर गया।

राजा ने सोचा-- मैंने अपने जाने की बात किसी से नहीं कही थी। मेरा विचार था, थोड़े से नौकर चाकरों को लेकर सेना के आगे आगे चलूँ, जिस से धूल से बच जाऊँ। किन्तु यह तो उल्टी बात हो गई। सेना में इस बात का पता कैसे चला? ढूंढने पर पता चला कि यह सब कुब्जा ने किया है। उससे पूछने पर कुब्जा ने थूकने आदि का सारा हाल सुना दिया।

रहने के स्थान में थूकना अननुयोग है। इसी कारण राजा की इच्छा पूरी न हुई। ऐसे स्थान में न थूकना, उसे लीपना तथा साफ रखना आदि अनुयोग है।

इसी प्रकार भरत आदि क्षेत्रों के परिमाण को गलत बताना, जीवा, धनुःपृष्ठ आदि के गणित को उल्टा सीधा करना क्षेत्र का अननुयोग है। इन्हीं बातों को ठीक ठीक बताना अनुयोग है, अथवा आकाश प्रदेश आदि को एकान्त नित्य या अनित्य बताना अननुयोग है। नित्यानित्य रूप बताना अनुयोग है।

(३) काल के अननुयोग तथा अनुयोग के लिए स्वाध्याय का उदाहरण--

एक साधु किसी कालिक सूत्र की सज्झाय उस का समय

बीतने पर भी कर रहा था। एक सम्यग्दृष्टि देव ने सोचा किसी मिथ्यादृष्टि देव द्वारा उपद्रव न हो इस लिए इसे चेता देना चाहिए। यह सोच कर वह गूजरनी का रूप धारण कर के सिर पर छाछ का घड़ा लेकर साधु के पास आकर जोर जोर से चिल्लाने लगा– लो मट्ठा, लो मट्ठा। उसके कर्णकटु शब्द को सुन कर साधु ने पूछा–क्या यह मट्ठे का समय है ? देव ने कहा– जैसे तुम्हारे लिए यह समय सज्झाय का है उसी तरह मेरे लिए मट्ठे का है। साधु को समय का खयाल आगया और उसने 'मिच्छामि दुक्कडं' कहा। देव ने उसे समझाया और कहा– मिथ्यादृष्टि देव के उपद्रव से बचाने के लिए मैंने तुम्हें चेताया है, फिर कभी अकाल में स्वाध्याय मत करना।

सूत्र की सज्झाय अकाल में करना काल से अननुयोग है। कालिक सूत्र की सज्झाय ठीक समय पर करना काल का अनुयोग है।

वचन के अनुयोग तथा अननुयोग के लिए दो उदाहरण हैं– बधिरोल्लाप और ग्रामेयक।

(४) बधिरोल्लाप का उदाहरण– किसी गाँव में एक बहरों का परिवार रहता था। उस में चार व्यक्ति थे– बूढ़ा, बुढ़िया, उनका बेटा और बेटे की बहू। एक दिन बेटा खेत में हल चला रहा था। कुछ मुसाफिरों ने उससे रास्ता पूछा। उसने समझा ये बैलों के विषय में पूछ रहे हैं, इस लिए उत्तर दिया– 'ये बैल मेरे घर में ही पैदा हुए हैं। किसी दूसरे के नहीं हैं।' मुसाफिर उसे बहरा समझ कर आगे चले गए। इतने में उस की स्त्री रोटी देने के लिए आई। उस ने अपनी स्त्री से कहा– 'मुसाफिर मुझे बैलों के विषय में पूछते थे। मैंने उत्तर दिया कि ये मेरे घर पैदा हुए हैं।' स्त्री भी बहरी थी। वह समझी मुझे भोजन में अधिक नमक पड़ने के विषय में पूछा जा रहा है। उस ने उत्तर दिया– भोजन खारा है या

विना नमक का है, यह मुझे मालूम नहीं। तुम्हारी मां ने बनाया है। पुत्रवधू ने नमक की बात बुढ़िया से कही। बुढ़िया उस समय कपड़ा काट रही थी। वह बोली– कपड़ा चाहे पतला हो या मोटा। बूढ़े का कुर्ता तो वन ही जायगा। बूढ़े के घर आने पर बुढ़िया ने पुत्रवधू के पूछने की बात कही। बूढ़ा सूखने के लिए डाले हुए तिलों की रक्षा कर रहा था। इस लिए डरते हुए कहा– तुम्हारी सौगन्ध, अगर मैंने एक भी तिल खाया हो।

इसी प्रकार जहाँ एक वचन हो वहाँ द्विवचन का अर्थ करना, जहाँ द्विवचन हो वहाँ एक वचन का अर्थ करना वचन से अननुयोग है।

(५) ग्रामेयक का उदाहरण– किसी नगर में एक महिला रहती थी। उसके पति का देहान्त हो गया। नगर में ईंधन, जल आदि का कष्ट होने से वह अपने छोटे बच्चे को लेकर गाँव में चली गई। उसका पुत्र जब बड़ा हुआ तो उसने पूछा– मां! मेरे पिता क्या काम किया करते थे?

'राजा की नौकरी।' मां ने जवाब दिया।

'मैं भी उसे ही करूँगा।' पुत्र ने उत्सुकता से कहा।

मां ने कहा– बेटा! नौकरी करना बड़ा कठिन है। उसके लिए बड़े विनय की आवश्यकता है।

विनय किसे कहते हैं? पुत्र ने पूछा।

जो कोई सामने मिले, उसे प्रणाम करना। सदा नम्र बने रहना। प्रत्येक कार्य दूसरे की इच्छानुसार करना। यही सब विनय की बातें हैं। माता ने उसे समझाते हुए कहा।

'मैं ऐसा ही करूँगा' यह कह कर वह नौकरी करने के लिए राजधानी की ओर चला।

मार्ग में चलते हुए उसने कुछ शिकारियों को देखा। वे वृक्षों की ओट में छिपे हुए थे। वहाँ आए हुए कुछ हिरणों पर निशाना

ताक कर धनुष खींचे हुए बैठे थे। उन्हें देख कर वह जोर से जय जय कहने लगा। उसे सुन कर सभी हिरण डर गए और भाग गए। शिकारियों ने उसे पीट कर बाँध दिया। इसके बाद उसने कहा- मुझे माँ ने सिखाया था कि जो कोई मिले उसे जय जय कहना। इसी लिए मैंने ऐसा किया था। शिकारियों ने उसे भोला समझ कर छोड़ दिया और कहा- ऐसी जगह चुपचाप, सिर झुका कर विना शब्द किए धीरे धीरे आना चाहिए।

उनकी वात मानकर वह आगे वढ़ा। कुछ दूर जाने पर उसे धोवी मिले। नित्यप्रति उनके कपड़े चोरी चले जाते थे, इस लिए उस दिन लाठियाँ लेकर छिपे वैठे थे। इतने में वह ग्रामीण धीरे धीरे, सिर नीचा करके चुपचाप वहाँ आया। धोवियों ने उसे चोर समझ कर वहुत पीटा और रस्सी से वाँध दिया। उसकी वात सुनने पर धोवियों को विश्वास हो गया। उन्होंने उसे छोड़ दिया और कहा- ऐसी जगह कहना चाहिए कि खार पड़े और सफाई हो।

ग्रामीण आगे वढ़ा। एक जगह वहुत से किसान विविध प्रकार के मङ्गलों के वाद पहले पहल हल चलाने का मुहूर्त कर रहे थे। उसने वहाँ जाकर कहा- खार पड़े और सफाई हो। किसानों ने उसे पीट कर वाँध दिया। उसकी वात से भोला समझ कर उन्होंने उसे छोड़ दिया और कहा- ऐसे स्थान पर यह कहना चाहिए कि खूब गाडियाँ भरें। वहुत ज्यादह हो। सदा इसी प्रकार होता रहे। उनकी वात मंजूर करके वह आगे वढ़ा।

सामने कुछ लोग मुर्दे को लेजा रहे थे। ग्रामीण ने किसानों की सिखाई हुई वात कही। उन लोगों ने उसे पीटा और भोला जान कर छोड़ते हुए कहा- ऐसी जगह कहना चाहिए कि ऐसा कभी न हो। इस प्रकार का वियोग किसी को न हो। यही वात उसने आगे जाकर एक विवाह में कह दी। पीटने के वाद उन लोगों ने सिखाया-

ऐसी जगह कहना चाहिए, आप लोग सदा ऐसा ही देखें। यह सम्बन्ध सदा बना रहे। यहाँ कभी वियोग न हो। आगे बढ़ने पर उसने बेड़ी में बँधे हुए एक राजा को देख कर ऊपर वाली बात कही। पीटने के बाद उसे सिखाया गया– ऐसी जगह कहना चाहिए कि इससे शीघ्र छुटकारा मिले। ऐसा कभी न हो। यही बात उसने आगे जाकर कही। वहाँ दो राजा बैठे हुए सन्धि की बातचीत कर रहे थे। उन्होंने भी उसे पीटा।

इस प्रकार जगह जगह मार खाता हुआ ग्रामीण नगर में पहुँचा। वहाँ किसी ठाकुर के यहाँ नौकरी करने लगा। ठाकुर की सम्पत्ति तो नष्ट हो चुकी थी किन्तु पुराना आदर सन्मान अवश्य था। एक दिन ठाकुर साहेब किसी सभा में गए हुए थे। ठकुरानी ने घर में खट्टी राब तैयार की और ठाकुर को बुलाने के लिए उसे कहा– ठाकुर को जाकर कहो कि राब ठण्डी हो रही है। फिर खाने लायक नहीं रहेगी। ग्रामीण ने सभा में जाकर जोर से चिल्ला कर कहा– ठाकुर साहेब! घर चलो। राब ठण्डी हो रही है। जल्दी से खालो।

ठाकुर साहेब सभा में बैठे हुए थे, इस लिए उन्हें बहुत क्रोध आया। घर आकर ग्रामीण को पीटा और उसे सिखाया कि जब सभा में बैठे हों तो घर की बातें इस प्रकार न कहनी चाहिये। घर की बात मुँह पर कपड़ा रख कर कुछ देर ठहर कर धीरे धीरे कान में कही जाती है। कुछ दिनों बाद ठाकुर के घर में आग लग गई। ठाकुर सभा में गया हुआ था। ग्रामीण वहाँ जाकर खड़ा हो गया। काफी देर खड़े रहने के बाद उसने धीरे से ठाकुर के कान में कहा– घर में आग लग गई। ठाकुर घर की तरफ दौड़ा। उसका सारा घर जल चुका था। ग्रामीण को बहुत अधिक पीटने के बाद उसने कहा– मूर्ख! जब धूँआ निकलना शुरू हुआ तभी तुमने उस पर पानी, धूल या राख वगैरह क्यों नहीं डाली? उसी समय

जोर से क्यों नहीं चिल्लाया ? ग्रामीण ने उसकी बात मान ली और कहा– आगे से ऐसा ही करूँगा।

एक दिन ठाकुर साहेब स्नान के बाद धूप देने के लिए बैठे थे। ओढ़ने के वस्त्र के ऊपर अगरबत्ती का धूँआ निकलते हुए देख कर ग्रामीण ने समझा आग लग गई। उसने पास में पड़ी हुई दूध से भरी देगची उस पर डाल दी। दौड़ दौड़ कर पानी, धूल और राख भी डालने लगा। साथ में 'आग, आग' कह कर जोर से चिल्लाने लगा। ठाकुर ने उसे अयोग्य समझ कर घर से निकाल दिया।

इसी प्रकार जो शिष्य गुरु द्वारा बताई गई बात को उतनी की उतनी कह देता है, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव आदि का ध्यान नहीं रखता, यों ही कुछ बोल देता है उसका कहना वचन से अननुयोग है। जो द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव आदि समझ कर ठीक ठीक बोलता है उसका कथन वचन से अनुयोग है।

भाव के अननुयोग तथा अनुयोग के लिए नीचे लिखे सात उदाहरण हैं।

(६) श्रावक भार्या का उदाहरण–एक श्रावक ने किसी दूसरे श्रावक की रूपवती भार्या को देखा। उसे देख कर वह उस पर मोहित हो गया। लज्जा के कारण उसने अपनी इच्छा किसी पर प्रकट नहीं की। इच्छा के बहुत प्रबल होने के कारण वह दिन प्रति दिन दुर्बल होने लगा। अपनी स्त्री द्वारा आग्रह पूर्वक शपथ खिला कर दुर्बलता का कारण पूछने पर उसने सच्ची सच्ची बात कह दी।

उसकी स्त्री ने कहा--इस में क्या कठिनता है ? वह मेरी सहेली है। उससे कह दूंगी तो आज ही आ जाएगी। यह कह कर वह स्त्री अपनी सहेली से वे ही कपड़े माँग लाई जिन्हें पहने हुए उसे श्रावक ने देखा था। कपड़े लाकर उसने अपने पति से कह दिया कि आज शाम को वह आएगी। उसे बहुत शर्म आती है। इस

लिए आते ही दीपक को बुझा देगी। श्रावक ने उसकी बात
शाम के समय श्रावक की स्त्री ने अपनी सखी के
कपड़े पहिन कर उसी के समान अपना शृङ्गार कर लिया
आदि के द्वारा अपनी आवाज भी उसी के समान बना ले
बाद प्रतीक्षा में बैठे हुए अपने पति के पास चली गई।
दूसरे दिन श्रावक को बहुत पश्चात्ताप हुआ। उसने
मैंने अपना शील व्रत खण्डित कर दिया। भगवान् ने शील
महत्त्व बताया है। उसे खोकर मैंने बहुत बुरा किया।
के कारण वह फिर दुर्बल होने लगा। उसकी स्त्री ने इस
जान कर सच्ची सच्ची बात कह दी। श्रावक इससे बहुत प्र
और उसका चित्त स्वस्थ हो गया।

अपनी स्त्री को भी दूसरी समझने के कारण यह भाव से
योग है। अपनी को अपनी समझना भाव से अनुयोग

इसी प्रकार औदयिक आदि भावों को उनके स्वरूप
समझना भाव से अननुयोग है। उनको ठीक ठीक
अनुयोग है।

(७) सप्तपदिक का उदाहरण-किसी गाँव में एक पुरु
था। वह सेवा करके अपनी आजीविका चलाता था। धर्म
कभी न सुनता। साधुओं के दर्शन करने कभी न जाता
उन्हें ठहरने के लिए जगह देता था। वह कहता था-- साधु
और परस्त्री आदि के त्याग का उपदेश देते हैं। मैं उन नि
नहीं पाल सकता। इस लिए उनके पास जाना व्यर्थ है।

एक बार कुछ साधु चौमासा करने के लिए वर्षाका
होने से पहले उस गाँव में आए। उस सेवक के मित्र कुछ गाँ
ने मजाक करने के लिए साधुओं से कहा- उस घर में साधु

आदि किसी वात की कमी न रहेगी। इस लिए आप वहीं पधारिए।

साधु उस सेवक के घर आए। साधुओं को देखते ही उसने मुंह फेर लिया। यह देख कर उनमें से एक साधु ने दूसरे साधुओं से कहा-यह वह श्रावक नहीं है, अथवा गाँव वालों ने हमारे साथ मजाक किया है।

साधु की वात सुन कर वह चकित होकर वोला- आप क्या कह रहे हैं? साधुओं ने उसे सारा हाल सुना दिया। वह सोचने लगा- वे लोग मुझ से भी नीच हैं, जिन्होंने साधुओं के साथ मजाक किया। अव अगर इन्हें स्थान न दिया तो मेरी भी हँसी होगी और इन साधुओं की भी। इस लिए वुरे लगने पर भी इन्हें ठहरा लेना चाहिए। यह सोच कर उसने साधुओं से कहा- विघ्न वाधा रहित इस स्थान में आप ठहर सकते हैं किन्तु मुझे धर्म की कोई वात मत कहिएगा। साधुओं ने इस वात को मंजूर कर लिया और चतुर्मास वीतने तक वहीं ठहर गए।

विहार के समय वह साधुओं को पहुँचाने आया। साधु वड़े ज्ञानी और परोपकारी थे। उन्होंने सोचा-इसने हमें ठहरने के लिए स्थान दिया इस लिए कोई ऐसी वात करनी चाहिए जिससे इस का जीवन सुधर जाय। यद्यपि वह मांस,मदिरा,परस्त्री आदि किसी पाप का त्याग नहीं कर सकता था फिर भी साधुओं ने ज्ञान द्वारा जान लिया कि यह सुलभवोधी है और भविष्य में प्रतिवोध प्राप्त करेगा। यह सोच कर उन्होंने उसे साप्तपदिक व्रत दिया और कहा जव किसी पञ्चेन्द्रिय जीव को मारो तो जितनी देर में सात कदम चला जाता है उतनी देर रुक जाना। फिर तुम्हारी इच्छानुसार करना। सेवक ने वह व्रत ले लिया। साधु विहार कर गए।

एक दिन वह सेवक पुरुष कहीं चोरी करने के लिए रवाना हुआ। मार्ग में अपशकुन दिखाई देने के कारण वह वापिस लौट आया

हुआ था। सैनिक की स्त्री ने समझा कि नेवले ने मेरे पुत्र को मार डाला है। यह सोचकर उसने मूसल लेकर उसे मार डाला। इसके बाद वह अन्दर गई और पुत्र के पास में साँप को मरा हुआ देखा। उसे देख कर वह समझ गई कि नेवले ही ने साँप को मारा है। उसे पश्चात्ताप होने लगा कि मैंने बिना किसी अपराध के ऐसे उपकारी को मार डाला। उसका शोक दुगुना हो गया।

नेवले को अपराधी समझ कर मारना अननुयोग है। फिर निरपराध जान कर पश्चात्ताप करना अनुयोग है।

(१०) कमला मेला का उदाहरण– द्वारका नगरी में बलदेव का पुत्र निषध नाम का राजा था। उसके पुत्र का नाम सागरचन्द्र था। सागरचन्द्र बहुत रूपवान् था। शम्ब वगैरह सभी कुमार उसे बहुत प्यार करते थे। उसी नगरी में किसी दूसरे राजा की कमलामेला नाम की लड़की थी। वह भी बहुत सुन्दर थी। उसकी सगाई राजा उग्रसेन के पुत्र कुमार नभःसेन के साथ हो चुकी थी।

एक दिन नारद मुनि सागरचन्द्र के पास आए। उसने उनका स्वागत किया। प्रणाम करके आसन पर बैठाया और पूछा–भगवन्! आपने दुनिया में कहीं कोई नई वस्तु देखी? नारद मुनि ने उत्तर दिया– कमलामेला नाम की राजकुमारी का सौन्दर्य मेरे लिए ही नहीं, सारे संसार के लिए आश्चर्य है। सागरचन्द्र ने पूछा– क्या वह किसी को दी जा चुकी है? नारद ने उत्तर दिया– सगाई तो हो चुकी है किन्तु विवाह अभी तक नहीं हुआ। सागरचन्द्र ने फिर पूछा– वह मुझे कैसे प्राप्त होगी?

'यह मैं नहीं जानता' इतना कह कर नारद मुनि चले गए। सागरचन्द्र उस दिन से बेचैन रहने लगा। खाते पीते उठते बैठते कहीं भी उसे आराम न मिलता था। उसके मन में दिन रात कमलामेला घूमने लगी।

नारदजी वहाँ से सीधे कमलामेला के पास गए। उस ने भी जब उसी तरह आश्चर्य के विषय में पूछा तो नारदजी बोले- मैंने दो आश्चर्य देखे हैं। सागरचन्द्र का रूप और नभःसेन का कुरूप। कमलामेला नभःसेन से विरक्त और सागरचन्द्र में अनुरक्त हो गई। उसे प्राप्त करने के लिए व्याकुल होती हुई कमलामेला को देख कर नारद ने कहा-बेटी! धैर्य रखो! तुम्हारा मनोरथ शीघ्र पूरा होने वाला है। यह कह कर नारदजी सागरचन्द्र के पास आए और उसे यह कह कर चले गए कि कमलामेला भी तुम्हें चाहती है।

सागरचन्द्र की उस अवस्था को देख कर उसके माता पिता तथा कुटुम्ब के सभी लोग चिन्तित रहने लगे। एक दिन उसके पास शम्बकुमार आया। पीछे से आकर उसने सागरचन्द्र की आखें बन्द कर लीं। सागरचन्द्र के मुँह से निकला- कमलामेला आगई! शम्ब ने उत्तर दिया- मैं कमलामेल हूँ, कमलामेला नहीं। सागर ने कहा- ठीक है, तुम्हीं कमला का मेल कराने वाले हो। तुम्हारे सिवाय कौन ऐसा कर सकता है? दूसरे यादव कुमारों ने भी शम्ब को मदिरा पिला कर उससे कमलामेला को लाने की प्रतिज्ञा करवा ली। नशा उतरने पर शम्ब ने सोचा-मैंने बड़ी कठोर प्रतिज्ञा कर ली। इसे कैसे पूरी किया जायगा? उसने प्रद्युम्नकुमार से प्रज्ञप्ति नाम की विद्या मांग ली।

विवाह के दिन एक सुरङ्ग खोदकर वह कमलामेला को उस के पिता के घर से एक उद्यान में ले आया और नारद को साक्षी करके उसका विवाह सागरचन्द्र के साथ कर दिया। सभी लोग विद्याधरों का रूप धारण करके उसी उद्यान में क्रीड़ाएं करने लगे।

कमलामेला के पिता और श्वसुर के आदमियों ने उसे खोजना शुरू किया और विद्याधरी के रूप में उसे उद्यान में देखा। उन्होंने वासुदेव के पास जाकर कहा कि विद्याधरों ने कमलामेला का अप-

हरण करके उसके साथ विवाह कर लिया है। वासुदेव ने सेना के साथ विद्याधरों पर चढ़ाई कर दी। दोनों ओर भीषण संग्राम खड़ा हो गया। इतने में शम्ब अपना असली रूप धारण कर अपने पिता कृष्ण वासुदेव के पैरों में गिर पड़ा और सारा हाल ठीक ठीक कह दिया। युद्ध बन्द हो गया। कृष्ण महाराज ने कमलामेला सागर चन्द्र को दे दी। सभी अपने अपने स्थान को चले गए।

सागरचन्द्र का शम्ब को कमलामेला समझना अननुयोग है। शम्ब द्वारा 'मैं कमलामेला नहीं हूँ' यह कहा जाना अनुयोग है।

(११) शम्ब के साहस का उदाहरण– शम्ब की माँ का नाम जाम्बवती था। कृष्ण तथा दूसरे लोग उसे नित्यप्रति कहा करते थे कि तुम्हारा पुत्र सभी सखियों के मन्दिरों में जाता है। जाम्बवती ने कृष्ण से कहा– मैंने तो अपने पुत्र के साथ एक भी सखी नहीं देखी। कृष्ण ने उत्तर दिया– आज मेरे साथ चलना, तब बताऊँगा। कृष्ण ने जाम्बवती को अहीरनी के कपड़े पहना दिए। वह बहुत ही सुन्दर गूजरनी दीखने लगी। कृष्ण ने उसके सिर पर दही का घड़ा रख कर उसे आगे आगे रवाना किया और स्वयं अहीर के कपड़े पहन कर हाथ में डण्डा लेकर उसके पीछे पीछे हो लिया। वे दोनों बाजार में पहुँच गए। शम्ब ने जाम्बवती को देखा। उसे सुन्दर अहीरनी समझ कर उसने कहा–मेरे घर चलो! तुम्हारे सारे दही का जितना मूल्य कहोगी, चुका दूंगा। आगे आगे वह हो लिया, उसके पीछे अहीरनी थी और सब से पीछे अहीर।

किसी सूने देवले में जाकर शम्ब ने कहा–दही अन्दर रख आओ। अहीरनी ने उसका बुरा अभिप्राय समझ कर उत्तर दिया– मैं अन्दर नहीं जाऊँगी। यहीं से दही ले लो और कीमत दे दो। 'मैं जबर्दस्ती अन्दर ले चलूँगा।' यह कह कर शम्ब ने उसकी एक बाँह पकड़ ली। अहीर दौड़ कर दूसरी बाँह पकड़ कर खींचने लगा।

दोनों की खींचातानी में दही का घड़ा फूट गया। इसके बाद जाम्ब-वती और कृष्ण ने अपना स्वाभाविक रूप धारण कर लिया। यह देख कर शम्ब भाग गया और उत्सव आदि अवसरों पर भी राज परिवार में आना छोड़ दिया।

एक बार कृष्ण ने कुछ बड़े आदमियों को उसे मनाकर लाने के लिए कहा। वह बड़ी कठिनता से हाथ में बाँस ले कर चाकू से उसकी कील घड़ता हुआ दरबार में आया। प्रणाम करने पर कृष्ण ने पूछा– यह क्या घड़ रहे हो? उसने उत्तर दिया–यह कील है। जो बीती हुई बात को कहेगा उसके मुंह में ठोकने के लिए घड़ रहा हूँ।

शम्ब का अपनी माता को अहीरनी समझना अननुयोग है। बाद में ठीक ठीक जानना अनुयोग है।

(१२) श्रेणिक के कोप का उदाहरण– एक बार श्रमण भगवान् महावीर राजगृह नगर में पधारे। श्रेणिक महाराज अपनी रानी चेलणा के साथ भगवान् को वन्दना करने गए। उन दिनों माघ महीने की भयङ्कर सर्दी पड़ रही थी। ओस के कारण वह और बढ़ गई थी। लौटते समय मार्ग में चेलणा ने कायोत्सर्ग किए हुए किसी पडिमाधारी साधु को देखा। तप के कारण कृश बने हुए उसके शरीर पर कोई वस्त्र न था, फिर भी वे मेरु के समान निश्चल खड़े थे। चेलणा उन्हें देख कर आश्चर्य करने लगी और मन में उन्हीं का ध्यान करती हुई घर गई।

रात को सर्दी दूर करने के लिए चेलणा रजाई आदि बहुत से गरम तथा कोमल वस्त्र ओढ़ कर पलंग पर सोई। सोते सोते उसका एक हाथ रजाई से बाहर निकल गया। सर्दी के कारण हाथ सुन्न हो गया। सारे शरीर में सर्दी पहुँचने के कारण चेलणा की नींद खुल गई। उसने हाथ को रजाई के अन्दर कर लिया। उसी समय उसे मुनि का खयाल आया। उनके गुण और कठोर तपश्चर्या पर

चकित होकर उसने कहा– वह तपस्वी क्या करेगा ? चेलणा का अभिप्राय था कि जब एक हाथ बाहर निकलने से मुझे इतनी सर्दी मालूम पड़ने लगी तो उस तपस्वी का क्या हाल होगा जिस के शरीर पर कोई कपड़ा नहीं है। बिना किसी ओट के जंगल में खड़ा है। शरीर तपस्या से सूख कर कांटा हो रहा है। ऐसी भयङ्कर सर्दी में वे क्या करेंगे ? चेलणा के वाक्य का अभिप्राय श्रेणिक ने दूसरा ही समझा। उस के मन में आया– चेलणा ने किसी को संकेत दे रक्खा है। मेरे पास में होने के कारण यह उसके पास नहीं जा सकती, इस लिए दुखी हो रही है। मन में यही विचारते हुए श्रेणिक राजा की रात बड़ी कठिनता से बीती। सुबह होते ही वह भगवान् के पास चला। सामने अभयकुमार दिखाई दिया। श्रेणिक ने क्रोधावेश में उसे आज्ञा दी– सभी रानियों के साथ अन्तःपुर को जला दो। अभयकुमार ने सोचा–क्रोधावेश में महाराज ऐसी आज्ञा दे रहे हैं। क्रोध में निकले हुए वचन के अनुसार किया जाय तो उसका परिणाम अच्छा नहीं होता, किन्तु बड़े की आज्ञा का पालन भी अवश्य करना चाहिए। यह सोच कर उसने एक सूनी पड़ी हुई हस्तिशाला के आग लगवा दी। आग का धूँआ ऊपर उठने लगा। अभयकुमार भी भगवान् को वन्दना करने के लिए चल दिया।

भगवान् के समवसरण में पहुंच कर श्रेणिक राजा ने पूछा– भगवन् ! चेलणा एक की पत्नी है या अनेक की ? भगवान् ने उत्तर दिया– एक की। श्रेणिक राजा अभयकुमार को मना करने के लिए जल्दी से घर की तरफ लौटे। मार्ग में सामने आते हुए अभयकुमार को देख कर उन्होंने पूछा–क्या अन्तःपुर को जला दिया ? उसने कहा– जला दिया। राजा ने क्रोधित होकर कहा– उसमें पड़कर तू स्वयं भी क्यों नहीं जल गया ? अभयकुमार ने उत्तर दिया–

जलने से क्या होगा ? मैं दीक्षा ले लेता हूँ। श्रेणिक को अधिक दुःख न हो,इस उद्देश्य से अभयकुमार ने सारी बातें ठीक २ कह दीं।

शीलवती चेलना को दुश्चरित्र समझना भाव से अननुयोग है। बाद में सच्चरित्र समझना भाव से अनुयोग है।

इसी प्रकार औदयिक आदि भावों की विपरीत प्ररूपणा करना अननुयोग है। उन्हें ठीक ठीक समझना अनुयोग है।

(हरिभद्रीयावश्यक गाथा १३४) (बृहत्कल्प निर्युक्ति पूर्वपीठिका गाथा १७१-१७७)

७८१- जैन साधु के लिए मार्ग प्रदर्शक बारह गाथाएं

उत्तराध्ययन सूत्र के इक्कीसवें अध्ययन का नाम 'समुद्रपालीय' है। इसमें समुद्रपाल मुनि का वर्णन किया गया है। इस अध्ययन में कुल २४ गाथाएं हैं। पहले की बारह गाथाओं में समुद्रपाल के जन्म और वैराग्योत्पत्ति के कारण आदि का कथानक दिया गया है। तेरह से चौवीस तक की गाथाओं में जैन साधु के उद्दिष्ट मार्ग का कथन किया गया है। यहाँ पर पहले की बारह गाथाओं में वर्णित समुद्रपाल का कथानक लिख कर आगे की बारह गाथाओं का क्रमशः भावार्थ दिया जायगा।

चम्पा नाम की नगरी में पालित नाम का एक व्यापारी रहता था। वह श्रमण भगवान् महावीर का श्रावक था। वह जीवाजीव आदि नौ तत्त्वों का ज्ञाता और निर्ग्रन्थ प्रवचनों (शास्त्रों) में बहुत कुशल कोविद (पण्डित) था। एक बार व्यापार करने के लिए जहाज द्वारा पिहुण्ड नामक नगर में आया। पिहुण्ड नगर में आकर उसने अपना व्यापार शुरू किया। न्याय नीति एवं सचाई और ईमानदारी के साथ व्यापार करने से उसका व्यापार बहुत चमक उठा। सारे शहर में उसका यश और कीर्ति फैल गई। पिहुण्ड

नगर में रहते हुए उसे कई वर्ष बीत गये। उसके गुणों से आकृष्ट होकर पिहुण्ड नगर निवासी एक महाजन ने रूप लावण्य सम्पन्न अपनी कन्या का विवाह पालित के साथ कर दिया। अब वे दोनों दम्पति आनन्द पूर्वक जीवन व्यतीत करने लगे। कुछ समय पश्चात् वह कन्या गर्भवती हुई। अपनी गर्भवती पत्नी को साथ लेकर पालित श्रावक जहाज द्वारा अपने घर चम्पा नगरी आने के लिए रवाना हुआ। आसन्नप्रसवा होने से पालित की पत्नी ने समुद्र में ही पुत्र को जन्म दिया। समुद्र में पैदा होने के कारण उस बालक का नाम समुद्रपाल रक्खा गया। अपने नवजात पुत्र और स्त्री के साथ पालित सकुशल चम्पा नगरी में अपने घर पहुँच गया। सब को प्रिय लगने वाला, सौम्य और कान्तिधारी वह बालक वहाँ सुखपूर्वक बढ़ने लगा। योग्य वय होने पर उसे शिक्षागुरु के पास भेजा गया विलक्षण बुद्धि होने के कारण शीघ्र ही वह बहत्तर कलाओं तथा नीति शास्त्र में पारङ्गत हो गया। जब वह यौवन वय को प्राप्त हुआ तब उसके पिता ने अप्सरा जैसी सुन्दर एक महा रूपवती कन्या के साथ उसका विवाह कर दिया। विवाह हो जाने के पश्चात् समुद्र पाल उस कन्या के साथ रमणीय महल में रहने लगा और दोगुन्दक देव (एक उत्तम जाति का देव) के समान कामभोग भोगता हुआ सुखपूर्वक समय विताने लगा।

एक दिन वह अपने महल की खिड़की में से नगरचर्या देख रहा था कि इतने ही में फाँसी पर चढ़ाने के लिए वध्यभूमि की तरफ मृत्युदण्ड के चिन्ह सहित लेजाए जाते हुए एक चोर पर उसकी दृष्टि पड़ी। उस चोर को देखकर उसके हृदय में कई तरह के विचार उठने लगे। वह सोचने लगा कि अशुभ कर्मों के कैसे कड़वे फल भोगने पड़ते हैं। इस चोर के अशुभ कर्मों का उदय है इसी से इसको यह कड़वा फल भोगना पड़ रहा है। यह मैं प्रत्यक्ष देख रहा हूँ। 'जो

जैसा करता है वह वैसा भोगता है' यह अटल सिद्धान्त समुद्रपाल के प्रत्येक अंग में व्याप्त हो गया। कर्मों के इस अटल नियम ने उसके हृदय को कंपा दिया। वह विचारने लगा कि मेरे लिए इन भोग जन्य सुखों के कैसे दुःखदायी परिणाम होंगे? मैं क्या कर रहा हूं? यहाँ आने का मेरा कारण क्या है? इत्यादि अनेक प्रकार के तर्क वितर्क उसके मन में पैदा होने लगे। इस प्रकार गहरे चिंतन के परिणाम स्वरूप उसको जाति स्मरण ज्ञान पैदा हो गया। अपने पूर्वभव को देख कर उसे वैराग्य भाव उत्पन्न हो गया। अपने माता पिता के पास जाकर दीक्षा लेने की आज्ञा मांगने लगा। माता पिता की आज्ञा प्राप्त कर उसने दीक्षा अङ्गीकार की और संयम धारण कर साधु बन गया। महाक्लेश, महाभय, महामोह तथा आसक्ति के मूल कारण रूपी धन, वैभव तथा कुटुम्बी जनों के मोह सम्बन्ध को छोड़ कर उन्होंने रुचिपूर्वक त्याग धर्म स्वीकार कर लिया। वह अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूप पाँच महाव्रतों का तथा सदाचारों का पालन करने लगा और आने वाले परिषहों को जीतने लगा। इस प्रकार वह विद्वान् मुनीश्वर जिनेश्वरों द्वारा प्ररूपित धर्म पर दृढ़ बन कर जैन साधु के उद्दिष्ट मार्ग पर गमन करने लगा। इस मार्ग का कथन बारह गाथाओं में किया गया है। उन बारह गाथाओं का भावार्थ क्रमशः नीचे दिया जाता है—

(१) साधु का कर्तव्य है कि वह संसार के समस्त जीवों पर दया भाव रक्खे अर्थात् 'सत्वेषु मैत्री' का भाव रक्खे और जो जो कष्ट उस पर आवें उनको समभाव पूर्वक सहन करे। सदा अखंड ब्रह्मचर्य और संयम का पालन करे। इन्द्रियों को अपने वश में रक्खे और योगों की अशुभ प्रवृत्ति का सर्वथा त्याग कर समाधिपूर्वक भिक्षु धर्म में प्रवृत्ति करता रहे।

(२) जिस समय जो क्रिया करनी चाहिए उस समय वही करे।

देश विदेश में विचरता रहे अर्थात् साधु किसी भी क्षेत्र में क्यों न विचरे वह अपनी जीवनचर्या के अनुसार ही आचरण रखे। भिक्षा के समय स्वाध्याय करना अथवा स्वाध्याय के समय सो जाना इत्यादि प्रकार की अकाल क्रियाएं न करे किन्तु अपना सारा कार्य शास्त्रानुसार नियमित समय पर करे। कोई भी कार्य करने से पहिले अपनी शक्ति को माप ले अर्थात् अमुक कार्य को पूर्ण करने की मेरी शक्ति है या नहीं इस का विचार कर कार्य आरम्भ करे। यदि कोई उसे कठोर या असभ्य शब्द भी कहे तो भी वह सिंह के समान निडर रहे किन्तु वापिस असभ्य शब्द न कहे।

( ) साधु का कर्तव्य है कि प्रिय अथवा अप्रिय जो कुछ भी हो उसमें तटस्थ रहे। यदि कोई कष्ट भी आ पड़े तो उसकी उपेक्षा कर समभाव से उसे सह ले और यही भावना रक्खे कि जो कुछ होता है अपने कर्मों के कारण ही होता है इस लिए कभी भी निरुत्साह न हो। अपनी निन्दा या प्रशंसा की तरफ ध्यान न दे।

(४) 'मनुष्यों के तरह तरह के अभिप्राय होते हैं, इसलिए यदि कोई मेरी निन्दा करता है तो यह उसके मन की बात है इसमें मेरी क्या बुराई है' इस प्रकार साधु अपने मन को सान्त्वना दे। मनुष्य, तिर्यञ्च अथवा देव द्वारा दिए गए उपसर्ग शान्तिपूर्वक सहन करे।

(५) जब दुःसह्य परिषह आते हैं तब कायर साधक शिथिल हो जाते हैं किन्तु युद्धभूमि में सब से आगे रहने वाले हाथी की तरह वे वीर श्रमण निर्ग्रन्थ खेदखिन्न नहीं होते, अपितु उत्साह के साथ संयम मार्ग में आगे बढ़ते जाते हैं।

(६) शुद्ध संयमी पुरुष शीत, उष्ण, दंश, मशक, रोग आदि परिषहों को समभावपूर्वक सहन करे और उन परिषहों को अपने पूर्व कर्मों का परिणाम जान कर सहे और अपने कर्मों का नाश करे।

(७) विचक्षण साधु हमेशा राग द्वेष तथा मोह को छोड़ कर

जिस तरह वायु से मेरु कम्पित नहीं होता, उसी तरह परिषहों से कम्पित एवं भयभीत न हो। अपने मन को वश में रख कर सब कुछ समभाव पूर्वक सहन करता रहे।

(८) साधु कभी घमण्ड न करे और न कायर ही बने। कभी अपनी पूजा प्रतिष्ठा एवं प्रशंसा की इच्छा न करे। सरल भाव धारण करे और राग द्वेष से विरक्त होकर ज्ञान दर्शन चारित्र द्वारा मोक्षमार्ग की उपासना करे।

(९) साधु को यदि कभी संयम में अरुचि अथवा असंयम में रुचि पैदा हो तो उनको दूर करे। आसक्ति भाव से दूर रहे और आत्मचिंतन में लीन रहे। शोक, ममता तथा परिग्रह की तृष्णा छोड़ कर समाधिपूर्वक परमार्थ मार्ग में आत्मा को स्थिर करे।

(१०) छः काय जीवों के रक्षक साधु उपलेप रहित तथा परनिमित्तक (दूसरों के निमित्त बनाये गये) एकान्त स्थानों में अर्थात् स्त्री, पशु और नपुँसक से रहित स्थानों में रहे। यशस्वी महर्षियों ने जिस मार्ग का अनुसरण किया था उसी मार्ग का वह भी अनुसरण करे। परिषह उपसर्गों को शान्ति पूर्वक सहन करे। समुद्रपाल योगीश्वर भी इस प्रकार आचरण करने लगे।

(११) उपरोक्त गुणों से युक्त यशस्वी तथा ज्ञानी समुद्रपाल महर्षि निरन्तर संयम मार्ग में आगे बढ़ते गये। उत्तम संयम धर्म का पालन कर अन्त में केवल ज्ञान रूपी अनन्त लक्ष्मी के स्वामी हुए। जिस प्रकार आकाश मंडल में सूर्य शोभित होता है उसी प्रकार वे मुनीश्वर भी इस महीमंडल पर अपने आत्म प्रकाश से दीप्त होने लगे।

(१२) पुण्य और पाप इन दोनों प्रकार के कर्मों का सर्वथा नाश कर वे समुद्रपाल मुनि शरीर के मोह से सर्वथा छूट गये। शैलेशी अवस्था को प्राप्त हुए और इस संसार रूपी समुद्र से तिर

कर वे महामुनि अपुनरागति (वह गति जहाँ जाकर फिर कभी लौटना न पड़े) अर्थात् मोक्ष गति को प्राप्त हुए।

सरल भाव, कष्ट सहिष्णुता, निरभिमानता, अनासक्ति, निन्दा और प्रशंसा में समभाव, प्राणी मात्र पर मैत्री भाव, एकान्त वृत्ति तथा सतत अप्रमत्तता ये आठ गुण त्याग धर्म रूपी महल की नींव हैं। यह नींव जितनी दृढ़ तथा मजबूत होगी उतना ही त्यागी जीवन उच्च तथा श्रेष्ठ और सुवासित होगा। इस सुवास में अनन्त भवों की वासना रूपी दुर्गन्धि नष्ट भ्रष्ट होजाती है और आत्मा ऊंची उठते उठते अन्तिम ध्येय को प्राप्त कर लेती है।

(उत्तराध्ययन अध्ययन २१)

७८२- अरिहन्त भगवान् के बारह गुण

(१) अशोक वृक्ष (२) देवकृत अचित्त पुष्पवृष्टि (३) दिव्य ध्वनि (४) चँवर (५) सिंहासन (६) भामण्डल (७) देव दुन्दुभि (८) छत्र (९) अपायापगमातिशय (दानान्तराय आदि १८ दोषों से रहित)।

(१०) ज्ञानातिशय- सम्पूर्ण, अव्याबाध, अप्रतिपाती केवलज्ञान को धारण करना ज्ञानातिशय है।

(११) पूजातिशय- तीनों लोकों द्वारा पूज्य होना तथा इन्द्रकृत अष्ट महाप्रातिहार्यादि रूप पूजा से युक्त होना पूजातिशय है।

(१२) वागतिशय- पैंतीस अतिशयों से युक्त सत्य और परस्पर बाधारहित वाणी का बोलना वागतिशय (वचनातिशय) है।

(समवायांग ३४ वाँ, चौतीस अतिशयों में से) (हरिभद्रकृत सम्बोध सत्तरी)

७८३- चक्रवर्ती बारह

चक्ररत्न के धारक श्लाघ्य पुरुष चक्रवर्ती कहलाते हैं। वे बारह हैं-

(१) भरत (२) सगर (३) मघवान् (४) सनत्कुमार (५) शान्तिनाथ (६) कुन्थुनाथ (७) अरनाथ (८) सुभूम (९) महापद्म

(१०) हरिषेण (११) जय (१२) ब्रह्मदत्त।

चक्रवर्तियों का भोजन—चक्रवर्तियों का भोजन कल्याण भोजन कहलाता है। उसके विषय में ऐसा कथन आता है—रोग रहित एक लाख गायों का दूध निकाल कर वह दूध पचास हजार गायों को पिला दिया जाय। फिर उन पचास हजार गायों का दूध निकाल कर पच्चीस हजार गायों को पिला दिया जाय। इस प्रकार क्रमशः करते हुए अन्त में वह दूध एक गाय को पिला दिया जाय। फिर उस एक गाय का दूध निकाल कर उत्तम जाति के चावल डाल कर उसकी खीर बनाई जाय और उत्तमोत्तम पदार्थ डाल कर उसे संस्कारित किया जाय। ऐसी खीर का भोजन कल्याण भोजन कहलाता है। चक्रवर्ती और उसकी पटरानी के अतिरिक्त यदि दूसरा कोई व्यक्ति उस खीर का भोजन कर ले तो वह उसको पचा नहीं सकता और उससे उसको महान् उन्माद पैदा हो जाता है।

चक्रवर्ती का काकिणीरत्न—प्रत्येक चक्रवर्ती के पास एक एक काकिणी रत्न होता है। वह अष्टसुवर्ण परिमाण होता है। सुवर्ण परिमाण इस प्रकार बताया गया है— चार कोमल तृणों की एक सफेद सरसों होती है। सोलह सफेद सरसों का एक धान्यमाषफल कहलाता है। दो धान्यमाषफलों की एक गुञ्जा (चिरमी) होती है। पाँच गुञ्जाओं (चिरमियों) का एक कर्ममाष होता है और सोलह कर्ममाषों का एक सुवर्ण होता है। सब चक्रवर्तियों के काकिणी रत्नों का परिमाण एक समान होता है। वह रत्न छः खण्ड, बारह कोटि (धार) तथा आठ कोण वाला होता है। इसका आकार लुहार के एरण सरीखा होता है। (ठाणांग सूत्र ठाणा ८ सूत्र ६३३)

चक्रवर्तियों की गति—बारह चक्रवर्तियों में से दस चक्रवर्ती मोक्ष में गए हैं। सुभूम और ब्रह्मदत्त दोनों चक्रवर्ती कामभोगों में फंसे रहने के कारण सातवीं नरक में गए। (ठाणांग सूत्र ४ उद्देशा ३)

चक्रवर्तियों के ग्राम—प्रत्येक चक्रवर्ती के ६६—६६ करोड़ ग्राम उनकी अधीनता में होते हैं। चक्रवर्तियों में से कितनेक तो राज्यलक्ष्मी और कामभोगों को छोड़ कर दीक्षा लेते हैं और कितनेक नहीं।

भरतक्षेत्र का चक्रवर्ती पहले किस खण्ड को साधता है? उत्तर में कहा जाता है कि पहले मध्यखण्ड को साधता है अर्थात् अपने अधीन करता है, फिर सेनानी रत्न द्वारा सिन्धु खण्ड को जीतता है। इसके पश्चात् गुहानुप्रवेश नामक रत्न से वैताढय पर्वत को उल्लंघन कर उधर के मध्यखण्ड को विजय करता है। बाद में सिन्धुखण्ड और गंगाखण्ड को साध कर वापिस इधर चला आता है। इधर आने पर गंगाखण्ड को साध कर अपनी राजधानी में चला जाता है।

चक्रवर्तियों के पिताओं के नाम—बारह चक्रवर्तियों के पिताओं के नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—

(१) ऋषभदेव स्वामी (२) सुमति विजय (३) समुद्र विजय (४) अश्वसेन (५) विश्वसेन (६) सूर्य (७) सुदर्शन (८) कृतवीर्य (९) पद्मोत्तर (१०) महाहरि (११) विजय (१२) ब्रह्म।

चक्रवर्तियों की माताओं के नाम—(१) सुमंगला (२) यशस्वती (३) भद्रा (४) सहदेवी (५) अचिरा (६) श्री (७) देवी (८) तारा (९) जाला (१०) मेरा (११) वप्रा (१२) चुल्लणी। (समवायांग १५८)

चक्रवर्तियों के जन्म स्थान— (१) वनिता (२) अयोध्या (३) श्रावस्ती (४—८) हस्तिनापुर (इस नगर में पाँच चक्रवर्तियों का जन्म हुआ था) (९) वनारस (१०) कम्पिलपुर (११) राजगृह (१२) कम्पिलपुर। (समवायांग १५८) (आवश्यक प्रथम विभाग प्र० १)

चक्रवर्तियों का बल— वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम से चक्रवर्तियों में बहुत बल होता है। कूए आदि के तट पर बैठे हुए चक्रवर्ती को शृङ्खला (सांकल) में बांध कर हाथी घोड़े रथ और पैदल

आदि सारी सेना सहित बत्तीस हजार राजा उस जंजीर को खींचने लगें तो भी वे एक चक्रवर्ती को नहीं खींच सकते किन्तु उसी जंजीर को बाएं हाथ से पकड़ कर चक्रवर्ती अपनी तरफ उन सब को बड़ी आसानी से खींच सकता है।

चक्रवर्तियों का हार– प्रत्येक चक्रवर्ती के पास श्रेष्ठ मोती और मणियों अर्थात् चन्द्रकान्त आदि रत्नों से जड़ा हुआ चौंसठ लड़ियों वाला हार होता है। (समवायांग ६४)

चक्रवर्तियों के एकेन्द्रिय रत्न– प्रत्येक चक्रवर्ती के पास सात सात एकेन्द्रिय रत्न होते हैं। अपनी अपनी जाति में जो सर्वोत्कृष्ट होता है वह रत्न कहलाता है। वे ये हैं– (१) चक्ररत्न (२) छत्र-रत्न (३) चर्मरत्न (४) दण्डरत्न (५) असिरत्न (६) मणिरत्न (७) काकिणीरत्न। ये सातों पार्थिव अर्थात् पृथ्वी रूप होते हैं।

चक्रवर्ती के पञ्चेन्द्रिय रत्न– प्रत्येक चक्रवर्ती के पास सात सात पञ्चेन्द्रिय रत्न होते हैं। (१) सेनापति (२) गृहपति (भंडारी) (३) बढ़ई (४) शान्ति कर्म कराने वाला पुरोहित (५) स्त्रीरत्न (६) अश्वरत्न (७) हस्तिरत्न। इन चौदह ही रत्नों की एक एक हजार यक्षदेवता सेवा करते हैं।

चक्रवर्तियों का वर्ण आदि– शुद्ध निर्मल सोने की प्रभा के समान उनके शरीर का वर्ण होता है।

चक्रवर्तियों की स्थिति और अवगाहना जानने के लिए नीचे तालिका दी जाती है–

नाम	स्थिति	अवगाहना
(१) भरत	८४ लाख पूर्व	५०० धनुष
(२) सगर	७२ ,, ,,	४५० ,,
(३) मघवान्	५ लाख वर्ष	४२॥ ,,
(४) सनत्कुमार	३ ,, ,,	४१॥ ,,

नाम	स्थिति	अवगाहना
(५) शान्तिनाथ	१ लाख वर्ष	४० धनुष
(६) कुन्थुनाथ	६५ हजार वर्ष	३५ ,,
(७) अरनाथ	८४ ,, ,,	३० ,,
(८) सुभूम	६० ,, ,,	२८ ,,
(९) महापद्म	३० ,, ,,	२० ,,
(१०) हरिषेण	१० ,, ,,	१५ ,,
(११) जय	३ ,, ,,	१२ ,,
(१२) ब्रह्मदत्त	७०० वर्ष	७ ,,

(हरिभद्रीयावश्यक प्रथम विभाग गाथा ३९२-९३)
(त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र)

चक्रवर्तियों के स्त्रीरत्नों के नाम— (१) सुभद्रा (२) भद्रा (३) सुनन्दा (४) जया (५) विजया (६) कृष्णश्री (७) सूर्यश्री (८) पद्मश्री (९) वसुन्धरा (१०) देवी (११) लक्ष्मीमती (१२) कुरुमती।
(समवायांग १५८)

चक्रवर्तियों की सन्तान— चक्रवर्ती अपना वैक्रिय रूप छोड़ कर जब सम्भोग करता है तो उसके सन्तान होती है या नहीं? इसका उत्तर यह है कि चक्रवर्ती के वैक्रिय शरीर से तो सन्तानोत्पत्ति नहीं हो सकती है किन्तु केवल औदारिक शरीर से हो सकती है। वैक्रिय शरीर द्वारा बनाये गये रूप तो पुनः औदारिक शरीर में ही प्रवेश कर जाते हैं इसलिए वे गर्भाधान के कारण नहीं हो सकते, ऐसा पन्नवणा सूत्र की वृत्ति में कहा गया है।

ये चक्रवर्ती सर्वोत्कृष्ट शब्द रूप रस गन्ध स्पर्श रूप कामभोगों का भोग करते हैं। जो इन को छोड़ कर दीक्षा अङ्गीकार कर लेते हैं वे मोक्ष में अथवा ऊँचे देवलोकों में जाते हैं। जो इन कामभोगों को नहीं छोड़ते हैं और इन्हीं में गृद्ध बने रहते हैं वे सैकड़ों वर्षों

तक इनका सेवन करने पर भी इन में अतृप्त ही मृत्यु के मुंह में चले जाते हैं और भयङ्कर वेदना वाली नरकों में उत्पन्न होते हैं।

चक्रवर्तियों की प्रव्रज्या- पहले और दूसरे चक्रवर्ती अर्थात् भरत और सगर ने विनीता (अयोध्या, साकेत) नगरी में दीक्षा ली थी। मघवान् श्रावस्ती में, सनत्कुमार, शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ और अरनाथ हस्तिनागपुर में, महापद्म बनारस में, हरिषेण कम्पिलपुर में और जय राजगृह में दीक्षित हुए थे। सुभूम और ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती ने दीक्षा नहीं ली थी। ये दोनों हस्तिनागपुर और कम्पिलपुर नगर के अन्दर उत्पन्न हुए थे। आवश्यक सूत्र में बतलाया है कि जो चक्रवर्ती जहाँ उत्पन्न हुए थे उन्होंने उसी नगरी के अन्दर दीक्षा ली थी किन्तु निशीथ भाष्य में बतलाया गया है कि चम्पा, मथुरा आदि दस नगरियों में बारह चक्रवर्ती उत्पन्न हुए थे अर्थात् नौ नगरियों में तो एक एक चक्रवर्ती उत्पन्न हुआ था और एक नगरी में तीन चक्रवर्ती पैदा हुए थे अर्थात् शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ और अरनाथ (जो कि क्रमशः सोलहवें, सतरहवें और अठारहवें तीर्थङ्कर भी हैं) एक ही नगरी में उत्पन्न हुए थे। एक नगरी में कई चक्रवर्ती उत्पन्न हो सकते हैं किन्तु एक क्षेत्र में एक साथ दो चक्रवर्ती नहीं हो सकते।

राज्यलक्ष्मी और कामभोगों को छोड़ कर जो चक्रवर्ती दीक्षा ले लेते हैं वे उसी भव में मोक्ष में या श्रेष्ठ देवलोक में जाते हैं। जो चक्रवर्ती दीक्षा नहीं लेते वे भी ज्यादा से ज्यादा कुछ कम अर्द्ध पुद्गल परावर्तन के बाद अवश्य मोक्ष में जाते हैं।

(हरिभद्रीयावश्यक अध्ययन १) (त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र)

७८४- आगामी उत्सर्पिणी के चक्रवर्ती

निम्न लिखित चक्रवर्ती आगामी उत्सर्पिणी में होवेंगे-

(१) भरत (२) दीर्घदन्त (३) गूढ़दन्त (४) शुद्धदन्त (५) श्रीपुत्र

(६) श्रीभूति (७) श्रीसोम (८) पद्म (९) महापद्म (१०) विमल वाहन (११) विपुल वाहन (१२) अरिष्ट। (समवायाग १५९)

७८५- आर्य के बारह भेद

निम्न लिखित बारह तरह से आर्य पद का निक्षेप किया गया है।

(१) नामार्य- किसी पुरुष या वस्तु आदि का नाम आर्य रख देना नामार्य कहलाता है।

(२) स्थापनार्य- गुणों की विवक्षा न करके किसी पुरुष या स्थान आदि में आर्य पद की स्थापना कर देना स्थापनार्य कहलाता है।

(३) द्रव्यार्य-झुकाये जाने के योग्य वृक्ष आदि द्रव्यार्य कहलाते हैं। जैसे तिनिश वृक्ष आदि।

(४) क्षेत्रार्य-मगध आदि साढे पच्चीस देशों में उत्पन्न होने वाले मनुष्य आदि क्षेत्रार्य कहलाते हैं।

(५) जात्यार्य- अम्बष्ठ, कलिन्द, विदेह आदि श्रेष्ठ जातियों में उत्पन्न होने वाले जात्यार्य कहलाते हैं।

(६) कुलार्य- उग्र, भोग, राजन्य आदि श्रेष्ठ कुलों में उत्पन्न होने वाले कुलार्य कहलाते हैं।

(७) कर्मार्य-महा आरम्भ के कार्यों में प्रवृत्ति न करने वाले कर्मार्य कहलाते हैं।

(८) भाषार्य- अर्धमागधी आदि आर्य भाषाओं को बोलने वाले भाषार्य कहलाते हैं।

(९) शिल्पार्य- रूई धुनना, कपड़े बुनना आदि से अपनी आजीविका चलाने वाले शिल्पार्य कहलाते हैं।

(१०) ज्ञानार्य- ज्ञान की अपेक्षा जो आर्य हों वे ज्ञानार्य कहलाते हैं। ज्ञान के मतिज्ञान, श्रुतज्ञान आदि पाँच भेद हैं। इन पाँच ज्ञानों की अपेक्षा ज्ञानार्य के भी पाँच भेद हो जाते हैं।

(११) दर्शनार्य– दर्शन की अपेक्षा जो आर्य हों उन्हें दर्शनार्य कहते हैं। इनके दो भेद हैं– सराग दर्शनार्य और वीतराग दर्शनार्य। क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि और औपशमिक सम्यग्दृष्टि के भेद से सराग दर्शनार्य के दो भेद हैं।

(१२) चारित्रार्य– चारित्र की अपेक्षा जो आर्य हों वे चारित्रार्य कहलाते हैं। चारित्र के सामायिक, छेदोपस्थापनीय आदि पाँच भेद होने से चारित्रार्य के भी पाँच भेद हैं।

(बृहत्कल्प निर्युक्ति उद्देशा १ गाथा ३२६३)

७८६– उपयोग बारह

जिसके द्वारा सामान्य या विशेष रूप से वस्तु का ज्ञान किया जाय उसे उपयोग कहते हैं। उपयोग के दो भेद हैं– साकारोपयोग और निराकारोपयोग (अनाकारोपयोग)। जिसके द्वारा पदार्थों के विशेष धर्मों का अर्थात् जाति, गुण, क्रिया आदि का ज्ञान हो वह साकारोपयोग है अर्थात् सचेतन और अचेतन पदार्थों को पर्याय सहित जानना साकारोपयोग है, इसे ज्ञानोपयोग भी कहते हैं। जिस के द्वारा पदार्थों के सामान्य धर्म सत्ता आदि का ज्ञान किया जाय उसे निराकारोपयोग कहते हैं, यह दर्शनोपयोग भी कहा जाता है।

छद्मस्थों की अपेक्षा साकारोपयोग का समय अन्तर्मुहूर्त्त है और केवली की अपेक्षा एक समय है। अनाकारोपयोग का समय छद्मस्थों की अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त्त है किन्तु साकारोपयोग का समय इससे संख्यात गुणा अधिक है क्योंकि आकार (पर्याय) सहित वस्तु का ज्ञान करने में बहुत समय लगता है। केवली की अपेक्षा अनाकारोपयोग का समय एक समय मात्र है।

साकारोपयोग के आठ भेद–

(१) आभिनिबोधिक साकारोपयोग– इन्द्रिय और मन की सहायता से योग्य स्थान में रहे हुए पदार्थों को स्पष्ट रूप से विषय

करने वाला आभिनिबोधिक साकारोपयोग है। यह मतिज्ञान भी कहलाता है।

(२) श्रुतज्ञान साकारोपयोग– वाच्यवाचकभाव सम्बन्ध पूर्वक शब्द के साथ सम्बन्ध रखने वाले अर्थ का ग्रहण करने वाला श्रुतज्ञान कहलाता है। जैसे– कम्बुग्रीवादि आकार वाली, जल धारणादि क्रिया में समर्थ वस्तु घट शब्दवाच्य है अर्थात् घट शब्द से कही जाती है। श्रुतज्ञान भी इन्द्रियमनोनिमित्तक होता है और इन्द्रिय तथा मन की सहायता से ही पदार्थ को विषय करता है।

(३) अवधिज्ञान साकारोपयोग– मर्यादापूर्वक रूपी द्रव्यों को विषय करने वाला अवधिज्ञान साकारोपयोग कहलाता है। यह ज्ञान इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना ही रूपी पदार्थों को विषय करता है।

(४) मनःपर्यवज्ञान साकारोपयोग– ढाई द्वीप और समुद्रों में रहे हुए संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के मनोगत भावों को जानने वाला मनःपर्यवज्ञान साकारोपयोग कहलाता है। इसे मनःपर्यय और मनःपर्याय भी कहते हैं।

(५) केवलज्ञान साकारोपयोग– मति आदि ज्ञानों की अपेक्षा (सहायता) के बिना भूत, भविष्यत् और वर्तमान तथा तीनों लोकवर्ती समस्त पदार्थों को विषय करने वाला केवलज्ञान साकारोपयोग है। इसका विषय अनन्त है।

मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान जब मिथ्यात्व मोहनीय से संयुक्त हो जाते हैं तब वे मलिन हो जाते हैं। उस दशा में वे अनुक्रम से (६) मत्यज्ञान साकारोपयोग (७) श्रुताज्ञान साकारोपयोग और (८) विभङ्गज्ञान साकारोपयोग कहलाते हैं।

अनाकारोपयोग के चार भेद–

(६) चक्षुदर्शन अनाकारोपयोग– आँख द्वारा पदार्थों का जो

सामान्य ज्ञान होता है उसे चक्षुदर्शन अनाकारोपयोग कहते हैं।

(१०) अचक्षुदर्शन अनाकारोपयोग- चक्षु इन्द्रिय को छोड़ कर शेष चारों इन्द्रियों और मन के द्वारा होने वाला पदार्थों का सामान्य ज्ञान अचक्षुदर्शन अनाकारोपयोग है।

(११) अवधिदर्शन अनाकारोपयोग- मर्यादित क्षेत्र में रूपी द्रव्यों का सामान्य ज्ञान अवधिदर्शन अनाकारोपयोग है।

(१२) केवलदर्शन अनाकारोपयोग- दूसरे ज्ञान की अपेक्षा विना सम्पूर्ण संसार के पदार्थों का सामान्य ज्ञान रूप दर्शन केवल दर्शन अनाकारोपयोग कहलाता है। (पन्नवणा २६ वाँ उपयोग पद)

७८७- अवग्रह के बारह भेद

नाम, जाति आदि की विशेष कल्पना से रहित वस्तु का सामान्य ज्ञान अवग्रह कहलाता है। जैसे गाढ़ अन्धकार में किसी वस्तु का स्पर्श होने पर 'किमिदम्, यह क्या है' इस प्रकार का ज्ञान होता है। यह ज्ञान अव्यक्त (अस्पष्ट) है। इसमें किसी भी पदार्थ का विशेष ज्ञान नहीं होता। इसके बारह भेद हैं।

(१) बहुग्राही-बहु अर्थात् अनेक पदार्थों का सामान्य ज्ञान बहुग्राही अवग्रह है।

(२) अल्पग्राही- एक पदार्थ का ज्ञान अल्पग्राही अवग्रह है।

(३) बहुविधग्राही- किसी पदार्थ के आकार, प्रकार, रूप रंग, आदि विविधता का ज्ञान बहुविधग्राही अवग्रह है।

(४) एकविधग्राही- एक ही प्रकार के पदार्थ का ज्ञान एक-विधग्राही अवग्रह है।

बहु और अल्प का अर्थ व्यक्तियों की संख्या से है और बहुविध तथा एकविध का अर्थ प्रकार (किस्म) अथवा जाति की संख्या से है। यही इन दोनों में फरक है।

(५) क्षिप्रग्राही—पदार्थ का शीघ्र ज्ञान कराने वाला क्षिप्रग्राही अवग्रह है।

(६) अक्षिप्रग्राही— विलम्ब से ज्ञान कराने वाला अक्षिप्रग्राही अवग्रह है। जल्दी या देरी से ज्ञान होना व्यक्ति के क्षयोपशम पर निर्भर है। बाह्य सारी सामग्री बराबर होने पर भी एक व्यक्ति क्षयोपशम की पटुता के कारण शीघ्र ज्ञान कर लेता है और दूसरा व्यक्ति क्षयोपशम की मंदता के कारण विलम्ब से ज्ञान करता है।

(७) निश्रितग्राही— हेतु द्वारा निर्णीत निश्रित कहलाता है। जैसे किसी व्यक्ति ने पहले जुही आदि के फूलों को देख रखा है और उसके शीत कोमल स्पर्श तथा सुगन्ध आदि का अनुभव कर रखा है उसके स्पर्श से होने वाला ज्ञान निश्रितग्राही है।

(८) अनिश्रितग्राही—हेतु द्वारा अनिर्णीत अनिश्रित कहलाता है। पहले अनुभव न किए हुए पदार्थ का ज्ञान अनिश्रितग्राही है।

निश्रित और अनिश्रित शब्दों का अर्थ ऊपर बताया गया है। नन्दी सूत्र की टीका में भी यही अर्थ दिया गया है परन्तु वहाँ पर इन शब्दों का दूसरा अर्थ भी दिया हुआ है। वहाँ पर परधर्मों से मिश्रित ग्रहण को निश्रित अवग्रह और परधर्मों से अमिश्रित ग्रहण को अनिश्रित अवग्रह बताया गया है।

राजवार्तिक में बतलाया गया है कि सम्पूर्ण एवं स्पष्ट रीति से उच्चारण नहीं किये गए शब्दों का ग्रहण अनिःसृतावग्रह है और सम्पूर्ण एवं स्पष्ट रीति से उच्चारण किए शब्दों का ग्रहण निःसृतावग्रह है।

(९) संदिग्धग्राही— अनिश्चित अर्थ को ग्रहण करने वाला अवग्रह संदिग्धग्राही है।

(१०) असंदिग्धग्राही— निश्चित अर्थ को ग्रहण करने वाला अवग्रह असंदिग्धग्राही कहलाता है, जैसे किसी पदार्थ का स्पर्श

होने पर कहना कि यह फूल का स्पर्श नहीं किन्तु चन्दन का है।

संदिग्धग्राही और असंदिग्धग्राही की जगह कहीं कहीं उक्तग्राही और अनुक्तग्राही ऐसा पाठ है। इनका अर्थ राजवार्तिक में इस प्रकार किया गया है-

वक्ता कोई बात कहना चाहता है किन्तु अभी उसके मुंह से पूरा शब्द नहीं निकला। केवल शब्द का पहला एक अक्षर उच्चारण किया गया है। ऐसी अवस्था में वक्ता के अभिप्राय को जान कर यह कह देना कि तुम अमुक शब्द बोलने वाले हो, इस प्रकार का अवग्रह अनुक्तावग्रह कहलाता है, अथवा गाने के लिए तैयार हुए पुरुष के गाना शुरू करने के पहले ही उसके वीणा आदि के स्वर को सुन कर ही यह बतला देना कि यह पुरुष अमुक गाना गाने वाला है। इस प्रकार का अवग्रह अनुक्तावग्रह है। इससे विपरीत अर्थात् वक्ता के शब्दों को सुन कर होने वाला अवग्रह उक्तावग्रह है।

(११) ध्रुवग्राही- अवश्यम्भावी अर्थ को ग्रहण करने वाला अवग्रह ध्रुवग्राही है।

(१२) अध्रुवग्राही- कदाचिद्भावी अर्थ का ग्राहक अवग्रह अध्रुवग्राही है।

समान सामग्री होने पर भी किसी व्यक्ति को उस पदार्थ का अवश्य ज्ञान हो जाता है और किसी को क्षयोपशम की मन्दता के कारण कभी तो ज्ञान हो जाता है और कभी नहीं। ऐसा ज्ञान क्रमशः ध्रुवग्राही अवग्रह और अध्रुवग्राही अवग्रह कहलाता है।

उपरोक्त बारह भेदों में से चार भेद अर्थात् बहु, अल्प, बहुविध और अल्पविध (एकविध) विषय की विविधता पर अवलम्बित हैं शेष आठ भेद क्षयोपशम की विविधता पर अवलम्बित हैं।

शङ्का- उपरोक्त बहु, अल्प आदि बारह भेद तो पदार्थ की विशेषता का ज्ञान कराते हैं। अवग्रह का विषय तो सामान्य ज्ञान

मात्र है। इस लिए उसमें ये बारह भेद कैसे घटित हो सकेंगे ?

समाधान- अर्थावग्रह के दो भेद माने गए हैं- व्यावहारिक और नैश्चयिक। उपरोक्त भेद व्यावहारिक अर्थावग्रह के समझने चाहिये। नैश्चयिक अर्थावग्रह के नहीं, क्योंकि इसमें जाति, गुण, क्रिया आदि से शून्य मात्र सामान्य प्रतिभास होता है, इस लिए इसमें बहु, अल्प आदि विशेषताओं का ग्रहण नहीं हो सकता।

व्यावहारिक अर्थावग्रह और नैश्चयिक अर्थावग्रह में सिर्फ यही फरक है कि सामान्य मात्रका ग्रहण करने वाला नैश्चयिक अर्थावग्रह है और विषयों की विविधता सहित सामान्य और विशेष दोनों को ग्रहण करने वाला व्यावहारिक अर्थावग्रह है।

अवग्रह की तरह ईहा, अवाय और धारणा, प्रत्येक के बारह बारह भेद होते हैं। (तत्त्वार्थाधिगम भाष्य अध्ययन १ सूत्र १६)

(ठाणांग, सूत्र ५१०) (विशेषावश्यक भाष्य गाथा १७८)

७८८- असत्यामृषा (व्यवहार) भाषा के बारह भेद

सत्या, असत्या, सत्यामृषा और असत्यामृषा इस प्रकार भाषा के चार भेद हैं। पहले की तीन भाषाओं के लक्षण से रहित होने के कारण चौथी असत्यामृषा का इनमें अन्तर्भाव नहीं हो सकता। केवल लौकिक व्यवहार की प्रवृत्ति का कारण होने से यह व्यवहार भाषा या असत्यामृषा भाषा कहलाती है। इसके बारह भेद हैं-

(१) आमंतणी- आमन्त्रणा करना। जैसे- हे भगवन्! हे देवदत्त! इत्यादि।

(२) आणमणी (आज्ञापनी)- दूसरे को किसी कार्य में प्रेरित करने वाली भाषा आणमणी कहलाती है यथा- जाओ, लाओ, अमुक कार्य करो, इत्यादि।

(३) जायणी (याचनी)- याचना करने के लिए कही जाने वाली भाषा याचनी है।

(४) पुच्छणी (पृच्छनी)-अज्ञात तथा संदिग्ध पदार्थों को जानने के लिये प्रयुक्त भाषा पृच्छनी कहलाती है।

(५) पण्णवणी (प्रज्ञापनी)-विनीत शिष्य को उपदेश देने रूप भाषा प्रज्ञापनी है। यथा-प्राणियों की हिंसा से निवृत्त पुरुष भवान्तर में दीर्घायु और नीरोग शरीर वाले होते हैं।

(६) पच्चक्खाणी (प्रत्याख्यानी)-निषेधात्मक भाषा।

(७) इच्छाणुलोमा (इच्छानुलोमा)- दूसरे की इच्छा का अनुसरण करना। जैसे- किसी के द्वारा पूछा जाने पर उत्तर देना कि जो तुम करते हो वह मुझे भी अभीष्ट है।

(८) अणभिग्गहिया (अनभिगृहीता)-प्रतिनियत (निश्चित) अर्थ का ज्ञान न होने पर उसके लिए पूछना।

(९) अभिग्गहिया (अभिगृहीता)- प्रतिनियत अर्थ का बोध कराने वाली भाषा अभिगृहीता है।

(१०) संशयकरणी- अनेक अर्थों के वाचक शब्दों का जहाँ पर प्रयोग किया गया हो और जिसे सुन कर श्रोता संशय में पड़ जाय वह भाषा संशयकरणी है। जैसे सैन्धव शब्द को सुन कर श्रोता संशय में पड़ जाता है कि नमक लाया जाय या घोड़ा।

(११) वोगडा (व्याकृता)- स्पष्ट अर्थ वाली भाषा व्याकृता कहलाती है।

(१२) अव्वोगडा (अव्याकृता)- अति गम्भीर अर्थ वाली अथवा अस्पष्ट उच्चारण वाली भाषा अव्याकृता कहलाती है।

(पन्नवणा ११ भाषा पद)

७८९- काया के बारह दोष

सामायिक में निषिद्ध आसन से बैठना काया का दोष है। इसके

बारह भेद हैं–

कुआसणं चलासणं चलदिट्ठी,
सावज्जकिरियालंबणाकुंचणपसारणं ।
आलस्स मोडण मल विमासंण,
निद्दा वैयावच्च त्ति बारस काय दोसा ॥

(१) कुआसन–कुआसन से बैठना, जैसे पाँव पर पाँव चढ़ा कर बैठना आदि 'कुआसन' दोष है।

(२) चलासन–स्थिर आसन से न बैठ कर बार बार आसन बदलना, 'चलासन' दोष है।

(३) चलदृष्टि– दृष्टि को स्थिर न रखना, बिना प्रयोजन बार बार इधर उधर देखना 'चलदृष्टि' दोष है।

(४) सावद्य क्रिया– शरीर से सावद्य क्रिया करना, इशारा करना या घर की रखवाली करना 'सावद्य क्रिया' दोष है।

(५) आलम्बन– बिना किसी कारण के दीवाल आदि का सहारा लेकर बैठना 'आलम्बन' दोष है।

(६) आकुंचन प्रसारण–बिना प्रयोजन ही हाथ पाँव फैलाना, समेटना 'आकुंचन प्रसारण' दोष है।

(७) आलस्य– सामायिक में आलस्य से अंगों को मोड़ना 'आलस्य' दोष है।

(८) मोडण– सामायिक में बैठे हुए हाथ पैर की अङ्गुलियाँ चटकाना 'मोडण' दोप है।

(९) मल दोष–सामायिक में शरीर का मैल उतारना 'मल' दोप है।

(१०) विमासन– गाल पर हाथ लगा कर शोक ग्रस्त की तरह बैठना, अथवा बिना पूँजे शरीर खुजलाना या हलन चलन करना 'विमासन' दोप है।

(११) निद्रा– सामायिक में निद्रा लेना 'निद्रा' दोप है।

(१२) वैयावृत्य अथवा कम्पन–सामायिक में बैठे हुए निष्कारण ही दूसरे से वैयावच्च कराना 'वैयावृत्य' दोष है और स्वाध्याय करते हुए घूमना यानी हिलना या बिना कारण शरीर को कंपाना 'कम्पन' दोष है। (श्रावक के चार शिक्षा व्रत, पूज्य श्री जवाहरलाल जी महाराज कृत)

७९०– मान के बारह नाम

अपने आप को दूसरों से उत्कृष्ट बताना मान है। इसके समानार्थक बारह नाम हैं–

(१) मान– मान के परिणाम को उत्पन्न करने वाले कषाय को मान कहते हैं।

(२) मद– मद करना या हर्ष करना।

(३) दर्प (दृप्तता)– घमण्ड में चूर होना।

(४) स्तम्भ– नम्र न होना, स्तम्भ की तरह कठोर बने रहना।

(५) गर्व– अहंकार।

(६) अत्युत्क्रोश– अपने को दूसरों से उत्कृष्ट बताना।

(७) परपरिवाद– दूसरे की निन्दा करना।

(८) उत्कर्ष– अभिमान पूर्वक अपनी समृद्धि प्रकट करना या दूसरे की क्रिया से अपनी क्रिया को उत्कृष्ट बताना।

(९) अपकर्ष– अपने से दूसरे को तुच्छ बताना।

(१०) उन्नत– विनय का त्याग कर देना।

(११) उन्नाम– वन्दन योग्य पुरुष को भी वन्दना न करना।

(१२) दुर्नाम– वन्दना करने के योग्य पुरुष को भी अभिमान पूर्वक बुरी तरह से वन्दना करना। (भगवती शतक १२ उ० ५)

७९१– अप्रशस्त मन विनय के बारह भेद

असंयती पुरुषों के मन (चित्त) की प्रवृत्ति अप्रशस्त मन विनय कहलाती है। इसके बारह भेद हैं–

(१) सावद्य–गर्हित (निन्दित) कार्य से युक्त, अथवा हिंसादि कार्य से युक्त मन की प्रवृत्ति।

(२) सक्रिय–कायिकी आदि क्रियाओं से युक्त मन की प्रवृत्ति।

(३) सकर्कश–कर्कश (कठोर) भावों से युक्त मन की प्रवृत्ति।

(४) कटुक–अपनी आत्मा के लिये और दूसरे प्राणियों के लिए अनिष्टकारी मन की प्रवृत्ति।

(५) निष्ठुर– मृदुता (कोमलता) रहित मन की प्रवृत्ति।

(६) परुष– कठोर अर्थात् स्नेह रहित मन की प्रवृत्ति।

(७) आश्रवकारी–जिससे अशुभ कर्मों का आगमन हो, ऐसी मन की प्रवृत्ति।

(८) छेदकारी– अमुक पुरुष के हाथ पैर आदि अवयव काट डाले जायँ इत्यादि मन की दुष्ट प्रवृत्ति।

(९) भेदकारी– अमुक पुरुष के नाक कान आदि का भेदन कर दिया जाय ऐसी मन की प्रवृत्ति।

(१०) परितापनाकारी–प्राणियों को संताप उपजाना, इत्यादि मन की प्रवृत्ति।

(११) उपद्रवकारी–अमुक पुरुष को ऐसी वेदना हो कि उसके प्राण छूट जाय या अमुक पुरुष के धन को चोर चुरा ले जाय, इस प्रकार मन में चिन्तन करना।

(१२) भूतोपघातकारी–जीवों की विनाशकारी मन की प्रवृत्ति।

(उववाई सूत्र २०)

७९२– कम्मिया बुद्धि के बारह दृष्टान्त

किसी कार्य में उपयोग लगा कर उसके नतीजे को जान लेने वाली, सज्जन पुरुषों द्वारा प्रशंसित, कार्य करते हुए अभ्यास से उत्पन्न होने वाली बुद्धि कम्मिया (कर्मजा) कहलाती है। बारह प्रकार के पुरुष ऐसे हैं जिन्हें काम करते करते एक विलक्षण बुद्धि उत्पन्न हो जाती है।

(१) हैरण्यक (सुनार)–सुनार के कार्य में प्रवीण पुरुष रात्रि के गाढ़ अन्धकार में भी हाथ के स्पर्शमात्र से सोना चाँदी आदि को यथावस्थित जान लेता है।

(२) करिसए(कृषक)–किसी चोर ने एक बनिये के घर में ऐसी चतुराई से सांध लगाई कि उसका आकार कमल के सरीखा बना दिया। प्रातः काल उसे देख कर बहुत लोग चोर की चतुराई की प्रशंसा करने लगे। चोर भी वहाँ आकर चुपके से अपनी प्रशंसा सुनने लगा। वहाँ एक किसान खड़ा था उसने कहा कि शिक्षित आदमी के लिए क्या मुश्किल है ? किसी एक कार्य में प्रवीण व्यक्ति यदि उस कार्य को विशेष चतुराई के साथ करता है तो इसमें क्या आश्चर्य है ? किसान की बात को सुन कर चोर को बड़ा गुस्सा आया। उसने उस किसान का नाम और पता पूछा। इसके बाद एक समय वह हाथ में तलवार लेकर उस किसान के पास पहुँचा और कहने लगा कि मैं तुझे अभी मार देता हूँ। किसान ने इसका कारण पूछा। तब चोर ने कहा कि तूने उस दिन मेरे द्वारा लगाई गई पद्माकार सान्ध की प्रशंसा क्यों नहीं की ? निर्भय होकर किसान ने जवाब दिया कि मैंने जो बात कही थी वह ठीक थी क्योंकि जो व्यक्ति जिस विषय में अभ्यस्त होता है वह उस कार्य में अधिक उत्कर्षता को प्राप्त हो जाता है। इस विषय में मैं स्वयं उदाहरण रूप हूँ। मेरे हाथ में मूंग के ये दाने हैं। यदि तुम कहो तो मैं इनको इस तरह से जमीन पर डाल सकता हूँ कि इन सब का मुंह ऊपर, नीचे, दाएं या बाएं किसी एक तरफ रह जाय। तब चोर ने कहा कि इन मूंगों को इस तरह डालो कि सब का मुंह नीचे की तरफ रह जाय। जमीन पर एक कपड़ा बिछा दिया गया और किसान ने उन दानों को इस तरह डाला कि सब अधोमुख गिर गये। यह देख कर चोर बड़ा विस्मित हुआ और किसान

की कुशलता की वारम्बार प्रशंसा करने लगा और कहने लगा कि यदि तूने इन को अधोमुख न गिराया होता तो मैं तुझे अवश्य मार देता। ऐसा कहता हुआ चोर अपने घर चला आया।

पद्माकार सांध लगाना और मूँग के दानों को अधोमुख डाल देना ये दोनों कम्मिया (कर्मजा) बुद्धि के दृष्टान्त हैं। बहुत दिनों तक कार्य करते रहने के कारण चोर और किसान को यह कुशलता प्राप्त होगई थी।

(३) कौलिक– अपने अभ्यास के कारण जुलाहा अपनी मुट्ठी में तन्तुओं को लेकर यह बतला सकता है कि इतने तन्तुओं से कपड़ा बन जायगा।

(४) दर्वी– चाटु बनाने वाला यह बतला सकता है कि इस चाटु में इतना अन्न समायेगा।

(५) मौक्तिक–मणिहार (मणियों को पिरोने वाला) मोती को आकाश में ऊपर फैंक कर नीचे सूअर के बाल को या तार आदि को इस तरह खड़ा रख सकता है कि ऊपर से आते हुए मोती के छेद में वह पिरोया जा सके।

(६) घृतविक्रयी–घी बेचने वाला अभ्यस्त पुरुष चाहे तो गाड़ी में बैठा हुआ ही इस तरह से घी को नीचे डाल सकता है कि वह घी गाड़ी के कुण्डिकानाल में ही जाकर गिरे।

(७) प्लवक– उछलने में कुशल व्यक्ति आकाश में उछलना आदि क्रियायें कर सकता है।

(८) तुन्नाग– सीने के कार्य में चतुर दर्जी कपड़े को इस तरह सी सकता है कि दूसरे को पता ही न चले कि यह सीया हुआ है या नहीं।

(९) वर्द्धकि– बढ़ई अपने कार्य में विशेष अभ्यस्त होने से बिना नापे ही बतला सकता है कि गाड़ी बनाने में इतनी लकड़ी

लगेगी। अथवा वस्तु शास्त्र के अनुसार भूमि आदि का ठीक परिणाम किया जा सकता है।

(१०) आपूपिक–हलवाई अपूप (मालपूए) आदि को बिना गिने ही उनका परिमाण या गिनती बता सकता है।

(११) घटकार– घड़े बनाने में निपुण कुम्हार पहले से इतनी ही प्रमाणयुक्त मिट्टी उठा कर चाक पर रखता है कि जितने से घड़ा बन जाय।

(१२) चित्रकार–नाटक की भूमिका को बिना देखे ही नाटक के प्रमाण को जान सकता है अथवा कुञ्चिका के अन्दर इतना ही रंग लेता है जितने से उसका कार्य पूर्ण हो जाय अर्थात् चित्र अच्छी तरह रंगा जा सके।

ये उपरोक्त बारह व्यक्ति अपने अपने कार्य में इतने निपुण हो जाते हैं कि इनकी कार्य कुशलता को देख कर लोग आश्चर्य करने लगते हैं। बहुत समय तक अपने कार्य में अभ्यास करते रहने के कारण इनको ऐसी कुशलता प्राप्त हो जाती है। इस लिए यह कम्मिया (कर्मजा) बुद्धि कहलाती है। (नन्दी सूत्र) (आवश्यक निर्युक्ति दीपिका)

७९३– आजीवक के बारह श्रमणोपासक

(१) ताल (२) तालप्रलम्ब (३) उद्विद्ध (४) संविद्ध (५) अवविद्ध (६) उदय (७) नामोदय (८) नर्मोदय (९) अनुपालक (१०) शंख पालक (११) अयंबुल (१२) कातर।

इनका देव गोशालक था। माता पिता की सेवा करना ये श्रेष्ठ समझते थे। ये उंबर, वड़, बेर, सतर और पीपल के फलों और प्याज, ल्हसन और कन्द मूल के त्यागी होते थे। अनिर्लाञ्छित और बिना नाथे हुए बैलों से त्रस प्राणियों की हिंसा रहित व्यापार करके अपनी आजीविका चलाते थे। (भगवती शतक ८ उद्देशा ५)

७९४- निश्चय और व्यवहार से श्रावक के बारह भाव व्रत

चारित्र के दो भेद हैं- निश्चय चारित्र और व्यवहार चारित्र। व्यवहार चारित्र के दो भेद हैं-सर्वविरति और देशविरति। प्राणातिपात विरमण प्रमुख पाँच महाव्रत को सर्वविरति कहते हैं। पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत रूप श्रावक के बारह व्रतों को देशविरति कहते हैं। व्यवहार चारित्र पुण्य रूप सुख का कारण है। इससे देवगति की प्राप्ति होती है और यह व्यवहार चारित्र अभव्य जीवों के भी हो सकता है, किन्तु इससे सकाम निर्जरा नहीं होती और न यह मोक्ष का ही कारण है। निश्चय सहित व्यवहार चारित्र मोक्ष का कारण बताया गया है, इस लिए मुमुक्षु आत्मा को निश्चय और व्यवहार दोनों चारित्रों का पालन करना चाहिए। शरीर, इन्द्रिय, विषय, कषाय और योग को आत्मा से भिन्न जान कर छोड़ना, आत्मा अपौद्गलिक और अनाहारी है, आहार पौद्गलिक है और वह आत्मा के अयोग्य है ऐसा जान कर पौद्गलिक आहार का त्याग करना और तप का सेवन करना निश्चय चारित्र है। देशविरति के बारह व्रतों का स्वरूप निश्चय और व्यवहार से निम्न लिखितानुसार है-

(१) प्राणातिपात विरमण व्रत- दूसरे जीवों को आत्मतुल्य समझना, उन्हें दुःख न पहुँचाना और उनकी रक्षा करना, उन पर दया भाव रखना व्यवहार प्राणातिपात विरमण व्रत है।

कर्मवश अपना आत्मा दुखी हो रहा है, उसे कर्मों से छुड़ाना, आत्मगुणों की रक्षा करना और उन्हें बढ़ाना यह स्वदया है। बन्ध-हेतु के परिणामों को रोक कर आत्मगुणों के स्वरूप को प्रकट करना एवं प्रकट हुए गुणों को स्थिर रखना, इस प्रकार आत्मस्वरूप में

तन्मय होकर रमण करना, यह निश्चय प्राणातिपात विरमण व्रत है।

(२) मृषावाद विरमण व्रत–असत्य वचन न बोलना व्यवहार मृषावाद विरमण व्रत है। पुद्गलादिक परवस्तुओं को अपनी कहना, जीव को अजीव और अजीव को जीव कहना एवं सिद्धान्तों का झूठा अर्थ करना, यह निश्चय मृषावाद है और इसका त्याग करना निश्चय मृषावाद विरमण व्रत है। अदत्तादान विरमण आदि व्रतों का भंग करने से केवल चारित्र का भंग होता है, समकित और ज्ञान का भंग नहीं होता किन्तु मृषावाद विरमण व्रत का भंग चारित्र के साथ समकित और ज्ञान को भी दूषित कर देता है। इस लिए सिद्धान्तों में कहा गया है कि चौथे महाव्रत का खंडन करने वाला साधु आलोचना और प्रायश्चित्त से शुद्ध हो जाता है परन्तु सिद्धान्तों के मृषा उपदेश द्वारा दूसरे महाव्रत का भंग करने वाला साधु आलोचना और प्रायश्चित्त द्वारा भी शुद्ध नहीं होता। इसका यही कारण प्रतीत होता है कि दूसरे व्रतों को दूषित करने वाले अपनी आत्मा को ही मलिन करते हैं किन्तु सिद्धान्तों का मृषा उपदेश देने वाले अपने साथ दूसरे जीवों की आत्माओं को भी उन्मार्ग में ले जाते हैं और उन्हें मलिन करते हैं।

(३) अदत्तादान विरमण व्रत–दूसरे की धन धान्यादि वस्तुओं को स्वामी की आज्ञा विना लेना, छिपाना या चोरी और ठगाई करके लेना व्यवहार अदत्तादान है। इसका त्याग करना व्यवहार अदत्तादान विरमण व्रत है। पाँच इन्द्रियों के तेईस विषय, आठ कर्मों की वर्गणा इत्यादि आत्मभिन्न वस्तुओं को ग्रहण करना निश्चय अदत्तादान है। उपरोक्त परवस्तुएं आत्मा के लिए अग्राह्य हैं उन्हें ग्रहण करने की इच्छा भी मुमुक्षु आत्मा को न होनी चाहिए। जो लोग पुण्योपार्जन के लिए शुभ क्रियाएं करते हैं और उन्हें आदरणीय समझते हैं वे व्यवहार अदत्तादान से विरत होते हुए

भी निश्चय अदत्तादान के सेवी हैं क्योंकि वे आत्मभिन्न पुण्यकर्मों को ग्रहण करते हैं। मोक्षाभिलाषी आत्मा की क्रियाएं केवल निर्जरा के उद्देश्य से होनी चाहिए। इस प्रकार निश्चय अदत्तादान से निवृत्त होकर निष्काम हो धर्म का पालन करना निश्चय अदत्तादान विरमण व्रत कहलाता है।

(४) मैथुन विरमण व्रत--पुरुष के लिए परस्त्री का त्याग करना और स्त्री के लिए परपुरुष का त्याग करना व्यवहार मैथुन विरमण व्रत है। साधु सर्वथा स्त्री का त्याग करते हैं और गृहस्थ विवाहिता स्त्री के अतिरिक्त शेष सभी स्त्रियों का त्याग करते हैं।

विषय की अभिलाषा न रखना, ममता, तृष्णा का त्याग करना, परभाव वर्णादि एवं पर द्रव्य-स्वामित्वादि का त्याग करना, पुद्गल स्कन्धों को अनंत जीवों की जूठण समझ कर उन्हें अभोग्य समझना एवं ज्ञानादि आत्मगुणों में रमण करना निश्चय मैथुन विरमण व्रत है। जिसने वाह्य विषयों का त्याग कर दिया है पर जिसकी अन्तरंग विषयाभिलाषा छूटी नहीं है उसे मैथुनजन्य कर्मों का बन्ध होता है।

(५) परिग्रह परिमाण व्रत--धन, धान्य, दास, दासी, चतुष्पद घर, जमीन, वस्त्र, आभरण आदि परिग्रह हैं। साधु सर्वथा परिग्रह का त्याग करते हैं और श्रावक इच्छानुसार मर्यादा रख कर शेष परिग्रह का त्याग करते हैं। यह व्यवहार परिग्रह परिमाण व्रत है। राग द्वेष अज्ञान रूप भावकर्म एवं ज्ञानावरणीयादि आठ द्रव्य-कर्मों को आत्मभाव से भिन्न समझ कर छोड़ना और वाह्य वस्तुओं में मूर्च्छा ममता का त्याग करना निश्चय परिग्रह परिमाण व्रत है।

(६) दिशा परिमाण व्रत--पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, अधः (नीची) और ऊर्ध्व (ऊँची) इन छः दिशा के क्षेत्रों की मर्यादा करना और आगे के क्षेत्रों में जाना आना आदि क्रियाओं का त्याग करना व्यवहार दिशा परिमाण व्रत है। चार गति को कर्म की परिणति

समझ कर इनमें उदासीन भाव रखना और सिद्धावस्था को उपादेय समझना निश्चय दिशा परिमाण व्रत है।

(७) उपभोग परिभोग परिमाण व्रत—एक बार और अनेक बार भोगी जाने वाली वस्तु क्रमशः उपभोग और परिभोग कही जाती है। भोजन आदि उपभोग हैं और वस्त्र आभरण आदि परिभोग हैं। उपभोग परिभोग की वस्तुओं की इच्छानुसार मर्यादा रखना और मर्यादा उपरान्त सभी वस्तुओं के उपभोग परिभोग का त्याग करना व्यवहार उपभोग परिभोग परिमाण व्रत है।

व्यवहार से कर्मों का कर्त्ता और भोक्ता जीव है परन्तु निश्चय में कर्त्ता और भोक्ता कर्म ही हैं। अनादि काल से यह आत्मा अज्ञान वश पर-भावों को भोग रहा है, उन्हें ग्रहण कर रहा है एवं उनकी रक्षा कर रहा है और इसी से उसकी कर्तृत्व शक्ति भी विकृत हो गई है इसी विकृति के कारण वह पर-भावों में आनन्द मानता हुआ आठ कर्मों का कर्त्ता भी बन गया है। वास्तव में वह अपने स्वभाव का ही कर्त्ता है किन्तु उपकरणों (जिनके द्वारा वह वास्तविक स्वक्रिया करता है) के आवृत होने के कारण वह स्वकार्य न करके विभावों को करने में लगा हुआ है। जीव का उपयोग गुण आत्मा से अभिन्न होते हुए भी कर्मवश वह कथञ्चित् भिन्न हो रहा है। आत्मा ही निश्चय से ज्ञानादि स्वगुणों का कर्त्ता और भोक्ता है इस प्रकार के आत्मस्वरूपानुगामी परिणाम को निश्चय उपभोग परिभोग परिमाण व्रत कहते हैं।

(८) अनर्थदण्ड विरमण व्रत—निष्प्रयोजन अपनी आत्मा को पाप आरम्भ में लगाना अनर्थदण्ड है। व्यर्थ ही दूसरों के लिए आरम्भ आदि करने की आज्ञा देना आदि व्यवहार अनर्थदण्ड है। इसका त्याग करना व्यवहार अनर्थदण्ड विरमण व्रत है। मिथ्यात्व अविरति, प्रमाद, कषाय और योग से जिन शुभाशुभ कर्मों का बंध

होता है उनमें अपनापन रखना निश्चय अनर्थ दण्ड है। इन्हें आत्मा से भिन्न समझ कर इनसे एवं इनके कारणों से आत्मा को बचाना निश्चय अनर्थ दण्ड विरमण व्रत है।

(९) सामायिक व्रत– मन वचन और काया को आरम्भ से हटाना और आरम्भ न हो इस प्रकार उनकी प्रवृत्ति करना व्यवहार सामायिक है। जीव के ज्ञान दर्शन चारित्र गुणों का विचार करना और आत्मगुणों की अपेक्षा सर्वजीवों को एक सा समझ कर उनमें समता भाव धारण करना निश्चय सामायिक व्रत है।

(१०) देशावकाशिक व्रत– मन वचन और काया के योगों को स्थिर करना और एक जगह बैठ कर धर्म ध्यान करना व्यवहार देशावकाशिक व्रत है। श्रुतज्ञान द्वारा षट् द्रव्य का स्वरूप जानकर पाँच द्रव्यों का त्याग करना और ज्ञान स्वरूप जीव द्रव्य का ध्यान करना, उसी में रमण करना निश्चय देशावकाशिक व्रत है।

(११) पौषध व्रत– चार पहर से लेकर आठ पहर तक सावद्य व्यापार का त्याग कर समता परिणाम को धारण करना और स्वाध्याय तथा ध्यान में प्रवृत्ति करना व्यवहार पौषध व्रत है। अपनी आत्मा को ज्ञान ध्यान द्वारा पुष्ट करना निश्चय पौषध व्रत है।

(१२) अतिथिसंविभाग व्रत–हमेशा और विशेष कर पौषध के पारणे के दिन पंच महाव्रतधारी साधु एवं स्वधर्मी बन्धु को यथाशक्ति भोजनादि देना व्यवहार अतिथिसंविभाग व्रत है। अपनी आत्मा एवं शिष्य को ज्ञान दान देना अर्थात् स्वयं पढ़ना, शिष्य को पढ़ाना तथा सिद्धान्त का श्रवण करना और कराना निश्चय अतिथिसंविभाग व्रत है। (देवचन्दजी कृत आगमसार)

नोट– प्रतीत होता है कि ग्रन्थकार का लक्ष्य निश्चय व्रतों का स्वरूप बताना ही रहा है। यही कारण है कि उन्होंने व्यवहार व्रत बहुत स्थूल रूप में दिये हैं। व्यवहार व्रतों का स्वरूप

इसके प्रथम भाग में बोल नं० १२८ क (तीन गुणव्रत), १८६(चार शिक्षा व्रत) और ३०० (पाँच अणुव्रत) में दिया जा चुका है। यहाँ आगमसार के अनुसार ही उनका संक्षिप्त स्वरूप दिया गया है।

७९५-- भिक्खु पडिमा बारह

साधु के अभिग्रह विशेष को भिक्खुपडिमा कहते हैं। वे बारह हैं-- एक मास से लेकर सात मास तक सात पडिमाएं हैं। आठवीं, नवीं और दसवीं पडिमाओं में प्रत्येक सात दिन रात्रि की होती हैं। ग्यारहवीं एक अहोरात्र की और बारहवीं केवल एक रात्रि की होती है।

पडिमाधारी मुनि अपने शारीरिक संस्कारों को तथा शरीर के ममत्व भाव को छोड़ देता है और दैन्य भाव न दिखाते हुए देव, मनुष्य और तिर्यञ्च सम्बन्धी उपसर्गों को समभाव पूर्वक सहन करता है। वह अज्ञात कुल से और थोड़े परिमाण से गोचरी लेता है। गृहस्थी के घर पर मनुष्य, पशु, श्रमण, ब्राह्मण, अतिथि, कृपण और भिखारी भिक्षार्थ खड़े हों तो उनकी उपस्थिति में उसके घर नहीं जाता क्योंकि उनके दान में अन्तराय पड़ती है। अतः उनके चले जाने पर जाता है।

(१) पहली पडिमाधारी साधु को एक दत्ति अन्न की और एक दत्ति पानी की लेना कल्पता है। साधु के पात्र में दाता द्वारा दिए जाने वाले अन्न और पानी की जब तक धारा अखण्ड बनी रहे उसका नाम दत्ति है। धारा खण्डित होने पर दत्ति की समाप्ति हो जाती है। जहाँ एक व्यक्ति के लिए भोजन बना हो वहीं से भिक्षा लेना चाहिए किन्तु जहाँ दो, तीन, चार, पाँच या अधिक व्यक्तियों के लिए भोजन बना हो वहाँ से भिक्षा न लेनी चाहिए। इसी प्रकार गर्भवती और छोटे बच्चे वाली स्त्री के लिए बना हुआ भोजन या जो स्त्री बच्चे को दूध पिला रही हो वह बच्चे को अलग रख कर

भिक्षा दे या आसन्नप्रसवा (जिसका गर्भ पूरे मास प्राप्त कर चुका हो) स्त्री अपने आसन से उठ कर भिक्षा दे तो वह भोजन मुनि को नहीं कल्पता। जिसके दोनों पैर देहली के भीतर हों या बाहर हों उससे भी भिक्षा न लेनी चाहिए किन्तु जिसका एक पैर देहली के भीतर हो और एक बाहर हो उसी से भिक्षा लेना कल्पता है।

पडिमाधारी मुनि के लिए गोचरी के लिए तीन समय बतलाये गये हैं। दिन का आदि भाग, मध्यभाग और चरमभाग। यदि कोई साधु दिन के प्रथम भाग में गोचरी जाय तो मध्यभाग और अन्तिमभाग में न जाय। इसी तरह यदि मध्यभाग में जाय तो आदि-भाग और अन्तिमभाग में न जाय और अन्तिमभाग में गोचरी जाय तो प्रथम भाग और मध्यभाग में न जाय अर्थात् उसे दिन के किसी एक भाग में गोचरी जाना चाहिए, शेष दो भागों में नहीं।

पडिमाधारी साधु को छः प्रकार की गोचरी करनी चाहिये। यथा- पेटा, अर्द्धपेटा, गोमूत्रिका, पतङ्गवीथिका, शङ्खावर्त्ता और गतप्रत्यागता। छः प्रकार की गोचरी का विस्तृत स्वरूप जैन सिद्धान्त बोल संग्रह भाग दूसरे के छठे बोल संग्रह नं० ४४६ में दिया गया है।

ठहरने के विषय में पडिमाधारी साधु के लिये यह नियम है कि जहाँ उसे कोई जानता हो वहाँ एक रात रह सकता है और जहाँ उसे कोई नहीं जानता हो वहाँ एक या दो रात रह सकता है किन्तु इस से अधिक नहीं। इससे अधिक जो साधु जितने दिन रहे उसे उतने ही दिनों के छेद या तप का प्रायश्चित्त आता है।

उसे चार प्रकार की भाषा बोलनी चाहिये-

(१) याचनी- आहार आदि के लिये याचना करने की।

(२) पृच्छनी- मार्ग आदि पूछने के लिए।

(३) अनुज्ञापनी-स्थान आदि के लिए आज्ञा लेने की।

(४) पुट्ठ वागरणी- प्रश्नों का उत्तर देने के लिये।

उपाश्रय के स्वामी की आज्ञा लेकर पडिमाधारी मुनि को तीन प्रकार के स्थानों में ठहरना चाहिये-

(१) अधःआरामगृह–ऐसा स्थान जिसके चारों ओर बाग हो।

(२) अधोविकटगृह– ऐसा स्थान जो चारों ओर से खुला हो सिर्फ ऊपर से ढका हुआ हो।

(३) अधः वृक्षमूलगृह– वृक्ष के नीचे बना हुआ स्थान या वृक्ष का मूल।

उपरोक्त उपाश्रय में ठहर कर मुनि को तीन प्रकार के संस्तारक आज्ञा लेकर ग्रहण करने चाहियें। (१) पृथ्वी शिला (२) काष्ठ शिला (३) उपाश्रय में पहले से बिछा हुआ संस्तारक।

शुद्ध उपाश्रय देख कर मुनि के वहाँ ठहर जाने पर यदि कोई स्त्री या पुरुष आजाय तो उन्हें देख कर मुनि को उपाश्रय से बाहर जाना या अन्दर आना उचित नहीं अर्थात् मुनि यदि उपाश्रय के बाहर हो तो बाहर ही रहना चाहिए और यदि उपाश्रय के अन्दर हो तो अन्दर ही रहना चाहिए। आये हुए उन स्त्री पुरुषों की ओर ध्यान न देते हुए अपने स्वाध्याय ध्यान आदि में लीन रहना चाहिए। ऐसे समय में यदि कोई पुरुष उस उपाश्रय को आग लगा दे तो अग्नि के कारण मुनि को उपाश्रय से बाहर नहीं निकलना चाहिए और यदि उपाश्रय के बाहर हो तो भीतर नहीं जाना चाहिए। उपाश्रय के चारों तरफ आग लगी हुई जान कर यदि कोई व्यक्ति मुनि की भुजा पकड़ कर बाहर खींचे तो मुनि को हठपूर्वक वहाँ ठहरना भी न चाहिए किन्तु उसका आलम्बन न लेते हुए ईर्या-समिति पूर्वक गमन करना चाहिए।

विहार करते हुए मार्ग में मुनि के पैर में यदि कंकर, पत्थर या कांटा आदि लग जाय तो भी उसे उन्हें न निकालना चाहिये। इसी प्रकार आँखों में कोई मच्छर आदि जीव, बीज या धूल पड़

जाय तो भी न निकालना चाहिए किन्तु किसी प्राणी की मृत्यु हो जाने का भय हो तो उसे निकाल देना चाहिए।

विहार करते हुए जहाँ सूर्य्य अस्त हो जाय वहीं पर ठहर जाना चाहिए। चाहे वहाँ जल हो (जल का किनारा हो या सूखा हुआ जलाशय हो), स्थल हो, दुर्गम स्थान हो, निम्न (नीचा) स्थान हो, पर्वत हो, विषम स्थान हो, खड्डा हो या गुफा हो सारी रात वहीं व्यतीत करनी चाहिए। सूर्यास्त के बाद एक कदम भी आगे बढ़ना उचित नहीं। रात्रि समाप्त होने पर सूर्योदय के पश्चात् अपनी इच्छानुसार किसी भी दिशा की ओर ईर्यासमिति पूर्वक विहार कर दे। सचित्त पृथ्वी पर निद्रा न लेनी चाहिए। सचित्त पृथ्वी का स्पर्श करने से हिंसा होगी जो कि कर्मबन्ध का कारण है। यदि रात्रि में लघुनीति या बड़ीनीति की शंका उत्पन्न हो जाय तो पहले से देखी हुई भूमि में जाकर उसकी निवृत्ति करे और वापिस अपने स्थान पर आकर कायोत्सर्ग आदि क्रिया करे।

किसी कारण से शरीर पर सचित्त रज लग जाय तो जब तक प्रस्वेद (पसीना) आदि से वह रज दूर न हो जाय तब तक मुनि को पानी आदि लाने के लिये गृहस्थी के घर न जाना चाहिए। इसी प्रकार प्रासुक जल से हाथ, पैर, दांत, आँख या मुख आदि नहीं धोने चाहिएं किन्तु यदि किसी अशुद्ध वस्तु से शरीर का कोई अङ्ग लिप्त होगया हो तो उसको प्रासुक पानी से शुद्ध कर सकता है अर्थात् मलादि से शरीर लिप्त हो गया हो और स्वाध्यायादि में बाधा पड़ती हो तो पानी से अशुचि को दूर कर देना चाहिए।

विहार करते समय मुनि के सामने यदि कोई मदोन्मत्त हाथी, घोड़ा, बैल, महिष (भैंसा), सूअर, कुत्ता या सिंह आदि आजायँ तो उनसे डर कर मुनि को एक कदम भी पीछे नहीं हटना चाहिए, किन्तु यदि कोई हरिण आदि भद्र जीव सामने आजाय और वह

मुनि से डरता हो तो मुनि को चार हाथ तक पीछे हट जाना चाहिये अर्थात् उन प्राणियों को किसी प्रकार भय उत्पन्न न हो इस प्रकार प्रवृत्ति करनी चाहिए।

पडिमाधारी मुनि शीतकाल में किसी ठण्डे स्थान पर बैठा हो तो शीत निवारण के लिए उसे धूप आदि स्थानों पर न जाना चाहिए। इसी प्रकार ग्रीष्म ऋतु में गरम स्थान से उठ कर ठण्डे स्थान में न जाना चाहिए किन्तु जिस समय जिस स्थान पर बैठा हो उसी स्थान पर अपनी मर्यादा पूर्वक बैठे रहना चाहिये।

उपरोक्त विधि से भिक्षु की पहली पडिमा यथासूत्र, यथाकल्प, यथामार्ग, यथातत्त्व, काया द्वारा स्पर्श कर, पालन कर, अतिचारों से शुद्ध कर, समाप्त कर, कीर्तन कर, आराधन कर भगवान् की आज्ञानुसार पालन की जाती है। इसका समय एक महीना है।

(२–७) दूसरी पडिमा का समय दो मास है। इसमें उन सब नियमों का पालन किया जाता है जो पहली पडिमा में बताये गये हैं। पहली पडिमा में एक दत्ति अन्न की और एक दत्ति पानी की ग्रहण की जाती है। दूसरी पडिमा में दो दत्ति अन्न की और दो दत्ति पानी की ग्रहण की जाती हैं। इसी प्रकार तीसरी, चौथी, पाँचवीं, छठी और सातवीं पडिमाओं में क्रमशः तीन चार पाँच छः और सात दत्ति अन्न की और उतनी ही पानी की ग्रहण की जाती हैं। प्रत्येक पडिमा का समय एक एक मास है, केवल दत्तियों की वृद्धि के कारण ही ये क्रमशः द्विमासिकी, त्रिमासिकी, चतुर्मासिकी, पञ्चमासिकी षण्मासिकी और सप्तमासिकी पडिमाएं कहलाती हैं। इन सब पडिमाओं में पहली पडिमा में बताये गये सब नियमों का पालन किया जाता है।

(८) आठवीं पडिमा का समय सात दिन रात है। इसमें अपानक उपवास किया जाता है अर्थात् एकान्तर चौविहार उपवास करना

चाहिए। ग्राम, नगर या राजधानी के बाहर जाकर उत्तानासन (आकाश की ओर मुंह करके लेटना), पार्श्वासन (एक पसवाड़े से लेटना) अथवा निषद्यासन (पैरों को बराबर रख कर बैठना) से ध्यान लगा कर समय व्यतीत करना चाहिए। ध्यान करते समय देवता मनुष्य अथवा तिर्यञ्च सम्बन्धी कोई उपसर्ग उत्पन्न हो तो ध्यान से विचलित नहीं होना चाहिए किन्तु अपने स्थान पर निश्चल रूप से बैठे रह कर ध्यान में दृढ़ बने रहना चाहिए। यदि मल मूत्र आदि की शंका उत्पन्न हो जाय तो रोकना न चाहिए किन्तु पहले से देखे हुए स्थान पर जाकर उनकी निवृत्ति कर लेनी चाहिये। आहार पानी की दत्तियों के अतिरिक्त इस पडिमा में पूर्वोक्त सब नियमों का पालन करना चाहिए। इस पडिमा का नाम प्रथम सप्त रात्रिदिवस की भिक्खु पडिमा है।

(९) नवीं का नाम द्वितीय सप्त रात्रिदिवस पडिमा है। इसका समय सात दिन रात है। इसमें चौविहार बेले बेले पारणा किया जाता है। ग्राम अथवा नगर आदि के बाहर जाकर दण्डासन, लगुडासन और उत्कटुकासन से ध्यान किया जाता है।

(१०) दसवीं का नाम तृतीय सप्त रात्रिदिवस पडिमा है। इसकी अवधि सात दिन रात है। इसमें चौविहार तेले तेले पारणा किया जाता है और ग्राम अथवा नगर के बाहर जाकर गोदोहनासन, वीरासन और आम्रकुब्जासन से ध्यान किया जाता है। आठवीं, नवीं और दसवीं पडिमाओं में आहार पानी की दत्तियों के अतिरिक्त शेष सभी पूर्वोक्त नियमों का पालन किया जाता है। इन तीनों पडिमाओं का समय इक्कीस दिन रात है।

(११) ग्यारहवीं पडिमा का नाम अहोरात्रिकी है। इसका समय एक दिन रात है अर्थात् यह पडिमा आठ पहर की होती है। चौविहार बेला करके इस पडिमा का आराधन किया जाता है। नगर आदि

के बाहर जाकर दोनों पैरों को कुछ संकुचित कर हाथों को घुटनों तक लम्बा करके कायोत्सर्ग किया जाता है। पूर्वोक्त पडिमाओं के शेष सभी नियमों का पालन किया जाता है।

(१२) बारहवीं पडिमा का नाम एक रात्रिकी है। इसका समय केवल एक रात है। इसका आराधन बेले को बढ़ा कर चौविहार तेला करके किया जाता है। इसके आराधक को ग्राम आदि के बाहर जाकर शरीर को थोड़ा सा आगे की ओर झुका कर एक पुद्गल पर दृष्टि रखते हुए अनिमेष नेत्रों से निश्चलता पूर्वक सब इन्द्रियों को गुप्त रख कर दोनों पैरों को संकुचित कर हाथों को घुटनों तक लम्बा करके कायोत्सर्ग करना चाहिये। कायोत्सर्ग करते समय देव, मनुष्य या तिर्यञ्च सम्बन्धी कोई उपसर्ग उत्पन्न हो तो दृढ़ होकर समभावपूर्वक सहन करना चाहिए। यदि उसको मल मूत्र की शंका उत्पन्न हो जाय तो उसे रोकना नहीं चाहिये, किन्तु पहले से देखे हुए स्थान में उनकी निवृत्ति कर वापिस अपने स्थान पर आकर विधिपूर्वक कायोत्सर्ग में लग जाना चाहिए।

इस पडिमा का सम्यक् पालन न करने से तीन स्थान अहित, अशुभ, अक्षमा, अमोक्ष तथा आगामी काल में दुःख के लिये होते हैं- (१) देवादि द्वारा किये गये अनुकूल तथा प्रतिकूल उपसर्गादि को समभाव पूर्वक सहन न करने से उन्माद की प्राप्ति हो जाती है। (२) लम्बे समय तक रहने वाले रोगादिक की प्राप्ति हो जाती है। (३) अथवा वह केवलिप्रतिपादित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है अर्थात् अपनी प्रतिज्ञा से विचलित हो जाने से वह श्रुत चारित्र रूप धर्म से भी पतित हो जाता है।

इस पडिमा का सम्यग्रूप से पालन करने से तीन अमूल्य पदार्थों की प्राप्ति होती है अर्थात् अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान इन तीनों में से एक गुण को अवश्य प्राप्त कर लेता है,

क्योंकि इस पडिमा में महान् कर्म समूह का क्षय होता है। यह पडिमा हित के लिये, शुभ कर्म के लिए, शक्ति के लिये, मोक्ष के लिये या ज्ञानादि की प्राप्ति के लिए होती है।

इस पडिमा का यथासूत्र, यथाकल्प, यथातत्त्व सम्यक् प्रकार काया से स्पर्श कर, पालन कर, अतिचारों से शुद्ध कर, पूर्ण कर, कीर्तन कर, आराधन कर भगवान् की आज्ञानुसार पालन किया जाता है।

(दशाश्रुतस्कन्ध सातवीं दशा) (भगवती शतक २ उद्देशा १) (समवायाग १२)

७९६– सम्भोग बारह

समान समाचारी वाले साधुओं के सम्मिलित आहार आदि व्यवहार को संभोग कहते हैं। सम्भोग के मुख्य रूप से छः भेद हैं– (१) ओघ अर्थात् उपधि आदि (२) अभिग्रह (३) दान और ग्रहण (४) अनुपालना (५) उपपात (६) संवास। उपधि आदि सामान्य विषयों में होने वाले संभोग को ओघ सम्भोग कहते हैं। इसके बारह भेद हैं– (१) उपधि विषयक (२) श्रुत विषयक (३) भक्त-पान विषयक (४) अञ्जलिप्रग्रह विषयक (५) दापना विषयक (६) निमन्त्रण विषयक (७) अभ्युत्थान विषयक (८) कृतिकर्म अर्थात् वन्दना विषयक (९) वैयावच्च विषयक (१०) समवसरण विषयक (११) सन्निषद्या विषयक (१२) कथाप्रबन्ध विषयक।

(१) उपधि विषयक– वस्त्र पात्र आदि उपधि को परस्पर लेने के लिए बने हुए नियम को उपधि विषयक संभोग कहते हैं। इसके छः भेद हैं–

(१) उद्गम शुद्ध (२) उत्पादना शुद्ध (३) एषणा शुद्ध (४) परि-कर्मणा संभोग (५) परिहरणा संभोग (६) संयोगविषयक संभोग। आधाकर्म आदि उद्गम के सोलह दोषों से रहित वस्त्र पात्र आदि उपधि को प्राप्त करना उद्गम शुद्ध उपधि संभोग है। आधाकर्मादि किसी दोष के लगने पर उस दोष के लिए विधान किया गया

प्रायश्चित्त आता है। अशुद्ध उपधि लेने वाला सांभोगिक साधु किसी दोष के लगने पर यदि प्रायश्चित्त अंगीकार नहीं करता तो विसंभोगी हो जाता है। प्रायश्चित्त लेने पर भी चौथी वार दोष लगने पर साधु विसंभोगी कर दिया जाता है अर्थात् तीसरी बार तक तो प्रायश्चित्त द्वारा शुद्ध करके उसे अपने साथ रक्खा जा सकता है किन्तु चौथी वार दोष लगने पर प्रायश्चित्त लेकर भी वह शुद्ध नहीं हो सकता, इस लिए विसंभोगी कर दिया जाता है। इसी प्रकार विना किसी कारण के अन्यसंभोगी के साथ उपधि आदि लेने देने का व्यवहार करने वाला प्रायश्चित्त का भागी होता है। प्रायश्चित्त न लेने पर वह पहली बार ही विसंभोगी हो जाता है। प्रायश्चित्त ले लेने पर तीसरी बार तक शुद्ध हो सकता है, इससे आगे नहीं। चौथी वार प्रायश्चित्त लेने पर भी वह विसम्भोगी कर दिया जाता है। तीन वार तक उसे मासलघु (दो पोरिसी) का प्रायश्चित्त आता है। किसी कारण के उपस्थित होने पर अन्यसंभोगी के साथ उपधि आदि का व्यवहार करता हुआ शुद्ध ही है। इसी प्रकार पसत्था, गृहस्थ और स्वच्छन्द विचरने वालों के साथ भी जानना चाहिए। स्वच्छन्द विचरने वाले के साथ व्यवहार करने से मासगुरु (एकासन) का प्रायश्चित्त आता है। जो साधु पसत्थे आदि से आहार या उपधि लेकर संघाड़े को दे देता है उसे भी मासलघु प्रायश्चित्त आता है। इसी प्रकार साध्वियों के लिए भी जानना चाहिये।

उद्गम की तरह १६ उत्पादना के दोष तथा १० एषणा के दोषों से रहित अतएव शुद्ध उपधि को संभोगी के साथ रह कर उत्पन्न करने वाला उत्पादनाशुद्ध तथा एपणाशुद्ध कहा जाता है। दोष लगने पर प्रायश्चित्त आदि की व्यवस्था पहले सरीखी जाननी चाहिये।

वस्त्र आदि उपधि को उचित परिमाण वाली करके संयती के काम में आने योग्य बनाना परिकर्मणा है। इसमें चार भांगे होते

हैं- (१) कारण के उपस्थित होने पर विधि पूर्वक की गई। (२) कारण के उपस्थित होने पर अविधि पूर्वक की गई। (३) विना कारण के विधि पूर्वक की गई। (४) विना कारण अविधि से की गई। इन चार भांगों में पहला शुद्ध है। शेष भंग दोष वाले हैं। इन तीन अशुद्ध भंगों का सेवन करने वाला साधु प्रायश्चित्त लेकर तीसरी वार तक शुद्ध हो सकता है, इस से आगे नहीं।

वस्त्र पात्रादि उपधि को काम में लाना परिहरणा है। इसमें भी पहले सरीखे चार भंग हैं। उन में पहला शुद्ध है शेष के लिए प्रायश्चित्त आदि की व्यवस्था पहले सरीखी है।

उद्गम शुद्ध, उत्पादना शुद्ध आदि संभोगों को मिलाने से संयोग होता है। इसमें २६ भांगे हैं। दो के संयोग से दस भांगे होते हैं। तीन के संयोग से दस। चार के संयोग से पाँच। पाँचों के संयोग से एक। इन छब्बीस भंगों में केवल साम्भोगिक वाले शुद्ध हैं। असांभोगिक वाले अशुद्ध हैं। इनका विस्तार निशीथ सूत्र में है।

(२) श्रुतसंभोग-पास में आए हुए सांभोगिक अथवा अन्य सांभोगिक साधु को विधिपूर्वक शास्त्र पढ़ाना अथवा दूसरे के पास जाकर पढ़ना श्रुतसंभोग है। बिना विधि अथवा पसत्थे आदि को वाचनादि देने वाला तीन वार तक प्रायश्चित्त द्वारा शुद्ध हो सकता है। प्रायश्चित्त न लेने पर अथवा चौथी वार दोष लगने पर अशुद्ध मान लिया जाता है।

(३) भक्तपान- शुद्ध आहार पानी का सेवन करना अथवा देना भक्तपान संभोग है।

(४) अञ्जलिप्रग्रह- सम्भोगी अथवा अन्यसम्भोगी साधुओं के साथ वन्दना, आलोचना आदि करना अञ्जलिप्रग्रह है। पसत्थे आदि के साथ वन्दनादि व्यवहार करने वाला पहले की तरह तीन वार तक प्रायश्चित्त लेने पर शुद्ध होता है। चौथी वार या विना

प्रायश्चित्त लिए अशुद्ध होता है।

(५) दान- साम्भोगिक साधु द्वारा साम्भोगिक को अथवा कारण विशेष से अन्य साम्भोगिक को शिष्यादि देना दानसंभोग है। बिना कारण विसंभोगी को, पसत्थे आदि को देता हुआ दोष का भागी है। वह ऊपर लिखे अनुसार शुद्ध अथवा अशुद्ध होता है।

(६) निमन्त्रण- शय्या, उपधि, आहार, शिष्यप्रदान अथवा स्वाध्याय आदि के लिए यदि साम्भोगिक साधु साम्भोगिक को निमन्त्रण देता है तो शुद्ध है, शेष अवस्थाओं में पहले की तरह जानना चाहिए।

(७) अभ्युत्थान- किसी बड़े साधु को आते देख कर आसन से उठना अभ्युत्थान है। सम्भोगी के लिए अभ्युत्थान शुद्ध है, बाकी के लिए पहले की तरह जानना चाहिए। इसी प्रकार किसी पाहुने या ग्लान आदि की सेवा करने में, अभ्यास तथा धर्म से गिरते हुए को फिर से स्थिर करने में और मेल जोल रखने में संभोगी तथा असंभोगी समझना चाहिए अर्थात् इन्हें आगम के अनुसार करने वाला शुद्ध है और सम्भोगी है, आगम के विपरीत करने वाला अशुद्ध और विसम्भोगी है।

(८) कृतिकर्म- वन्दना आदि विधि से करने वाला शुद्ध है दूसरा अशुद्ध है। वात आदि रोग के कारण शरीर कड़ा होजाने से जो न उठ सकता है, न हाथ आदि को हिला सकता है वह केवल पाठ का उच्चारण करता है। जो आवर्त्त (प्रदक्षिणा), सिर झुकाना आदि कर सकता हो उसे विधिपूर्वक ही वन्दन करना चाहिए। विधिपूर्वक वन्दन करने वाला शुद्ध तथा दूसरा अशुद्ध होता है।

(९) वैयावच्च- आहार, उपधि आदि देना, मल मूत्रादि का परिठवणा, वृद्ध आदि साधुओं की सेवा करना वैयावृत्य संभोग है।

(१०) समवसरण- व्याख्यान आदि के समय, वर्षा या

स्थविर कल्प आदि में इकट्ठे होकर रहना समवसरण संभोग है।

(११) सन्निषद्या-आसन आदि का देना। साम्भोगिक साधु यदि एक आसन पर बैठ कर शास्त्रचर्चा करें तो वह शुद्ध है। ढीले, पसत्थे और साध्वी आदि के साथ एक आसन पर बैठना अशुद्ध है।

(१२) कथाप्रबन्ध-पाँच प्रकार की कथा के लिए एक जगह बैठ कर व्यवहार करना कथाप्रबन्ध संभोग है। कथा के पाँच भेद निम्न लिखित हैं-(१) वाद-पाँच अथवा तीन अवयव वाले अनुमान वाक्य द्वारा छल और जाति आदि को छोड़ कर किसी मत का समर्थन करना वाद है। वाद कथा में सत्य बात को जानने का प्रयत्न ही मुख्य रहता है, दूसरे को हराने का ध्येय नहीं रहता।(२) जल्पकथा- दूसरे को हराने के लिए जिस कथा में छल, जाति और निग्रहस्थान का प्रयोग हो उसे जल्प कहते हैं। (३) वितण्डा-कथा- स्वयं किसी पक्ष का अवलम्बन किए बिना जिस कथा में वादी या प्रतिवादी केवल दूसरे का दोष बता कर खण्डन करता है उसे वितण्डा कथा कहते हैं। (४) प्रकीर्ण कथा- साधारण बातों की चर्चा करना प्रकीर्ण कथा है। यह उत्सर्ग कथा अथवा द्रव्यास्तिक-नय कथा भी कही जाती है (५) निश्चय कथा-अपवाद बातों की चर्चा करना निश्चय कथा है। इसे अपवाद कथा अथवा पर्यायास्तिक नय कथा भी कहा जाता है। इन में पहली तीन कथाएं साध्वियों को छोड़ कर बाकी सब के साथ कर सकता है। श्रमणियों के साथ करने पर प्रायश्चित्त का भागी होता है। तीसरी बार तक आलोचना से शुद्ध हो सकता है, चौथी बार करने पर विसंभोगी कर दिया जाता है।

इस विषय में विस्तारपूर्वक निशीथचूर्णी और भाष्य के पाँचवें उद्देशे से जानना चाहिए। (व्यवहार सूत्र उद्देशा ५)

(समवायांग १२ वां समवाय) (निशीथ चूर्णी उद्देशा ५)

७६७- ग्लानप्रतिचारी बारह

बीमारी या तपस्या आदि के कारण अशक्त साधु को ग्लान कहते हैं। ग्लान साधु की सेवा के लिए नियत साधु को ग्लान प्रतिचारी कहते है। ढीला, पसत्था, संयम में दोष लगाने वाला या अगीतार्थ साधु सेवा के लिए ठीक नहीं है। जो साधु गीतार्थ आदि गुणों वाला तथा संयम में दृढ़ है, वैयावच्च के लिए हर तरह से उद्यत है वही इस के लिए योग्य है। ग्लानप्रतिचारी के बारह भेद हैं-

(१) उद्वर्त्तप्रतिचारी-ग्लान साधु का पसवाड़ा आदि बदलने वाले। सामान्य रूप से अनशन आदि अङ्गीकार किए हुए साधु को उद्वर्तन (पसवाड़ा लेना) आदि स्वयं ही करना चाहिए। जो अशक्ति के कारण शरीर को न हिला डुला सके उसका चार साधु पसवाड़ा आदि बदल देते हैं। सीधा या उल्टा उसकी इच्छानुसार लेटा देते हैं। उठाना, बैठाना, बाहर ले जाना, भीतर लाना, वस्त्र पात्रादि उपधि की पडिलेहणा करना आदि सभी प्रकार से उसकी सेवा करते हैं।

(२) द्वारप्रतिचारी- जिस कमरे में ग्लान साधु लेट रहा हो उसके द्वार पर बैठने वाले साधु द्वारप्रतिचारी कहे जाते हैं। ये साधु ग्लान के पास से भीड़ हटाने के लिए बैठे रहते हैं क्योंकि भीड़ से ग्लान को असमाधि उत्पन्न होती है।

(३) संस्तार प्रतिचारी-ग्लान या तपस्वी के लिए साताकारी शय्या बिछाने वाले साधु संस्तार प्रतिचारी कहलाते हैं।

(४) कथक प्रतिचारी-उपदेश देने अथवा धर्म कथा करने की विशेष लब्धि वाले साधु जो ग्लान को धर्म कथा सुनाते हैं तथा उसे संयम में दृढ करते हैं।

(५) वादि प्रतिचारी- वाद शक्ति वाले साधु जो आवश्यकता पड़ने पर प्रतिवादी को जीत लेवें तथा ग्लान को धर्म से विच-

लित न होने दें।

(६) अग्रद्वार प्रतिचारी– प्रत्यनीक आदि को अन्दर आने से रोकने के लिए उपाश्रय के मुख्य द्वार पर बैठे रहने वाले साधु।

(७) भक्त प्रतिचारी–जो साधु आवश्यकता पड़ने पर आहार लाकर देते हैं वे भक्त प्रतिचारी कहलाते हैं।

(८) पान प्रतिचारी– आवश्यकता पड़ने पर पानी की व्यवस्था करने वाले साधु पान प्रतिचारी कहलाते हैं।

(९) पुरीष प्रतिचारी– जो ग्लान को शौच बैठाते हैं तथा पुरीष (बड़ी नीति) वगैरह को परठाते हैं।

(१०) प्रस्रवण प्रतिचारी–प्रस्रवण (लघु नीति) परठाने वाले।

(११) वहिःकथक– बाहर लोगों को धर्मकथा सुनाने वाले, जिससे तपस्या और संयम के प्रति लोगों की श्रद्धा बढ़े।

(१२) दिशासमर्थ– ऐसे बलवान् साधु जो छोटे मोटे आकस्मिक उपद्रवों को दूर कर सकें।

इन में प्रत्येक कार्य के लिए चार चार साधु होते हैं। इस लिए ग्लान प्रतिचारियों की उत्कृष्ट संख्या ४८ है।

(प्रवचनसारोद्धार ७१वां द्वार गाथा ६२९) (नवपद प्रकरण संलेखना द्वार गाथा १२९)

७९८– बालमरण के बारह भेद

असमाधि पूर्वक जो मरण होता है वह बालमरण कहलाता है। इसके बारह भेद हैं–

(१) वलन्मरण– तीव्र भूख और प्यास से छटपटाते हुए प्राणी का मरण वलन्मरण कहलाता है अथवा संयम से भ्रष्ट प्राणी का मरण वलन्मरण कहलाता है।

(२) वसट्टमरण– इन्द्रियों के वशीभूत दुखी प्राणी का मरण वसट्टमरण कहलाता है। जैसे दीप की शिखा पर गिर कर प्राण देने वाले पतंगिये का मरण।

(३) अन्तोसल्ल मरण (अन्तःशल्य मरण)- इसके द्रव्य और भाव दो भेद हैं। शरीर में बाण या तोमर (एक प्रकार का शस्त्र) आदि के घुस जाने से और उनके वापिस न निकलने से जो मरण होता है वह द्रव्य अन्तः शल्य मरण है। अतिचारों की शुद्धि किये बिना ही जो मरण होता है वह भाव अन्तः शल्य मरण है क्योंकि अतिचार आन्तरिक शल्य हैं।

(४) तद्भव मरण- मनुष्य आदि के शरीर को छोड़ कर फिर मनुष्य आदि के ही शरीर को प्राप्त करना तद्भव मरण है। यह मरण मनुष्य और तिर्यञ्चों में ही हो सकता है किन्तु देव और नारकी जीवों में नहीं क्योंकि मनुष्य मर कर मनुष्य और तिर्यञ्च मर कर तिर्यञ्च हो सकता है किन्तु देव मर कर फिर देव और नैरयिक मर कर फिर नैरयिक नहीं हो सकता।

(५) गिरिपडण (गिरिपतन) मरण- पर्वत आदि से गिर कर मरना गिरिपडण मरण है।

(६) तरुपडण (तरुपतन)- वृक्ष आदि से गिर कर मरना।

(७) जलप्पवेस (जलप्रवेश)- जल में डूब कर मरना।

(८) जलणप्पवेस (ज्वलनप्रवेश)- अग्नि में गिर कर मरना।

(९) विसभक्खण (विष भक्षण) मरण- जहर आदि प्राण-घातक पदार्थ खाकर मरना विष भक्षण मरण कहलाता है।

(१०) सत्थोवाडणे (शस्त्रावपाटन)-छुरी, तलवार आदि शस्त्र द्वारा होने वाला मरण शस्त्रावपाटन मरण है।

(११) विहाणस (वैहानस) मरण- गले में फांसी लगा कर वृक्ष आदि की डाल पर लटकने से होने वाला मरण विहाणस मरण है।

(१२) गिद्धपट्ठे (गृध्रस्पृष्ट)- हाथी, ऊँट या गदहे आदि के भव में गीध पक्षियों द्वारा या मांस लोलुप शृगाल आदि जंगली जान-वरों द्वारा शरीर के विदारण (चीरना) से होने वाला मरण गृध्र-

स्पृष्ट या गृद्धस्पृष्ट मरण कहलाता है, अथवा पीठ आदि शरीर के अवयवों का मांस गीध आदि पक्षियों द्वारा खाया जाने पर होने वाला मरण गृध्रपृष्ठ मरण कहलाता है। उपरोक्त दोनों व्याख्याएं क्रमशः तिर्यञ्च और मनुष्य के मरण की अपेक्षा से हैं।

उपरोक्त बारह प्रकार के बाल मरणों में से किसी भी मरण से मरने वाले प्राणी का संसार बढ़ता है और वह बहुत काल तक संसार में परिभ्रमण करता है। (भगवती शतक २ उद्देशा १)

७९९- चन्द्र और सूर्यों की संख्या

चन्द्र और सूर्य कितने हैं, इस विषय में अन्य तीर्थियों की बारह मान्यताएं हैं, वे नीचे लिखे अनुसार हैं-

(१) सारे लोक में एक चन्द्र तथा एक ही सूर्य है।

(२) तीन चन्द्र तथा तीन सूर्य।

(३) आठ चन्द्र तथा आठ सूर्य।

(४) सात चन्द्र तथा सात सूर्य।

(५) दस चन्द्र तथा दस सूर्य।

(६) बारह चन्द्र तथा बारह सूर्य।

(७) बयालीस चन्द्र तथा बयालीस सूर्य।

(८) बहत्तर चन्द्र तथा बहत्तर सूर्य।

(९) बयालीस सौ चन्द्र तथा बयालीस सौ सूर्य।

(१०) बहत्तर सौ चन्द्र तथा बहत्तर सौ सूर्य।

(११) बयालीस हजार चन्द्र तथा बयालीस हजार सूर्य।

(१२) बहत्तर हजार चन्द्र तथा बहत्तर हजार सूर्य।

जैन मान्यता के अनुसार एक लाख योजन लम्बे तथा एक लाख योजन चौड़े जम्बूद्वीप में दो चन्द्र तथा दो सूर्य प्रकाश करते हैं। इनके साथ १७६ ग्रह और ५६ नक्षत्र हैं। एक लाख तेतीस

हजार नौ सौ पचास कोड़ाकोड़ी तारे हैं।

जम्बूद्वीप को घेरे हुए दो लाख योजन विस्तार वाला लवण समुद्र है। यह वर्तुल चूड़ी के आकार तथा सम चक्रवाल संस्थान वाला है। इसकी परिधि १५८११३६ योजन है। इसमें ४ चन्द्र, ४ सूर्य, ३५२ ग्रह, ११२ नक्षत्र और २६७६०० कोड़ाकोड़ी तारे हैं।

लवण समुद्र के चारों तरफ वर्तुल आकार तथा सम चक्रवाल संस्थान वाला धातकीखंड है। इसकी चौड़ाई चार लाख योजन है। परिधि ४११०६६० योजन से कुछ अधिक है। इसमें १२ चन्द्र, १२ सूर्य, १०५६ ग्रह, ३३७ नक्षत्र और ८०३७०० कोड़ा कोड़ी तारे हैं।

धातकीखण्ड को घेरे हुए कालोदधि समुद्र है। यह भी वर्तुल आकार तथा सम चक्रवाल संस्थान वाला है। इसकी चौड़ाई आठ लाख योजन तथा परिधि ६१७०६०५ योजन से कुछ अधिक है। इसमें ४२ चन्द्र, ४२ सूर्य, ३६९६ ग्रह, ११७६ नक्षत्र और २८१२९५० कोड़ाकोड़ी तारे हैं।

कालोदधि समुद्र के चारों तरफ पुष्करवर द्वीप है। यह भी वर्तुल तथा सम चक्रवाल संस्थान वाला है। इसकी चौड़ाई १६ लाख योजन तथा परिधि १९२८९८९३ योजन से कुछ अधिक है। इसमें १४४ चन्द्र, १४४ सूर्य, १२६७२ ग्रह, ४०३२ नक्षत्र और ९६४४४०० कोड़ाकोड़ी तारे हैं। इनमें से ७२ चन्द्र, ७२ सूर्य, ६३३६ ग्रह, २०१६ नक्षत्र और ४८२२२०० कोड़ाकोड़ी तारे चल हैं और इतने ही स्थिर हैं। पुष्करवर द्वीप के बीचोबीच मानुषोत्तर पर्वत है। इस द्वीप के दो भाग हो जाते हैं-आभ्यन्तर पुष्करवर द्वीप और बाह्य पुष्करवर द्वीप। दोनों की चौड़ाई आठ आठ लाख योजन की है। प्रत्येक में ७२ सूर्य तथा ७२ चन्द्र आदि हैं। आभ्यन्तर पुष्करवर द्वीप के चन्द्र आदि चल तथा बाह्य

के स्थिर हैं। जम्बूद्वीप, धातकीखण्ड और आधे पुष्करवर द्वीप (आभ्यन्तर) को मिला कर अढ़ाई द्वीप कहा जाता है। इसी को मनुष्य क्षेत्र कहते हैं। अढ़ाई द्वीप के अन्दर वाले सूर्यादि चल तथा बाहर के स्थिर हैं।

मनुष्य क्षेत्र ४५ लाख योजन लम्बा तथा इतना ही चौड़ा है। इसकी परिधि १४२३०२४६ योजन से कुछ अधिक है। सारे अढ़ाई द्वीप में १३२ चन्द्र, १३२ सूर्य, ११६१६ ग्रह, ३६६६ नक्षत्र और ८८४०७०० कोड़ाकोड़ी तारे हैं। १३२ चन्द्रों की दो पंक्तियाँ हैं। ६६ चन्द्रों की पंक्ति नैऋत्य कोण में है और ६६ चन्द्रों की पंक्ति ईशान कोण में। १४२ सूर्यों में भी दो पंक्तियाँ हैं- ६६ अग्नि कोण में और ६६ वायव्य कोण में। सभी ज्योतिषी मेरु के चारों तरफ घूमते रहते हैं। एक चन्द्र के परिवार में ८८ ग्रह, २८ नक्षत्र और ६६९७५ कोड़ाकोड़ी तारे हैं।

पुष्करवर द्वीप को घेरे हुए पुष्करोदधि समुद्र है। इसकी चौड़ाई ३२ लाख योजन तथा परिधि ३९५२८४७० योजन से कुछ अधिक है। इसमें ४९२ चन्द्र, ४९२ सूर्य, ४३२९६ ग्रह १३७७६ नक्षत्र और ३२९५१७०० कोड़ाकोड़ी तारे है। इसी प्रकार स्वयम्भूरमण तक असंख्यात द्वीप तथा समुद्रों में असंख्यात ज्योतिषी हैं। वे सभी स्थिर हैं। द्वीप समुद्रों का विशेष विस्तार जीवाभिगम सूत्र से जानना चाहिए। (सूर्यप्रज्ञप्ति १९ वां प्राभृत)

८००- पूर्णिमा बारह

जिस रात में चन्द्रमा अपनी पूरी सोलह कलाओं से उदित होता है उसे पूर्णिमा कहते हैं। एक वर्ष में बारह पूर्णिमाएं होती हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं-

(१) श्राविष्ठा- श्रावण मास की पूर्णिमा।

(२) पौष्ठवती- भाद्रपद मास की पूर्णिमा।

(३) आश्विनी– आसोज मास की पूर्णिमा।
(४) कार्तिकी– कार्तिक मास की पूर्णिमा।
(५) मृगशिरा– मिगसर मास की पूर्णिमा।
(६) पौषी– पौष मास की पूर्णिमा।
(७) माघी– माघ मास की पूर्णिमा।
(८) फाल्गुनी– फाल्गुन मास की पूर्णिमा।
(९) चैत्री– चैत्र मास की पूर्णिमा।
(१०) वैशाखी– वैशाख मास की पूर्णिमा।
(११) ज्येष्ठामूली– ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा।
(१२) आषाढी– आषाढ मास की पूर्णिमा।

श्रावणी पूर्णिमा में चन्द्र के साथ तीन नक्षत्रों का योग होता है– अभिजित्, श्रवण और धनिष्ठा। भाद्रपद की पूर्णिमा में शतभिषक्, पूर्वभाद्रपद और उत्तरभाद्रपद। आश्विनी में रेवती और अश्विनी। कार्तिकी में भरणी और कृत्तिका। मृगशिरा में रोहिणी और मृगशिर। पौषी में आर्द्रा, पुनर्वसु और पुष्य। माघी में अश्लेषा और मघा। फाल्गुनी में पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनी। चैत्री में हस्त और चित्रा। वैशाखी में स्वाति और विशाखा। ज्येष्ठामूली में अनुराधा, ज्येष्ठा और मूला। आषाढी में पूर्वाषाढा और उत्तराषाढा।

(सूर्य प्रज्ञप्ति प्राभृत १०, प्रतिप्राभृत ६)

८०१– अमावास्या बारह

जिस रात्रि में सूर्य और चन्द्र एक ही साथ रहते हैं, अर्थात् रात्रि में चन्द्र का बिल्कुल उदय नहीं होता उसे अमावास्या कहते हैं। इसके भी बारह भेद पूर्णिमा की तरह जानने चाहिएं।

(सूर्य प्रज्ञप्ति प्राभृत १०, प्रतिप्राभृत ६)

८०२– मास बारह

लगभग तीस दिन की कालमर्यादा को मास कहते हैं। एक

वर्ष में १२ मास होते हैं। उनके नाम दो प्रकार के हैं- लौकिक और लोकोत्तर। वे इस प्रकार हैं-

(१) श्रावण- अभिनन्दन। (२) भाद्रपद- सुप्रतिष्ठित। (३) आश्विन- विजय। (४) कार्तिक- प्रीतिवर्द्धन। (५) मिगसर- श्रेयःश्रेय। (६) पौष- श्वेत। (७) माघ-शैशिरेय। (८) फाल्गुन- हिमवान्। (९) चैत्र- वसन्त। (१०) वैशाख- कुसुमसम्भव। (११) ज्येष्ठ- निदाघ। (१२) आषाढ- वनविरोध।

(सूर्य प्रज्ञप्ति प्राभृत १०, प्रतिप्राभृत १९)

८०३- बारह महीनों में पोरिसी का परिमाण

दिन या रात्रि के चौथे पहर को पोरिसी कहते हैं। शीतकाल में दिन छोटे होते हैं और रातें बड़ी। जब रातें लगभग पौने चौदह घन्टे की हो जाती हैं तो दिन सवा दस घन्टे का रह जाता है। उष्ण-काल में दिन बड़े होते हैं और रातें छोटी। जब दिन लगभग पौने चौदह घंटे के होते हैं तो रात सवा दस घंटे की रह जाती है। तदनुसार शीतकाल में रात्रि की पोरिसी, बड़ी होती है और दिन की छोटी। उष्णकाल में दिन की पोरिसी बड़ी होती है और रात की छोटी।

पोरिसी का परिमाण घुटने की छाया से जाना जाता है। पौष की पूर्णिमा अथवा सब से छोटे दिन को जब घुटने की छाया चार पैर हो तब पोरिसी समझनी चाहिए। इस के बाद प्रति सप्ताह एक अंगुल छाया घटती जाती है। बारह अंगुल का एक पैर होता है। इस प्रकार आषाढ़ी पूर्णिमा अर्थात् सब से बड़े दिन को छाया दो पैर रह जाती है। इस के बाद प्रतिसप्ताह एक अंगुल छाया बढ़ती जाती है। इस प्रकार पौषी पूर्णिमा के दिन छाया दो पैर रह जाती है। जब सूर्य उत्तरायण होता है अर्थात् मकर संक्रान्ति के दिन से छाया बढ़नी शुरू होती है और सूर्य के दक्षिणायन होने पर अर्थात् कर्क संक्रान्ति से छाया घटनी शुरू होती है। बारह

महीनों के प्रत्येक सप्ताह में पोरिसी की छाया जानने के लिए तालिका नीचे दी जाती है–

	(१) श्रावण मास		(२) भाद्रपद मास	
सप्ताह	पैर	अंगुल	पैर	अंगुल
प्र०	२	१	२	५
द्वि०	२	२	२	६
तृ०	२	३	२	७
च०	२	४	२	८

	(३) आश्विन मास		(४) कार्तिक मास	
सप्ताह	पैर	अंगुल	पैर	अंगुल
प्र०	२	९	३	१
द्वि०	२	१०	३	२
तृ०	२	११	३	३
च०	३	०	३	४

	(५) मार्गशीर्ष मास		(६) पौष मास	
सप्ताह	पैर	अंगुल	पैर	अंगुल
प्र०	३	५	३	९
द्वि०	३	६	३	१०
तृ०	३	७	३	११
च०	३	८	४	०

	(७) माघ मास		(८) फाल्गुन मास	
सप्ताह	पैर	अंगुल	पैर	अंगुल
प्र०	३	११	३	७
द्वि०	३	१०	३	६
तृ०	३	९	३	५
च०	३	८	३	४

(९) चैत्र मास			(१०) वैशाख मास	
सप्ताह	पैर	अंगुल	पैर	अंगुल
प्र०	३	३	२	११
द्वि०	३	२	२	१०
तृ०	३	१	२	९
च०	३	०	२	८

(१०) ज्येष्ठ मास			(१२) आषाढ मास	
सप्ताह	पैर	अंगुल	पैर	अंगुल
प्र०	२	७	२	३
द्वि०	२	६	२	२
तृ०	२	५	२	१
च०	२	४	२	०

नोट– पोरिसी का परिमाण चन्द्रसंवत्सर के अनुसार गिना जाता है। इसमें ३५४ दिन होते हैं। आषाढ़, भाद्रपद, कार्तिक, पौष, फाल्गुन और वैशाख का कृष्ण पक्ष चौदह दिन का होता है। इस लिए इन्हें अवमरात्र कहा जाता है। इन पक्षों के सिवाय बाकी पक्षों में एक सप्ताह साढ़े सात दिन का समझना चाहिए।

अगर पौन पोरिसी की छाया का परिमाण जानना हो तो पहिले बताई हुई पोरिसी की छाया में नीचे लिखे अनुसार अंगुल मिला देने चाहिए– ज्येष्ठ, आषाढ़ और श्रावण मास में छः अंगुल। भाद्रपद, आश्विन और कार्तिक में आठ अंगुल। मार्गशीर्ष, पौष और माघ में दस अंगुल। फाल्गुन, चैत्र और वैशाख में आठ अंगुल।

(उत्तराध्ययन अध्ययन २६ गाथा १३–१४)

८०४ धर्म के बारह विशेषण–

'दुर्गतिपतनात् धारयतीति धर्मः' जो दुर्गति में पड़ते हुए प्राणियों

का उद्धार कर सुगति की ओर प्रवृत्त करे उसे धर्म कहते हैं। अहिंसा, संयम और तप ये तीन धर्म के मुख्य अङ्ग हैं। इनका आचरण करने वाला पुरुष मंगलमय बन जाता है और यहाँ तक कि वह देवों का वन्दनीय बन जाता है। ऐसे धर्म के लिये बारह विशेषण दिये गये हैं। वे इस प्रकार हैं-

(१) मंगल कमलाकेलि निकेतन- धर्म मंगलरूप लक्ष्मी का क्रीड़ास्थान है अर्थात् धर्म सदा मंगलरूप है और जहाँ धर्म होता है वहाँ सदा आनन्द रहता है।

(२) करुणाकेतन- सब जीवों पर करुणा करना, मरते प्राणी को अभयदान देना यही धर्म का सार है। धर्म रूपी मन्दिर पर करुणा का सफेद झंडा सदा फहराता है। जो प्राणी धर्म रूपी मन्दिर में प्रविष्ट हो जाता है वह सदा के लिये निर्भय हो जाता है।

(३) धीर- अविचलित और अक्षुब्ध होने के कारण समुद्र को धीर की उपमा दी जाती है। इसी प्रकार अविचलित और अक्षुब्ध होने के कारण धर्म के लिये भी धीर विशेषण दिया जाता है। धर्म को धारण करने वाले पुरुष में परोपकारपरायणता, स्थिरचित्तता, विवेकशीलता और विचक्षणता आदि गुण प्रकट हो जाते हैं।

(४) शिवसुखसाधन- अनन्त, अक्षय और अव्याबाध सुख रूप मोक्ष का देने वाला धर्म ही है अर्थात् धर्म की यथावत् साधना करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

(५) भवभयबाधन- जन्म जरा और मरण के भयों से मुक्त कराने वाला एक धर्म ही है। जो धर्म की शरण में चला जाता है उसे संयोग वियोग रूपी दुःखों से दुखी नहीं होना पड़ता। धर्म में स्थिर पुरुष संसार के सब भयों से मुक्त होकर तथा संसार चक्र का अन्त कर मोक्ष सुख को प्राप्त कर लेता है।

(६) जगदाधार- धर्म तीनों लोकों के प्राणियों के लिये

आश्रय एवं आधार रूप है। धर्म का आश्रय लेने वाले प्राणी को कभी निराश नहीं होना पड़ता। अतः धर्म के लिये 'शरणागत वत्सल' विशेषण भी लगाया जाता है। जिस पुरुष को किसी का आश्रय एवं आधार न हो और आश्रय के लिये सारी दिशाएं शून्य प्रतीत होती हों, उसके लिये धर्म आश्रय रूप है और धर्म रूप मन्दिर का दरवाजा उसके लिये सदा खुला हुआ है।

(७) गम्भीर– धर्म समुद्र जैसा गम्भीर (विशाल), सब प्राणियों का रक्षक, पालक और पोषक है।

(८) देवासुरनर पूजितशासन– चारों प्रकार के देव अर्थात् भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक और मनुष्यों द्वारा धर्म पूज्य है। सब देव, असुर और मनुष्य धर्म को पूज्य समझ कर वन्दना नमस्कार करते हैं।

(९) सर्वतन्त्र नवनीत– धर्म सब शास्त्रों का सार रूप होने से सर्वतन्त्र नवनीत कहलाता है। नवनीत का अर्थ है मक्खन।

(१०) सनातन– धर्म त्रिकालाबाधित अर्थात् भूत, भविष्यत् और वर्तमान में सदा विद्यमान् होने के कारण सनातन कहलाता है।

(११) सिद्धिसदनसोपान– महल पर चढ़ने के लिये जिस प्रकार सोपान (सीढ़ी–पगथिये) सहायक होती है उसी प्रकार मोक्ष रूपी महल में पहुंचने के लिये धर्म सोपान रूप है। चौदह गुण-स्थान रूपी चौदह पगथिये हैं, जिन पर क्रमशः चढ़ते हुए सयोगी और अयोगी अवस्था को प्राप्त कर मोक्ष रूपी महल में पहुंच जाता है।

(१२) प्रतिलंभितशांतसुधारसपान– धर्म सम्यक् आराधना करने वाले पुरुष को शान्तसुधारस का पान कराने वाला है।

उपरोक्त बारह विशेषणों से युक्त धर्म की सम्यक् प्रकार से आराधना करने वाला पुरुष मोक्ष सुख को प्राप्त कर लेता है।

(शान्तसुधारस धर्मभावना)

८०५– श्रमण की बारह उपमाएं

अनुयोग द्वार सूत्र में बारह पदार्थों के साथ श्रमण को उपमा दी गई है। समता रूप सामायिक को धारण करने वाला श्रमण कहलाता है। इसका स्वरूप बतलाते हुए शास्त्रकारों ने कहा है–

जस्स सामाणिओ अप्पा, संजमे नियमे तवे।
तस्स सामाइयं होइ, इइ केवलिभासिअं॥

अर्थात्– सब प्रकार के सावद्य व्यापारों से निवृत्त होकर मूलगुण रूपी संयम, उत्तर गुणरूपी नियम तथा अनशन आदि बारह प्रकार के तप में लीन रहने वाले व्यक्ति के ही सामायिक होती है। ऐसा केवली भगवान् ने फरमाया है।

जो समो सव्व भूएसु, तसेसु थावरेसु अ।
तस्स सामाइयं होइ, इइ केवलिभासिअं॥

अर्थात्– जो त्रस और स्थावर आदि सब प्राणियों को अपने समान मानता है उसी के सामायिक होती है।

जह मम ण पियं दुक्खं, जाणिअ एमेव सव्व जीवाणं।
ण हणइ ण हणावेइ अ, सममणइ तेण सो समणो॥

अर्थात्– जिस प्रकार मुझे दुःख प्रिय नहीं है उसी प्रकार संसार के समस्त प्राणियों को दुःख प्रिय नहीं है। छोटे और बड़े सभी प्राणी सुखपूर्वक जीना चाहते हैं। दुःख और मृत्यु कोई नहीं चाहता, ऐसा समझ कर जो किसी प्राणी को दुःख न पहुँचावे, हिंसा न करे, न करावे और हिंसा का अनुमोदन भी न करे प्रत्युत सब प्राणियों को आत्म तुल्य समझे वही सच्चा श्रमण है।

णत्थि य सि कोइ वेसो, पिओ अ सव्वेसु चेव जीवेसु।
एएण होइ समणो, एसो अन्नोवि पज्जाओ॥

अर्थात्– जो किसी भी प्राणी से द्वेष नहीं करता, सब जीवों से मैत्रीभाव रखता है, उन्हें अपने समान समझता है वह सच्चा श्रमण है।

उपरोक्त गुण सम्पन्न श्रमण को बारह पदार्थों के साथ उपमा दी गई है। यथा-

उरग गिरि जलण सागर,
नहतल तरुगण समो अ जो होइ।
भमर मिय धरणि जलरुह,
रवि पवण समो अ सो समणो ॥

अर्थात्- सर्प, पहाड़, अग्नि, सागर, आकाश, वृक्ष, भ्रमर, मृग पृथ्वी, कमल, सूर्य और पवन के समान जो होता है वही श्रमण है।

(१) उरग (सर्प)-जैसे साँप अपने लिए स्वयं घर नहीं बनाता किन्तु चूहे आदि के द्वारा बनाये हुए बिल में रहता है उसी प्रकार साधु अपने लिए घर नहीं बनाता और साधु के निमित्त बनाये घर में भी नहीं ठहरता किन्तु गृहस्थी के लिए बने हुए मकान में मकान मालिक की आज्ञा लेकर ठहरता है तथा जिस प्रकार साँप एक ही जगह नहीं ठहरता उसी प्रकार साधु भी एक जगह नहीं ठहरता किन्तु अपने कल्पानुसार ठहर कर विहार कर देता है।

(२) गिरि (पर्वत)- जिस प्रकार पर्वत वायु से कम्पित नहीं होता उसी तरह साधु परिषह उपसर्गों से कम्पित न होवे किन्तु संयम का पालन करते हुए जो जो अनुकूल और प्रतिकूल परिषह उपसर्ग आवें उन्हें समभाव पूर्वक सहन करे और संयम में दृढ बना रहे।

(३) ज्वलन (अग्नि)- अग्नि में कितना ही ईंधन क्यों न डाला जाय किन्तु वह तृप्त नहीं होती इसी तरह साधु भी ज्ञान से तृप्त नहीं होवे अर्थात् यावज्जीवन सूत्रार्थ का अभ्यास करता रहे। 'मैंने काफी पढ़ लिया है, अब मुझे विशेष ज्ञान की आवश्यकता नहीं है' इस प्रकार साधु कभी भी ज्ञान के प्रति उपेक्षा भाव न लावे किन्तु नवीन नवीन ज्ञानोपार्जन करने में निरन्तर परिश्रम करता रहे। जिस प्रकार अग्नि अपने तेज से दीप्त होती है उसी प्रकार

साधु अपने तप रूपी तेज से दीप्त एवं शोभित होवे।

(४) सागर– समुद्र में अगाध जल होता है। समुद्र कभी भी अपनी मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता। उसी प्रकार साधु ज्ञान रूपी अगाध जल का धारक बने। कभी भी तीर्थङ्कर की आज्ञा का उल्लंघन न करे। समुद्र के समान सदा गम्भीर बना रहे। छोटी छोटी बातों में कुपित न हो।

(५) नभस्तल (आकाश)– जिस प्रकार आकाश को ठहराने के लिए कोई स्तम्भ नहीं है किन्तु वह निराधार स्थित है उसी प्रकार साधु को गृहस्थ आदि के आलम्बन रहित होना चाहिये। उसे किसी के आश्रय पर अवलम्बित न रहना चाहिए किन्तु निरालम्बन होकर ग्राम नगर आदि में यथेच्छ विहार करना चाहिए।

(६) तरु (वृक्ष)– जैसे वृक्ष शीत और तापादि दुःखों को समभाव पूर्वक सहन करता है और उसके आश्रय में आने वाले मनुष्य, पशु, पक्षी आदि को शीतल छाया से सुख पहुँचाता है उसी प्रकार साधु समभाव पूर्वक कष्टों को सहन करे और धर्मोपदेश द्वारा संसार के प्राणियों को मुक्ति का मार्ग बतला कर उनका उद्धार करे। फल आने पर जैसे वृक्ष नम्र बन जाता है अर्थात् नीचे की ओर झुक जाता है, अपने मीठे फलों द्वारा लोगों को आराम पहुँचाता है उसी प्रकार साधु को चाहिये कि ज्यों ज्यों वह ज्ञान रूपी फल से संयुक्त होता जाय त्यों त्यों विशेष विनयवान् और नम्र बनता जाय। विद्या पढ़ कर अभिमान करना तो ज्ञान गुण के बिल्कुल विपरीत है क्योंकि ज्ञान तो विनय और नम्रता सिखलाता है। अपने ऊपर पत्थर फैंकने वाले पुरुष को भी वृक्ष मीठे और स्वादु फल देता है उसी प्रकार साधु को चाहिए कि कोई उसकी प्रशंसा करे या निन्दा करे, सत्कार करे या तिरस्कार करे उस पर किसी प्रकार से राग द्वेष न करे। साधु को कोई अपशब्द भी कह दे तो

उस पर कुपित न होवे किन्तु समभाव रखे। समभाव के कारण ही मुनि को 'वासीचन्दनकल्प' कहा गया है। यथा-

जो चंदणेण बाहुं आलिंपइ वासिणा वा तच्छेइ।
संथुणइ जो व निंदइ महरिसिणो तत्थ समभावा॥

अर्थात्- यदि कोई व्यक्ति मुनि के शरीर को चन्दन चर्चित करे अथवा बसोले से उनके शरीर को छील डाले। कोई उनकी स्तुति करे या निन्दा करे महर्षि लोग सब जगह समभाव रखते हैं।

(७) भ्रमर- जिस प्रकार भ्रमर फूल से रस ग्रहण करता है किन्तु फूल को किसी प्रकार पीड़ा नहीं पहुँचाता उसी प्रकार साधु गृहस्थों के घर से थोड़ा थोड़ा आहार ग्रहण करे जिससे उन्हें किसी प्रकार की तकलीफ न हो और फिर से नया भोजन बनाना न पड़े। दशवैकालिक सूत्र के पहले अध्ययन में भी साधु को भ्रमर की उपमा दी गई है। यथा-

जहा दुमस्स पुप्फेसु, भमरो आवियइ रसं।
ण य पुप्फं किलामेइ, सो अ पीणेइ अप्पयं॥
एमे ए समणा मुत्ता, जे लोए सन्ति साहुणो।
विहंगमा व पुप्फेसु, दाण भत्तेसणे रया॥

अर्थात्- जिस प्रकार भ्रमर फूल को पीड़ा पहुँचाये बिना ही उससे रस पी कर अपनी तृप्ति कर लेता है उसी प्रकार आरम्भ और परिग्रह के त्यागी साधु भी दाता के दिए हुए प्रासुक आहार पानी में सन्तुष्ट रहते हैं। जिस प्रकार भ्रमर अनियत वृत्ति वाला होता है अर्थात् भ्रमर के लिए यह निश्चित नहीं होता कि वह अमुक फूल से ही रस ग्रहण करेगा, इसी तरह साधु भी अनियत वृत्ति वाला होवे अर्थात् साधु को प्रतिदिन नियत (निश्चित) घर से ही गोचरी न लेनी चाहिए किन्तु मधुकरी वृत्ति से अनियत घरों से गोचरी करनी चाहिए।

(८) मृग (हरिण)- जिस प्रकार सिंह को देख कर मृग भाग जाता है, एक क्षण भर भी वहाँ नहीं ठहरता उसी प्रकार साधु को पाप कार्यों से सदा डरते रहना चाहिए। पापस्थानों पर उसे एक क्षण भर भी न ठहरना चाहिए।

(९) पृथ्वी- जिस प्रकार पृथ्वी शीत, ताप, छेदन, भेदन आदि सब कष्टों को समभाव पूर्वक सहन करती है उसी प्रकार साधु को सब परिषह उपसर्गों को समभावपूर्वक सहन करना चाहिए। जिस प्रकार पृथ्वी अपने अपकारी और उपकारी तथा भले और बुरे सभी को समान रूप से आश्रय देती है इसी प्रकार साधु को चाहिए कि वह अपने उपकारी और अपकारी तथा अपनी निन्दा करने वाले तथा प्रशंसा करने वाले सभी को समान भाव से शान्ति मार्ग का उपदेश दे, किसी पर राग द्वेष न करे। शत्रु मित्र पर समभाव रखता हुआ सहिष्णु बने।

(१०) जलरुह (कमल)- कमल कीचड़ में उत्पन्न होता है और जल से वृद्धि पाता है, किन्तु वह कीचड़ और जल से लिप्त न होता हुआ जल से ऊपर रहता है। इसी प्रकार साधु को चाहिए कि इस शरीर की उत्पत्ति और वृद्धि काम और भोगों से होने पर भी वह कामभोगों में लिप्त न होता हुआ सदा इनसे दूर रहे। काम भोगों को संसार वृद्धि का कारण जान कर साधु इनका सर्वथा त्याग कर दे।

(११) रवि (सूर्य)- जैसे सूर्य अपने प्रकाश से अन्धकार का नाश कर संसार के पदार्थों को प्रकाशित करता है उसी प्रकार साधु जीवाजीवादि नव तत्त्वों का स्वयं ज्ञाता बने और धर्मोपदेश द्वारा भव्य जीवों के अज्ञानान्धकार को दूर कर नौ तत्त्वों का यथार्थ स्वरूप समझा कर मोक्ष मार्ग की ओर प्रवृत्त करे।

(१२) पवन (वायु)-वायु की गति अप्रतिबद्ध होती है अर्थात्

वायु अपनी इच्छानुसार पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण किसी भी दिशा में वहती है उसी प्रकार साधु अप्रतिबद्ध विहारी होवे अर्थात् साधु किसी गृहस्थादि के प्रतिवन्ध में बंधा हुआ न रहे किन्तु अपनी इच्छानुसार ग्राम, नगर आदि में विहार करे और धर्मोपदेश द्वारा जनता को कल्याण का मार्ग वतलावे।

(अनुयोग द्वार, सूत्र १५० गाथा १२७-१३२)

८०६- सापेक्ष यतिधर्म के बारह विशेषण

स्थविर कल्प धर्म सापेक्ष यतिधर्म कहलाता है। इस धर्म को अङ्गीकार करने वाले व्यक्ति का गृहस्थों के साथ सम्पर्क रहता है इस लिए यह सापेक्ष यतिधर्म कहलाता है। इसे अङ्गीकार करने वाले व्यक्ति में निम्न लिखित बारह बातों के होने से वह प्रशस्त माना जाता है। वे बारह बातें ये हैं-

(१) कल्याणाशय-सापेक्ष यतिधर्म को अङ्गीकार करने वाले व्यक्ति का आशय कल्याणकारी होना चाहिए। उसका आशय केवल मुक्ति रूप नगर को प्राप्त करने का होना चाहिए।

(२) श्रुतरत्न महोदधि-सापेक्ष यतिधर्म के धारक व्यक्ति को अनेक शास्त्रों का ज्ञाता होना चाहिए। शास्त्रों का ज्ञाता मुनि ही धर्मोपदेश द्वारा लोगों का उपकार कर सकता है। बहुश्रुत ज्ञानी साधु सर्वत्र पूज्य होता है। उत्तराध्ययन सूत्र के ग्यारहवें अध्ययन में बहुश्रुत ज्ञानी को सोलह श्रेष्ठ उपमाएं दी गई हैं।

(३) उपशमादि लब्धिमान्- साधु के क्रोध, मान, माया, लोभ आदि कषाय उपशान्त होने चाहिएं। क्रोधादि के वशीभूत हो जाने से साधु के आत्मिक गुणों का ह्रास होता है।

(४) परहितोद्यत- साधु छः काया का रक्षक कहा जाता है। उसे मन, वचन और काया से किसी भी प्राणी की हिंसा स्वयं न करनी चाहिए, न करानी चाहिए और हिंसा करने वाले का अनु-

मोदन भी न करना चाहिए। यथाकल्प साधु को सब जीवों के हित साधन और रक्षा के लिए सदा उद्यत रहना चाहिए।

(५) अत्यन्तगम्भीर चेता– संयम धर्म का पालन करते हुए साधु को अनेक प्रकार से अनुकूल और प्रतिकूल परिषह उत्पन्न होते हैं। किसी भी प्रकार की परिस्थिति में हर्ष विषाद न करते हुए चित्त में किसी प्रकार का विकार पैदा न होने देना साधु का परम धर्म है। साधु को अत्यन्त गम्भीर चित्त वाला और शान्त होना चाहिए।

(६) प्रधान परिणति– सांसारिक अन्य सब झंझटों को छोड़ कर आत्मभाव में लीन रहना साधु के लिए प्रशस्त कार्य है।

(७) विधूतमोह– मोह एवं राग भाव से निवृत्त होकर साधु को संयम मार्ग में दत्तचित्त रहना चाहिए।

(८) परम सत्त्वार्थ कर्त्ता– साधु को मोक्ष प्राप्ति के साधनभूत सम्यक्त्व में दृढ़ श्रद्धा वाला होना चाहिए।

(९) सामायिकवान्– साधु में मध्यस्थभाव का होना परमावश्यक है। शत्रु और मित्र, स्वजन या परजन सभी पर उसे समभाव रखना चाहिए। समभाव का होना ही सामायिक है। साधु के यावज्जीव की सामायिक होती है। इस लिए समता भाव के धारण करने से ही साधु की सामायिक सार्थक होती है।

(१०) विशुद्धाशय– जिस प्रकार चन्द्रमा का प्रकाश स्वच्छ और निर्मल होता है उसी प्रकार साधु का आशय विशुद्ध एवं निर्मल होना चाहिए।

(११) यथोचित प्रवृत्ति– साधु को अवसरज्ञ होना चाहिए अर्थात् द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव देख कर प्रवृत्ति करनी चाहिए। इसके विपरीत प्रवृत्ति करने से संयम धर्म में बाधा पहुँचती है और लोक में निन्दा भी होती है।

(१२) सात्मीभूत शुभ योग– जिस प्रकार लोहे के गोले को अग्नि में तपाने पर अग्नि उसके अन्दर प्रवेश कर जाती है और लोहे के साथ अग्नि एकरूप हो जाती है उसी तरह साधु को शुभ योगों के साथ एकरूप हो जाना चाहिए। साधु की प्रवृत्ति सदा शुभ योगों में ही होनी चाहिए।

उपरोक्त बारह गुण सम्पन्न साधु प्रशस्त गिना जाता है।

(धर्मबिन्दु प्रकरण, सूत्र ३६६)

८०७– कायोत्सर्ग के आगार बारह

सांसारिक प्राणियों को गमनागमनादि क्रियाओं से पाप का बन्ध होता है, इसी कारण आत्मा मलिन हो जाती है। उसकी शुद्धि के लिए तथा परिणामों को पूर्ण शुद्ध और अधिक निर्मल बनाने के लिए प्रायश्चित्त करना आवश्यक है। परिणामों की विशुद्धि के सिवाय आत्मशुद्धि हो नहीं सकती। परिणामों की विशुद्धता के लिये माया (कपट), निदान (फल कामना) और मिथ्यात्व (कदाग्रह) रूप तीन शल्यों का त्याग करना जरूरी है। शल्यों का त्याग और अन्य सब पापकर्मों का नाश काउसग्ग से ही हो सकता है। शरीर के ममत्व को त्याग कर मर्यादित समय के लिए निश्चलता पूर्वक ध्यान करना काउसग्ग (कायोत्सर्ग) कहलाता है। इसके बारह आगार हैं–

(१) ऊससिएणं– उच्छ्वास (ऊंचा श्वास) लेना।

(२) नीससिएणं– निःश्वास अर्थात् श्वास को बाहर निकालना।

(३) खासिएणं– खांसी आना।

(४) छीएणं– छींक आना।

(५) जंभाइएणं– जमुहाई (उबासी) आना।

(६) उड्डुएणं– डकार आना।

(७) वायनिसग्गेणं– अपान वायु (अधो वायु) का सरना।

(८) भमलिए- चक्कर आना अर्थात् सिर का घूमना।

(९) पित्तमुच्छाए- पित्त के विकार से मूर्च्छा आना।

(१०) सुहुमेहिं अङ्ग संचालेहिं-शरीर का सूक्ष्म हलन चलन।

(११) सुहुमेहिं खेल संचालेहिं-कफ, थूक आदि का सूक्ष्म संचार होना या नाक का झरना।

(१२) सुहुमेहिं दिट्ठि संचालेहिं- दृष्टि का सूक्ष्म संचलन।

उपरोक्त बारह आगार तथा इनके सदृश अन्य क्रियाएं जो स्वयमेव हुआ करती हैं और जिन क्रियाओं के रोकने से शरीर में रोगादि होने की तथा अशान्ति पैदा होने की सम्भावना रहती है उनके होते रहने पर भी कायोत्सर्ग अभग्न (अखण्डित) रहता है। इनके सिवाय दूसरी क्रियाएं जो आप ही आप नहीं होतीं, जिनका रोकना अपनी इच्छा के अधीन है उन क्रियाओं को कायोत्सर्ग के समय नहीं करना चाहिये अर्थात् अपवाद भूत क्रियाओं के सिवाय अन्य कोई भी क्रिया न करनी चाहिए।

इन बारह आगारों के बाद आदि शब्द दिया है। आदि शब्द से नीचे लिखे चार आगार हरिभद्रीयावश्यक कायोत्सर्गाध्ययन गाथा १५१६ में और दिये गये हैं-

अगणीओ छिंदिज्ज व बोहिय खोभाइ दीहडक्को वा।
आगारेहिं अभग्गो उस्सग्गो एवमाईहिं ॥

अर्थात्- (१) आग आदि के उपद्रव से दूसरी जगह जाना (२) बिल्ली चूहे आदि का उपद्रव या किसी पञ्चेन्द्रिय जीव के छेदन भेदन होने के कारण अन्य स्थान में जाना (३) अकस्मात् डकैती पड़ने या राजा आदि के सताने से स्थान बदलना (४) सिंह आदि के भय से, साँप, बिच्छू आदि विषैले जन्तुओं के डंक से या दिवाल आदि गिर पड़ने की शङ्का से दूसरे स्थान पर जाना।

कायोत्सर्ग करने के समय उपरोक्त आगार इसलिये रखे

जाते हैं कि सब जीवों की शक्ति एक सरीखी नहीं होती। जो कम ताकत या डरपोक हैं वे ऐसे मौके पर इतने घबरा जाते हैं कि धर्मध्यान के बदले आर्तध्यान करने लग जाते हैं। ऐसे अधिकारियों की अपेक्षा आगारों का रखा जाना आवश्यक है। आगार रखने में अधिकारी भेद ही मुख्य कारण है।

(आवश्यक कायोत्सर्गाध्ययन)

८०८– कल्पोपपन्न देव बारह

वैमानिक देवों के दो भेद हैं– कल्पोपपन्न और कल्पातीत। कल्प का अर्थ है मर्यादा। जिन देवों में इन्द्र, सामानिक आदि की मर्यादा बंधी हुई है, उन्हें कल्पोपपन्न कहते हैं। जिन देवों में छोटे बड़े का भाव नहीं है, सभी अहमिन्द्र हैं वे कल्पातीत कहलाते हैं। समुदान, सन्निवेश (गांव) या विमान जितनी फैली हुई पृथ्वी को कल्प कहते हैं, कल्प का अर्थ है आचार, जिन देवों में इन्द्र, सामानिक आदि की व्यवस्था रूप आचार है, उन्हें कल्पोपपन्न कहते हैं। इनके बारह भेद हैं–

(१) सौधर्म देवलोक (२) ईशान देवलोक (३) सनत्कुमार देवलोक (४) माहेन्द्र देवलोक (५) ब्रह्म देवलोक (६) लान्तक देवलोक (७) महाशुक्र देवलोक (८) सहस्रार देवलोक (९) आणत देवलोक (१०) प्राणत देवलोक (११) आरण देवलोक (१२) अच्युत देवलोक। इन सौधर्मादि विमानों में वैमानिक देव रहते हैं।

रत्नप्रभा के समतल भाग से १॥ राजू की ऊँचाई पर सौधर्म और ईशान देवलोक हैं। २॥ राजू पर सनत्कुमार और माहेन्द्र। ३। राजू पर ब्रह्मदेवलोक। ३॥ राजू पर महाशुक्र। ४ राजू पर सहस्रार। ४॥ राजू पर आणत और प्राणत। ५ राजू पर आरण और अच्युत देवलोक हैं। ७ राजू की ऊँचाई पर लोक का अन्त है। ये आवास तारामण्डल या चन्द्रमण्डल आदि ज्योतिषी विमानों

के ऊपर कई करोड़, कई लाख, कई हज़ार, कई सौ योजन दूरी पर हैं। बारह देवलोकों के विमान ८४९६७०० हैं। सौधर्म से सर्वार्थ सिद्ध पर्यन्त सब देवलोकों के विमान ८४९७०२३ हैं। सभी विमान रत्नों के बने हुए, स्वच्छ, कोमल, स्निग्ध, घिसे हुए, साफ किए हुए रज रहित, निर्मल, निष्पंक, विना आवरण की दीप्ति वाले, प्रभा सहित, शोभासहित, उद्योतसहित, प्रसन्नता देने वाले, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप हैं। इनमें सौधर्म देव रहते हैं। सौधर्म देवलोक के देवताओं के मुकुट में मृग का चिह्न रहता है। ईशान में महिष (भैंसा)। सनत्कुमार में वराह (सूअर)। माहेन्द्र में सिंह। ब्रह्म देवलोक में बकरा। लान्तक में मेंढक। महाशुक्र में घोड़ा। सहस्रार में हाथी। आणत में भुजंग (सर्प)। प्राणत में मेंढा। आरण में बैल। अच्युत में विडिम (एक प्रकार का मृग)। इस प्रकार के मुकुटों को धारण करने वाले, उत्तम कुण्डलों से जाज्वल्यमान मुख वाले, मुकुटों की शोभा को चारों तरफ फैलाने वाले, लाल प्रभा वाले, पद्म की तरह गौर, शुभ वर्ण, शुभ गन्ध और शुभ स्पर्श वाले, उत्तम वैक्रिय शरीर वाले, श्रेष्ठ वस्त्र, गन्ध, माला और विलेपन को धारण करने वाले, महाऋद्धि वाले देव उन विमानों में रहते हैं।

(१) सौधर्म देवलोक– मेरु पर्वत के दक्षिण की ओर रत्नप्रभा के समतल भाग से असंख्यात योजन ऊपर १॥ राजू परिमाण क्षेत्र में सौधर्म नाम का देवलोक आता है। वह पूर्व से पश्चिम लम्बा तथा उत्तर से दक्षिण चौड़ा है। अर्धचन्द्र की आकृति वाला है। किरणमाला अथवा कान्तिपुञ्ज के समान प्रभा वाला है। असंख्यात कोड़ाकोड़ी योजन लम्बा तथा विस्तृत है। उसकी परिधि असंख्यात योजन है। सारा रत्नमय स्वच्छ यावत् प्रतिरूप है। उन में सौधर्म देवों के ३२ लाख विमान हैं। वे विमान भी रत्नमय तथा स्वच्छ प्रभा वाले हैं। उन विमानों में पाँच अवतंसक अर्थात् मुख्य विमान

हैं। पूर्व दिशा में अशोकावतंसक, दक्षिण में सप्तपर्णावतंसक, पश्चिम में चम्पकावतंसक और उत्तर में चूतावतंसक। सब के बीच में सौधर्मावतंसक है। वे सभी अवतंसक रत्नमय, स्वच्छ यावत् प्रतिरूप हैं। यहीं पर्याप्त तथा अपर्याप्त सौधर्म देवों के स्थान हैं। उपपात, समुद्घात और स्वस्थान की अपेक्षा वे लोक के असंख्यातवें भाग में हैं। वहीं सौधर्म देव रहते हैं। वे महाऋद्धि वाले यावत् स्वच्छ प्रभा वाले हैं। सौधर्म देवलोक का इन्द्र, वहाँ रहे हुए लाखों विमान, हजारों सामानिक, त्रायस्त्रिंश, सामान्य देव यावत् आत्मरक्षक देवों के अतिरिक्त बहुत से वैमानिक देव तथा देवियों का स्वामी है। सौधर्म देवलोक का राजा शक्र है। वह हाथ में वज्र धारण किए रहता है। वही पुरन्दर, शतक्रतु, सहस्राक्ष, मघवा, पाकशासन और लोक के दक्षिणार्ध का स्वामी है। वह बत्तीस लाख विमानों का अधिपति, ऐरावण वाहन वाला, देवों का इन्द्र, आकाश के समान निर्मल वस्त्रों को धारण करने वाला, माला और मुकुट पहने हुए, नए सुवर्ण के समान सुन्दर, अद्भुत और चञ्चल कुण्डलों से सुशोभित, महाऋद्धि से सम्पन्न, दसों दिशाओं को प्रकाशित करने वाला, ३२ लाख विमान, चौरासी हजार सामानिक देव, तेतीस गुरुस्थानीय त्रायस्त्रिंश देव, चार लोकपाल, दास दासी आदि परिवार के साथ आठ अग्रमहिषियों, तीन परिषदाओं, सात अनीकों (सेनाओं), सात अनीकाधिपतियों और तीन लाख छत्तीस हजार आत्मरक्षक देवों तथा बहुत से दूसरे वैमानिक देवों और देवियों का अधिपति है।

(२) ईशान देवलोक– रत्नप्रभा पृथ्वी के समतल भूभाग से बहुत ऊपर, चन्द्र, सूर्य, ग्रह और नक्षत्रों से बहुत ऊपर जाने पर मेरु पर्वत के उत्तर में ईशानकल्प है। वह पूर्व से पश्चिम लम्बा और उत्तर से दक्षिण चौड़ा है, असंख्यात योजन विस्तीर्ण है, इत्यादि सारी बातें सौधर्म देवलोक सरीखी जाननी चाहिएं। इस में २८

लाख विमान हैं। उन के मध्य भाग में पाँच अवतंसक हैं- अंकावतंसक, स्फटिकावतंसक, रत्नावतंसक, जातरूपावतंसक और मध्य में ईशानावतंसक। यहाँ ईशान नाम का देवेन्द्र है। वह हाथ में शूल धारण करता है। इसका वाहन वृषभ है। वह लोक के उत्तरीय आधे भाग का अधिपति है।

ईशानेन्द्र अठाईस लाख विमान, अस्सी हजार सामानिक देव, तेतीस त्रायस्त्रिंश देव, चार लोकपाल, परिवार सहित आठ अग्रमहिषियों, तीन परिषदाओं, सात प्रकार की सेना, सात सेनाधिपतियों, तीन लाख बीस हजार आत्मरक्षकों तथा दूसरे बहुत से देवी देवताओं का स्वामी है।

(३) सनत्कुमार देवलोक- सौधर्म देवलोक से असंख्यात हजार योजन ऊपर सनत्कुमार देवलोक है। लम्बाई, चौड़ाई, आकार आदि में सौधर्म देवलोक के समान है। वह पूर्व पश्चिम लम्बा और उत्तर दक्षिण चौड़ा है। वहाँ सनत्कुमार देवों के बारह लाख विमान हैं। बीच में पाँच अवतंसक हैं- अशोकावतंसक, सप्तपर्णावतंसक, चंपकावतंसक, चूतावतंसक और मध्य भाग में सनत्कुमारावतंसक। वे अवतंसक रत्नमय, स्वच्छ यावत् प्रतिरूप हैं। वहाँ बहुत देव रहते हैं। वे सभी विशाल ऋद्धि वाले यावत् दसों दिशाओं को सुशोभित करने वाले हैं। वहाँ अग्रमहिषियाँ नहीं होतीं। वहाँ देवों का इन्द्र देवराज सनत्कुमार है। वह रज रहित आकाश के समान शुभ्र वस्त्रों को धारण करता है। उसके बारह लाख विमान, बहत्तर हजार सामानिक देव आदि शक्रेन्द्र की तरह जानने चाहिएं। केवल वहाँ पर अग्रमहिषियाँ नहीं होतीं तथा दो लाख अट्ठासी हजार आत्मरक्षक देव होते हैं।

(४) माहेन्द्र कल्प देवलोक-ईशान देवलोक से कई कोड़ाकोड़ी योजन ऊपर माहेन्द्र कल्प है। वह पूर्व पश्चिम लम्बा है और उत्तर

दक्षिण चौड़ा है। उसमें आठ लाख विमान हैं। मध्य में माहेन्द्रावतंसक है। बाकी चार अवतंसक ईशान कल्प के समान हैं। वहाँ माहेन्द्र नामक देवेन्द्र है। वह आठ लाख विमान, सत्तर हजार सामानिक देव तथा २८०००० अंगरक्षक देवों का स्वामी है। बाकी सब सनत्कुमार की तरह जानना चाहिए।

(५) ब्रह्म देवलोक—सनत्कुमार और माहेन्द्र के ऊपर असंख्यात योजन जाने पर ब्रह्म नाम का देवलोक आता है। वह पूर्व पश्चिम लम्बा और उत्तर दक्षिण चौड़ा है। पूर्ण चन्द्र के आकार वाला है। किरणमाला या कान्तिपुञ्ज की तरह दीप्त है। इसमें चार लाख विमान हैं। अवतंसक सौधर्म कल्प के समान हैं, केवल बीच में ब्रह्मलोकावतंसक है। वहाँ ब्रह्म नामक देवों का इन्द्र रहता है। वह चार लाख विमान, साठ हजार सामानिक देव, २४०००० अंगरक्षक तथा दूसरे बहुत से देवों का अधिपति है।

(६) लान्तक देवलोक—ब्रह्म लोक से असंख्यात योजन ऊपर उसी के समान लम्बाई, चौड़ाई तथा आकर वाला लान्तक देवलोक है। वहाँ पचास हजार विमान हैं। अवतंसक ईशान कल्प के समान हैं। मध्य में लान्तक नाम का अवतंसक है। वहाँ लान्तक नामक देवों का इन्द्र है। वह पचास हजार विमान, पचास हजार सामानिक, दो लाख आत्मरक्षक तथा दूसरे बहुत से देवों का स्वामी है।

(७) महाशुक्र—लान्तक कल्प के ऊपर उसी के समान लम्बाई चौड़ाई तथा आकार वाला महाशुक्र देवलोक है। वहाँ चालीस हजार विमान हैं। मध्य में महाशुक्रावतंसक है। बाकी चार अवतंसक सौधर्मावतंसकों के समान जानने चाहिएं। इन्द्र का नाम महाशुक्र है। वह चालीस हजार विमान, चालीस हजार सामानिक देव, एक लाख सोलह हजार आत्मरक्षक देव तथा दूसरे बहुत से देवों का अधिपति है।

(८) सहस्रार– महाशुक्र के ऊपर सहस्रार कल्प है। लम्बाई चौड़ाई आदि ब्रह्मलोक की तरह है। उसमें छः हजार विमान हैं। अवतंसक ईशान कल्प के समान हैं। मध्य में सहस्रावतंसक है। सहस्रार नाम का इन्द्र है। वह छः हजार विमान, तीस हजार सामानिक और एक लाख बीस हजार आत्मरक्षक देवों का अधिपति है।

(९–१०) आणत और प्राणत देवलोक– सहस्रार कल्प के ऊपर आणत और प्राणत देवलोक हैं। वे पूर्व पश्चिम लम्बे तथा उत्तर दक्षिण चौड़े हैं। अर्धचन्द्र की आकृति वाले हैं। इन में चार सौ विमान हैं। अवतंसक सौधर्म कल्प के समान हैं। मध्य में प्राणतावतंसक है। दोनों में प्राणत नाम का एक इन्द्र है। वह चार सौ विमान, वीस हजार सामानिक, अस्सी हजार आत्मरक्षक तथा बहुत से दूसरे देवों का स्वामी है।

(११–१२) आरण और अच्युत– आणत और प्राणत कल्प के ऊपर आरण और अच्युत नाम के कल्प हैं। वे पूर्व पश्चिम लम्बे और उत्तर दक्षिण चौड़े हैं। अर्धचन्द्र की आकृति वाले हैं। उनमें तीन सौ विमान हैं। बीच में पाँच अवतंसक हैं–अंकावतंसक, स्फटिकावतंसक, रत्नावतंसक, जातरूपावतंसक और अच्युतावतंसक। इन्द्र का नाम अच्युत है। वह तीन सौ विमान, दस हजार सामानिक और चालीस हजार आत्मरक्षक देवों का अधिपति है।

(१) बत्तीस लाख (२) अठाईस लाख (३) बारह लाख (४) आठ लाख (५) चार लाख (६) पचास हजार (७) चालीस हजार (८) छः हजार (९–१०) चार सौ (११–१२) तीन सौ। कुल मिला कर ८४९६७०० विमान हुए। सामानिक देवों की संख्या नीचे लिखी है– (१) चौरासी हजार (२) अस्सी हजार (३) बहत्तर हजार (४) सत्तर हजार (५) साठ हजार (६) पचास हजार (७) चालीस हजार (८) तीस हजार (९-१०) वीस हजार (११-१२) दस हजार।

कुल मिला कर पाँच लाख सोलह हजार हुए। आत्मरक्षकों की संख्या इन से चौगुनी है। विमान आदि की संख्या के लिए नीचे लिखी संग्रह गाथाएं विशेष उपयोगी जान कर दी जाती हैं-

बत्तीस अट्ठवीसा बारस अट्ठ चउरो य सयसहस्सा।
पन्ना चत्तालीसा, छच्च सहस्सा सहस्सारे ॥ १ ॥
आणयपाणयकप्पे चत्तारि सयाऽऽरणच्चुए तिन्नि।
सत्त विमाणसयाइं चउसु वि एएसु कप्पेसु ॥ २ ॥
चउरासीइ असीइ बावत्तरी सत्तरी य सट्ठी य।
पन्ना चत्तालीसा, तीसा बीस दस सहस्सा ॥ ४ ॥

(पन्नवणा स्थानपद २ वैमानिकाधिकार)

स्थिति- वैमानिक देवों की स्थिति जघन्य पल्योपम की तथा उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की है। बारह देवलोकों में जघन्य पल्योपम की तथा उत्कृष्ट बाईस सागरोपम की है। सौधर्म देवलोक में देवों की जघन्य पल्योपम, उत्कृष्ट दो सागरोपम। देवियों की जघन्य पल्योपम,उत्कृष्ट पचास पल्योपम। परिगृहीता देवियों की जघन्य पल्योपम,उत्कृष्ट सात पल्योपम। अपरिगृहीता देवियों की जघन्य पल्योपम, उत्कृष्ट पचास पल्योपम।

ईशान कल्प में जघन्य पल्योपम झाझेरी (साधिक), उत्कृष्ट दो सागरोपम झाझेरी। परिगृहीता देवियों की जघन्य पल्योपम झाझेरी, उत्कृष्ट नव पल्योपम। अपरिगृहीता देवियों की जघन्य पल्योपम झाझेरी, उत्कृष्ट पचपन पल्योपम।

सनत्कुमार कल्प में जघन्य दो सागरोपम, उत्कृष्ट सात सागरोपम। माहेन्द्रकल्प में जघन्य दो सागरोपम झाझेरी, उत्कृष्ट सात सागरोपम झाझेरी। ब्रह्मलोक में जघन्य सात सागरोपम, उत्कृष्ट दस सागरोपम। लान्तक कल्प में जघन्य दस सागरोपम, उत्कृष्ट चौदह सागरोपम। महाशुक्र कल्प में जघन्य चौदह सागरो-

पम, उत्कृष्ट सतरह सागरोपम। सहस्रार कल्प में जघन्य सतरह सागरोपम, उत्कृष्ट अठारह सागरोपम। आणत कल्प में जघन्य अठारह सागरोपम, उत्कृष्ट उन्नीस सागरोपम। प्राणत कल्प में जघन्य उन्नीस सागरोपम, उत्कृष्ट वीस सागरोपम। आरण कल्प में जघन्य वीस, उत्कृष्ट इक्कीस सागरोपम। अच्युत कल्प में जघन्य इक्कीस और उत्कृष्ट बाईस सागरोपम। (पन्नवणा स्थितिपद ४)

पर्षदाएं–सौधर्म देव लोक के अधिपति शक्रेन्द्र की तीन पर्षदाएं हैं– शमिका (आभ्यन्तर परिषद्), चण्डा (मध्यम परिषद्), जाता (बाह्य परिषद्)। आभ्यन्तर पर्षदा में बारह हजार देव और सात सौ देवियाँ हैं। मध्यम पर्षदा में चौदह हजार देव और छः सौ देवियाँ हैं। बाह्य पर्षदा में सोलह हजार देव और पाँच सौ देवियाँ हैं। आभ्यन्तर पर्षदा में देवों की स्थिति पाँच पल्योपम, मध्यम में चार पल्योपम और बाह्य में तीन पल्योपम की है। आभ्यन्तर पर्षदा में देवियों की तीन पल्योपम, मध्यम में दो पल्योपम और बाह्य में एक पल्योपम की है। ईशानेन्द्र की आभ्यन्तर पर्षदा में दस हजार देव तथा नौ सौ देवियाँ, मध्यम में बारह हजार देव तथा आठ सौ देवियाँ, बाह्य में चौदह हजार देव तथा सात सौ देवियाँ हैं। आभ्यन्तर पर्षदा में देवों की सात तथा देवियों की पाँच पल्योपम, मध्यम में देवों की छह तथा देवियों की चार पल्योपम और बाह्य में देवों की पाँच तथा देवियों की चार पल्योपम की आयु है। बाकी सब शक्रेन्द्र के समान हैं। सनत्कुमारेन्द्र की आभ्यन्तर पर्षदा में आठ हजार, मध्यम में दस हजार और बाह्य में बारह हजार देव हैं। देवियाँ नहीं हैं। आभ्यन्तर पर्षदा में साढ़े चार सागरोपम तथा पाँच पल्योपम आयु है। मध्यम पर्षदा में साढ़े चार सागरोपम तथा चार पल्योपम। बाह्य में साढ़े चार सागरोपम तथा तीन पल्योपम की स्थिति है। माहेन्द्र कल्प की

आभ्यन्तर पर्षदा में छह हजार देव हैं। मध्यम में आठ हजार और वाह्य में दस हजार। स्थिति सनत्कुमार के समान है। ब्रह्म-देवलोक की आभ्यन्तर पर्षदा में चार, मध्यम में छह और वाह्य में आठ हजार देव हैं। आभ्यन्तर में साढ़े आठ सागरोपम और पाँच पल्योपम, मध्यम में साढ़े आठ सागरोपम और चार पल्योपम, वाह्य में साढ़े आठ सागरोपम और तीन पल्योपम की स्थिति है। लान्तक कल्प की आभ्यन्तर पर्षदा में दो हजार, मध्यम में चार हजार और वाह्य पर्षदा में छह हजार देव हैं। आभ्यन्तर में वारह सागरोपम और सात पल्योपम, मध्यम में वारह सागरोपम और छः पल्योपम तथा वाह्य में वारह सागरोपम और पाँच पल्योपम की स्थिति है। महाशुक्र कल्प की आभ्यन्तर पर्षदा में एक हजार, मध्यम में दो हजार और वाह्य में चार हजार देव हैं। आभ्यन्तर में साढ़े पन्द्रह सागरोपम और पाँच पल्योपम, मध्यम में साढ़े पन्द्रह सागरोपम और चार पल्योपम और वाह्य में साढ़े पन्द्रह सागरोपम तथा तीन पल्योमम की स्थिति है। सहस्रार कल्प की आभ्यन्तर पर्षदा में पाँच सौ, मध्यम में एक हजार तथा वाह्य में दो हजार देव हैं। आभ्यन्तर में साढ़े सतरह सागरोपम तथा सात पल्योपम, मध्यम में साढ़े सतरह सागरोपम तथा छः पल्योपम, वाह्य में साढ़े सतरह सागरोपम तथा पाँच पल्योपम की स्थिनि है। आणत और प्राणत देवलोकों की आभ्यन्तर पर्षदा में ढाई सौ, मध्यम में पाँच सौ और वाह्य में एक हजार देव हैं। आभ्यन्तर में साढ़े अठारह सागरोपम और पाँच पल्योपम, मध्यम में साढ़े अठारह सागरोपम और चार पल्योपम तथा वाह्य में साढ़े अठारह सागरोपम और तीन पल्योपम की स्थिति है। आरण और अच्युत देवलोक की आभ्यन्तर पर्षदा में सवा सौ, मध्यम में ढाई सौ और वाह्य में पाँच सौ देव हैं। आभ्यन्तर पर्षदा में इक्कीस सागरोपम और सात

पल्योपम, मध्यम में इक्कीस सागरोपम और छः पल्योपम, बाह्य में इक्कीस सागरोपम और पाँच पल्योपम की स्थिति है।

(जीवाभिगम प्रतिपत्ति ३ वैमानिकाधिकार, सूत्र २०८)

सौधर्म और ईशान कल्पों में विमान घनोदधि पर ठहरे हुए हैं। सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्प में घनवात पर। लान्तक में दोनों पर। महाशुक्र और सहस्रार में भी दोनों पर। आणत, प्राणत, आरण और अच्युत में आकाश पर।

मोटाई और ऊँचाई– सौधर्म और ईशान कल्प में विमानों की मोटाई सत्ताईस सौ योजन और ऊँचाई पाँच सौ योजन की है अर्थात् महल ५०० योजन ऊँचे हैं। सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्प में मोटाई छब्बीस सौ तथा ऊँचाई छः सौ योजन की है। ब्रह्म और लान्तक में मोटाई पच्चीस सौ योजन और ऊँचाई सात सौ योजन की है। महाशुक्र और सहस्रार कल्प में मोटाई चौवीस सौ और ऊँचाई आठ सौ योजन है। आणत, प्राणत, आरण और अच्युत देवलोक में मोटाई तेईस सौ योजन और ऊँचाई आठ सौ योजन है।

संस्थान–सौधर्मादि कल्पों में विमान दो तरह के हैं–आवलिका-प्रविष्ट और आवलिका बाह्य। आवलिका प्रविष्ट तीन संस्थानों वाले हैं– वृत्त (गोल), त्र्यस्र (त्रिकोण) और चतुरस्र (चार कोण वाले)। आवलिका बाह्य अनेक संस्थानों वाले हैं।

विस्तार–इनमें से बहुत से विमान संख्यात योजन विस्तृत हैं, बहुत से असंख्यात योजन। संख्यात योजन विस्तार वाले विमान जघन्य जम्बूद्वीप जितने बड़े हैं। मध्यम ढाई द्वीप जितने बड़े हैं और उत्कृष्ट असंख्यात योजन विस्तार वाले हैं।

वर्ण– सौधर्म और ईशान कल्प में विमान पाँचों रंग वाले हैं– काले, नीले, लाल, पीले, और सफेद। सनत्कुमार और माहेन्द्र

कल्प में काले नहीं है। ब्रह्मलोक और लान्तक में काले और नीले नहीं हैं। महाशुक्र और सहस्रार देवलोक में पीले और सफेद दो ही रंगों वाले हैं। आणत, प्राणत, आरण और अच्युत देवलोक में सफेद हैं। सभी विमान नित्यालोक, नित्य उद्योत तथा स्वयं प्रभा वाले हैं। मनुष्य लोक में गुलाब, चमेली, चम्पा, मालती आदि सभी फूलों की गन्ध से भी उन विमानों की गन्ध बहुत उत्तम है। रूई, मक्खन आदि कोमल स्पर्श वाली सभी वस्तुओं से उन विमानों का स्पर्श बहुत अधिक कोमल है। जो देव एक लाख योजन लम्बे तथा एक लाख योजन चौड़े जम्बूद्वीप की इक्कीस प्रदक्षिणाएं तीन चुटकियों में कर सकता है वह अगर उसी गति से सौधर्म और ईशान कल्प के विमानों को पार करने लगे तो छः महीनों में किसी को पार कर सकेगा, किसी को नहीं। वे सभी विमान रत्नों के बने हुए हैं। पृथ्वीकाय के रूप में विमानों के जीव उत्पन्न होते तथा मरते रहते हैं किन्तु विमान शाश्वत हैं।

गतागत– देव गति से चव कर जीव मनुष्य या तिर्यञ्च रूप में उत्पन्न होता है, नरक में नहीं जाता। इसी प्रकार मनुष्य और तिर्यञ्च ही देवगति में जा सकते हैं, नारकी जीव नहीं। तिर्यञ्च आठवें देवलोक सहस्रार कल्प से आगे नहीं जा सकते।

सहस्रार कल्प तक देवलोक में एक समय एक, दो, तीन, संख्यात या असंख्यात तक जीव उत्पन्न हो सकते हैं। आणत, प्राणत, आरण और अच्युत में जघन्य एक, दो तथा उत्कृष्ट संख्यात ही उत्पन्न हो सकते हैं, असंख्यात नहीं, क्योंकि आणत आदि देवलोकों में मनुष्य ही उत्पन्न होते हैं और मनुष्यों की संख्या संख्यात है।

संख्या– यदि प्रत्येक समय असंख्यात देवों का अपहार हो तो सौधर्म और ईशान कल्प को खाली होने में असंख्यात उत्सर्पिणी तथा अवसर्पिणी काल लग जाय। इसी प्रकार सहस्रार कल्प

तक जानना चाहिए। सूक्ष्म क्षेत्र पल्योपम के असंख्यातवें भाग में जितने समय हैं, आणत प्राणत, आरण और अच्युत देवलोक में उतने देव हैं।

अवगाहना– देवों की अवगाहना दो तरह की है– भवधारणीया और उत्तर वैक्रिया। सौधर्म और ईशान देवलोक में भवधारणीया अवगाहना जघन्य अंगुल का असंख्यातवाँ भाग, उत्कृष्ट सात रत्नियाँ (मुंड हाथ) हैं। सनत्कुमार और माहेन्द्र में छः, ब्रह्मलोक और लान्तक में पाँच, महाशुक्र और सहस्रार में चार, आणत, प्राणत, आरण और अच्युत देवलोक में तीन। उत्तर वैक्रिया अवगाहना सभी देवलोकों में जघन्य अंगुल का संख्यातवाँ भाग तथा उत्कृष्ट एक लाख योजन है।

संहनन– हड्डियों की रचना विशेष को संहनन कहते हैं। देवों का शरीर वैक्रियक होने के कारण छः संहननों में से उनके कोई संहनन नहीं होता। संसार में जो पुद्गल इष्ट, कान्त, मनोज्ञ, प्रिय तथा श्रेष्ठ हैं वे ही उनके संहनन या संघात रूप में परिणत होते हैं।

संस्थान– सौधर्म ईशान आदि देवलोकों में भवधारणीय समचतुरस्र संस्थान होता है। उत्तर विक्रिया के कारण छहों संस्थान हो सकते हैं, क्योंकि वे अपनी इच्छानुसार रूप बना सकते हैं।

वर्ण– सौधर्म और ईशान कल्प में देवों के शरीर का वर्ण तपे हुए सोने के समान होता है। सनत्कुमार, माहेन्द्र और ब्रह्मलोक में पद्मकेसर के समान गौर। उसके पश्चात् आगे के देवलोकों में उत्तरोत्तर अधिकाधिक शुक्ल वर्ण होता है।

स्पर्श– उनका स्पर्श स्थिर, मृदु और स्निग्ध होता है।

उच्छ्वास– संसार में जो पुद्गल इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ और मन को प्रीति करने वाले हैं वे ही उन के श्वासोच्छ्वास के रूप में परिणत होते हैं।

लेश्या– सौधर्म और ईशान कल्प में मुख्य रूप से तेजोलेश्या रहती है। सनत्कुमार, माहेन्द्र और ब्रह्मलोक में पद्मलेश्या। लान्तक से अच्युत देवलोक तक शुक्ल लेश्या।

दृष्टि– सौधर्म आदि बारहों देवलोकों में सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि तीनों प्रकार के देव होते हैं।

ज्ञान– सौधर्म आदि कल्पों में सम्यग्दृष्टि देवों के तीन ज्ञान होते हैं– मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान। मिथ्यादृष्टि देवों के तीन अज्ञान होते हैं– मत्यज्ञान, श्रुत अज्ञान और विभंग ज्ञान।

अवधिज्ञान– सौधर्म और ईशान कल्प में जघन्य अवधि अंगुल का असंख्यातवाँ भाग होता है।

शङ्का– अङ्गुल के असंख्यातवें भाग जितने क्षेत्रपरिमाण वाला अवधिज्ञान सब से जघन्य है। सर्वजघन्य अवधि मनुष्य और तिर्यञ्चों में ही होता है। देव और नारकी जीवों में नहीं। इस लिए देवों में अंगुल के असंख्यातवें भाग रूप सर्वजघन्य अवधि का बताना ठीक नहीं है।

समाधान– उपपात अर्थात् जन्म के समय देवों के पूर्वभव का ही अवधि रहता है। ऐसी दशा में किसी जघन्य अवधि वाले मनुष्य या तिर्यञ्च के देव रूप में उत्पन्न होते समय जघन्य अवधि हो सकता है।

सौधर्म और ईशान में उत्कृष्ट अवधि नीचे रत्नप्रभा के अधोभाग तक, मध्यलोक में असंख्यात द्वीप और समुद्रों तक तथा ऊर्ध्वलोक में अपने विमान के शिखर तक होता है। ऊपर तथा मध्यभाग में सभी देवलोकों में अवधिज्ञान इसी प्रकार होता है। नीचे सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्प में दूसरी पृथ्वी के अधोभाग तक। ब्रह्मलोक और लान्तक में तीसरी पृथ्वी के अधोभाग तक। शुक्र और सहस्रार कल्प में चौथी तक। आणत, प्राणत, आरण और अच्युत कल्पों

में पाँचवी तक। इसके लिए नीचे लिखी गाथाएं उपयोगी हैं –

सक्कीसाणा पढमं, दोच्चं च सणंकुमारमाहिंदा।
तच्चं च बंभलंतग, सुक्कसहस्सारग चउत्थी॥
आणयपाणयकप्पे देवा, पासंति पंचमिं पुढवीम्।
तं चेव आरणच्चुय, ओहिनाणेण पासंति॥

समुद्घात – सौधर्म ईशान आदि बारहों कल्पों में देवों के पाँच समुद्घात होते हैं– वेदनीय समुद्घात, कषाय समुद्घात, मारणान्तिक समुद्घात, वैक्रिय समुद्घात और तैजस समुद्घात।

क्षुधा और पिपासा – सौधर्म आदि देवों में क्षुधा और प्यास नहीं होती।

विकुर्वणा– सौधर्म आदि देव एक, अनेक, संख्यात, असंख्यात अपने सदृश तथा विसदृश, सब प्रकार की विकुर्वणाएं कर सकते हैं। अनेक प्रकार की विकुर्वणाएं करते हुए वे एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक सब प्रकार के रूप धारण कर सकते हैं।

साता (सुख)– सौधर्म आदि कल्पों में मनोज्ञ शब्द, मनोज्ञ स्पर्श, यावत् सभी विषय मनोज्ञ और साताकारी हैं।

ऋद्धि – सौधर्म आदि सभी देव महा ऋद्धि वाले होते हैं।

वेशभूषा- सौधर्म ईशान आदि देवों की वेशभूषा दो प्रकार की होती है– भवधारणीया और उत्तर विक्रिया रूप। भवधारणीया वेशभूषा आभरण और वस्त्रों से रहित होती है। उस में कोई भी बाह्य उपाधि नहीं होती। उत्तर विक्रिया रूप वेशभूषा नीचे लिखे अनुसार होती है– उनका वक्षस्थल हार से सुशोभित होता है। वे विविध प्रकार के दिव्य आभूषणों से सुशोभित होते हैं। यावत् दसों दिशाओं को प्रकाशित करते हैं। देवियाँ सोने की झालरों से सुशोभित वस्त्र पहिनती हैं। विविध प्रकार के रत्नजटित नूपुर तथा दूसरे आभूषण पहिनती हैं। चाँदनी के समान शुभ्र वस्त्र धारण करती हैं।

कामभोग– सौधर्मादि कल्पों में देव इष्ट शब्द, इष्ट रूप, इष्ट स्पर्श आदि सभी मनोज्ञ कामभोगों को भोगते हैं।

(जीवाभिगम प्रतिपत्ति ३ उद्देशा २, सूत्र २०७–२२३)

उपपात विरह और उद्वर्तना विरह–सौधर्म और ईशान कल्प में उपपात विरह काल जघन्य एक समय उत्कृष्ट २४ मुहूर्त है अर्थात् चौवीस मुहूर्त में वहाँ कोई न कोई जीव आकर अवश्य उत्पन्न होता है। सनत्कुमार में उत्कृष्ट नौ दिन और वीस मुहूर्त। माहेन्द्र में बारह दिन और दस मुहूर्त। ब्रह्मलोक में साढ़े बाईस दिन। लान्तक में पैंतालीस दिन। महाशुक्र में अस्सी दिन। सहस्रार में सौ दिन। आणत और प्राणत में संख्यात मास। इनमें आणत की अपेक्षा प्राणत में अधिक जानने चाहिएं किन्तु वे एक वर्ष से कम ही रहते हैं। आरण और अच्युत में संख्यात वर्ष। आरण की अपेक्षा अच्युत में अधिक वर्ष जानने चाहिएं किन्तु वे सौ वर्ष से कम ही रहते हैं। जघन्य सभी में एक समय है।

देव गति से चव कर जीवों का दूसरी गति में उत्पन्न होना उद्वर्तना है। उद्वर्तना का विरह काल भी उपपात जितना ही है।

गतागत–सामान्य रूप से देवलोक से चवा हुआ जीव पृथ्वीकाय, अप्काय, वनस्पतिकाय तथा गर्भज पर्याप्त और संख्यात वर्ष की आयु वाले मनुष्य या तिर्यञ्चों में ही उत्पन्न होता है। तेउकाय, वायुकाय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौरिन्द्रिय, संमूर्छिम, अपर्याप्त या असंख्यात वर्ष की आयु वाले तिर्यञ्च और मनुष्यों में, देवलोक तथा नरक में उत्पन्न नहीं होता। पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय में भी बादर तथा पर्याप्त रूप से ही उत्पन्न होता है। सूक्ष्म पृथ्वीकाय, सूक्ष्म अप्काय, साधारण वनस्पतिकाय तथा अपर्याप्त पृथ्वी आदि में उत्पन्न नहीं होता। सौधर्म और ईशान कल्प तक के देव ही पृथ्वीकाय आदि में उत्पन्न होते हैं। सनत्-

कुमार से सहस्रार कल्प तक के देव पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च और मनुष्यों में ही उत्पन्न होते हैं। आणत से लेकर ऊपर के देव मनुष्यों में ही उत्पन्न होते हैं।

मनुष्य और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च ही देवलोक में उत्पन्न होते हैं, नारकी, देवता या एकेन्द्रिय आदि नहीं हो सकते। तिर्यञ्च भी आठवें देवलोक सहस्रार कल्प तक जा सकते हैं आगे नहीं।

(पन्नवणा ६ व्युत्क्रान्ति पद) (प्रवचन सारोद्धार द्वार १६६--२००)

अवान्तर भेद

सौधर्म कल्प से लेकर अच्युत देवलोक तक देवों के दरजे अथवा पद की अपेक्षा दस भेद हैं- (१) इन्द्र (२) सामानिक (३) त्राय-स्त्रिंश (४) पारिषद्य (५) आत्मरक्षक (६) लोकपाल (७) अनीक (८) प्रकीर्णक (९) आभियोग्य (१०) किल्विषिक।

प्रवीचार- दूसरे ईशान देवलोक तक के देव मनुष्यों की तरह प्रवीचार (मैथुन सेवन) करते हैं। तीसरे देवलोक सनत्कुमार से लेकर आगे के वैमानिक देव मनुष्यों की तरह सर्वांग स्पर्श द्वारा काम सुख नहीं भोगते, वे भिन्न भिन्न प्रकार से विषय सुख का अनुभव करते हैं। तीसरे और चौथे देवलोक में देवियों के स्पर्श मात्र से काम तृष्णा की शान्ति कर लेते हैं और सुख का अनुभव करते हैं। पाँचवे और छठे देवलोक के देव केवल देवियों के सुसज्जित रूप को देख कर तृप्त हो जाते हैं। सातवें और आठवें देवलोक में देवों की कामवासना देवियों के मधुर शब्द सुनने मात्र से शान्त हो जाती है और उन्हें विषय सुख के अनुभव का आनन्द मिलता है। नवें, दसवें, ग्यारहवें और बारहवें देवलोक में देवियों के चिन्तन मात्र से विषय सुख की तृप्ति हो जाती है। इस के लिए इन्हें देवियों को छूने, देखने या उनका स्वर सुनने की आवश्यकता नहीं रहती।

देवियों की उत्पत्ति दूसरे देवलोक तक ही होती है। जब ऊपर

के स्वर्ग में रहने वाले देवों को विषय सुख की इच्छा होती है तो देवियाँ देवों की उत्सुकता जान कर स्वयं उनके पास पहुँच जाती हैं। ऊपर ऊपर के देवलोकों में स्पर्श, रूप, शब्द तथा चिन्तन मात्र से तृप्ति होने पर भी उत्तरोत्तर सुख अधिक होता है। इसका कारण स्पष्ट है-जैसे जैसे कामवासना की प्रबलता होती है, चित्त में अधिकाधिक आवेग होता है। आवेग जितना अधिक होता है उसे मिटाने के लिए विषयभोग भी उतना ही चाहिए। दूसरे देवलोक की अपेक्षा तीसरे में, तीसरे की अपेक्षा चौथे में, चौथे से पाँचवें में इसी प्रकार उत्तरोत्तर कामवासना मन्द होती जाती है। इस से इनके चित्तसंक्लेश की मात्रा भी कम होती है। इसी लिए इन्हें विषयतृप्ति के लिए अल्प साधनों की आवश्यकता होती है।

सौधर्म आदि देवों में नीचे लिखी सात बातें उत्तरोत्तर बढ़ती जाती हैं-

(१) स्थिति- सभी देवों की आयु पहले बताई जा चुकी है।

(२) प्रभाव- निग्रह और अनुग्रह करने का सामर्थ्य। अणिमा, लघिमा आदि सिद्धियाँ और बलपूर्वक दूसरे से काम लेने की शक्ति। ये सभी बातें प्रभाव में आती हैं। इस प्रकार का प्रभाव यद्यपि ऊपर ऊपर वाले देवों में अधिक है तो भी उनमें अभिमान और संक्लेश की मात्रा कम है। इस लिए वे अपने प्रभाव को काम में नहीं लाते।

(३-४) सुख और द्युति- इन्द्रियों द्वारा ग्राह्य इष्ट विषयों का अनुभव करना सुख है। वस्त्र, आभरण आदि का तेज द्युति है।

ऊपर ऊपर के देवलोकों में क्षेत्रस्वभावजन्य शुभ पुद्गलपरिणाम की प्रकृष्टता के कारण उत्तरोत्तर सुख और द्युति अधिक होती है।

(५) लेश्या की विशुद्धि- सौधर्म देवलोक से लेकर ऊपर ऊपर के देवलोकों में लेश्यापरिणाम अधिकाधिक शुद्ध होते हैं।

(६) इन्द्रियविषय– इष्ट विषयों को दूर से ग्रहण करने की शक्ति भी उत्तरोत्तर देवों में अधिक होती है।

(७) अवधिज्ञान– अवधिज्ञान भी ऊपर-ऊपर अधिक होता है, यह पहले बताया जा चुका है।

नीचे लिखी चार बातों में देव उत्तरोत्तर हीन होते हैं–

(१) गति– गमनक्रिया की शक्ति और प्रवृत्ति दोनों ऊपर ऊपर के देवलोकों में कम हैं। ऊपर ऊपर के देवों में महानुभावता, उदासीनता और गम्भीरता अधिक होने के कारण देशान्तर में जाकर क्रीड़ा करने की उनको इच्छा कम होती है।

(२) शरीर परिमाण– शरीर का परिमाण भी ऊपर के देव लोकों में कम होता है। यह अवगाहना द्वार में बताया जा चुका है।

(३) परिग्रह– विमान, पर्षदाओं का परिवार आदि परिग्रह भी उत्तरोत्तर कम होता जाता है।

(४) अभिमान– अहङ्कार। स्थान, परिवार, शक्ति, विषय, विभूति, स्थिति आदि में अभिमान करना। कषाय कम होने के कारण ऊपर ऊपर के देवलोकों में अभिमान कम होता है।

इन के सिवाय नीचे लिखी पाँच बातें भी जानने योग्य हैं–

(१) उच्छ्वास– जैसे जैसे देवों की स्थिति बढ़ती जाती है उसी प्रकार उच्छ्वास का कालमान भी बढ़ता जाता। जैसे दस हजार वर्ष की आयु वाले देवों का एक उच्छ्वास सात स्तोक परिमाण होता है। एक पल्योपम आयुष्य वाले देवों का एक उच्छ्वास एक दिन का होता है। सागरोपम आयुष्य वाले देवों में जितने सागरोपम की आयु होती है उतने पखवाड़ों का एक उच्छ्वास होता है।

(२) आहार– दस हजार वर्ष की आयु वाले देव एक दिन बीच में छोड़ कर आहार करते हैं। पल्योपम की आयुष्य वाले देव दिन पृथक्त्व अर्थात् दो दिन से लेकर नौ दिन तक के अन्तर पर।

सागरोपम आयुष्य वाले देव जितने सागरोपम की आयु होती है उतने हजार वर्ष बाद आहार ग्रहण करते हैं।

(३) वेदना- देवों को प्रायः सातावेदनीय का ही उदय रहता है। कभी असातावेदनीय का उदय होने पर भी वह अन्तर्मुहूर्त से अधिक नहीं ठहरता। सातावेदनीय भी अधिक से अधिक छः महीने रह कर फिर बदल जाता है।

(४) उपपात- अन्य लिङ्गी पाँचवें देवलोक तक उत्पन्न होते हैं। गृहलिङ्गी (श्रावक) बारहवें देवलोक तक और स्वलिङ्गी (दर्शन भ्रष्ट) नवग्रैवेयक तक उत्पन्न होते हैं। सम्यग्दृष्टि साधु सर्वार्थ सिद्ध तक उत्पन्न हो सकते हैं। चौदह पूर्वधारी संयमी पाँचवें देवलोक के ऊपर ही उत्पन्न होते हैं। (उववाई, सूत्र ३८)

(५) अनुभाव- इसका अर्थ है लोकस्वभाव अर्थात् जगद्धर्म। इसी कारण से विमान तथा सिद्धशिला आदि आकाश में बिना आलम्बन ठहरे हुए हैं।

तीर्थङ्कर के जन्माभिषेक आदि प्रसंगों पर देवों का आसन कम्पित होना भी लोकानुभाव का ही कार्य है। आसन काँपने पर अवधिज्ञान से उनकी महिमा जान कर बहुत से देव तीर्थङ्कर की वन्दना, स्तुति, उपासना आदि करने के लिए भगवान के पास आते हैं कुछ देव अपने ही स्थान में बैठे हुए अभ्युत्थान, अञ्जलिकर्म, प्रणिपात नमस्कार आदि से तीर्थङ्कर की भक्ति करते हैं। यह सब लोकानुभाव का कार्य है।

(तत्त्वार्थाधिगम भाष्य, अध्याय ४) (पन्नवणा) (जीवाभिगम)

८०९- कर्म प्रकृतियों के बारह द्वार

आठ कर्मों के कारण जीव चार गतियों में भ्रमण करता है। इन से छूटते ही मोक्ष प्राप्त कर लेता है। आठ कर्मों की अवान्तर प्रकृतियों का स्वरूप जानने के लिए नीचे लिखे बारह द्वार हैं-

(१) ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ (२) अध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ।
(३) ध्रुवोदया प्रकृतियाँ (४) अध्रुवोदया प्रकृतियाँ।
(५) ध्रुवसत्ताक प्रकृतियाँ (६) अध्रुवसत्ताक प्रकृतियाँ।
(७) सर्व-देशघातिनी प्रकृतियाँ (८) अघातिनी प्रकृतियाँ।
(९) पुण्य प्रकृतियाँ (१०) पाप प्रकृतियाँ।
(११) परावर्तमान प्रकृतियाँ (१२) अपरावर्तमान प्रकृतियाँ।

(१) ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ–मिथ्यात्व आदि कारणों के होने पर जिन प्रकृतियों का बन्ध अवश्य होता है उन्हें ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ कहते हैं। पीसे हुए अञ्जन से भरे सन्दूक के समान सारा लोक कर्मवर्गणा के पुद्गलों से भरा है। मिथ्यात्व आदि बन्धकारणों के उपस्थित होने पर कर्मपुद्गलों का आत्मा के साथ दूध पानी या आग और लोहे के गोले के समान जो सम्बन्ध होता है उसे बन्ध कहते हैं। आत्मा और कर्मों का सम्बन्ध तादात्म्य होता है अर्थात् दोनों एक दूसरे के स्वरूप में मिल जाते हैं। जहाँ आत्मा रहता है वहाँ कर्म रहते हैं और जहाँ कर्म वहाँ आत्मा। मोक्ष प्राप्ति से पहले तक जीव और कर्मों का यह सम्बन्ध बना रहता है। ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ सैंतालीस हैं– ज्ञानावरणीय कर्म की पाँच। दर्शनावरणीय की नौ। मोहनीय की उन्नीस–अनन्तानुबन्धी आदि सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा और मिथ्यात्व। नाम कर्म की नौ– वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्श, तैजस, कार्मण, अगुरुलघु, निर्माण और उपघात। अन्तराय कर्म की पाँच। ऊपर लिखी ४७ प्रकृतियाँ अपने अपने बन्ध हेतुओं के होने पर अवश्य बँधती हैं। इस लिये ध्रुवबन्धिनी कहलाती हैं।

(२) अध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ–बन्ध हेतुओं के होने पर भी जो प्रकृतियाँ नियम से नहीं बँधतीं उन्हें अध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ कहा जाता है। कारण होने पर भी ये प्रकृतियाँ कभी बँधती हैं और कभी नहीं बँधतीं। इनके ७३ भेद हैं– ३ शरीर –औदारिक, वैक्रियक

और आहारक। ३ अंगोपाङ्ग। ६ संस्थान। ६ संहनन। ५ जाति। ४ गति। २ विहायोगति। ४ आनुपूर्वी। तीर्थङ्करनाम, श्वासनाम, उद्योतनाम, आतपनाम, पराघातनाम। १० त्रसदशक। १० स्थावर दशक। २ गोत्र। २ वेदनीय। ७ नोकषाय – हास्य, रति, अरति, शोक, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद। ४ आयु। कुल मिलाकर ७३ प्रकृतियाँ अध्रुवबन्धिनी हैं। पराघात और उच्छ्वास नामकर्म का बन्ध पर्याप्त नामकर्म के साथ ही होता है। अपर्याप्त के साथ नहीं होता, इसी लिए ये प्रकृतियाँ अध्रुवबन्धिनी कहलाती हैं। आतप नामकर्म एकेन्द्रिय जाति के साथ ही बँधता है। उद्योत नाम तिर्यञ्च गति के साथ ही बन्धता है। आहारक शरीर, आहारक अंगोपाङ्ग और तीर्थङ्कर नामकर्म सम्यक्त्व या संयम के होने पर ही बन्धते हैं। दूसरी छ्यासठ प्रकृतियों का बन्ध कारण होने पर भी अवश्य रूप से नहीं होता। इसीलिए ये सब अध्रुवबन्धिनी कहलाती हैं।

सभी प्रकृतियों के चार भांगे होते हैं– अनादि अनन्त, अनादि सान्त, सादि अनन्त, सादि सान्त। जो प्रकृतियाँ सन्तान परम्परा रूप में अनादि काल से चली आ रही हैं और अनन्त काल तक सदा विद्यमान रहेंगी उन्हें अनादि अनन्त कहा जाता है। अभव्य जीवों की अपेक्षा ध्रुवोदया प्रकृतियाँ अनादि अनन्त हैं। वे २६ हैं– निर्माण, स्थिर, अस्थिर, अगुरुलघु, शुभ, अशुभ, तैजस, कार्मण, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, ५ ज्ञानावरणीय, ५ अन्तराय और चार दर्शनावरणीय– चक्षु दर्शन, अचक्षु दर्शन, अवधि दर्शन, केवल दर्शन। ये प्रकृतियाँ अभव्य जीवों के सदा उदय में रहती हैं, इस लिए अनादि अनन्त कही जाती हैं। मोक्षगामी भव्य जीवों की अपेक्षा ये अनादि सान्त हैं। इनमें से ज्ञानावरणीय की पाँच, दर्शनावरणीय की ४ और अन्तराय की ५, ये १४ प्रकृतियाँ अनादि काल से लगी होने पर भी बारहवें क्षीणमोहनीय गुणस्थान के

अन्त में छूट जाती हैं। इस लिए अनादि सान्त हैं। बाकी बारह प्रकृतियाँ तेरहवें सयोगी केवली गुणस्थान के अन्त में छूट जाती हैं। इस लिए ये भी अनादि सान्त हैं। पहले कही हुई ४७ ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियों में अनादि अनन्त, अनादि सान्त और सादि सान्त रूप तीन भंग ही होते हैं, तीसरा सादि अनन्त भंग नहीं होता। जो बन्ध अनादिकाल से चला आ रहा है, बीच में कभी विच्छिन्न नहीं हुआ, अनन्त काल तक सन्तान परम्परा से चलता रहेगा वह अनादि अनन्त है। यह भंग अभव्य जीवों की अपेक्षा है। अनादि काल से चला आने पर भी जो बन्ध विच्छिन्न हो जायगा वह अनादि सान्त है, यह मोक्षगामी भव्य जीवों की अपेक्षा है। सादि अनन्त भंग बन्ध में नहीं होता, क्योंकि जिन प्रकृतियों का बन्ध सादि है उनका अन्त अवश्य होता है। जो प्रकृतियाँ एक या अधिक वार अलग होकर फिर आत्मा से बन्धती हैं उनका अन्त अवश्य होता है। ऐसी प्रकृतियाँ सादि सान्त कही जाती हैं। इस प्रकार ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियों में तीसरे सादि अनन्त भंग को छोड़ कर शेष तीन भंग होते हैं।

ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियों में पहला भंग अभव्य जीवों की अपेक्षा है। दूसरा भंग ५ ज्ञानावरणीय, ४ दर्शनावरणीय और ५ अन्तराय, इन चौदह प्रकृतियों की अपेक्षा है। इन प्रकृतियों का बन्ध अनादि परम्परा से होने पर भी दसवें सूक्ष्मसम्पराय गुणस्थान के चरम समय में छूट जाता है। उपशम श्रेणी वाले जीव की अपेक्षा वे ही चौदह प्रकृतियाँ सादि सान्त हो जाती हैं अर्थात् उपशम श्रेणी करते हुए जीव के दसवें गुणस्थान में उपरोक्त १४ प्रकृतियों का बन्ध छूट जाता है, वहाँ से गिर जाने पर फिर होने लगता है। इस लिए उन की अपेक्षा यह बन्ध सादि है। क्षपक श्रेणी से सदा के लिए नाश हो जाने से वह बन्ध सादि है। इस प्रकार सादि सान्त

नामक चौथा भंग होता है। तीसरा भंग चौदह प्रकृतियों में नहीं होता। संज्वलन की चौकड़ी का बन्ध अनादि काल से चला आता है किन्तु नवें अनिवृत्ति बादर गुणस्थान में रुक जाता है, इस लिए इस में दूसरा अनादि सान्त भंग होता है। उपशम श्रेणी वाले जीव की अपेक्षा चौथा सादि सान्त भंग भी होता है। निद्रा, प्रचला, तैजस, कार्मण, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, भय और जुगुप्सा इन तेरह प्रकृतियों का बन्ध अनादि है किन्तु अपूर्वकरण के समय जब रुक जाता है, तब दूसरा भंग होता है। अपूर्वकरण से गिर कर जीव जब दुबारा उपरोक्त प्रकृतियों को बाँधता है और अपूर्वकरण को प्राप्त कर फिर रोक देता है तो उनका बन्ध सादि सान्त हो जाता है। इस प्रकार चौथा भंग होता है।

प्रत्याख्यानावरण चौकड़ी का बन्ध अनादि होता हुआ पाँचवें देशविरति गुणस्थान तक रहता है। इस प्रकार दूसरा भंग हुआ। वहाँ से गिरने पर दुबारा होने वाला बन्ध सादि सान्त है। इस तरह चौथा भंग है।

अप्रत्याख्यानावरण चौकड़ी का बन्ध अनादि है किन्तु चौथे अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक रहता है। इस प्रकार दूसरा भंग है। चौथा भंग पहले सरीखा है।

मिथ्यात्व, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि और अनन्तानुबन्धी चौकड़ी का बन्ध मिथ्यादृष्टि जीव के अनादि काल से होता है। सम्यक्त्व प्राप्त करते ही बन्द हो जाता है। इस प्रकार दूसरा भंग है। दुबारा मिथ्यात्व प्राप्त होने पर होने वाला बन्ध सादि सान्त है।

इस प्रकार ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियों में भंगप्ररूपणा है। इन में पहला भंग अभव्य की अपेक्षा से है। दूसरा सम्यक्त्व प्राप्त करने वाले अनादि मिथ्यादृष्टि जीव की अपेक्षा से और चौथा सम्यक्त्व

प्राप्ति के बाद पतित होकर दुबारा उत्तरोत्तर गुणस्थानों को प्राप्त करने वाले की अपेक्षा से। तीसरा भंग इन प्रकृतियों में नहीं होता।

अध्रुवबन्धिनी और अध्रुवोदया प्रकृतियों में चौथा भंग ही होता है क्योंकि ऊपर बताई ७३ अध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ कभी बँधती हैं, कभी नहीं। इस लिए इनका बन्ध सादि सान्त है। इसी प्रकार इनका उदय भी सादि सान्त है। बाकी तीन भंग अध्रुवबन्धिनी और अध्रुवोदया प्रकृतियों में नहीं होते।

(३) ध्रुवोदया प्रकृतियाँ– विच्छेद होने से पहले जो प्रकृतियाँ सदा उदय में रहती हैं वे ध्रुवोदया कही जाती हैं। ऐसी प्रकृतियाँ २७ हैं– निर्माण, स्थिर, अस्थिर, अगुरुलघु, शुभ, अशुभ, तैजस, कार्मण, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श। ज्ञानावरणीय की ५। दर्शनावरणीय की ४। अन्तराय की ५ और मिथ्यात्व। ये प्रकृतियाँ विच्छेद से पहले सदा उदय में रहती हैं।

(४) अध्रुवोदया प्रकृतियाँ– विच्छेद न होने पर भी जिन प्रकृतियों का उदय द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और भव इन पाँचों बातों की अपेक्षा रखता है अर्थात् इन सब के मिलने पर ही जिन प्रकृतियों का उदय हो वे अध्रुवोदया कहलाती हैं। अध्रुवोदया प्रकृतियाँ ९५ हैं– अध्रुवबन्धिनी ७३ प्रकृतियाँ पहले गिनाई जा चुकी हैं। उनमें से स्थिर, अस्थिर, शुभ और अशुभ ये चार कम हो जाती हैं। बाकी ६९ प्रकृतियाँ अध्रुवोदया हैं। ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियों में मोहनीय कर्म की १९ प्रकृतियाँ गिनाई गई है। उन में मिथ्यात्व को छोड़ कर शेष १८ अध्रुवोदया हैं। ६९ और १८ मिला कर ८७ हुई। इन में निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, उपघात नाम, मिश्रमोहनीय और सम्यक्त्व मोहनीय इन आठ को मिलाने से ९५ प्रकृतियाँ हो जाती हैं। ये प्रकृतियाँ सदा उदय में नहीं रहतीं। दूसरे निमित्तों को प्राप्त करके ही उदय में आती हैं, इसी लिए अध्रुवो-

नामक चौथा भंग होता है। तीसरा भंग चौदह प्रकृतियों में नहीं होता। संज्वलन की चौकड़ी का बन्ध अनादि काल से चला आता है किन्तु नवें अनिवृत्ति बादर गुणस्थान में रुक जाता है, इस लिए इस में दूसरा अनादि सान्त भंग होता है। उपशम श्रेणी वाले जीव की अपेक्षा चौथा सादि सान्त भंग भी होता है। निद्रा ,प्रचला, तैजस, कार्मण, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, भय और जुगुप्सा इन तेरह प्रकृतियों का बन्ध अनादि है किन्तु अपूर्वकरण के समय जब रुक जाता है, तब दूसरा भंग होता है। अपूर्वकरण से गिर कर जीव जब दुबारा उपरोक्त प्रकृतियों को बाँधता है और अपूर्वकरण को प्राप्त कर फिर रोक देता है तो उनका बन्ध सादि सान्त हो जाता है। इस प्रकार चौथा भंग होता है।

प्रत्याख्यानावरण चौकड़ी का बन्ध अनादि होता हुआ पाँचवें देशविरति गुणस्थान तक रहता है। इस प्रकार दूसरा भंग हुआ। वहाँ से गिरने पर दुबारा होने वाला बन्ध सादि सान्त है। इस तरह चौथा भंग है।

अप्रत्याख्यानावरण चौकड़ी का बन्ध अनादि है किन्तु चौथे अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक रहता है। इस प्रकार दूसरा भंग है। चौथा भंग पहले सरीखा है।

मिथ्यात्व, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि और अनन्तानुबन्धी चौकड़ी का बन्ध मिथ्यादृष्टि जीव के अनादि काल से होता है। सम्यक्त्व प्राप्त करते ही बन्द हो जाता है। इस प्रकार दूसरा भंग है। दुबारा मिथ्यात्व प्राप्त होने पर होने वाला बन्ध सादि सान्त है।

इस प्रकार ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियों में भंगप्ररूपणा है। इन में पहला भंग अभव्य की अपेक्षा से है। दूसरा सम्यक्त्व प्राप्त करने वाले अनादि मिथ्यादृष्टि जीव की अपेक्षा से और चौथा सम्यक्त्व

प्राप्ति के बाद पतित होकर दुबारा उत्तरोत्तर गुणस्थानों को प्राप्त करने वाले की अपेक्षा से। तीसरा भंग इन प्रकृतियों में नहीं होता।

अध्रुवबन्धिनी और अध्रुवोदया प्रकृतियों में चौथा भंग ही होता है क्योंकि ऊपर बताई ७३ अध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ कभी बँधती हैं, कभी नहीं। इस लिए इनका बन्ध सादि सान्त है। इसी प्रकार इनका उदय भी सादि सान्त है। बाकी तीन भंग अध्रुवबन्धिनी और अध्रुवोदया प्रकृतियों में नहीं होते।

(३) ध्रुवोदया प्रकृतियाँ– विच्छेद होने से पहले जो प्रकृतियाँ सदा उदय में रहती हैं वे ध्रुवोदया कही जाती हैं। ऐसी प्रकृतियाँ २७ हैं– निर्माण, स्थिर, अस्थिर, अगुरुलघु, शुभ, अशुभ, तैजस, कार्मण, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श। ज्ञानावरणीय की ५। दर्शनावरणीय की ४। अन्तराय की ५ और मिथ्यात्व। ये प्रकृतियाँ विच्छेद से पहले सदा उदय में रहती हैं।

(४) अध्रुवोदया प्रकृतियाँ– विच्छेद न होने पर भी जिन प्रकृतियों का उदय द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और भव इन पाँचों बातों की अपेक्षा रखता है अर्थात् इन सब के मिलने पर ही जिन प्रकृतियों का उदय हो वे अध्रुवोदया कहलाती हैं। अध्रुवोदया प्रकृतियाँ ९५ हैं– अध्रुवबन्धिनी ७३ प्रकृतियाँ पहले गिनाई जा चुकी हैं। उनमें से स्थिर, अस्थिर, शुभ और अशुभ ये चार कम हो जाती हैं। बाकी ६९ प्रकृतियाँ अध्रुवोदया हैं। ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियों में मोहनीय कर्म की १९ प्रकृतियाँ गिनाई गई हैं। उन में मिथ्यात्व को छोड़ कर शेष १८ अध्रुवोदया हैं। ६९ और १८ मिला कर ८७ हुई। इन में निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, उपघात नाम, मिश्रमोहनीय और सम्यक्त्व मोहनीय इन आठ को मिलाने से ९५ प्रकृतियाँ हो जाती हैं। ये प्रकृतियाँ सदा उदय में नहीं रहतीं। दूसरे निमित्तों को प्राप्त करके ही उदय में आती हैं, इसी लिए अध्रुवो-

दया कही जाती हैं।

मिथ्यात्व आदि प्रकृतियों का उदय यद्यपि एक बार विच्छिन्न होकर फिर शुरू हो जाता है, फिर भी उन्हें अध्रुवोदया नहीं कहा जाता क्योंकि उनका अनुदय उपशम के कारण होता है और जितनी देर उपशम रहता है उदय नहीं होता। उपशम न होने पर जब उदय होता है तो वह क्षय या उपशम से पहले प्रत्येक समय बना रहता है।

निद्रा आदि प्रकृतियाँ उपशम या क्षय न होने पर भी सदा उदय में नहीं रहतीं। जैसे नींद लेते समय ही निद्रा का उदय होता है, जागते समय नहीं।

गुणस्थानों की अपेक्षा भी इनका भेद जाना जा सकता है। जैसे चौथे गुणस्थान में निद्रा और मनःपर्यय ज्ञानावरणीय दोनों प्रकृतियों का उदय होता है। उन में मनःपर्यय ज्ञानावरणीय का उदय हमेशा रहता है। निद्रा का उदय तभी होता है जब जीव नींद लेता है। यही इन दोनों का भेद है।

(५) ध्रुवसत्ताक प्रकृतियाँ- जो प्रकृतियाँ सम्यक्त्व आदि उत्तरगुणों की प्राप्ति से पहले सभी जीवों को होती हैं, वे ध्रुवसत्ताक कहलाती हैं। ध्रुवसत्ताक प्रकृतियाँ १३० हैं। त्रसदशक- त्रस, बादर, पर्याप्तक, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशः कीर्ति। स्थावरदशक-स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्तक, साधारण, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशःकीर्ति। इन दोनों को मिला कर त्रसविंशति भी कहा जाता है। वर्णविंशति-५ वर्ण, ५ रस, २गन्ध, ८ स्पर्श। तैजस-कार्मणसप्तक-तैजस शरीर, कार्मण शरीर, तैजस तैजस बन्धन, तैजस कार्मण बन्धन, कार्मण कार्मण बन्धन, तैजस सङ्घातन, कार्मण संघातन। ४७ ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियों में से वर्ण चतुष्क, तैजस और कार्मण इन छः प्रकृतियों को कम कर देने पर बाकी ४१- अगुरुलघु, निर्माण, उपघात, भय, जुगुप्सा, मिथ्यात्व,

१६ कषाय, ५ ज्ञानावरणीय, ६ दर्शनावरणीय और ५ अन्तराय। ३ वेद। ६संहनन। ६ संस्थान। ५ जातियाँ। २ वेदनीय। ४ हास्यादि- हास्य, रति, अरति, शोक। ७ औदारिकादि- औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपाङ्ग, औदारिक संघातन, औदारिक औदारिक बन्धन, औदारिक तैजस बन्धन, औदारिक कार्मण बन्धन, औदारिक तैजस कार्मण बन्धन। ४ उच्छ्वासादि- उच्छ्वास, उद्योत, आतप, पराघात। २ विहायोगति-प्रशस्त, अप्रशस्त। २ तिर्यक्- तिर्यग्गति, तिर्यगानुपूर्वी। नीच गोत्र। कुल मिला कर १३० हुई। सम्यक्त्व से पहले प्रत्येक जीव के इन प्रकृतियों की सत्ता रहती है, इस लिए इन्हें ध्रुवसत्ताक प्रकृतियाँ कहा जाता है।

(६) अध्रुवसत्ताक प्रकृतियाँ- सम्यक्त्व आदि उत्तरगुणों की प्राप्ति से पहले भी जो प्रकृतियाँ कभी सत्ता में रहती हैं और कभी नहीं रहतीं उन्हें अध्रुवसत्ताक कहा जाता है। अध्रुवसत्ताक प्रकृतियाँ २८ हैं- सम्यक्त्व मोहनीय, मिश्रमोहनीय, मनुष्यानुपूर्वी। वैक्रियैकादशक- (१) देवगति (२) देवानुपूर्वी (३) नरक गति (४) नरकानुपूर्वी (५) वैक्रिय शरीर (६) वैक्रियाङ्गोपाङ्ग (७) वैक्रियसंघातन (८) वैक्रिय वैक्रिय बन्धन (९) वैक्रिय तैजस बन्धन (१०) वैक्रिय कार्मण बन्धन (११) वैक्रिय तैजस कार्मण बन्धन। तीर्थङ्कर नाम कर्म। चार आयु- नरकायु, तिर्यश्चायु, मनुष्यायु और देवायु। आहारकसप्तक- (१) आहारक शरीर (२) आहारक अङ्गोपाङ्ग (३) आहारक संघातन (४) आहारकाहारक बन्धन (५) आहारक तैजस बन्धन (६) आहारक कार्मण बन्धन (७) आहारक तैजस कार्मण बन्धन। उच्च गोत्र। उपरोक्त २८ प्रकृतियाँ अध्रुवसत्ताक हैं। इन में से सम्यक्त्व और मिश्रमोहनीय अभव्यों को सर्वथा नहीं होतीं। बहुत से भव्य भी इन प्रकृतियों के बिना होते हैं। मनुष्य गति, मनुष्यानुपूर्वी और ११ वैक्रियैकादश, ये १३

प्रकृतियाँ तेजस्कायिक और वायुकायिक जीव के उद्वर्तना प्रयोग के समय उदय में नहीं रहतीं। बाकी जीवों के रहती हैं। जो जीव त्रस नहीं है उसके वैक्रियैकादशक का बन्ध नहीं होता। त्रस अवस्था में इन प्रकृतियों को बाँध कर मृत्यु हो जाने पर जो जीव स्थावर रूप से उत्पन्न होता है उसके भी स्थिति पूरी हो जाने से इनका क्षय हो जाता है। इस लिए स्थावर जीव के इन ११ प्रकृतियों की सत्ता नहीं होती। सम्यक्त्व की प्राप्ति होने पर भी तीर्थङ्कर नाम कर्म बहुत थोड़े महापुरुषों को होता है। स्थावर जीवों के देव और नरकायु, अहमिन्द्रों के अर्थात् नव ग्रैवेयक से लेकर ऊपर के देवों के तिर्यञ्च आयु तथा तेजस्काय, वायुकाय और सातवीं नरक के जीवों के मनुष्यायु का बन्ध नहीं होता। इस लिए ये प्रकृतियाँ उन के सत्ता रूप से भी नहीं रहतीं। दूसरों के होने की भजना है। संयम होने पर भी आहारकसप्तक किसी जीव के बन्ध होने पर ही सत्ता में होता है, बिना बन्ध वाले जीवों के नहीं होता। उच्च गोत्र का बन्ध त्रसजीवों के ही होता है। बन्ध हो जाने के बाद स्थावरपना प्राप्त होने पर भी स्थिति पूरी होने से उसका क्षय हो जाता है। इस प्रकार वह सत्ता में नहीं रहता। तेजस्काय और वायुकाय जीवों के उद्वर्तना प्रयोग में भी नहीं रहता। इस प्रकार ये सभी प्रकृतियाँ अध्रुव अर्थात् अनिश्चित सत्ता वाली हैं। गुणस्थानों में ध्रुवसत्ता और अध्रुवसत्ता वाली प्रकृतियों का विवरण नीचे लिखे अनुसार है—पहले, दूसरे और तीसरे गुणस्थान में मिथ्यात्व मोहनीय नियम से सत्ता में रहती है। चौथे से लेकर ग्यारहवें गुणस्थान तक भजना है। औपशमिक सम्यक्त्व वालों के मिथ्यात्व प्रकृति सत्ता में रहती है और क्षायिक सम्यक्त्व वालों के नहीं। दूसरे सास्वादन गुणस्थान में सम्यक्त्व मोहनीय नियम से रहती है। दूसरे को छोड़ कर ग्यारहवें तक दस गुणस्थानों में सम्यक्त्व मोहनीय की भजना है।

अनादि मिथ्यादृष्टि अथवा सम्यक्त्व का वमन करने वाले प्रथम गुणस्थानवर्ती जीव में, सम्यक्त्व का वमन करने वाले तृतीय मिश्र गुणस्थानवर्ती जीव में, चौथे अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर ग्यारहवें तक क्षायिक सम्यक्त्व वालों के सम्यक्त्व मोहनीय सत्ता में नहीं होती। इन्हें छोड़कर बाकी सब जगह रहती है। दूसरे सास्वादन गुणस्थान में नियम से २८ प्रकृतियाँ सत्ता में होती हैं। तीसरे मिश्र गुणस्थान में साधारणतया २८, सम्यक्त्व वमन करने वाले के २७ तथा अनन्तानुबन्धी चौकड़ी छोड़ने वाले के २४ प्रकृतियाँ सत्ता में रहती हैं। मिश्रमोहनीय प्रकृति की सत्ता या उदय के बिना तीसरे गुणस्थान की प्राप्ति नहीं होती। इस लिए तीसरे गुणस्थान में किसी भी अपेक्षा से २६ प्रकृतियों की सत्ता नहीं होती। दूसरे और तीसरे गुणस्थान को छोड़ पहले से लेकर ग्यारहवें तक नौ गुणस्थानों में मिश्रमोहनीय की भजना है। प्रथम गुणस्थान में जिस मिथ्यादृष्टि जीव के सम्यक्त्व मोहनीय तथा मिश्रमोहनीय को छोड़कर बाकी २६ प्रकृतियों की सत्ता है, उस के तथा अविरत सम्यग्दृष्टि से लेकर ग्यारहवें उपशान्त मोहनीय गुणस्थान तक क्षायिक सम्यक्त्व वाले जीवों के मिश्रमोहनीय सत्ता में नहीं होती, बाकी के होती है। प्रथम और द्वितीय गुणस्थान में अनन्तानुबन्धी चौकड़ी नियम से सत्ता में होती है। ग्यारहवें तक बाकी नौ गुणस्थानों में भजना है। अनन्तानुबन्धी का क्षय करके तीसरे गुणस्थान को प्राप्त होने वाले जीव के, अनन्तानुबन्धी चार तथा मिथ्यात्व, मिश्र और सम्यक्त्व मोहनीय का क्षय करके अथवा अनन्तानुबन्धी का क्षय तथा बाकी तीन का उपशम करके चौथे गुणस्थान को प्राप्त करने वाले जीव के अनन्तानुबन्धी चौकड़ी सत्ता में नहीं रहती। इसी प्रकार जो जीव क्रमशः प्रकृतियों का क्षय करके ऊपर के गुणस्थानों में जाता है उसके अनन्तानुबन्धी सत्ता में नहीं रहती।

बाकी जीवों के रहती है। यह मान्यता कर्मग्रन्थों के अनुसार है। कर्मप्रकृति में नीचे लिखे अनुसार बताया गया है– अनन्तानुबन्धी कषाय प्रथम और द्वितीय गुणस्थान में नियम से सत्तारूप में रहती है। तीसरे से लेकर अप्रमत्त संयत अर्थात् सातवें गुणस्थान तक भजना है। उनका क्षय कर देने पर नहीं होती, नहीं तो होती है। इससे ऊपर अनन्तानुबन्धी की सत्ता बिल्कुल नहीं होती, क्योंकि अनन्तानुबन्धी को अलग किए बिना जीव आठवें गुणस्थान में उपशम श्रेणी को भी नहीं प्राप्त कर सकता।

आहारकसप्तक– आहारक शरीर, आहारक अंगोपाङ्ग, आहारक संघातन, आहारकाहारक बन्धन, आहारक तैजस बन्धन, आहारक कार्मण बन्धन, आहारक तैजस कार्मण बन्धन, इन सात प्रकृतियों की सत्ता सभी गुणस्थानों में विकल्प अर्थात् भजना से है। अप्रमत्त संयत आदि गुणस्थानों में जो जीव इन सात प्रकृतियों को बाँध लेता है उस के ऊपर के गुणस्थानों में चढ़ने पर अथवा नीचे गिरने पर इन की सत्ता रहती है। जिस जीव ने इन प्रकृतियों को नहीं बाँधा उस के नहीं रहतीं। तीर्थङ्कर नाम कर्म द्वितीय और तृतीय को छोड़ कर बाकी सभी गुणस्थानों में सत्ता में रहता है। चौथे अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर आठवें गुणस्थान के छठे भाग तक जो जीव तीर्थङ्कर नाम को बाँध लेता है वह ऊपर के गुणस्थानों में भी चढ़ सकता है और अविशुद्धि के कारण मिथ्यात्व को भी प्राप्त कर सकता है किन्तु दूसरे और तीसरे गुणस्थान को प्राप्त नहीं करता। इसी अपेक्षा से तीर्थङ्कर नाम की सत्ता दूसरे और तीसरे को छोड़कर सभी गुणस्थानों में होती है। जो जीव तीर्थंकर नाम कर्म का बन्ध नहीं करता उस के किसी गुणस्थान में तीर्थङ्कर नाम की सत्ता नहीं होती।

जिस जीव के आहारक सप्तक और तीर्थङ्कर नाम इन दोनों प्रकृतियों की सत्ता हो वह मिथ्यात्व को प्राप्त नहीं करता। तीर्थङ्कर नाम

वाला भी अन्तर्मुहूर्त के लिए ही मिथ्यात्व प्राप्त करता है। जो जीव नरकायु बाँध कर तीर्थङ्कर गोत्र बाँधता है वह वेदक सम्यग्दृष्टि होता है। नरक में उत्पन्न होते समय वह सम्यक्त्व को छोड़ देता है। वहाँ पहुँच कर पर्याप्तियाँ पूरी होने के बाद फिर सम्यक्त्व प्राप्त कर लेता है।

(७) सर्व-देशघाती प्रकृतियाँ-(क) जो प्रकृतियाँ अपने विषय का पूर्ण रूप से घात अर्थात् आवरण करती हैं वे सर्वघाती हैं। (ख) जो अपने विषय का घात एक देश से करती हैं वे देशघाती हैं।

(क) सर्वघाती प्रकृतियाँ बीस हैं- केवल ज्ञानावरणीय, केवल दर्शनावरणीय, ५ निद्रादि, संज्वलन चौकड़ी को छोड़ कर १२ कषाय और मिथ्यात्व। ये प्रकृतियाँ अपने द्वारा आवृत होने वाले आत्मा के गुण का पूर्ण रूप से आवरण करती हैं।

यद्यपि सभी जीवों के केवलज्ञान का अनन्तवाँ भाग सदा अनावृत रहता है फिर भी केवलज्ञानावरणीय को सर्वघाती इस लिए कहा जाता है कि जीव का केवलज्ञान गुण जितना आवृत किया जा सकता है उसे केवलज्ञानावरणीय प्रकृति आवृत कर लेती है। जिसे आवृत करना इस की शक्ति से बाहर है वह अनावृत ही रहता है। मतिज्ञानावरण वगैरह प्रकृतियों में तारतम्य रहता है अर्थात् मतिज्ञानावरणीय का उदय होने पर भी किसी जीव का मतिज्ञान अधिक आवृत होता है और किसी का कम। आवरण करने वाले कर्म के न्यूनाधिक क्षयोपशम के अनुसार ज्ञान में न्यूनाधिकता हो जाती है। केवलज्ञानावरणीय में यह बात नहीं होती। उसके उदय में होने पर सभी जीवों का केवल ज्ञान गुण समान रूप से आवृत होता है तथा उस के क्षय हो जाने पर समान रूप से प्रकट होता है। सर्वघाती और देशघाती प्रकृतियों में यही अन्तर है।

आकाश में घने बादल छा जाने पर यह कहा जाता है कि

इन्होंने सूर्य या चन्द्र की प्रभा को सर्वथा ढक लिया। उस समय मन्द प्रकाश होने पर भी सर्वथा ढक लेने का व्यवहार होता है। उसी प्रकार अनन्तवाँ भाग खुला रहने पर भी सर्वथा आवृत कर लेने का व्यवहार होता है। वह अनन्तवाँ भाग भी मतिज्ञानावरणीय आदि के द्वारा आवृत होता हुआ थोड़ा सा अनावृत बच जाता है। इसी प्रकार केवलदर्शनावरणीय सामान्य ज्ञान रूप दर्शन गुण को आवृत करता है। बचा हुआ अनन्तवाँ भाग चक्षुदर्शन आदि के द्वारा आवृत होता है, फिर भी थोड़ा सा अनावृत बच जाता है।

निद्रा आदि पाँच का उदय होने पर जीव को बिल्कुल भान नहीं रहता। इस लिए ये भी सर्वघाती हैं। निद्रा में भी जो सूक्ष्म अनुभव रहता है उसे बादलों से आच्छादित सूर्य चन्द्र की सूक्ष्म प्रभा के समान समझना चाहिए। अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानावरण और प्रत्याख्यानावरण की चौकड़ियाँ भी क्रमशः जीव के सम्यक्त्व, देशविरति चारित्र और सर्वविरति चारित्र का सर्वथा घात करती हैं। मिथ्यात्व प्रकृति तत्त्व श्रद्धान रूप सम्यक्त्व का सर्वथा घात करती है। इन प्रकृतियों का प्रबल उदय होने पर भी जीव अयोग्य आहार आदि का त्याग करता है और मनुष्य, पशु आदि वस्तुओं पर श्रद्धा भी करता है। इन बातों को बादल से निकलती हुई सूर्य की प्रभा के समान जानना चाहिए।

देशघाती प्रकृतियाँ– जो प्रकृतियाँ जीव के गुणों को एक देश से आवृत करती हैं वे देशघाती हैं। वे पच्चीस हैं–केवल ज्ञानावरणीय को छोड़ कर ज्ञानावरणीय चार, केवल दर्शनावरणीय को छोड़ कर दर्शनावरणीय तीन, संज्वलन कषाय चार, नोकषाय नौ और अन्तराय की पाँच।

मतिज्ञानावरण आदि चार केवलज्ञानावरण द्वारा अनावृत छोड़े हुए ज्ञान के देश का घात करती हैं। इसी प्रकार चक्षुदर्शनावरण

आदि केवलदर्शनावरण के द्वारा अनावृत छोड़े हुए सामान्य ज्ञान के देश का घात करती हैं, इस लिए ये देशघाती हैं। संज्वलन और नोकषायों से चारित्रगुण के देश का घात होता है अर्थात् उन के रहने से मूलगुण और उत्तर गुणों में अतिचार लगते हैं, सर्वथा घात नहीं होता। आवश्यकनिर्युक्ति, गाथा ११२ में लिखा है–

सव्वे वि य अइयारा, संजलणाणं तु उदयओ हुंति।
मूलच्छिज्जं पुण होइ, बारसण्हं कसायाणं ॥

अर्थात्– संज्वलन प्रकृतियों के उदय से केवल अतिचार लगते हैं किन्तु अनन्तानुबन्धी आदि बारह कषायों के उदय से मूलगुणों का घात होता है।

दानान्तराय आदि पाँच प्रकृतियाँ भी देशघाती हैं। दान,लाभ, भोग और उपभोग का विषय वे ही वस्तुएं हैं जिन्हें ग्रहण या धारण किया जा सकता है। ऐसी वस्तुएं पुद्गलास्तिकाय के अनन्तवें भाग रूप देश में रही हुई हैं। अन्तराय की प्रकृतियाँ उन्हीं वस्तुओं के दान आदि में बाधा डालती हैं, इस लिए देशघाती हैं। अगर जीव सारे लोक की वस्तुओं का दान,लाभ,भोग या उपभोग नहीं करता तो इस में अन्तराय कर्म कारण नहीं है किन्तु ग्रहण और धारण का अविषय होने के कारण उन वस्तुओं के दान आदि हो ही नहीं सकते। अन्तराय कर्म का सर्वथा नाश हो जाने पर भी कोई जीव उन वस्तुओं को दान आदि के काम में नहीं ला सकता, क्योंकि दान आदि के लिए काम में आने की उनकी योग्यता ही नहीं है। अन्तराय कर्म सिर्फ उन्हीं वस्तुओं के दान आदि में बाधा डालता है जो ग्रहण या धारण के योग्य होने से दान आदि के काम आ सकती हैं।

वीर्यान्तराय कर्म भी देशघाती है। वीर्य अर्थात् आत्मा की शक्ति का पूर्ण रूप से घात नहीं करता। सूक्ष्मनिगोद में वीर्यान्तराय का प्रबल उदय रहता है। वहाँ के जीवों में भी आहार पचाने, कर्म

दलिकों को ग्रहण करने और दूसरी गति में जाने की शक्ति रहती है। वीर्यान्तराय के क्षयोपशम से ही उन जीवों के वीर्य का तारतम्य होता है। वीर्यान्तराय के क्षय होने से केवलियों को आत्मा के पूर्ण वीर्य की प्राप्ति होती है। इसे सर्वघाती मान लेने पर मिथ्यात्व के उदय होने पर सम्यक्त्व के सर्वथा अभाव की तरह वीर्य का भी सर्वथा अभाव हो जायगा।

(८) अघाती प्रकृतियाँ— जो प्रकृतियाँ आत्मा के ज्ञान आदि गुणों का घात नहीं करतीं उन्हें अघाती कहा जाता है। जैसे स्वयं चोर न होने पर भी चोरों के साथ रहने वाला पुरुष चोर कहा जाता है उसी प्रकार घाती प्रकृतियों के साथ वेदी जाने से ये भी बुरी कही जाती हैं। जैसे रस पड़ने के कारण घाती प्रकृतियाँ अवश्य वेदनी पड़ती हैं उसी प्रकार अघाती भी वेदनी पड़ती हैं।

अघाती प्रकृतियाँ पचहत्तर हैं—प्रत्येक प्रकृतियाँ आठ—पराघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, अगुरुलघु, तीर्थङ्कर, निर्माण, उपघात। शरीर पाँच। अङ्गोपाङ्ग तीन। छः संस्थान। छः संहनन। जातियाँ पाँच। गतियाँ चार। आनुपूर्वी चार। विहायोगति दो। आयुष्य चार। त्रस प्रकृतियाँ दस। स्थावर प्रकृतियाँ दस। गोत्र दो। वेदनीय दो। वर्णादि चार। ये पचहत्तर प्रकृतियाँ आत्मा के किसी गुण का घात नहीं करतीं, इसी लिए अघाती कही जाती हैं। घाती प्रकृतियों के साथ वेदी जाने पर ये घाती के समान फल देती हैं और देशघाती के साथ वेदी जाने पर देशघाती के समान। वे स्वयं अघाती हैं।

(९) पुण्य प्रकृतियाँ— जिन के उदय से जीव को सुख प्राप्त होता है वे पुण्य प्रकृतियाँ कही जाती हैं। पुण्य प्रकृतियाँ बयालीस हैं। ३ देवत्रिक— देवगति, देवानुपूर्वी, देवायु। ३ मनुष्यत्रिक— मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी, मनुष्यायु। १ उच्चगोत्र। १ सातावेदनीय। १० त्रसदशक। ५ शरीर। ३ अंगोपाङ्ग। १ वज्रऋषभनाराच संह-

नन। १ समचतुरस्र संस्थान। ७ पराघातसप्तक–पराघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, अगुरुलघु, तीर्थङ्कर, निर्माण। १ तिर्यञ्चायु। ४ वर्णादि (शुभ)। पञ्चेन्द्रिय जाति।

(१०) पाप प्रकृतियाँ– जिन के उदय से जीव को दुःख प्राप्त होता है वे पाप प्रकृतियाँ हैं। वे बयासी हैं– वज्रऋषभ को छोड़ कर ५ संहनन। समचतुरस्र को छोड़ कर ५ संस्थान। १ अप्रशस्त विहायोगति। १ तिर्यञ्च गति। तिर्यञ्चानुपूर्वी। असाता वेदनीय। नीच गोत्र। उपघात। पञ्चेन्द्रिय को छोड़ कर चार जातियाँ। ३ नरकत्रिक–नरक गति, नरकानुपूर्वी, नरकायु। १० स्थावरदशक। ४ वर्णचतुष्क (अशुभ)। २० देशघाती प्रकृतियाँ। २५ सर्वघाती प्रकृतियाँ। कुल मिला कर पाप प्रकृतियाँ ८२ हैं। वर्णादि चार प्रकृतियाँ शुभ और अशुभ रूप होने से पुण्य तथा पाप दोनों प्रकृतियों में गिनी जाती हैं।

(११) अपरावर्तमान प्रकृतियाँ– जो प्रकृतियाँ अपने बन्ध, उदय या दोनों के लिए दूसरी प्रकृतियों के बन्धादि को नहीं रोकती उन्हें अपरावर्तमान प्रकृतियाँ कहा जाता है। अपरावर्तमान प्रकृतियाँ २९ हैं– ४ वर्णादि। तैजस। कार्मण। अगुरुलघु। निर्माण। उपघात। ४ दर्शनावरणीय। ५ ज्ञानावरणीय। ५ अन्तराय। पराघात। भय। जुगुप्सा। मिथ्यात्व। उच्छ्वास। तीर्थङ्करनाम। ये २९ प्रकृतियाँ अपने बन्ध या उदय के समय दूसरी प्रकृतियों के बन्ध या उदय का विरोध नहीं करतीं। इसी लिए अपरावर्तमान कही जाती हैं।

(१२) परावर्तमान प्रकृतियाँ–जो प्रकृतियाँ अपने बन्ध, उदय या दोनों के लिए दूसरी प्रकृतियों के बन्ध आदि को रोक देती हैं उन्हें परावर्तमान प्रकृतियाँ कहा जाता है। वे इक्यानवे हैं– तीन शरीर–औदारिक, वैक्रियक, आहारक। ३ उपांग। ६ संस्थान। ६ संहनन। ५ जाति। ४ गति। २ विहायोगति। ४ आनुपूर्वी। ३ वेद।

४ हास्यादि–हास्य, रति, अरति, शोक। १६ कषाय। १ उद्योत। १ आतप। २ गोत्र। २ वेदनीय। ५ निद्रादि। १० त्रसदशक। १० स्थावरदशक। ४ आयु।

इन में से १६ कषाय और ५ निद्रादि ध्रुवबन्धिनी हैं। वे बन्ध में दूसरी प्रकृतियों को नहीं रोकतीं किन्तु अपना उदय होने पर सजातीय प्रकृतियों के उदय को रोक देती हैं। स्थिर, अस्थिर, शुभ और अशुभ ये चार प्रकृतियाँ उदय का विरोध नहीं करतीं किन्तु बन्ध करती हैं। बाकी छयासठ प्रकृतियाँ दोनों का विरोध करती हैं।

(पाँचवाँ कर्म ग्रन्थ गाथा १–१६)

८१०– ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी के बारह नाम

(१) ईषत् (२) ईषत्प्राग्भारा (३) तन्वी (४) तनुतरा (५) सिद्धि (६) सिद्धालय (७) मुक्ति (८) मुक्तालय (९) ब्रह्म (१०) ब्रह्मावतंसक (११) लोक प्रतिपूर्ण (१२) लोकाग्र चूलिका।

(समवायांग १२)

८११– जीवादि नव तत्त्वों के ज्ञान से बारह बोलों की परम्परा प्राप्ति

जीव, अजीव आदि के ज्ञान से बारह बोलों की परम्परा प्राप्ति होती है। वे निम्न प्रकार हैं–

(१) जिस समय जीव को, जीव और अजीव इन दोनों तत्त्वों का भली प्रकार ज्ञान हो जाता है उस समय वह सब जीवों की बहु भेद वाली गति आगति को जान लेता है।

(२) जिस समय जीव, सब जीवों की बहु भेद वाली गति आगति को जान लेता है, उस समय वह पुण्य और पाप तथा बन्ध और मोक्ष के स्वरूप को भी जान लेता है।

जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और

मोक्ष ये नव तत्त्व हैं। इन में से जीव और अजीव ये दो ही मूल तत्त्व हैं, शेष सातों का इन्हीं दो में अन्तर्भाव हो जाता है क्योंकि वे इन दोनों की संयोग वियोग रूप अवस्था से ही पैदा होते हैं।

(३) जब जीव पुण्य और पाप तथा बन्ध और मोक्ष को जान लेता है तब वह देवता सम्बन्धी और मनुष्य सम्बन्धी काम भोगों को जान लेता है और उनके स्वरूप को जान कर उनसे विरक्त हो जाता है।

इससे यह बतलाया गया है कि ज्ञान का सार चारित्र है। जिस प्रकार कोई बुद्धिमान् पुरुष बालू आदि असार पदार्थों का संग्रह नहीं करता, इसी प्रकार ज्ञानी पुरुष अपनी आत्मा को विषय विकारों से पृथक् कर लेता है क्योंकि वह उनको असार और दुःखप्रद समझने लगता है।

(४) जिस समय जीव देवता और मनुष्य सम्बन्धी भोगों से विरक्त हो जाता है उस समय वह आन्तरिक और बाह्य संयोगों का परित्याग कर देता है। अन्तरङ्ग संयोग क्रोध, मान, माया और लोभ हैं। बाह्य संयोग माता, पिता, पुत्र, पत्नी आदि का है। वास्तव में ये संयोग ही जीव को बन्धन में डाले हुए हैं और उसके लिए अनेक दुःखों का कारण बने हुए हैं।

(५) जब जीव बाह्य और अन्तरङ्ग संयोगों को छोड़ देता है तब वह द्रव्य और भाव से मुण्डित होकर अनगार वृत्ति (साधुवृत्ति) को प्राप्त करता है।

मुण्डन दो प्रकार का होता है- द्रव्यमुण्डन और भावमुण्डन। केशलुञ्चन आदि द्रव्यमुण्डन है और इन्द्रिय निग्रह करना अर्थात् इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करना भावमुण्डन है।

(६) जिस समय जीव मुण्डित होकर साधुवृत्ति को धारण कर लेता है उस समय वह श्रेष्ठ और उत्कृष्ट संवर रूप धर्म को स्पर्श करता है अर्थात् काया द्वारा संवर धर्म का सम्यक् पालन करता है।

(७) जीव जब संवरधर्म का स्पर्श करता है तब वह मिथ्यात्व दशा में लगे हुए कर्मरज को आत्मा से झाड़ देता है अर्थात् पृथक् कर देता है। कर्म रूपी रज से आत्मा मलिन हो जाता है किन्तु जब संवर रूपी पवित्र जल से आत्मा का स्पर्श होता है तब वह कर्म-रज आत्मा से पृथक् हो जाती है।

(८) जिस समय जीव मिथ्यादृष्टि भाव से सञ्चित किये हुए कर्मरज को आत्मा से दूर कर देता है, उस समय वह लोकालोक को प्रकाशित करने वाले केवल ज्ञान, केवल दर्शन को प्राप्त कर लेता है।

जिस प्रकार सूर्य के सामने बादलों के आ जाने से उसका प्रकाश ढक जाता है, उसी प्रकार मिथ्यादर्शन आदि कारणों से आत्मा के साथ लगे हुए कर्मरज से आत्मा का अनन्तज्ञान और अनन्त-दर्शन ढका हुआ है, उस कर्मरज के हटते ही आत्मा में स्वभाव से ही सदा रहने वाले केवलज्ञान और केवलदर्शन प्रकट हो जाते हैं।

(९) जिस समय जीव सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हो जाता है उस समय वह राग द्वेष का विजेता केवली बनकर लोक और अलोक को जान लेता है। जिस प्रकार हथेली पर रखे हुए आंवले को हम लोग स्पष्ट रूप से देख लेते है उसी प्रकार केवली लोकालोक को जानते और देखते हैं।

(१०) जिस समय केवलज्ञानी लोकालोक को जान लेते हैं, उस समय वे मन, वचन और काया रूपी योगों का निरोध कर शैलेशी अवस्था को प्राप्त करते हैं अर्थात् पर्वत की तरह निश्चल और स्थिर परिणाम वाले बन जाते हैं।

(११) जिस समय केवली योगों का निरोध कर सुमेरु पर्वत की भाँति स्थिर एवं निश्चल हो जाते हैं उस समय भवोपग्राही कर्मों का क्षय करके कर्मरज से रहित होते हुए सिद्ध गति को प्राप्त करते हैं। तात्पर्य यह है कि ज्ञानावरणीयादि चार घाती कर्मों के क्षय

से तो उनको केवलज्ञान और केवलदर्शन आदि की प्राप्ति होती है। बाकी बचे हुए आयु कर्म आदि चार अघाती कर्मों को क्षय करके वे सिद्धगति को प्राप्त कर लेते हैं।

(१२) जिस समय जीव कर्मक्षय करके (कर्मरज से रहित हो कर) सिद्ध गति को प्राप्त करते हैं उस समय वे लोक के मस्तक पर जा कर विराजते हैं और शाश्वत रूप से सिद्ध हो जाते हैं।

(दशवैकालिक अध्ययन ४, गाथा १४ से २५)

८०८— बारह भावना (अनुप्रेक्षा)

'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयोः', 'यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी' आदि उक्तियों से यह जाना जा सकता है कि मानसिक क्रियाओं का हमारे जीवन पर कितना अधिक असर होता है। हमारे अच्छे और बुरे विचार हमें अच्छा और बुरा बना देते हैं। अतएव अपना विकास और उत्थान चाहने वाले व्यक्ति को तदनुकूल विचार रखने चाहिए। मोक्षाभिलाषी आत्मा के लिए आवश्यक है कि वह ज्ञान दर्शन चारित्र की वृद्धि करने वाली बातों पर विचार करे, उन्हीं का चिन्तन, मनन और ध्यान करे। उनके मार्गप्रदर्शन के लिये शास्त्रकारों ने धर्म भाव बढ़ाने वाली आध्यात्मिक भावनाओं का वर्णन किया है। मुमुक्षु की जीवन शुद्धि के लिये विशेष उपयोगी बारह विषयों को चुन कर शास्त्रकारों ने उनके चिन्तन और मनन का उपदेश दिया है। इससे यह स्पष्ट है कि यहाँ भावना से सामान्य भावना इष्ट नहीं है परन्तु विशेष शुभ भावना अभिप्रेत है।

भावना की व्याख्या यों की जा सकती है—संवेग, वैराग्य एवं भावशुद्धि के लिये आत्मा एवं जड़ तथा चेतन पदार्थों के संयोग वियोग पर गहरे उतर कर विचार करना। इस विचार का आत्मा पर गहरा संस्कार हो और धार्मिक अनुष्ठान की योग्य भूमिका

तैयार हो इस लिये मोक्षाभिलाषी आत्मा इसका वारवार चिन्तन करते हैं और इसीलिये इसका नाम भावना रखा है। वाचक मुख्य श्री उमास्वाति ने भावना को अनुप्रेक्षा के नाम से कहा है। अनुप्रेक्षा का अर्थ आत्मावलोकन है।

भावनाएं मुमुक्षु के जीवन पर कैसा असर करती हैं यह बात भरत चक्रवर्ती, अनाथी मुनि, नमिराजर्षि आदि महापुरुषों के जीवन का अध्ययन करने से जानी जा सकती है। भावनाओं ने इनके जीवन की दिशा को ही वदल दिया, उन्हें वहिरात्मा से अन्तरात्मा वना दिया। चित्त शुद्धि के लिये एवं आध्यात्मिक विकास की ओर उन्मुख करने के लिए ये भावनाएं परम सहायक सिद्ध हुई हैं।

वारह भावनाएं ये हैं-(१)अनित्य भावना (२)अशरण भावना (३) संसार भावना (४) एकत्व भावना (५) अन्यत्व भावना (६) अशुचि भावना (७) आश्रव भावना (८) संवर भावना (९) निर्जरा भावना (१०) लोक भावना (११) वोधिदुर्लभ भावना (१२) धर्म भावना।

(१) अनित्य भावना- संसार अनित्य है। यहाँ सभी वस्तुएं परिवर्तनशील एवं नश्वर हैं। कोई भी वस्तु शाश्वत दिखाई नहीं देती। जो पदार्थ सुवह दिखाई देते हैं, सन्ध्या समय उनके अस्तित्व का पता नहीं मिलता। जहाँ प्रभात समय मंगल गान हो रहे थे, शाम को वहीं रोना पीटना सुनाई देता है। जिस व्यक्ति का सुवह राज्याभिषेक हो रहा था, शाम को उसकी चिता का धूँआ दिखाई देता है। यह जीवन भङ्गुरता पद पद पर देखते हुए भी मानव अपने को अमर समझता है और ऐसी प्रवृत्तियाँ करता है मानो उसे यहाँ से कभी जाना ही न हो, यह उसकी कितनी अज्ञानता है। यह शरीर रोगों का घर है, यौवन के साथ बुढ़ापा जुड़ा हुआ है, ऐश्वर्य विनाशशील है और जीवन के साथ मृत्यु है। महात्मा पुरुष

उन आत्माओं पर दया प्रकट करते हैं, जिनका शरीर क्षीण होता जाता है पर आशा तृष्णा बढ़ती रहती है। जिनका आयु बल घटता जाता है परन्तु पाप बुद्धि बढ़ती जाती है। जिनमें प्रतिदिन मोह प्रबल होता जाता है परन्तु आत्म कल्याण की भावना जागृत नहीं होती। वस्तुतः संसार में कोई भी ऐसी चीज नहीं है जिस पर सदा के लिये विश्वास किया जा सके। यौवन जल बुद्बुद् की तरह क्षणिक है, लक्ष्मी सन्ध्या के बादलों की तरह अस्थिर है। स्त्री परिवार अक्षिनिमेष की तरह क्षणस्थायी हैं, स्वामित्व स्वप्न तुल्य है। यों संसार के सभी पदार्थ विनश्वर हैं। संयोग वियोग के लिए है। अनित्य भावना पर उपाध्याय श्रीविनयविजयजी का एक श्लोक यहाँ उद्धृत किया जाता है:-

आयुर्वायुतरत्तरङ्गतरलं लग्नापदः सम्पदः।
सर्वेऽपीन्द्रियगोचराश्च चटुलाः सन्ध्याभ्ररागादिवत्॥
मित्र स्त्री स्वजनादि संगम सुखं स्वप्नेन्द्रजालोपमं।
तत्किं वस्तु भवे भवेदिह मुदामालम्बनं यत्सताम्॥

भावार्थ- आयु वायु से प्रेरित तरंगों की तरह चंचल है, सम्पत्ति के साथ आपत्तियाँ रही हुई हैं। सन्ध्याकालीन बादलों की लालिमा की तरह सभी इन्द्रियों के विषय अस्थिर हैं। मित्र, स्त्री और स्व-जन वर्ग का सम्बन्ध स्वप्न एवं इन्द्रजाल की तरह क्षणस्थायी है। अब संसार में ऐसी कौन सी वस्तु है जो सज्जनों के आनन्द का आधार हो। जिसे प्राप्त करके चिरशान्ति मिल सके।

इस प्रकार अनित्यता का विचार करने से सभी वस्तुओं से मोह हट जाता है एवं तद्विषयक आसक्ति कम होती जाती है। जब वस्तु का स्वभाव ही विनाश है फिर उसके लिए शोक करने का कोई कारण नहीं है। मुरझाई हुई फूलों की माला का त्याग करने में खेद जैसी क्या बात है।

(२) अशरण भावना– मानव आत्म रक्षा के लिए अपने शरीर को समर्थ और बलवान बनाता है। माता, पिता, भाई, पुत्र, स्त्री आदि स्वजन एवं मित्रों से आपत्तिकाल में सहायता की आशा रखता है। सुख पूर्वक जीवन व्यतीत हो इसलिए दुःख उठाकर धन का संचय करता है। अपनी रक्षा के लिए कोई प्रयत्न उठा नहीं रखता परन्तु रोग और आतंक आने पर कोई भी उसकी रक्षा नहीं कर सकते। उत्तराध्ययन सूत्र के महानिर्ग्रन्थीय अध्ययन में अनाथी मुनि मगधदेश के अधिपति महाराज श्रेणिक को, जो अपने को सर्वविध समर्थ समझते थे और अनाथी मुनि के नाथ बन रहे थे, सम्बोधन करते हुए कहते हैं–

अप्पणा वि अणाहोऽसि, सेणिया! मगहाहिवा।
अप्पणा अणाहो सन्तो, कहं नाहो भविस्ससि॥

अर्थात्– मगधदेश के अधिपति महाराज श्रेणिक! तुम स्वयं अनाथ हो। स्वयं अनाथ होकर तुम किस प्रकार मेरे नाथ हो सकोगे?

मेरे हाथी घोड़े हैं, दास दासी हैं। मेरे नगर हैं, अन्तःपुर है। मनुष्य सम्बन्धी भोग मेरे अधीन हैं। मेरा शासन चलता है और मेरे पास ऐश्वर्य है। ऐसी सभी मनोरथों को पूरा करने वाली सम्पत्ति के होते हुए मैं अनाथ कैसे कहा जा सकता हूँ? महाराज श्रेणिक के यह कहने पर अनाथी मुनि ने अनाथता (अशरणता) का स्वरूप इस तरह बताया–

महाराज! प्रसिद्ध कोशाम्बी नगरी में मेरे पिता रहते थे। उनके पास असीम धन सम्पत्ति थी। यौवन अवस्था में मेरी आँखों में प्रबल वेदना हो गई। सारे शरीर में आग लग गई हो ऐसा प्रचण्ड दाह होने लगा। वह वेदना परम दारुण थी। कमर, छाती और सिर सभी जगह दर्द होता था। इस रुग्णावस्था में वैद्यक शास्त्र में प्रवीण, जड़ी, बूटी, मूल और मन्त्र विद्या में विशारद, शास्त्रविचक्षण

चिकित्सा करने में दक्ष, एक एक से बढ़कर वैद्य बुलाए गए। उन्होंने शास्त्रोक्त चिकित्सा की, बहुत परिश्रम किया परन्तु वे मुझे वेदना से मुक्त न कर सके। मेरे पिता मेरे लिए सभी धन सम्पत्ति देने को तैयार थे परन्तु वे दुःख से मेरी रक्षा न कर सके। पुत्र शोक से दुखित मेरी ममता भरी माँ रोती थी परन्तु वह भी कुछ न कर सकी। मेरे सगे छोटे और बड़े भाई भी थे परन्तु वे भी मुझे दुःख से न बचा सके। छोटी बड़ी सगी बहिनें भी अपनी विवशता को कोसने के सिवा कुछ न कर सकीं। मेरी पत्नी, जो मुझ से बड़ा प्रेम करती थी और पतिव्रता थी, मेरे पास बैठी रोया करती थी। उसने खाना, पीना, स्नान, गन्ध, माल्य, विलेपन आदि सभी छोड़ दिए। क्षण भर के लिए भी वह मेरे पास से हटती न थी परन्तु वह भी कुछ न कर सकी। मेरी वेदना ज्यों की त्यों रही। चाहते हुए भी सभी स्वजन मेरी पीड़ा को कम न कर सके। राजन्! बस, यही मेरी अनाथता है और यही हाल सभी जीवात्माओं का है। नाथता का निरा अभिमान है।

रोग से जिस प्रकार प्राणी की कोई रक्षा नहीं कर सकता उसी प्रकार काल के आगे भी किसी का वश नहीं चलता। तीनों लोक में इसका अखंड राज्य है। देवेन्द्र, असुरेन्द्र, तीर्थङ्कर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव जैसे समर्थ आत्मा भी काल के पंजे से अपने को नहीं बचा सके। काल से बचने के सभी प्रयत्न बेकार सिद्ध हुए हैं। फिर सामान्य प्राणी का स्वजन, धन और शारीरिक बल आदि का अभिमान करना और अपने को उनसे समर्थ और सुरक्षित समझना कितना अविचार पूर्ण है। सिंह के पंजे में फंसे हुए मृगशावक की तरह सभी प्राणी काल के आगे विवश हैं। उत्तराध्ययन सूत्र से इसी आशय की एक गाथा यहाँ दी जाती है—

जहेह सीहोव्व मियं गहाय, मच्चुं णरं णेइ हु अंतकाले।
न तस्स माया व पिया व भाया कालम्मि तम्मं सहरा भवन्ति

भावार्थ– जैसे हिरण को पकड़ कर सिंह ले जाता है उसी तरह अन्त समय में मृत्यु मनुष्य को ले जाती है। उसके माता, पिता, भाई, आदि में से कोई भी उसकी सहायता नहीं करता।

इस प्रकार संसार में कोई भी वस्तु शरण रूप नहीं है। केवल एक धर्म अवश्य शरण रूप है। मरने पर भी यह जीव के साथ रहता है और सांसारिक रोग, व्याधि, जरा, मृत्यु आदि के दुःखों से प्राणी की रक्षा करता है। यही बात स्वर्गीय शतावधानी पण्डित मुनि श्री रत्नचन्द्रजी स्वामी ने अपने भावना शतक में यों कही है–

संसारेऽस्मिन् जनिमृतिजरातापतप्ता मनुष्याः।
सम्प्रेक्षन्ते शरणमनघं दुःखतो रक्षणार्थम्।
नो तद्द्रव्यं न च नरपतिर्नापि चक्री सुरेन्द्रो।
किन्त्वेकोयं सकलसुखदो धर्म एवास्ति नान्यः॥

भावार्थ– इस संसार में जन्म मरण और जरा के ताप से संतप्त मनुष्य अपनी रक्षा करने के लिए निर्दोष शरण की ओर ताकते हैं परन्तु धन, राजा, चक्रवर्ती और इन्द्र कोई भी रोगादि से जीव को नहीं बचा सकते। सकल सुख के देने वाले एक धर्म के सिवाय दूसरा कोई भी इस संसार में शरण रूप नहीं है।

धर्ममात्र सत्य है और जीव के लिए शरण (आधार भूत) है– इस संस्कार को दृढ़ करने के लिए सांसारिक वस्तुओं में अशरणता का विचार करना चाहिए। जिस जीव का हृदय अशरण भावना द्वारा भावित है वह किसी से सुख और रक्षा की आशा नहीं करता। धर्म पर उसकी दृढ़ श्रद्धा होजाती है।

(३) संसार भावना–इस संसार में जीव अनादि काल से जन्म मरण आदि विविध दुःखों को सह रहा है। कर्मवश परिभ्रमण करते हुए उसने लोकाकाश के एक एक प्रदेश को अनन्ती वार व्याप्त किया परन्तु उसका अन्त न आया। नरक गति में जाकर इस जीव

को वहाँ होने वाली स्वाभाविक शीत उष्ण वेदना सहन करनी पड़ती है, परमाधामी द्वारा दिए गए दुःख सहता है और परस्पर लड़ कर भी कष्ट उठाता है। क्षुधा, प्यास, रोग, वध, बन्धन ताड़न भारारोपण आदि तिर्यञ्च गति के दुःख प्रत्यक्ष देखे जाते हैं। विविध सुखों की सामग्री होते हुए भी देव शोक, भय, ईर्ष्या आदि दुःखों से दुखित हैं। मनुष्य गति के दुःख तो यह मानव स्वयं अनुभव कर रहा है। गर्भ से लेकर जरा यावत् मृत्यु पर्यन्त मनुष्य दुखी है। कोई रोगपीड़ित है तो कोई धन जन के अभाव में चिन्तित है। कोई पुत्र स्त्री के विरह से संतप्त है तो दूसरा दारिद्रय दुःख से दबा हुआ है। संसार में एक जगह भीषण युद्ध चल रहा है तो दूसरी जगह रोग फैले हुए हैं। एक जगह वृष्टि न होने से जीव त्राहि त्राहि करते हैं तो दूसरी जगह अतिवृष्टि से हाहाकार मचा हुआ है। घर घर कलह का अखाड़ा हो रहा है। स्वार्थवश भाई भाई का खून पीने के लिए तैयार है। माता पिता सन्तान को नहीं चाहते, पति पत्नी एक दूसरे के प्राणों के प्यासे हैं। इस तरह सारा संसार दुःख और द्वन्द्व से पूर्ण है, कहीं भी शान्ति दिखाई नहीं देती।

यह संसार एक रंगमञ्च है और जीव नट है। कर्म से प्रेरित यह जीव नाना प्रकार के शरीर धारण करता है। यह जीव पिता होकर भाई, पुत्र और पौत्र हो जाता है। माता बन कर स्त्री और पुत्री हो जाता है। स्वामी दास बन जाता है और दास स्वामी बन जाता है। यह संसार की विचित्रता है। एक ही जन्म में राजा से रंक और रंक से राजा होते हुए भी कितने ही प्राणी देखे जाते हैं। जीव इस संसार के सभी क्षेत्रों में रहा है, सभी जाति और कुलों में इसने जन्म लिया और प्रत्येक जीव के साथ नाता जोड़ा है। अनन्त काल से परिभ्रमण करते हुए इसे कहीं विश्राम नहीं मिला।

संसार में कोई सुख नहीं है इस आशय को बताते हुए स्वर्गीय

शतावधानी पण्डित मुनि श्री रत्नचन्द्र जी स्वामी ने भावनाशतक में कहा है—

तनोर्दुःखं भुंक्ते विविधगदजं कश्चन जनः ।
तदन्यः पुत्र स्त्री विरह जनितं मानसमिदम् ।
परो दारिद्र्योत्थं विषसमविपत्तिं च सहते ।
न संसारे कश्चित्सकलसुखभोक्तास्ति मनुजः ॥
क्वचिद्राज्ञां युद्धं प्रचलति जनोच्छेद जनकं ।
क्वचित् क्रूरा मारी बहुजन विनाशं विदधती ।
क्वचिद् दुर्भिक्षेण क्षुधित पशुमर्त्यादिमरणं ।
विपद्वह्निज्वालाज्वलितजगति क्वास्ति शमनम् ॥

भावार्थ—कोई पुरुष विविध रोगों से पैदा होने वाले शारीरिक कष्ट को भोगता है तो दूसरा पुत्र, स्त्री आदि के विरह जनित मानसिक दुःख से दुखी है। कोई दरिद्रता के दुःख और विष जैसी विपत्ति को सहता है। संसार में ऐसा कोई मनुष्य दिखाई नहीं देता जो सभी सुखों का भोगने वाला हो।

कहीं पर जनसंहारक राजाओं का युद्ध चल रहा है और कहीं पर अनेक मनुष्यों का नाश करती हुई क्रूर मारी फैली हुई है। कहीं पर दुष्काल पड़ा हुआ है और भूख के मारे पशु और मनुष्य मर रहे हैं। विपत्ति रूप अग्नि की ज्वाला से जलते हुए इस संसार में शान्ति कहाँ है? अर्थात् कहीं भी शान्ति नहीं है।

इस प्रकार संसार भावना का चिन्तन करने से आत्मा को संसार में मोह नहीं होता। संसार को दुःख द्वन्द्व मय समझ कर वह निर्वेद प्राप्त करता है एवं संसार के भय का नाश करने वाले और वास्तविक सुख देने वाले जिन वचनों की ओर उन्मुख होता है।

(४) एकत्व भावना—यह आत्मा अकेला उत्पन्न होता है और अकेला मरता है। कर्मों का सञ्चय भी यह अकेला करता है और उन्हें

भोगता भी अकेला ही है। स्वजन मित्र आदि कोई भी व्याधि, जरा और मृत्यु से पैदा होने वाले दुःख दूर नहीं कर सकते। वस्तुतः स्वजन कोई भी नहीं है। मृत्यु के समय स्त्री विलाप करती हुई घर के कोने में बैठ जाती है, स्नेह और ममता की मूर्ति माता भी घर के दरवाजे तक शव को पहुंचा देती है। स्वजन और मित्र समुदाय श्मशान तक साथ आते हैं, शरीर भी चिता में आग लगने पर भस्म हो जाता है परन्तु साथ कोई नहीं जाता। मानव अपने प्रियजनों के लिए बड़े बड़े पापकार्य करता है, उनके सुख और आनन्द के लिए दूसरों पर अन्याय और अत्याचार करते उसे संकोच नहीं होता। पापकर्म जनित धनादि सुख सामग्री को प्रियजन आनन्द पूर्वक भोगते हैं और उसमें अपना हक समझते हैं, किन्तु पापकर्मों के फल भोगने के समय उनमें से कोई भी साथ नहीं देता और पापकर्ता को अकेले ही उनका दुःखमय फल भोगना पड़ता है। जन्म और मृत्यु के समय आत्मा की एकता को प्रत्यक्ष करते हुए भी जीव पर-वस्तुओं को अपनी समझता है यह देख कर ज्ञानी पुरुषों को बड़ा आश्चर्य होता है। सुख के साधन रूप पाँच इन्द्रियों के विषयों में ममत्व रखना, उनका संयोग होने पर हर्षित होना और वियोग होने पर दुखी होना मोह की विडम्बना मात्र है। एकत्व भावना का वर्णन करते हुए शुभचन्द्राचार्य कहते हैं—

एकः स्वर्गी भवति विबुधः स्त्रीमुखाम्भोज भृंगः।
एकः श्वाभ्रं पिबति कलिलं छिद्यमानैः कृपाणैः॥
एकः क्रोधाद्यनलकलितः कर्म बध्नाति विद्वान्।
एकः सर्वावरणविगमे ज्ञानराज्यं भुनक्ति॥

भावार्थ—यह जीव अकेला ही अप्सराओं के मुख रूपी कमल के लिये भ्रमर रूप स्वर्ग का देवता बनता है। अकेला ही तलवारों से छेदन किया गया नरक में खून पीता है। क्रोधादि रूप आग

से जलता हुआ अकेला ही यह जीव कर्म बाँधता है और सभी आवरणों के नाश होने पर वह ज्ञानी होकर ज्ञान रूप राज्य का भोग भी अकेला ही करता है।

परस्त्री को पत्नी समझना जिस प्रकार भयावह है उसी प्रकार परभावों में ममत्व करना भी दुःखों को आमन्त्रण देना है। परभावों में स्वत्व और परत्व के भाव आने से ही जीव में राग द्वेष बढ़ते हैं जो कि संसार के मूल हैं। इस भावना के चिन्तन से परभावों में ममता नहीं रहती और राग द्वेष की मात्रा घटती है।

(५) अन्यत्व भावना– मैं कौन हूँ ? माता पिता आदि मेरे कौन हैं ? इनका सम्बन्ध मेरे साथ कैसे हुआ ? इसी तरह हाथी, घोड़े, महल, मकान, उद्यान, वाटिका तथा अन्य सुख ऐश्वर्य की सामग्री मुझे कैसे मिली ? इस प्रकार का चिन्तन इस भावना का विषय है। शरीर और आत्मा भिन्न हैं। शरीर विनश्वर है, आत्मा शाश्वत है। शरीर पौद्गलिक है, आत्मा ज्ञान रूप है। शरीर मूर्त है, आत्मा अमूर्त है। शरीर इन्द्रियों का विषय है, आत्मा इन्द्रियातीत है। शरीर सादि है, आत्मा अनादि है। इनका सम्बन्ध कर्म के वश हुआ है। इस लिये शरीर को आत्मा समझना भ्रान्ति है। रोगादि से शरीर के कृश होने पर शोक न करते हुए यह विचार करना चाहिये कि शरीर के कृश होने से यावत् नष्ट होने से आत्मा का कुछ नहीं बिगड़ता। आत्मा नित्य एवं ज्योति स्वरूप है। जन्म, जरा, मृत्यु, रोग, भोग, ह्रास और वृद्धि आत्मा के नहीं होते, ये तो कर्म के परिणाम हैं। इसी प्रकार माता, पिता, सास, ससुर, स्त्री, पुत्र आदि भी आत्मा के नहीं हैं, आत्मा भी इनका नहीं है। सन्ध्या समय बसेरे के लिये वृक्ष पर जिस प्रकार पक्षी आ मिलते हैं और सुबह बिखर जाते हैं। इसी प्रकार स्वजनादि का संयोग भी अल्प काल के लिये होता है। प्रत्येक जन्म में इस आत्मा के साथ दूसरी

अनेक आत्माओं का सम्बन्ध होता रहा है और उनसे यह आत्मा अलग भी होता रहा है। संयोग के साथ वियोग है- यह विचार कर स्वजन सम्बन्धियों में ममता न रखनी चाहिये। उपाध्याय श्री विनयविजय जी अन्यत्व-भावना का वर्णन करते हुए कहते हैं-

यस्मै त्वं यतसे बिभेषि च यतो यत्रानिशं मोदसे।
यद्यच्छोचसि यद्यदिच्छसि हृदा यत्प्राप्य पेप्रीयसे।
स्निग्धो येषु निजस्वभावममलं निर्लोठ्य लालप्यसे।
तत्सर्वं परकीयमेव भगवन्नात्मन्न किञ्चित्तव ॥

भावार्थ- जिसके लिए तू प्रयत्न करता है, जिससे तू डरता है, जिसमें तू सदा प्रसन्न रहता है, जिसका तू शोक करता है, जिसे तू हृदय से चाहता है, जिसे पाकर तू खूब प्रसन्न हो जाता है, जिनमें आसक्ति वाला होकर तू अपने पवित्र स्वभाव को कुचल देता है और पागल की तरह बकने लगता है। हे आत्मन्! यह सभी पराया है, तेरा कुछ भी नहीं है।

परकीय पदार्थों में ममत्व भाव धारण कर आत्मा उनके उत्थान और पतन में अपना उत्थान और पतन समझने लगता है एवं अपना कर्तव्य भूल जाता है। यह अवसर न आवे और आत्मा अपने शुद्ध स्वरूप का चिन्तन कर उसे विकास की ओर अग्रसर करे यही इस भावना का उद्देश्य है।

(६) अशुचि भावना- यह शरीर रज और वीर्य जैसे घृणित पदार्थों के संयोग से बना है। माता के गर्भ में अशुचि पदार्थों के आहार के द्वारा इसकी वृद्धि हुई है। उत्तम, स्वादिष्ट और रसीले पदार्थों का आहार भी इस शरीर में जाकर अशुचि रूप से परिणत होता है। नमक की खान में जो पदार्थ गिरता है जैसे वह नमक बन जाता है इसी तरह जो भी पदार्थ इस शरीर के संयोग में आते हैं वे सब अशुचि (अपवित्र) हो जाते हैं। आँख, नाक, कान आदि

नव द्वारों से सदा इस शरीर से मल झरता रहता है। साबुन से धोने पर भी जैसे कोयला अपने रंग को नहीं छोड़ता, कपूर आदि सुगंधित पदार्थों से वासित भी ल्हशुन अपनी दुर्गन्ध नहीं छोड़ता इसी तरह इस शरीर को पवित्र और निर्मल बनाने के लिये कितने ही साधनों का प्रयोग क्यों न किया जाय परन्तु वह अपने अशुचि स्वभाव का त्याग नहीं करेगा बल्कि निर्मल बनाने वाले साधनों को भी मलिन बना देगा। यदि शान्त और स्थिर बुद्धि से विचार किया जाय तो यह स्पष्ट हो जायगा कि शरीर का प्रत्येक अवयव घृणा जनक है। यह रोगों का घर है। सुन्दर, हृष्ट पुष्ट युवक शरीर बुढ़ापे में कैसा जर्जरित हो जाता है यह भी विचारणीय है। अशुचि भावना का वर्णन करते हुए ज्ञानार्णव में शुभचन्द्राचार्य कहते हैं-

अजिन पटल गूढं पञ्जरं कीकसानाम्।
कुथित कुणप गन्धैः पूरितं मूढ ! गाढम्॥
यम वदन निषण्णं रोग भोगीन्द्र गेहम्।
कथमिह मनुजानां प्रीतये स्याच्छरीरम्॥

भावार्थ- हे मूर्ख ! यह मानव शरीर चर्म पटल से आच्छादित हड्डियों का पिंजर है। सड़ी हुई लाश की दुर्गन्धि से भरा हुआ है। यह मौत के मुंह में रहा हुआ है और रोग रूपी सर्पों का घर है। ऐसा यह शरीर मनुष्यों के प्रीति योग्य कैसे हो सकता है ? इस प्रकार शरीर को अशुचि मान कर इससे मोह घटाना चाहिये। मानव शरीर को सुन्दर, निर्मल और बलवान् समझना भ्रान्ति मात्र है। आत्मभाव की ओर उपेक्षा कर निसर्ग मलिन इस शरीर के पोषण में सर्व शक्तियों को लगा देना मनुष्य की सब से बड़ी अज्ञानता कही जा सकती है। अखिल विश्व में धर्म ही सत्य है, पवित्र है, दोषों को दूर कर वास्तविक सुख का देने वाला है। इस प्रकार की भावना से शरीर के प्रति निर्वेद होता है और जीव आत्म-

भाव के प्रति उन्मुख होता है।

(७) आश्रव भावना–मन, वचन, काया के शुभाशुभ योग द्वारा जीव जो शुभाशुभ कर्म ग्रहण करते हैं उसे आश्रव कहते हैं। जिस प्रकार चारों ओर से आते हुए नदी, नालों और झरनों द्वारा तालाब भर जाता है इसी प्रकार आश्रव द्वारा आत्मा में कर्म रूप जल आता है और इस कर्म से आत्मा व्याकुल और मलिन हो जाता है। पाँच अव्रत, पाँच इन्द्रियाँ, चार कषाय, तीन योग और पच्चीस क्रिया इस प्रकार आश्रव के ४२ भेद बतलाए गए हैं। प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन और परिग्रह इन से जीव यहीं अनेक प्रकार के वध, वन्धन, ताड़नादि दुःख पाते हैं। एक एक इन्द्रिय के विषयों में आसक्त हुए प्राणी भी प्राणान्त कष्ट भोगते देखे जाते हैं। स्पर्श इन्द्रिय के वश हुआ महान् शक्तिशाली दुर्दान्त हाथी अपनी स्वतन्त्रता खोकर मनुष्य के अधीन हो जाता है और अंकुशादि की वेदना को सहता है। रसना इन्द्रिय के विषयों में आसक्त मत्स्य कांटे में फंस कर अपने प्राण खोता है। सुगन्ध का पिपासु भ्रमर सन्ध्या समय कमल में बन्द हो जाता है। रूप लोलुप पतंगिया दीपक में अपने प्राण देता है। शब्द विषयक राग वाला हिरण शिकारी का निशाना बन कर अकाल मृत्यु से मरता है। क्रोध, मान, माया और लोभ रूप कषायों से दूषित प्राणी यहीं पर अपनी और पराई शान्ति का नाश करता है, न वह सुख से जीता है और न दूसरों को ही जीने देता है और कर्म बाँध कर नरकादि गतियों में दुःख भोगता रहता है। यही बात योग और क्रिया के विषय में भी समझना चाहिए। यद्यपि शुभ योग पुण्य कर्म के हेतु हैं फिर भी वे जीव को संसार में रोकते ही हैं। सोने की जंजीर भी लोहे की जंजीर की तरह प्राणी की स्वतन्त्रता का अपहरण करती ही है। इस प्रकार आश्रव भावना का चिन्तन करने से जीव अव्रत आदि

का कुपरिणाम समझ लेता है और इनका त्याग कर व्रतों को ग्रहण करता है, इन्द्रिय और कषायों का दमन करता है, योग का निरोध करता है एवं क्रियाओं से निवृत्त होने का प्रयत्न करता है।

(८) संवर भावना– जिन क्रियाओं से कर्मों का आना रुक जाता है वह संवर है। जिस प्रकार छिद्र वाली नाव में पानी आता है और पानी भरने पर उसमें रहे हुए सभी प्राणी डूब जाते हैं। छिद्रों के रोक देने पर नाव में पानी आना रुक जाता है और यात्रा निर्विघ्न पूरी हो जाती है। इसी प्रकार संवर क्रिया द्वारा नये कर्मों का आगमन रुक जाने पर आत्मा निर्विघ्न मुक्ति की ओर बढ़ता रहता है एवं अन्त में अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है। द्रव्य संवर और भाव संवर के भेद से संवर के दो भेद हैं। आश्रव से जो कर्म ग्रहण होता है उसका देश और सर्व रूप से छेदन करना द्रव्य संवर है। भव हेतुक क्रिया का त्याग करना भाव संवर है। समिति, गुप्ति, यतिधर्म, ध्यान, भावना, परिषह सहन और चारित्र ये सभी आते हुए कर्मों को रोक देते हैं, इस लिए द्रव्य संवर हैं। संसार सम्बन्धी क्रिया का ही त्याग कर देना भाव संवर है। वास्तविक सुख के गवेषक एवं परम पुरुषार्थ रूप साध्य वाले आत्मा के लिए तो संसार निमित्त क्रिया से विरत होना अनिवार्य है। आत्म विकास में संवर का स्थान बड़े महत्त्व का है। इसके लिए अनेक प्रवृत्तियों को रोकना पड़ता है और उसका उपाय संवर की विभिन्न क्रियाएं हैं। यदि संसार के प्रति उदासीनता हो, त्याग भाव के प्रति सच्ची प्रीति हो, आत्मविकास की सच्ची लगन हो तो उक्त क्रियाओं द्वारा सभी प्रकार के आश्रव पर विजय प्राप्त करना सहज है।

इस प्रकार संवर भावना का चिन्तन करने वाला आत्मा संवर क्रियाओं में रुचि रखने लगता है और संवर क्रियाओं का आचरण करता हुआ सिद्धिपद का अधिकारी होता है।

(९) निर्जरा भावना– संवर भावना द्वारा जीव नवीन कर्मों को रोकने वाली क्रियाओं का चिन्तन करता है परन्तु जो कर्म आत्मा के साथ लगे हुए हैं उन्हें कैसे नष्ट किया जाय, यह चिन्तन इस भावना द्वारा किया जाता है। संसार की हेतुभूत कर्म सन्तति का क्षय निर्जरा है। यह निर्जरा सकाम और अकाम के भेद से दो प्रकार की है। 'कर्मों का क्षय हो' इस विचार से तप द्वारा उनका क्षय करना सकाम निर्जरा है एवं फल देकर कर्मों का स्वभावतः अलग हो जाना अकाम निर्जरा है। कर्म का पाक स्वभाव और उपाय दोनों प्रकार से होता है। जैसे आम डाल पर स्वतः पक जाता है और पलाल आदि में रख कर प्रयत्न पूर्वक भी पकाया जाता है। यह निर्जरा अनशन, ऊनोदरी, भिक्षाचर्या, रसपरित्याग, कायाक्लेश, प्रतिसंलीनता, प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, ध्यान और व्युत्सर्ग रूप कारणों के भेद से बारह प्रकार की है। ये बारह भेद तप के नाम से भी प्रसिद्ध हैं। जैसे अग्नि सोने के मैल को जला कर उसे निर्मल बना देती है इसी प्रकार यह तप रूप अग्नि आत्मा के कर्म मल को नष्ट कर उसके शुद्ध स्वरूप को प्रकट कर देती है। पाप रूपी पहाड़ को चूर्ण करने के लिए यह वज्ररूप है और पाप रूपी सघन घन श्रेणी को बिखेरने के लिए यह आँधी रूप है। इस तप का महा प्रभाव है। अर्जुनमाली और दृढ़प्रहारी जैसे तीव्रकर्म वाले आत्माओं ने भी तप का आचरण कर पाप पुञ्ज का नाश कर दिया और सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हुए। इस तप की स्तुति करते हुए उपाध्याय श्री विनयविजयजी कहते हैं–

बाह्येनाभ्यन्तरेण प्रथितबहुभिदा जीयते येन शत्रु-
श्रेणी बाह्यान्तरङ्गा भरतनृपतिवद् भावलब्धद्रढिम्ना।
यस्मात्प्रादुर्भवेयुः प्रकटितविभवाः लब्धयः सिद्धयश्च
वन्दे स्वर्गापवर्गार्पणपटु सततं तत्तपो विश्ववन्द्यम्॥

भावार्थ–जिस तप के बाह्य तथा आभ्यन्तर अनेक भेद प्रसिद्ध हैं। भावना से प्राप्त दृढ़ता वाले जिस तप के द्वारा भरतचक्री की तरह बाह्य एवं आभ्यन्तर शत्रु जीते जाते हैं, जिसके प्रभाव से वैभव, लब्धियों एवं सिद्धियों की प्राप्ति होती है। जो स्वर्ग और मोक्ष देने में समर्थ है ऐसे विश्व वन्द्य तप को नमस्कार करता हूँ।

इस प्रकार निर्जरा के गुणों का विचार करने से आत्मा को इसके प्रति रुचि होती है। वह कर्म निर्जरा के लिए प्रवृत्ति करता है और कर्म क्षय कर शुद्ध, बुद्ध और मुक्त होता है।

(१०) लोक भावना– लोक के संस्थान का विचार करना लोक भावना है। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, काल, जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय ये छः द्रव्य रूप लोक हैं। यह लोक किसी का बनाया हुआ नहीं है। इसका रक्षक और संहारक भी कोई नहीं है। यह अनादि और शाश्वत है। जीव और अजीव से व्याप्त है। पर्याय की अपेक्षा इसमें वृद्धि और ह्रास देखे जाते हैं। लोक का प्रमाण चौदह राजू है। इसके बीच में मेरु पर्वत है। लोक के तीन विभाग हैं– ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और मध्यलोक। मध्यलोक में प्रायः तिर्यञ्च और मनुष्य रहते हैं, अधोलोक में प्रायः नारकी जीव रहते हैं और ऊर्ध्वलोक में प्रायः देवता रहते हैं। लोक के अग्र भाग में सिद्धात्मा रहते हैं। लोक का विस्तार मूल में सात राजू है फिर घटते घटते मध्य में एक राजू है और पुनः बढ़ते बढ़ते ब्रह्मलोक में पाँच राजू का विस्तार है और ऊपर जाकर क्रमशः घटते घटते एक राजू का विस्तार रह गया है। लोक का घन सात राजू है। जामा पहन कर और पैर फैला कर कोई पुरुष खड़ा हो, दोनों हाथ कमर पर रखे हों, उस पुरुष से लोक की उपमा दी गई है। लोक में पृथ्वी घनोदधि पर स्थित है घनोदधि घनवायु पर और घनवायु तनुवायु पर स्थित है। यह तनुवायु

आकाश पर स्थित है। लोक के चारों ओर अनन्त आकाश है। लोक में नीचे से ज्यों ज्यों ऊपर आते हैं त्यों त्यों सुख बढ़ता जाता है। ऊपर से नीचे की ओर अधिकाधिक दुःख है। ऊर्ध्वलोक में सर्वार्थसिद्ध के ऊपर सिद्ध शिला है। आत्मा का स्वभाव ऊपर की ओर जाना है परन्तु कर्म से भारी होने के कारण वह नीचे जाता है इस लिए कर्म से छुटकारा पाने के लिए धर्म का आचरण करना चाहिए।

इस प्रकार लोक भावना का चिन्तन करने से तत्त्व ज्ञान की विशुद्धि होती है और मन अन्य बाह्य विषयों से हट कर स्थिर हो जाता है। मानसिक स्थिरता द्वारा अनायास ही आध्यात्मिक सुखों की प्राप्ति होती है।

(११) बोधि दुर्लभ भावना- बोधि का अर्थ है ज्ञान। इसका अर्थ सम्यक्त्व भी किया जाता है। कहीं बोधि शब्द का अर्थ रत्न-त्रय मिलता है। धर्म सामग्री की प्राप्ति भी इसका अर्थ किया जाता है परन्तु ज्ञान आन्तर प्रकाश की ही यहाँ प्रधानता है। धर्म के साधनों का सत्य स्वरूप बतलाने की शक्ति भी इसी में है। बोधि को रत्न की उपमा दी जाती है। जैसे रत्न की विशेषता प्रकाश है इसी प्रकार बोधि में भी ज्ञान की प्रधानता है। बोधि की प्राप्ति होना अति दुर्लभ है। उत्तराध्ययन सूत्र के तीसरे अध्ययन में कहा है-

चत्तारि परमंगाणि, दुल्लहाणीह जंतुणो।
माणुसत्तं सुइ सद्धा, संजमम्मि य वीरियं॥

अर्थात्- इस संसार में प्राणी को चार अंगों की प्राप्ति अत्यन्त दुर्लभ है-मनुष्य जन्म, शास्त्रश्रवण, श्रद्धा और संयम में पराक्रम। इसी तरह दसवें अध्ययन में भी बताया है-

लद्धूण वि उत्तमं सुइं, सद्दहणा पुणरावि दुल्लहा।
मिच्छत्त निसेवए जणे, समयं गोयम! मा पमायए॥

अर्थात्- उत्तम श्रवण (सत्सङ्ग अथवा सद्धर्म) भी मिल जाना

सम्भव है किन्तु सत्य पर यथार्थ श्रद्धा होना बहुत ही कठिन है क्योंकि संसार में मिथ्यात्व का सेवन करने वाले बहुत दिखाई देते हैं। इसलिए हे गौतम! तू एक समय का भी प्रमाद मत कर।

इस प्रकार शास्त्रों में स्थान स्थान पर बोधि की दुर्लभता बताई है। शान्तसुधारस में उपाध्याय विनयविजयजी ने कहा है—

अनादौ निगोदान्धकूपे स्थिताना-
मजस्रं जनुर्मृत्युदुःखार्दितानाम्।
परीणामशुद्धिः कुतस्तादृशी स्यात्।
यया हन्त! तस्माद्विनिर्यान्ति जीवाः॥
ततो निर्गतानामपि स्थावरत्वं,
त्रसत्वं पुनर्दुर्लभं देहभाजाम्।
त्रसत्वेऽपि पञ्चाक्षपर्याप्तसंज्ञि-
स्थिरायुष्यवद्दुर्लभं मानुषत्वम्॥
तदेतन्मनुष्यत्वमाप्यापि मूढो,
महामोहमिथ्यात्वमायोपगूढः।
भ्रमन् दूरमग्नो भवागाधगर्ते,
पुनः क्व प्रपद्येत तद्बोधिरत्नम्॥

भावार्थ—अनादि निगोदान्ध रूप कूप में रहे हुए, निरन्तर जन्म मरण के दुःख से पीड़ित प्राणियों की वैसी परिणाम शुद्धि कैसे हो कि वे वहाँ से निकल सकें। वहाँ से यदि किसी प्रकार वे प्राणी निकलते हैं तो स्थावरता प्राप्त करते हैं परन्तु त्रसावस्था का प्राप्त करना उनके लिए अत्यन्त कठिन है। यदि वे त्रस भी हो जायँ तो पंचेन्द्रियता, पर्याप्तावस्था और संज्ञित्व का मिलना उत्तरोत्तर दुर्लभ है। संज्ञी जीवों में भी मनुष्य जन्म पाना और उस में भी दीर्घायु पाना अत्यन्त कठिन है।

मनुष्य जन्म पाकर के भी यह मूढ आत्मा मिथ्यात्व और माया

में फंसा हुआ संसार रूप अथाह कूप में गहरा उतर कर इधर उधर भटकता फिरता है। बोधिरत्न की प्राप्ति इसे कैसे हो सकती है।

इतना ऊपर उठकर भी आत्मा बोधि से वंचित रह जाता है। इस से इसकी दुर्लभता जानी जा सकती है। बोधि को प्राप्त करने का मनुष्य जन्म ही एक उपयुक्त अवसर है और यही कारण है कि देवता भी इसे पाने के लिये लालायित रहते है। इस लिए इस जन्म में आर्य देश, उत्तम कुल, पूर्ण पाँचों इन्द्रियाँ आदि दस बोल पाकर बोधि को प्राप्त करने और उसकी रक्षा करने का पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये। अनेक जन्म के बाद महान् पुण्य के योग से ऐसा सुअवसर मिलता है और दुबारा इसका जल्दी मिलना सहज नहीं है। धर्म प्राप्ति में और भी अनेक विघ्न हैं इस लिए जब तक शरीर नीरोग है, बुढ़ापे से शरीर जीर्ण नहीं होता, इन्द्रियाँ अपने अपने विषयों को ग्रहण करने में समर्थ हैं तब तक इसके लिये प्रयत्न कर मनुष्य जन्म को सार्थक करना चाहिये। मनुष्य जन्म और बोधि की दुर्लभता बताने का यही आशय है कि यह अवसर अमूल्य है। धर्म प्राप्ति योग्य अवस्था पाकर प्रमाद करना ठीक वैसा ही है जैसे बड़ी भारी बरात लेकर विवाह के लिये गये हुए पुरुष का ठीक विवाह का मुहूर्त आने पर नींद में सो जाना। श्रीचिदानन्दजी महाराज कहते हैं—

'बार अनन्ती चूकयो चेतन,इण अवसर मत चूक'

इस प्रकार की भावना करने से जीव रत्नत्रय रूप मोक्षमार्ग में अप्रमादी बन कर धीरे धीरे अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होता जाता है।

(१२) धर्म भावना—

वत्थुसहावो धम्मो, खंतिपमुहो दसविहो धम्मो।
जीवाणं रक्खणं धम्मो, रयणत्तयं च धम्मो॥

अर्थात्—वस्तु का स्वभाव धर्म है। क्षमा आदि दस भेद रूप धर्म है। जीवों की रक्षा करना धर्म है और सम्यग्ज्ञान,सम्यग्दर्शन,

सम्यक् चारित्र रूप रत्नत्रय धर्म है।

इसी तरह दान, शील, तप और भाव रूप धर्म भी कहा गया है। जिन भगवान् से कहा हुआ उक्त स्वरूप वाला धर्म सत्य है एवं प्राणियों के लिये परम हितकारी है। राग और द्वेष से रहित, स्वार्थ और ममता से दूर, पूर्णज्ञानी, लोकत्रय का हित चाहने वाले जिन भगवान् से उपदिष्ट धर्म के अन्यथा होने का कोई कारण नहीं है। धर्म चार पुरुषार्थ में प्रधान है और सब का मूल कारण है। इस धर्म की महिमा अपार है। चिन्तामणि, कामधेनु और कल्प वृक्ष इसके सेवक हैं। यह धर्म अपने भक्त को क्या नहीं देता ? उसके लिये विश्व में सभी सुलभ हैं। धर्मात्मा पुरुष को देवता भी नमस्कार करते हैं। दशवैकालिक सूत्र के प्रथम अध्ययन में कहा है–

धम्मो मंगल मुक्किट्ठं, अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तं नमंसंति, जस्स धम्मे सया मणो ॥

भावार्थ–अहिंसा, संयम और तपरूप धर्म उत्कृष्ट मंगल है। जिस का चित्त धर्म में लगा हुआ है। उसे देवता भी नमस्कार करते हैं।

संसार के बड़े बड़े साम्राज्य और ऐश आराम की मनोहर सामग्री इसी धर्म के फल हैं। पूर्णिमा के चन्द्र जैसे उज्वल सद्‌गुणों की प्राप्ति भी इसी के प्रभाव से होती है। समुद्र पृथ्वी को नहीं बहाता, मेघ सारी पृथ्वी को जलमय नहीं करते, पर्वत पृथ्वी को धारण करना नहीं छोड़ते, सूर्य और चन्द्र अपने नियम से विचलित नहीं होते, यह सभी मर्यादा धर्म से ही बनी हुई है।

यह धर्म बान्धव रहित का बन्धु है, बिना मित्र वाले का मित्र है, रोगियों के लिये औषध है, धनाभाव से दुःखी पुरुषों के लिये धन है, अनाथों का नाथ है और अशरण का शरण है।

धर्म की स्तुति करते हुए उपाध्याय विनय विजय जी कहते हैं–

त्रैलोक्यं सचराचरं विजयते यस्य प्रसादादिदं ।
योऽत्रामुत्र हितावहस्तनुभृतां सर्वार्थसिद्धिप्रदः ॥
येनानर्थकदर्थना निजमहः सामर्थ्यतो व्यर्थिता।
तस्मै कारुणिकाय धर्मविभवे भक्तिप्रणामोऽस्तु मे ॥

भावार्थ– जिस धर्म के प्रभाव से स्थावर और जंगम वस्तुओं वाले ये तीनों लोक विजयवन्त हैं। जो इस लोक और परलोक में प्राणियों का हित करने वाला है और सभी कार्यों में सिद्धि देने वाला है। जिसने अपने तेज के सामर्थ्य से अनर्थ जनित पीड़ाओं को निष्फल कर दिया है। उस करुणामय धर्म विभु को मेरा भक्ति पूर्वक नमस्कार हो ।

इस प्रकार की धर्म भावना से यह आत्मा धर्म से च्युत नहीं होता और धर्मानुष्ठान में तत्पर रहता है।

इन बारह भावनाओं का फल बताते हुए स्वर्गीय शतावधानी पण्डित मुनि श्री रत्नचन्द्र जी स्वामी ने कहा है–

एतद्द्वादशभावनाभिरसुमानेकान्ततो योऽसकृत् ।
स्वात्मानं परिभावयेत्त्रिकरणैः शुद्धैः सदा सादरम्॥
शाम्यन्त्युग्रकषायदोषनिचया नश्यन्त्युपाध्याधयो ।
दुःखं तस्य विलीयते स्फुरति च ज्ञानप्रदीपो ध्रुवम् ॥

भावार्थ–जो प्राणी एकान्त में बैठकर मन, वचन और काया की शुद्धि पूर्वक तथा आदर भक्ति के साथ सदा बार बार इन भावनाओं से अपनी आत्मा को भावित करता है उसके उग्र कषाय दोषों का समूह नष्ट हो जाता है, आधि और उपाधि शान्त हो जाती हैं उसका दुःख विलीन हो जाता है और शाश्वत ज्ञान प्रदीप प्रकाश करता रहता है।

भावना जोग सुद्धप्पा, जले नावा व आहिया ।
नावा व तीर संपन्ना, सव्वदुक्खा तिउट्टई ॥
(सूयगडांग सूत्र, अध्ययन १५ गाथा ५)

भावार्थ—पच्चीस प्रकार की अथवा बारह प्रकार की भावनाओं से जिसका आत्मा शुद्ध हो गया है वह पुरुष जल में नाव के समान कहा गया है। जैसे तीर भूमि को पाकर नाव विश्राम करती है इसी तरह वह पुरुष सब दुःखों से छूट जाता है।

उत्तम भावना करने वाले पुरुष की जो गति होती है उसे बताने के लिए शास्त्रकार कहते हैं—उत्तम भावना के योग से जिसका अन्तःकरण शुद्ध होगया है वह पुरुष संसार के स्वरूप को छोड़कर जल में नाव की तरह संसार सागर के ऊपर रहता है। जैसे नाव जल में नहीं डूबती है इसी तरह वह पुरुष भी संसार सागर में नहीं डूबता है। जैसे उत्तम कर्णधार से युक्त और अनुकूल पवन से प्रेरित नाव सब द्वन्द्वों से मुक्त होकर तीर पर प्राप्त होती है। इसी तरह उत्तम चारित्रवान् जीव रूपी नाव उत्तम आगम रूप कर्णधार से युक्त तथा तप रूपी पवन से प्रेरित होकर दुःखात्मक संसार से छूटकर समस्त दुःखों के अभाव रूप मोक्ष को प्राप्त करती है।

(श्री शान्त सुधारस) (भावना शतक) (ज्ञानार्णव दूसरा प्रकरण)
(प्रवचन सारोद्धार द्वार ६७) (तत्त्वार्थाधिगम भाष्य अध्याय ६)

बारह भावना के दोहे

(१) अनित्य भावना

राजा राणा छत्रपति, हाथिन के असवार।
मरना सब को एक दिन अपनी अपनी बार॥

(२) अशरण भावना

दल बल देवी देवता, मात पिता परिवार।
मरती विरियाँ जीव को, कोई न राखन हार॥

(३) संसार भावना

दाम विना निर्धन दुखी, तृष्णा वश धनवान।
कहूँ न सुख संसार में, सब जग देख्यो छान॥

(४) एकत्व भावना

आप अकेला अवतरे, मरे अकेला होय ।
यों कबहूँ या जीव को, साथी सगा न कोय ॥

(५) अन्यत्व भावना

जहाँ देह अपनी नहीं, तहाँ न अपना कोय ।
घर संपति पर प्रकट ये, पर हैं परिजन लोय ॥

(६) अशुचि भावना

दिपै चाम चादर मढ़ी, हाड़ पींजरा देह ।
भीतर या सम जगत में, और नहीं घिन गेह ॥

(७) आश्रव भावना

जगवासी घूमें सदा, मोह नींद के जोर ।
सब लूटे नहीं दीसता, कर्म चोर चहुँ ओर ॥

(८) संवर भावना

मोह नींद जब उपशमै, सतगुरु देय जगाय ।
कर्म चोर आवत रुकें, तब कुछ बने उपाय ॥

(९) निर्जरा भावना

ज्ञान दीप तप तेल भर, घर शोधे भ्रम छोर ।
या विधि बिन निकसे नहीं, पैठे पूरब चोर ॥
पंच महाव्रत संचरण, समिती पंच प्रकार ।
प्रबल पंच इन्द्रिय विजय, धार निर्जरा सार ॥

(१०) लोक भावना

चौदह राजु उतंग नभ, लोक पुरुष संठान ।
तामें जीव अनादि तें, भरमत है बिन ज्ञान ॥

(११) बोधिदुर्लभ भावना

धन जन कंचन राज सुख, सबहिं सुलभ कर जान ।
दुर्लभ है संसार में, एक यथारथ ज्ञान ॥

(१२) धर्म भावना

जाचे सुरतरु देय सुख, चिन्तित चिन्ता रैन।
विन जाचे विन चिन्तये, धर्म सकल सुख दैन॥

वारह भावना भाने वाले महापुरुषों के नाम और संक्षिप्त परिचय—

(१) अनित्य भावना—भगवान् ऋषभ देव के ज्येष्ठ पुत्र श्री भरत चक्रवर्ती ने भाइ थी। एक दिन स्नानादि कर वस्त्राभूषणों से अलंकृत होकर भरत महाराज आदर्श भवन (सीस महल) में गये। महल में जाकर दर्पण के अन्दर अपना रूप देखने लगे। अचानक एक हाथ की अङ्गुली में से अङ्गूठी नीचे गिर पड़ी। दूसरी अङ्गुलियों की अपेक्षा वह असुन्दर मालूम होने लगी। भरत महाराज को विचार आया कि क्या इन वाहरी आभूषणों से ही मेरी शोभा है? उन्होंने दूसरी अङ्गुलियों की अङ्गूठियों को भी उतार डाला और यहाँ तक कि मस्तक का मुकुट आदि सब आभूषण उतार दिये। पत्र रहित वृक्ष जिस प्रकार शोभा हीन हो जाता है उसी प्रकार की अवस्था अपने शरीर की देख कर भरत महाराज विचारने लगे—यह शरीर स्वयं असुन्दर है। जिस प्रकार चित्रादि क्रिया से भीत को शोभित किया जाता है उसी प्रकार आभूषणों से ही इस शरीर की शोभा है। यह इसकी कृत्रिम शोभा है। इसका असली स्वरूप तो कुछ और ही है। यह अनित्य एवं नश्वर है। मल मूत्रादि अशुचि पदार्थों का भण्डार है। जिस प्रकार अपने ऊपर पड़ी हुई जल की बूँदों को ऊसर भूमि क्षार वना देती है उसी प्रकार विलेपन किये गये कपूर, केशर, कस्तूरी और चन्दन आदि सुगन्धित पदार्थों को भी यह शरीर दूषित कर देता है। इस शरीर की कितनी ही रक्षा क्यों न की जाय परन्तु एक दिन यह अवश्य नष्ट हो जायगा। वे तपस्वी मुनीश्वर धन्य हैं जो इस शरीर की अनित्यता को जान कर मोक्षफलदायक तप द्वारा स्वयमेव इसे कृश कर डालते हैं। इस प्रकार

प्रबल वेग से अनित्य भावना का विचार करते हुए भरत महाराज क्षपक श्रेणी में आरूढ हुए। चढ़ते हुए परिणामों की प्रबलता से घाती कर्मों का क्षय कर केवल ज्ञान, केवल दर्शन उपार्जन कर लिये और अन्त में मोक्ष पद प्राप्त कर लिया।

भरत चक्रवर्ती का अधिकार त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र के प्रथम पर्व, सर्ग ६ में है।

(२) अशरण भावना– अनाथी मुनि ने भाइ थी। आँखों में उत्पन्न हुई अत्यन्त वेदना के समय अनाथी विचारने लगे कि माता, पिता, भाई, बहिन, पत्नी आदि तथा धन सम्पत्ति आदि सारे सांसारिक साधन मेरी इस वेदना को शान्त करने में समर्थ नहीं हो रहे हैं। यदि कदाचित् ये साधन मेरी बाहरी वेदना को शान्त करने में समर्थ हो भी जायँ तो भी आत्म वेदना को दूर करने की औषधि तो बाहर कहीं भी मिल नहीं सकती। आत्मा की अनाथता (अशरणता) को दूर करने में कोई भी बाह्य शक्ति काम नहीं आ सकती। आत्मा को सनाथ बनाने के लिए तो आत्मा ही समर्थ है। इस प्रकार अशरण भावना के प्रबल वेग से उन्हें संसार से वैराग्य हो गया। राज्य वैभव के समान ऋद्धि, भोग विलास, रमणियों के आकर्षण तथा माता पिता के अपार अपत्य स्नेह को त्याग कर वे संयमी बन गये। एक समय वे मुनि एक उद्यान में ध्यानस्थ बैठे थे। महाराज श्रेणिक उधर आ निकले। अनाथी मुनि के अनुपम रूप और कान्ति को देख कर श्रेणिक राजा को अति विस्मय हुआ। वे विचारने लगे–इन आर्य की कैसी अपूर्व सौम्यता, क्षमा, निर्लोभता तथा भोगों से निवृत्ति है ? मुनि के चरणवन्दन कर राजा श्रेणिक पूछने लगा–हे आर्य ! इस तरुणावस्था में भोगविलास के समय आपने दीक्षा क्यों ली है ? इस उग्र चारित्र को धारण करने में आपको ऐसी क्या प्रेरणा मिली है जिससे आपने इस युवावस्था

में संयम अङ्गीकार किया है ! अनाथी मुनि फरमाने लगे–

अणाहो मि महाराय ! णाहो मज्झ न विज्जई ।
अणुकम्पगं सुहिं वा वि, कंचि नाभिसमेमहं ॥

अर्थात्– हे महाराज ? मैं अनाथ हूँ, मेरा रक्षक कोई नहीं है और अभी तक ऐसा कोई कृपालु मित्र भी मुझे नहीं मिल सका है। इसी अनाथ भावना से प्रेरित होकर मैंने संयम स्वीकार किया है।

महाराज श्रेणिक के पूछने पर अनाथी मुनि ने अनाथता और सनाथता का विस्तृत विवेचन कर उसे समझाया। इसका अधिकार उत्तराध्ययन सूत्र के महानिर्ग्रन्थीय नामक बीसवें अध्ययन में है। इसी अध्ययन की अनाथता को बतलाने वाली गाथाओं का अर्थ पन्द्रहवें बोल संग्रह में दिया जायगा।

(३) संसार भावना– भगवान् मल्लिनाथ के राजा प्रतिबुद्ध, चन्द्रछाय, रुक्मी, शंख, अदीनशत्रु और जितशत्रु नामक छः मित्रों ने भाइ थी। ये पूर्वभव में सातों मित्र थे। सातों ने एक साथ दीक्षा ली थी। इस भव में मल्लिनाथ स्त्री रूप में पैदा हुए और ये छहों अलग अलग देश के राजा हुए। मल्लिकुँवरी के रूप लावण्य की प्रशंसा सुन कर ये छहों उसके साथ विवाह करने के लिए आए। मल्लिकुँवरी ने उन्हें शरीर का अशुचिपन और संसार की असारता बतलाते हुए मार्मिक उपदेश दिया जिससे उन्हें जातिस्मृति ज्ञान पैदा होगया। वे अपने पूर्वभव को देखने लगे और विचारने लगे कि पूर्वभव में हम सब ने एक साथ दीक्षा ली थी। हम सब ने एक सरीखा तप करने का निश्चय किया था किन्तु माया सहित अधिक तपस्या करने से इनको स्त्री वेद का बन्ध हो गया था, साथ ही बीस बोलों की उत्कृष्ट आराधना करने से तीर्थङ्कर नाम कर्म भी उपार्जन किया था। इस भव में ये स्त्री रूप में उ[illegible] हुए [illegible]। संसार की कैसी विचित्रता है कि आज [illegible]

देव को तथा अपने पूर्वभव के मित्र को अपनी पत्नी बनाने की इच्छा से यहाँ आये हैं। इस प्रकार संसार की विचित्रता और असारता का विचार करते हुए उन्हें विषय भोगों से घृणा एवं संसार से वैराग्य हो गया। राज पाट छोड़ कर दीक्षा अंगीकार कर ली। केवलज्ञान केवलदर्शन उपार्जन कर अन्त में सिद्धपद प्राप्त किया। इनकी विस्तृत कथा ज्ञाता धर्मकथाङ्ग सूत्र के आठवें अध्ययन में है।

(४) एकत्व भावना नमिराजर्षि ने भाइ थी। मिथिला के महाराजा नमिराज दाह ज्वर की दारुण वेदना से पीड़ित हो रहे थे। उस समय महारानियाँ तथा दासियाँ चन्दन घिस रही थीं। हाथ में पहनी हुई चूड़ियों की परस्पर रगड़ से उत्पन्न होने वाला शब्द महाराज की वेदना में वृद्धि करता था। वह शब्द उनसे सहन नहीं हो सका इस लिए प्रधान मन्त्री को बुला कर उन्होंने कहा– यह शब्द मेरे से सहन नहीं होता, इसे बन्द कराओ। चन्दन घिसने वालियों ने सौभाग्य चिन्ह स्वरूप हाथ में सिर्फ एक एक चूड़ी रख कर बाकी की सब उतार डालीं। चूड़ियों के उतरते ही तत्काल शोर बन्द हो गया।

थोड़ी देर बाद नमिराज ने पूछा– क्या कार्य पूरा हो गया ? मन्त्री ने जवाब दिया– नहीं महाराज ! कार्य अभी हो रहा है। नमिराज ने पूछा– शोर बन्द कैसे हो गया ? मन्त्री ने ऊपर की हकीकत कह सुनाई। इस बात को सुनते ही नमिराज के हृदय में यह भाव उठा कि जहाँ पर दो हैं वहीं पर शोर होता है। जहाँ पर एक होता है वहाँ पर शान्ति रहती है। इस गूढ़ चिन्तन के परिणाम स्वरूप नमिराज को जातिस्मृति ज्ञान पैदा हो गया। शान्ति प्राप्ति के लिये समस्त बाह्य बन्धनों का त्याग कर एकाकी विचरने की उन्हें तीव्र इच्छा जागृत हुई। व्याधि शान्त होते ही वे योगिराज राजपाट और रानियों के भोग विलासों को छोड़ कर मुनि बन

कर एकाकी विचरने लगे। उस अपूर्व त्यागी के त्याग की कसौटी करने के लिए इन्द्र आया। इन्द्र द्वारा किए गए प्रश्नों का उत्तर नमिराजर्षि ने बहुत ही मार्मिक और भावपूर्ण दिया है। इनके प्रश्नोत्तरों का वर्णन उत्तराध्ययन सूत्र के नवें अध्ययन में बड़े ही रोचक शब्दों में दिया गया है।

(५) अन्यत्व भावना— मृगापुत्र ने भाइ थी। पूर्व जन्म के संस्कारों के कारण मृगापुत्र योगमार्ग पर जाने के लिए तत्पर होता है। माता पिता अपने पुत्र को योगमार्ग से रोकने के लिए मोह और ममता भरी बातें कहते हैं। तब मृगापुत्र उन्हें कहता है कि हे माता पिताओ! कौन किसका सगा सम्बन्धी और रिश्तेदार है? ये सभी संयोग क्षणभङ्गुर हैं। यहाँ तक कि यह शरीर भी अपना नहीं है। फिर दूसरे पदार्थ तो अपने हो ही कैसे सकते हैं? कामभोग किंपाक फल के सदृश हैं। यदि जीव इन्हें नहीं छोड़ता तो ये कामभोग स्वयं इसे छोड़ देंगे। जब छोड़ना निश्चित है तो फिर इन्हें स्वेच्छापूर्वक क्यों न छोड़ दिया जाय। स्वेच्छा से छोड़े हुए काम भोग दुःखप्रद नहीं होते। यही भाव निम्नलिखित गाथाओं में बताया गया है—

जम्मं दुक्खं जरा दुक्खं, रोगाणि मरणाणि य।
अहो दुक्खो हु संसारो, जत्थ कीसंति जंतुणो॥
खित्तं वत्थुं हिरण्णं च, पुत्त दारं च बंधवा।
चइत्ता णं इमं देहं, गंतव्वमवसस्स मे॥
जह किंपागफलाणं, परिणामो न सुन्दरो।
एवं भुत्ताण भोगाणं, परिणामो न सुन्दरो॥

अर्थात्— यह सारा संसार अत्यन्त दुःखमय है। इसमें रहने वाले प्राणी जन्म, जरा, रोग तथा मरण के दुःखों से पिसे जा रहे हैं।

ये सब क्षेत्र, घर, सुवर्ण, पुत्र, स्त्री, माता, पिता, भाई, बान्धव तथा यह शरीर भी अपना नहीं है। आगे या पीछे कभी न कभी

इन सब को छोड़ कर अवश्य जाना ही पड़ेगा।

जैसे किंपाक फल का परिणाम अच्छा नहीं होता अर्थात् किंपाक वृक्ष का फल देखने में मनोहर तथा खाने में मधुर होता है परन्तु खाने के बाद थोड़ी ही देर में उससे मृत्यु हो जाती है, वैसे ही भोगे हुए भोगों का फल भी सुन्दर नहीं होता।

जब मृगापुत्र की उपरोक्त बातों का उसके माता पिता कुछ भी जवाब न दे सके तब वे संयम मार्ग में आने वाले कष्टों को बतलाने लगे और कहने लगे-

तं बिंत अम्मापियरो, छंदेणं पुत्त पव्वया।
नवरं पुण सामण्णे, दुक्खं निप्पडिकम्मया॥

अर्थात्-हे पुत्र! यदि तेरी यही इच्छा है तो भले ही खुशी से दीक्षा ग्रहण कर किन्तु संयम मार्ग में विचरण करते हुए दुःख पड़ने पर प्रतिक्रिया अर्थात् रोगादि उत्पन्न होने पर उसकी चिकित्सा आदि नहीं होती। क्या यह भी तुझे खबर है?

मृगापुत्र जवाब देने लगा-

सो बिंत अम्मापियरो, एवमेयं जहा फुडं।
परिकम्मं को कुणइ, अरण्णे मिगपक्खीणं॥

अर्थात्- हे माता पिताओ! आप जो कहते हैं वह सत्य है परन्तु मैं आपसे पूछता हूँ कि जंगल में मृग तथा पक्षी आदि विचरते हैं। उनके ऊपर कष्ट पड़ने पर अथवा रोगादि उत्पन्न होने पर उनकी प्रतिक्रिया (चिकित्सा) कौन करता है? अर्थात् कोई नहीं करता किन्तु वह स्वतः नीरोग होकर जंगल में घास आदि खा कर स्वेच्छ भ्रमण करता है। इसी तरह उद्यमवन्त साधु एकाकी मृगचर्या करके अपनी आत्मा को उन्नत बनाते हैं। मैं भी इसी तरह विचरूँगा।

इस प्रकार माता पिता और मृगापुत्र के बीच में जो प्रश्नोत्तर

हुए उनका विस्तृत वर्णन उत्तराध्ययन सूत्र के मृगापुत्रीय नामक उन्नीसवें अध्ययन में है।

अन्त में माता पिता की आज्ञा लेकर मृगापुत्र प्रव्रजित होगये। यथावत् संयम का आराधन कर मोक्ष को प्राप्त हुए।

(६) अशुचि भावना- सनत्कुमार चक्रवर्ती ने भाइ थी। सनत्कुमार चक्रवर्ती बहुत रूपवान् था। उसके रूप की प्रशंसा बहुत दूर दूर तक फैल चुकी थी। एक दिन प्रातःकाल ही स्वर्ग से चल कर दो देव ब्राह्मण का रूप बना कर उसके रूप को देखने के लिए आए। सनत्कुमार चक्री उस समय स्नानार्थ स्नान घर में जा रहा था उसे देख कर ब्राह्मणों ने उसके रूप की बहुत प्रशंसा की। अपने रूप की प्रशंसा सुन कर सनत्कुमार को बड़ा अभिमान हुआ। उसने ब्राह्मणों से कहा- तुम लोग अभी मेरे रूप को क्या देख रहे हो, जब मैं स्नानादि कर वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर राजसभा में सिंहासन पर बैठूँ तब तुम मेरे रूप को देखना। स्नानादि से निवृत्त होकर जब सनत्कुमार सिंहासन पर जाकर बैठा तब उन ब्राह्मणों को राजसभा में उपस्थित किया गया। ब्राह्मणों ने कहा- राजन्! तुम्हारा रूप पहले जैसा नहीं रहा। राजा ने कहा-यह कैसे? ब्राह्मणों ने कहा- आप अपने मुंह को देखें, उसके अन्दर क्या हो रहा है? राजा ने थूक कर देखा तो उसके अन्दर एक दो नहीं बल्कि सैकड़ों कीड़े किलबिलाहट कर रहे थे और उससे महान् दुर्गन्धि उठ रही थी। चक्रवर्ती का रूप सम्बन्धी अभिमान चूर हो गया। उन्हें शरीर की अशुचि का भान हो गया। वे विचारने लगे 'यह शरीर घृणित एवं अशुचिमय पदार्थों से उत्पन्न हुआ है और स्वयं भी अशुचि का भण्डार है'। इस प्रकार उनके हृदय में अशुचि भावना प्रबल हो उठी। संसार से उन्हें वैराग्य हो गया। छः खण्ड पृथ्वी का राजपाट छोड़ कर

उन्होंने दीक्षा अङ्गीकार कर ली। उत्कृष्ट तप का आराधन कर इस अशुचिमय शरीर को छोड़ कर सिद्ध पद प्राप्त किया।

यह कथा त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र द्वितीय भाग में बहुत विस्तार के साथ दी गई है।

(७) आश्रव भावना- समुद्रपाल मुनि ने भाइ थी। चम्पा नगरी के पालित श्रावक के पुत्र का नाम समुद्रपाल था। उसके पिता ने अप्सरा जैसी एक महा स्वरूपवती कन्या के साथ उसका विवाह कर दिया था। उसके साथ समुद्रपाल रमणीय महल में दोगुन्दक देव के समान भोग भोगने लगा। एक दिन वह अपने महल की खिड़की में से नगरचर्या देख रहा था कि इतने में ही मृत्युदण्ड के चिन्ह सहित वध्यभूमि की ओर ले जाए जाते हुए एक चोर पर उसकी दृष्टि पड़ी।

तं पासिऊण संविग्गो, समुद्दपालो इणमब्बवी।
अहो असुहाण कम्माणं, निज्जाणं पावगं इमं॥

अर्थात्- उस चोर को देख कर उसके हृदय में तरह तरह के विचार उत्पन्न होने लगे। वैराग्य भाव से प्रेरित होकर वह स्वयं कहने लगा- अशुभ कर्मों के (अशुभ आश्रवों के) कैसे कड़ुए फल होते हैं। यह मैं प्रत्यक्ष देख रहा हूँ। इस प्रकार आश्रव भावना के गहरे चिन्तन के परिणाम स्वरूप समुद्रपाल को जातिस्मृति ज्ञान पैदा हो गया। उन्होंने संसार त्याग कर संयम ले लिया और पुण्य और पाप रूप शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के कर्मों का नाश कर मोक्षपद प्राप्त किया।

यह कथा उत्तराध्ययन सूत्र के समुद्रपालीय नामक इक्कीसवें अध्ययन में विस्तार के साथ आई है। इस अध्ययन की जैन साधु के लिए मार्गप्रदर्शक बारह गाथाओं का अर्थ इसी भाग के बोल नं० ७८१ में दिया गया है।

(८) संवर भावना- हरिकेशी मुनि ने भाइ थी। पूर्व जन्म में किये गए जाति मद और रूप मद के कारण हरिकेशी मुनि चाण्डाल कुल के अन्दर उत्पन्न हुए थे और वहुत कुरूप थे। कुरूप होने के कारण उनका जगह जगह तिरस्कार होता था। उनके हृदय में विचार उत्पन्न हुआ कि पूर्व जन्म के अशुभ कर्मों (आश्रवों) के द्वारा मुझे इस भव में यह कटु फल भोगना पड़ रहा है। अब ऐसा प्रयत्न क्यों न किया जाय जिससे इन आश्रवों का आना ही रुक जाय। संसार सम्बन्धी क्रिया का त्याग रूप संवर भावना उनके हृदय में प्रवल हो उठी। संसार का त्याग कर वे संयम मार्ग में प्रव्रजित हो गए। पाँच समिति, तीन गुप्ति, दस विध यतिधर्म और परिषह सहन से आते हुए कर्मों को रोकने लगे। उत्कृष्ट तप से सब कर्मों का क्षय कर मोक्षपद प्राप्त किया।

महामुनि हरिकेशी का वर्णन उत्तराध्ययन सूत्र के बारहवें अध्ययन में है।

(९) निर्जरा भावना-अर्जुन माली ने भाइ थी। अर्जुन राजगृही नगरी में रहने वाला एक माली था। यक्षावेश के कारण उसने वहुत से स्त्री पुरुषों को मार डाला था। श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना करने के लिये जाते हुए सुदर्शन श्रावक के निमित्त से उसका यक्षावेश दूर होगया। सुदर्शन श्रावक के साथ ही वह भी भगवान् को वन्दना करने के लिये गया। धर्मोपदेश सुन कर उसे वैराग्य होगया और भगवान् के पास दीक्षा लेकर उसी दिन से वेले वेले पारणा करता हुआ विचरने लगा। गोचरी के लिये जब राजगृही में जाता था तब उसे देख कर कोई कहता-इसने मेरे पिता को मारा, भाई को मारा, वहिन को मारा, पुत्र को मारा, माता को मारा इत्यादि कह कर कोई निन्दा करता, कोई हल्के शब्दों का प्रयोग करता, कोई चपेटा मारता और कोई घूंसा मारता। अर्जुनमाली

अनगार इन सब को समभाव से सहन करते थे और विचार करते थे कि मैंने तो इनके सगे सम्बन्धियों को जान से मार डाला था, ये लोग तो मुझे थोड़े में ही छुटकारा देते हैं। ये लोग मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ते प्रत्युत ये तो कर्मों की निर्जरा करने में मुझे सहायता देते हैं। इस प्रकार अर्जुन माली अनगार ने निर्जरा की भावना से उन कष्टों को समभाव पूर्वक सहन करते हुए छः महीनों के अन्दर ही सब कर्मों का क्षय कर केवलज्ञान केवलदर्शन उपार्जन करके मोक्ष पद प्राप्त कर लिया।

यह कथा अन्तगड सूत्र के छठे वर्ग के तीसरे अध्ययन में विस्तार के साथ आई है। यहाँ तो केवल संक्षिप्त सार दिया गया है।

(१०) लोक भावना—शिवराज ऋषि ने भाई थी। गङ्गा नदी के किनारे अज्ञान तप करते हुए शिवराज ऋषि को विभङ्गज्ञान पैदा होगया था जिससे वह सात द्वीप और सात समुद्रों तक देखने लगा। अपने ज्ञान को पूर्णज्ञान समझ कर वह यह प्ररूपणा करने लगा कि संसार में सात द्वीप और सात ही समुद्र हैं इसके आगे कुछ नहीं है। 'स्वयम्भूरमण समुद्र तक असंख्य द्वीप और समुद्र हैं' भगवान् महावीर स्वामी की इस प्ररूपणा को सुन कर शिवराज ऋषि के हृदय में शंका कांक्षा आदि कलुषित भाव उत्पन्न हुए जिससे उसका विभङ्ग ज्ञान नष्ट होगया। वह श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास आया। धर्मोपदेश सुन कर उसने तापसोचित भण्डोपकरणों को त्याग कर भगवान् के पास दीक्षा अङ्गीकार कर ली। 'द्वीप और समुद्र असंख्यात है' भगवान् की इस प्ररूपणा पर उसे दृढ़ श्रद्धा और विश्वास हो गया। इसका निरन्तर ध्यान, मनन और चिन्तन करने से तथा उत्कृष्ट तप का आराधन करने से शिवराजर्षि को केवलज्ञान और केवलदर्शन उत्पन्न हो गए और अन्त में मोक्ष पद प्राप्त किया। यह अधिकार भगवती सूत्र, ग्यारहवें

शतक के नवें उद्देशे में है।

(११) बोधि दुर्लभ भावना—भगवान् ऋषभदेव के ९८ पुत्रों ने भाइ थी। जब भरत चक्रवर्ती कुछ प्रदेश के अतिरिक्त छः खण्ड पृथ्वी का विजय कर वापिस अयोध्या में लौटा तब अपनी आज्ञा मनवाने के लिये एक एक दूत अपने ९८ भाइयों के पास भेजा। दूतों ने जाकर उनसे कहा कि यदि आप अपने राज्य की रक्षा चाहते हैं तो भरत महाराज की आज्ञा शिरोधार्य कर उनकी अधीनता स्वीकार करें। दूतों की बात सुन कर अट्ठाणु ही भाई एक जगह इकट्ठे हुए और परस्पर विचार करने लगे कि अपने पिता भगवान् ऋषभदेव ने अपने अपने हिस्से का राज्य अलग अलग बांट दिया है। इसमें भरत का कुछ भी अधिकार नहीं है। फिर वह हम से अपनी अधीनता स्वीकारने को क्यों कहता है? प्रतीत होता है उसकी राज्य तृष्णा बहुत बढ़ी हुई है। बहुत से दूसरे राजाओं का राज्य ले लेने पर भी उसे संतोष नहीं हुआ। उसकी तृष्णा प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है। अब वह हमारा राज्य भी छीनना चाहता है। क्या हमें भाई भरत की अधीनता स्वीकार कर लेनी चाहिये या अपने राज्य की रक्षा के लिये उससे युद्ध करना चाहिये? इस विषय में हमें भगवान् ऋषभदेव की सम्मति लेकर ही कार्य करना चाहिये। उनसे पूछे विना हमें किसी ओर भी कदम न उठाना चाहिये।' इस प्रकार विचार कर वे सभी भगवान् ऋषभदेव के पास आये। वन्दना नमस्कार कर उन्होंने उपरोक्त हकीकत प्रभु से निवेदन की। भगवान् ने फरमाया कि हे आर्यों! तुम इस बाहरी राज्य लक्ष्मी के लिये इतने चिन्तित क्यों हो रहे हो? यदि कदाचित् तुम भरत से अपने राज्य की रक्षा करने में समर्थ भी हो जाओगे तब भी अन्त में आगे या पीछे इस राज्यलक्ष्मी को तुम्हें छोड़ना पड़ेगा। तुम धर्म की शरण में चले आओ जिससे तुम्हें ऐसी मोक्ष रूप राज्यलक्ष्मी प्राप्त होगी

जिसे कोई नहीं छीन सकता। वह नित्य, स्थायी और अविनाशी है। भगवान् फरमाने लगे—

संबुज्झह किं न बुज्झह, संबोही खलु पेच्च दुल्लहा।
णो हू वणमंति राइओ, णो सुलभं पुणरावि जीवियं॥
डहरा बुड्ढा य पासह, गब्भत्था वि चयंति माणवा।
सेणे जह वट्टयं हरे, एवं आउखयम्मि तुट्टई॥

अर्थात्– हे भव्यो! तुम बोध प्राप्त करो। तुम क्यों नहीं बोध प्राप्त करते? जो रात्रि (समय) व्यतीत होगई है वह फिर लौट कर नहीं आती और संयम जीवन फिर सुलभ नहीं है।

हे भव्यो! तुम विचार करो–बालक, वृद्ध और गर्भस्थ मनुष्य भी अपने जीवन को छोड़ देते हैं। जैसे श्येन (बाज) पक्षी तीतर पर किसी भी समय झपट कर उसके प्राण हरण कर लेता है इसी प्रकार मृत्यु भी किसी समय अचानक प्राणियों के प्राण हरण कर लेती है।

मनुष्य जन्म, आर्यदेश, उत्तम कुल, पूर्ण पांचों इन्द्रियाँ आदि बातों का बारबार मिलना बड़ा ही दुर्लभ है। अत एव तुम सब समय रहते शीघ्र ही बोधि (सच्चा ज्ञान) प्राप्त करने का प्रयत्न करो।

(सूयगडांग सूत्र प्रथम श्रुतस्कन्ध अध्ययन २ उद्देशा १)

भगवान् का उपदेश सुन कर उन्हें वैराग्य उत्पन्न होगया। राज पाट छोड़ कर भगवान् के पास दीक्षा अङ्गीकार कर ली। अन्त में केवलज्ञान, केवलदर्शन उपार्जन कर मोक्ष पद प्राप्त किया।

इनका अधिकार सूयगडांग सूत्र के दूसरे अध्ययन के पहले उद्देशे में (शीलाङ्काचार्य कृत टीका में) तथा त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र के प्रथम पर्व में है।

(१२) धर्म भावना–धर्मरुचि मुनि ने भाइ थी। अपने शिष्य परिवार सहित ग्रामानुग्राम विहार करते हुए धर्मघोष आचार्य

चम्पा नगरी के बाहर सुभूमिभाग नामक उद्यान में पधारे। धर्म रुचि मुनि मास मास खमण का पारणा करते थे। मासखमण के पारणे के दिन गुरु की आज्ञा लेकर वे गोचरी के लिए चम्पानगरी में गये। नागश्री ब्राह्मणी ने जहर के समान कड़वे तुम्बे का शाक मुनि को वहरा दिया। पर्याप्त आहार समझ कर वे वापिस लौट आये। गुरु ने उस आहार को चख कर विष के समान कड़वा और अभक्ष्य समझ कर उन्हें परिठवने की आज्ञा दी। निरवद्य स्थान पर आकर मुनि ने शाक की एक बूँद जमीन पर डाली। घृतादि सुगन्धित अनेक पदार्थों से सुवासित होने के कारण शाक की उस बूँद पर हजारों चींटियाँ जमा होगईं और उसका आस्वादन करते ही प्राणरहित हो गईं। मुनि विचारने लगे कि एक बूंद मात्र आहार से इतनी चींटियों की घात हो गई। यदि यह सारा आहार परठ दिया जायगा तो न मालूम कितने द्वीन्द्रियादि जीवों की घात हो जायगी। यदि मेरे शरीर से इनकी रक्षा हो सकती है तो मुझे यही कार्य करना श्रेयस्कर है। इस प्रकार चींटियों की अनुकम्पा से प्रेरित होकर धर्मरुचि मुनि ने वह सारा शाक खा लिया। मुनि के शरीर में तत्काल कड़वे तुम्बे का विष व्याप्त हो गया और वेदना बढ़ने लगी। मुनि ने उसी समय संथारा कर लिया और धर्मध्यान शुक्लध्यान ध्याने लगे। परिणामों की विशुद्धता के कारण शरीर त्याग कर सर्वार्थसिद्ध विमान में तेतीस सागरोपम की स्थिति वाले देव हुए।

इसका अधिकार ज्ञाता धर्मकथाङ्ग सूत्र के १६वें अध्ययन में है।

यहाँ पर उन उन कथाओं का इन भावनाओं से सम्बन्ध रखने वाला कुछ अंश संक्षिप्त रूप से दिया गया है। विशेष विस्तार जानने की इच्छा वालों को उन उन स्थलों में देखना चाहिये।

तेरहवां बोल संग्रह

८१३- विनय के तेरह भेद

सम्पूर्ण दुखों के कारणभूत आठ प्रकार के कर्मों का विनयन (नाश) जिसके द्वारा होता है उसे विनय कहते हैं, अथवा अपने से बड़े और गुरुजनों को देश काल के अनुसार सत्कार, सन्मान देना विनय कहलाता है, अथवा-

कर्मणां द्राग् विनयनाद्विनयो विदुषां मतः।
अपवर्ग फलाढ्यस्य मूलं धर्मतरोरयम् ॥

अर्थात्- ज्ञानावरणीयादि आठ कर्मों का शीघ्र विनाशक होने से यह विनय कहा जाता है। मोक्ष रूपी फल को देने वाले धर्म रूपी वृक्ष का यह मूल है। पुरुष भेद से विनय के भी तेरह भेद हैं। वे ये हैं-

(१) तीर्थङ्कर- साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका रूप चार तीर्थ की स्थापना करने वाले त्रिलोकपूज्य, देवाधिदेव तीर्थङ्कर कहलाते हैं।

(२) सिद्ध- आठ कर्मों से रहित, सिद्धगति में विराजमान, अक्षय और अनन्त सुख सम्पन्न सिद्ध कहलाते हैं।

(३) कुल- एक आचार्य की सन्तति कुल कहलाती है।

(४) गण- समान आचार वाले साधुओं का समूह गण है।

(५) संघ- साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका रूप चार तीर्थ का समुदाय संघ कहलाता है।

(६) क्रिया- शास्त्रोक्त धर्मानुष्ठान क्रिया कहलाती है।

(७) धर्म- जो दुर्गति में पड़ते हुए प्राणियों को धारण कर सुगति की ओर प्रेरित करे वह धर्म कहलाता है।

(८) ज्ञान- वस्तु का निश्चायक ज्ञान कहलाता है। इसके मति, श्रुत आदि पॉच भेद हैं।

(९) ज्ञानी– ज्ञान को धारण करने वाला ज्ञानी कहलाता है।

(१०) आचार्य– गण का नायक आचार्य कहलाता है।

(११) स्थविर– संयम से गिरते हुए साधुओं को जो धर्म में स्थिर करे वह स्थविर कहलाता है।

(१२) उपाध्याय– साधुओं को सूत्रार्थ पढ़ाने वाला मुनि उपाध्याय कहलाता है।

(१३) गणी–कुछ साधुओं के समुदाय का स्वामी गणी है।

इन तेरह पुरुषों का विनय करना चाहिए। इनके भेद से विनय के भी तेरह भेद कहे जाते हैं।

उपरोक्त तेरह की अनाशातना, भक्ति, बहुमान और वर्ण-संज्वलनता अर्थात् गुणग्राम करना, इन चार भेदों के कारण विनय के बावन भेद भी हो जाते हैं। (दशवैकालिक अध्ययन ९ उद्देशा १-निर्युक्ति गाथा ३२५-३२६)(प्रवचनसारोद्धार द्वार ६५ गाथा ५५०-५१)(उववाईसूत्र २०)

८१४– क्रियास्थान तेरह

कर्मबन्ध के कारणों को क्रियास्थान कहते हैं। इनके तेरह भेद हैं–

(१) अर्थदण्ड प्रत्ययिक– कुछ अर्थ अर्थात् प्रयोजन से होने वाले पाप को अर्थदण्ड प्रत्ययिक क्रियास्थान कहते हैं। जैसे– कोई अपने या अपने सम्बन्धियों के लिए त्रस या स्थावर जीवों की हिंसा करे, करावे या अनुमति दे।

(२) अनर्थदण्ड प्रत्ययिक– बिना किसी प्रयोजन के किया जाने वाला पाप। जैसे– कोई अविवेकी मूर्ख जीव बिना किसी प्रयोजन त्रस,स्थावर जीवों की हिंसा करे, करावे या अनुमति दे।

(३) हिंसादण्ड प्रत्ययिक–प्राणियों की हिंसा रूप पाप। जैसे– कोई मनुष्य 'अमुक प्राणी ने मुझे, मेरे सम्बन्धियों को या अन्य किसी इष्ट मित्र को कष्ट दिया है, देता है या देगा' यह सोच कर स्थावर या त्रस जीवों की हिंसा करता है।

(४) अकस्माद्दण्ड प्रत्ययिक– बिना जाने होने वाला पाप। जैसे–मृग आदि का शिकार करके आजीविका चलाने वाला व्यक्ति मृग के भ्रम से किसी दूसरे प्राणी को मार डाले, अथवा खेत में घास काटता हुआ कोई व्यक्ति अनजान में अनाज के पौधे को काट डाले।

(५) दृष्टिविपर्यासदण्ड प्रत्ययिक– नजर चूक जाने के कारण होने वाला पाप। जैसे– गाँव में चोर आने पर भ्रमवश साधारण पुरुष को चोर समझ कर मार डालना।

(६) मृषावाद प्रत्ययिक– झूठ बोलने से लगने वाला पाप। जैसे– कोई पुरुष अपने लिए या अपने किसी इष्ट व्यक्ति के लिए झूठ बोले, बोलावे, बोलने वाले का अनुमोदन करे।

(७) अदत्तादान प्रत्ययिक–चोरी करने से होने वाला पाप। जैसे– कोई मनुष्य अपने लिए या अपने इष्ट व्यक्ति के लिए चोरी करे, करावे या करते हुए को भला जाने।

(८) अध्यात्म प्रत्ययिक– क्रोधादि कषायों के कारण होने वाला पाप। जैसे–कोई पुरुष क्रोध, मान, माया या लोभ के वशीभूत होकर किसी द्वारा कष्ट न दिए जाने पर भी दीन, हीन, खिन्न और अस्वस्थ होकर शोक तथा दुःखसागर में डूबा रहता है।

(९) मान प्रत्ययिक– मान या अहङ्कार के कारण होने वाला पाप। जैसे– कोई पुरुष अपनी जाति, कुल, बल, रूप, तप, ज्ञान, लाभ, ऐश्वर्य या प्रज्ञा आदि से मदमत्त होकर दूसरों की अवहेलना या तिरस्कार करता है। अपनी प्रशंसा करता है। ऐसा मनुष्य क्रूर, घमण्डी, चपल, और अभिमानी होता है। मरने के बाद एक योनि से दूसरी योनि तथा नरकों में भटकता है।

(१०) मित्रदोष प्रत्ययिक– अपने कुटुम्बियों के प्रति बिना कारण क्रूरता दिखाने से लगने वाला पाप। जैसे– कोई मनुष्य अपने माता, पिता, भाई, बहिन, स्त्री, पुत्र, पुत्री और पुत्रवधू आदि

को छोटे छोटे अपराधों के लिए बहुत अधिक दण्ड देवे, उन्हें ठण्डे पानी में डुबोवे, उन पर गरम पानी डाले, आग से डाँव दे या रस्सी आदि से मार कर चमड़ी उधेड़ दे या लकड़ी आदि से पीटे। ऐसा मनुष्य जब तक घर में रहता है, सब लोग बड़े दुखी रहते हैं। उस के बाहर रहने पर प्रसन्न होते हैं। वह बात बात में नाराज होने लगता है। ऐसे कटु वचन बोलता है जिससे सुनने वाले जल उठें। ऐसा व्यक्ति स्वयं तथा दूसरों को अशान्त तथा दुखी करता है।

(११) माया प्रत्ययिक– माया अर्थात् छल कपट के कारण लगने वाला पाप। जो मनुष्य मायावी और कपटी होता है उसका कोई काम पूरा नहीं होता। उसकी नीयत हमेशा दूसरे को धोखा देने की रहती है। उसकी प्रवृत्ति कभी स्पष्ट नहीं होती। अन्दर द्वेष रखने पर भी वह बाहर से मित्र होने का ढोंग रचता है। आर्य होने पर भी अनार्य भाषा में बोलता है जिससे कोई दूसरा न समझ सके। पूछी हुई बात का उत्तर न देकर और कुछ कहने लगता है। उसका कपटी मन कभी निर्मल नहीं होता। वह कभी अपना दोष स्वीकार नहीं करता। उसे अपने पाप पर कभी पश्चात्ताप नहीं होता। न वह उसके लिए दुःख प्रकट करता है न प्रायश्चित्त लेता है। ऐसे मनुष्यों का इस लोक में कोई विश्वास नहीं करता। परलोक में वे नरकादि नीच गतियों में बार बार जाते हैं।

(१२) लोभ प्रत्ययिक– कामभोग आदि विषयों में आसक्ति के कारण होने वाला पाप। बहुत से तापस अथवा साधु अरण्य में, आश्रम में अथवा गांव के बाहर रहते हैं, अनेक गुप्त साधनाएं करते हैं परन्तु वे पूर्ण संयमी नहीं होते। सांसारिक कामनाओं तथा प्राणियों की हिंसा से सर्वथा विरक्त नहीं होते। वे कामभोगों में आसक्त और मूर्च्छित रहते हैं। अपना प्रभाव जमाने के लिए वे सच्ची झूठी बातें दूसरों को कहते फिरते हैं। वे चाहते हैं–

दूसरे मारे जावें, स्वयं नहीं, दूसरों पर हुक्म चले, उन पर नहीं। दूसरों को दण्ड मिले, उन्हें नहीं। कुछ समय कामभोग भोग कर मरने के बाद वे असुर आदि नीच गतियों में जन्म लेते हैं। वहां से छूटने पर बार बार जन्म से अन्धे, लूले, लंगड़े, बहरे, गूँगे आदि होते हैं।

मोक्ष चाहने वाला जीव इन बारह स्थानों को समझ बूझ कर छोड़ दे। ये सब पाप के स्थान हैं।

(१३) ईर्यापथिकी– निर्दोष संयमधारी, कषाय रहित मुनि को यतना पूर्वक गमनागमनादि में जो क्रिया लगती है उस क्रिया को ईर्यापथिकी क्रियास्थान कहते हैं। आत्मभाव में लीन रहते हुए, मन, वचन और काया की यतना पूर्वक प्रवृत्ति करते हुए, इन्द्रियों को वश में रखते हुए, सब दोषों से बच कर चलने वाले संयमी के भी हिलना, डुलना, चलना, फिरना आदि क्रियाएं होती रहती हैं। उन क्रियाओं से साधारण कर्मबन्ध होता है। ऐसे कर्म पहले समय में बँधते हैं, दूसरे समय में भोगे जाते हैं और तीसरे समय में छूट जाते हैं। फिर भिक्षु अपने आप निर्मल हो जाता है। प्रवृत्ति मात्र से कर्मबन्ध होता है। ये ही प्रवृत्तियाँ कषाय सहित होने पर कर्मों के गाढ़ बन्ध का कारण हो जाती हैं। कषायों द्वारा कर्म आत्मा से चिपक जाते हैं। बिना कषायों के वे अपने आप झड़ जाते हैं। यह क्रियास्थान संसार बन्धन का कारण नहीं होता, इस लिए शुभ माना गया है। (सूयगडांग श्रुतस्कन्ध २ अध्ययन २)

८१५– प्रतिसंलीनता के तेरह भेद

योग, इन्द्रिय और कषायों को अशुभ प्रवृत्ति से रोकना प्रतिसंलीनता है। मुख्य रूप से इसके चार भेद हैं– इन्द्रिय प्रतिसंलीनता, कषाय प्रतिसंलीनता, योग प्रतिसंलीनता और विविक्त शय्यासनता। इन्द्रिय प्रतिसंलीनता के पाँच भेद, कषाय के चार, योग के तीन और विविक्त शय्यासनता ये कुल मिला कर तेरह भेद हो जाते

हैं। उनका स्वरूप नीचे लिखे अनुसार है—

(१) श्रोत्रेन्द्रिय प्रतिसंलीनता— श्रोत्रेन्द्रिय को विषयों की ओर जाने से रोकना तथा श्रोत्र द्वारा गृहीत विषयों में राग द्वेष न करना।

(२) चक्षुरिन्द्रिय प्रतिसंलीनता—चक्षु को विषयों की ओर प्रवृत्त होने से रोकना तथा चक्षु द्वारा गृहीत विषयों में रागादि न करना।

(३) घ्राणेन्द्रिय प्रतिसंलीनता।

(४) रसनेन्द्रिय प्रतिसंलीनता।

(५) स्पर्शनेन्द्रिय प्रतिसंलीनता।

इनका स्वरूप भी ऊपर लिखे अनुसार जान लेना चाहिए।

(६) क्रोध प्रतिसंलीनता— क्रोध का उदय न होने देना तथा उदय में आए हुए क्रोध को निष्फल बना देना।

(७) मान प्रतिसंलीनता।

(८) माया प्रतिसंलीनता।

(९) लोभ प्रतिसंलीनता।

इनका स्वरूप क्रोध प्रतिसंलीनता के समान है।

(१०) मन प्रतिसंलीनता—मन की अकुशल प्रवृत्ति को रोकना, कुशल प्रवृत्ति करना तथा चित्त को एकाग्र स्थिर करना।

(११) वचन प्रतिसंलीनता — अकुशल वचन को रोकना, कुशल वचन बोलना तथा वचन को स्थिर करना।

(१२) काय प्रतिसंलीनता— अच्छी तरह समाधिपूर्वक शान्त होकर, हाथ पैर संकुचित करके कछुए की तरह गुप्तेन्द्रिय होकर आलीन प्रलीन अर्थात् स्थिर होना कायप्रतिसंलीनता है।

(१३) विविक्त शय्यासनता—स्त्री, पशु और नपुंसक से रहित स्थान में निर्दोष शयन आदि उपकरणों को स्वीकार करके रहना। आराम, उद्यानादि में संथारा अङ्गीकार करना भी विविक्तशय्यासनता है। (उववाई, सूत्र २०) (भगवती शतक २५ उद्देशा ७)

८१६- कायाक्लेश के तेरह भेद

शास्त्रसम्मत रीति के अनुसार आसन विशेष से बैठना कायाक्लेश नाम का तप है। इसके तेरह भेद हैं-

(१) ठाणट्ठिइए (स्थानस्थितिक)- कायोत्सर्ग करके निश्चल बैठना ठाणट्ठिइए कहलाता है।

(२) ठाणाइए (स्थानातिग)- एक स्थान पर निश्चल बैठ कर कायोत्सर्ग करना।

(३) उक्कुडुग आसणिए- उत्कुटुक आसन से बैठना।

(४) पडिमट्ठाई (प्रतिमास्थायी)- एकमासिकी द्विमासिकी आदि प्रतिमा (पडिमा) अङ्गीकार करके कायोत्सर्ग करना।

(५) वीरासणिए (वीरासनिक)- कुर्सी पर बैठ कर दोनों पैरों को नीचे लटका कर बैठे हुए पुरुष के नीचे से कुर्सी निकाल लेने पर जो अवस्था बनती है उस आसन से बैठ कर कायोत्सर्ग करना वीरासनिक कायाक्लेश है।

(६) नेसज्जिए (नैषधिक)-दोनों कूल्हों के बल भूमि पर बैठना।

(७) दंडायए (दण्डायतिक)- दण्ड की तरह लम्बा लेट कर कायोत्सर्ग करना।

(८) लगण्डशायी- टेढ़ी लकड़ी की तरह लेट कर कायोत्सर्ग करना। इस आसन में दोनों एड़ियाँ और सिर ही भूमि को छूने चाहिए बाकी सारा शरीर धनुषाकार भूमि से उठा हुआ रहना चाहिए अथवा सिर्फ पीठ ही भूमि पर लगी रहनी चाहिए शेष सारा शरीर भूमि से उठा रहना चाहिए।

(९) आयावए (आतापक)- शीत आदि की आतापना लेने वाला। निष्पन्न, अनिष्पन्न और ऊर्ध्वस्थित के भेद से आतापना के तीन भेद हैं। निष्पन्न आतापना के भी तीन भेद हैं- अधोमुख-

शायिता, पार्श्वशायिता, उत्तानशायिता। अनिष्पन्न आतापना के तीन भेद हैं-गोदोहिका, उत्कुटुकासनता, पर्यङ्कासनता। ऊर्ध्वस्थित आतापना के भी तीन भेद हैं- हस्तिशौण्डिका, एकपादिका, समपादिका। इन तीन आतापनाओं के भी उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य के भेद से तीन तीन भेद और हो जाते हैं।

(१०) अवाउडए (अप्रावृतक)- बिना छत के स्थान पर कायोत्सर्ग आदि करने वाला।

(११) अकण्डूयक- कायोत्सर्ग में खुजली न खुजाने वाला।

(१२) अनिष्ठीवक- कायोत्सर्ग के समय थूकना आदि क्रिया न करने वाला।

(१३) धुयकेसमंसुलोम (धुतकेशश्मश्रुरोम)- जिसके दाढ़ी, मूँछ आदि के बाल बढ़े हुए हों अर्थात् जो अपने शरीर के किसी भी अङ्ग की विभूषा न करता हो। (उववाई, सूत्र १६)

८१७-आहारक और अनाहारक के तेरह द्वार

निम्नलिखित तेरह द्वारों से आहारक और अनाहारक का विचार किया जाता है। वे द्वार ये हैं-

आहार भविय सण्णी, लेस्सा दिट्ठी य संजत कसाए।
णाणे जोगुवजोगे वेदे य, सरीर पज्जत्ती॥

अर्थात्- आहार, भव्य, संज्ञी, लेश्या, दृष्टि, संयत, ज्ञान, योग, उपयोग, वेद, शरीर और पर्याप्ति। इन तेरह द्वारों से जीव के आहारकत्व और अनाहारकत्व का विचार किया जाता है।

(१) आहार- एकवचन और बहुवचन की अपेक्षा चौवीस ही दण्डक के जीव अर्थात् नारकी जीवों से लेकर मनुष्य, तिर्यञ्च और वैमानिक देव सभी जीव किसी समय आहारक और किसी समय अनाहारक होते हैं। एकेन्द्रिय जीवों को छोड़ कर नैरयिक से लेकर वैमानिक तक तीन भंग पाये जाते हैं -(१) सभी आहारक (२)

बहुत आहारक एक अनाहारक (३) बहुत आहारक और बहुत अनाहारक होते हैं। सिद्ध भगवान् सदा अनाहारक ही होते हैं।

(२) भव्यत्व द्वार-भवसिद्धिक एक जीव कदाचित् आहारक और कदाचित् अनाहारक होता है। इसी तरह वैमानिक तक जानना चाहिए। एकेन्द्रियों को छोड़ कर बहुवचन की अपेक्षा भवसिद्धिक जीवों में तीन भांगे पाए जाते हैं। इसी तरह अभवसिद्धिक जीवों के विषय में भी समझना चाहिए। नोभवसिद्धिक नोअभवसिद्धिक (सिद्ध) जीव आहारक नहीं होते किन्तु अनाहारक ही होते हैं।

(३) संज्ञी द्वार-एक वचन की अपेक्षा संज्ञी जीव किसी समय आहारक और किसी समय अनाहारक होता है। नारकी जीवों से लेकर वैमानिक देवों तक इसी तरह जानना चाहिए किन्तु इस में एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रियों का ग्रहण नहीं होता है। बहुवचन की अपेक्षा सब जीवों में तीन भंग पाये जाते हैं। असंज्ञी जीवों के विषय में केवल एक भंग पाया जाता है। असंज्ञी नारकी जीवों में छः भांगे पाये जाते हैं। (१) किसी समय सभी जीव आहारक होते हैं (२) सभी अनाहारक होते हैं। (३) एक आहारक और एक अनाहारक (४) एक आहारक और बहुत अनाहारक (५) बहुत आहारक और एक अनाहारक (६) बहुत आहारक और बहुत अनाहारक। इसी तरह स्तनितकुमारों तक जानना चाहिए। एकेन्द्रियों में अन्य भंग संभवित नहीं हैं। बेइन्द्रियों से पंचेन्द्रियों तक तीन भांगे और मनुष्य तथा व्यन्तर देवों में छः भंग होते हैं। नोसंज्ञी और नोअसंज्ञी जीव आहारक और अनाहारक दोनों तरह के होते हैं। सिद्ध जीव अनाहारक ही होते हैं।

(४) लेश्या द्वार-सामान्य जीव की अपेक्षा लेश्या वाले जीव आहारक और अनाहारक दोनों तरह के होते हैं। एकेन्द्रिय के सिवाय बाकी जीवों में तीन भंग होते हैं। इसी तरह कृष्ण, नील

और कापोत लेश्या वाले जीवों में एकेन्द्रिय के सिवाय तीन भङ्ग समझने चाहिएं। तेजो लेश्या में पृथ्वी, अप् और वनस्पतिकाय में छः भंग होते हैं। पद्मलेश्या और शुक्ल लेश्या में तीन भंग होते हैं। लेश्या रहित जीव, मनुष्य और सिद्ध भगवान् अनाहारक होते हैं।

(५) दृष्टिद्वार– सामान्य की अपेक्षा कथन है कि सम्यग्दृष्टि जीव आहारक और अनाहारक दोनों तरह के होते हैं। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों में छः भंग होते हैं। बाकी जीवों में तीन भंग होते हैं। इसी तरह मिथ्यादृष्टि जीवों में भी एकेन्द्रिय को छोड़ कर तीन भंग जानने चाहिएं। सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों में भी एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय जीवों के सिवाय उपरोक्त रीति से तीन भंग समझने चाहिएं। यह कथन एक जीव की अपेक्षा से है। बहुत जीवों की अपेक्षा से भी इसी तरह समझना चाहिए।

(६) संयत द्वार–एक जीव की अपेक्षा संयत जीव आहारक और अनाहारक दोनों प्रकार का होता है। सब संयत जीवों की अपेक्षा से तीन भांगे पाये जाते हैं। असंयत जीव भी आहारक और अनाहारक दोनों प्रकार का होता है। सब असंयत जीवों में एकेन्द्रिय को छोड़ कर तीन भांगे पाये जाते हैं। संयतासंयत जीव तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय और मनुष्य ही होते हैं, वे एक और सब की अपेक्षा आहारक ही होते हैं। नोसंयत नोअसंयत नोसंयतासंयत सिद्ध ही होते हैं। इस लिए वे अनाहारक ही होते हैं।

(७) कषाय द्वार–एक वचन की अपेक्षा कथन है कि सकषायी जीव आहारक और अनाहारक दोनों तरह का होता है। बहुवचन की अपेक्षा सकषायी जीवों में जीव और एकेन्द्रिय के सिवाय तीन भांगे पाये जाते हैं। क्रोध कषाय वाले जीवों में भी इसी तरह है परन्तु देवों में छः भंग होते हैं। मान और माया कषाय वाले देव और नारकी जीवों में छः भांगे पाये जाते हैं बाकी स्थानों में

तीन भांगे पाये जाते हैं। लोभ कषाय वाले नारकियों में छः और शेष जीवों में तीन भांगे होते हैं। अकषायी जीवों की वक्तव्यता नोसंज्ञी और नोअसंज्ञी की तरह है।

(८) ज्ञान द्वार–ज्ञान की वक्तव्यता सम्यग्दृष्टि की तरह है। आभिनिबोधिक ज्ञानी और श्रुतज्ञानी बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय तथा चतुरिन्द्रियों में छः भांगे होते हैं, बाकी में तीन भांगे होते हैं। अवधिज्ञानी तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय आहारक ही होते हैं। शेष अवधिज्ञानी जीवों में तीन भांगे होते हैं। मनःपर्ययज्ञानी जीव आहारक ही होते हैं। केवलज्ञानी जीवों की वक्तव्यता नोसंज्ञी नोअसंज्ञी जीवों की तरह है।

अज्ञान की अपेक्षा– मति अज्ञानी और श्रुत अज्ञानी जीवों में एकेन्द्रिय को छोड़ कर तीन भांगे पाये जाते हैं। विभंग ज्ञानी तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय और मनुष्य आहारक ही होते हैं, अनाहारक नहीं।

(९) योग द्वार–सयोगी जीवों में एकेन्द्रिय को छोड़ कर तीन भांगे होते हैं। मनयोगी और वचनयोगी जीवों की वक्तव्यता सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों की तरह है। वचनयोग में विकलेन्द्रियों का ग्रहण होता है। काययोगी जीवों में एकेन्द्रिय के सिवाय तीन भांगे होते हैं। अयोगी जीव और सिद्ध भगवान् अनाहारक होते हैं।

(१०) उपयोग द्वार– साकार और अनाकार दोनों प्रकार के उपयोग वाले जीव में एकेन्द्रिय को छोड़ कर तीन भांगे पाये जाते हैं।

(११) वेद द्वार–स्त्रीवेद और पुरुष वेद वाले जीवों में तीन भंग पाये जाते हैं। एकेन्द्रिय जीवों को छोड़ कर नपुंसक वेद वालों में तीन भांगे पाये जाते हैं। अवेदी आहारक और अनाहारक दोनों तरह के होते हैं। सिद्ध अनाहारक होते हैं।

(१२) शरीर द्वार– सामान्य रूप से सशरीरी जीवों में आहारक अनाहारक के तीन भांगे पाये जाते हैं। जिन जीवों के औदारिक शरीर होता है वे आहारक ही होते हैं अनाहारक नहीं। जिन जीवों के वैक्रिय

शरीर और आहारक शरीर होता है, वे भी आहारक ही हैं अनाहारक नहीं। एकेन्द्रियों को छोड़ कर शेष तैजस और कार्मण शरीर वाले जीवों में तीन भांगे पाये जाते हैं। अशरीरी अर्थात् सिद्ध भगवान् अनाहारक ही होते हैं।

(१३) पर्याप्ति द्वार–आहार पर्याप्ति, शरीर पर्याप्ति, इन्द्रिय पर्याप्ति, श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति, भाषा पर्याप्ति और मनःपर्याप्ति, इन पर्याप्तियों से युक्त जीवों में तीन भांगे पाये जाते हैं। आहार पर्याप्ति से रहित जीवों में केवल एक भंग पाया जाता है अर्थात् वे अनाहारक ही होते हैं, आहारक नहीं। शरीर पर्याप्ति से रहित जीव किसी समय आहारक और किसी समय अनाहारक होते हैं, शेष चार पर्याप्तियों से रहित अवस्था में नारकी, देव और मनुष्यों में छः भांगे पाये जाते हैं, बाकी में एकेन्द्रियों को छोड़ कर तीन भांगे होते हैं। भाषा और मनःपर्याप्ति से युक्त जीवों में और तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय में तीन भांगे पाये जाते हैं। (पन्नवणा आहारपद २८ उद्देशा २)

८१८- क्रोध आदि की शान्ति के उपाय

नीचे लिखी तेरह बातों का विचार करने से क्रोध आदि पर विजय प्राप्त होती है। वे ये हैं-

(१) क्रोध–क्षमा से क्रोध की शान्ति होती है। क्रोध के वश होकर जीव किसी की बात को सहन नहीं करता। क्रोध में अन्धा हुआ पुरुष हिताहित के विवेक को खो बैठता है। दूसरे का अहित करते हुए वह अपने ही हाथों से स्वयं अपना भी अनिष्ट कर बैठता है। क्षमा धारण करने से सहनशीलता गुण की वृद्धि होती है। इससे क्रोध का उदय ही नहीं होता और उदय में आया हुआ क्रोध विफल हो जाता है। क्षमा वीर का भूषण है।

(२) मान–अहङ्कार रूप आत्म परिणाम मान कहलाता है।

मानवश जीव में छोटे बड़े के प्रति उचित वर्ताव नहीं रहता। मानी जीव अपने को बड़ा समझता है और दूसरों को अपने से तुच्छ समझता हुआ उनकी अवहेलना करता है। मृदुता अर्थात् सुकोमल वृत्ति से मान पर विजय होती है। कोई भी पदार्थ सदा एक सा नहीं रहता, उसकी पर्यायें बदलती रहती हैं। ऐसी दशा में मान करना व्यर्थ है। इस प्रकार विचार करने से मान नष्ट हो जाता है।

(३) माया–मन, वचन और काया की कुटिलता माया कहलाती है। इसे परवञ्चना भी कहते हैं। माया द्वारा मनुष्य दूसरों को ठगना चाहता है। परवञ्चना करते समय जीव कभी कभी आत्मवञ्चना भी कर बैठता है। आर्जव (सरलता) से माया पर विजय प्राप्त होती है।

(४) लोभ–द्रव्यादि को ग्रहण करने की इच्छा लोभ है। मूर्च्छा, गृद्धिभाव, ममत्वभाव, तृष्णा और असन्तोष लोभ के ही पर्यायवाची नाम हैं। लोभ के वश जीव नहीं करने योग्य नीच कार्य भी कर बैठता है। संतोष वृत्ति धारण करने से लोभ का नाश होता है। इससे इच्छाएं सीमित हो जाती हैं और जीव को सच्चे सुख का अनुभव होने लगता है।

क्रोध मान, आदि का दुष्फल बताते हुए दशवैकालिक सूत्र के आठवें अध्ययन में कहा है–

कोहो पीइं पणासेइ, माणो विणय नासणो।
माया मित्ताणि नासेइ, लोभो सव्व विणासणो॥

अर्थात्–क्रोध से प्रीति का नाश होता है क्योंकि क्रोधान्ध मनुष्य ऐसे दुर्वचन बोलता है कि प्रीति का सर्वथा उच्छेद हो जाता है। मान विनय का नाश करने वाला है क्योंकि मानी पुरुष अपने से किसी को बड़ा नहीं समझता और इसी लिए वह गुणी पुरुषों की सेवा कर विनय प्राप्त नहीं कर सकता। माया मैत्रीभाव का नाश करने वाली है क्योंकि जब मनुष्य का छल प्रकट हो जाता है तब

फिर मित्र भी उसका विश्वास नहीं करते। वे भी उसे मायाचारी और धोखेबाज जान कर छोड़ देते हैं। लोभ प्रीति, विनय और मैत्रीभाव आदि सब सद्गुणों का जड़मूल से नाश करने वाला है।

उवसमेण हणे कोहं, माणं मद्दवया जिणे।
मायं चज्जवभावेण, लोभं संतोसओ जिणे॥

अर्थात्- शान्ति से क्रोध को, नम्रता से मान को, सरलता से माया को और संतोष से लोभ को जीतना चाहिए।

(५) राग- राग भाव से संसार की वृद्धि होती है। वैराग्य से राग पर विजय प्राप्त होती है।

(६) द्वेष-मैत्रीभाव का नाश करता है। सब जीवों को आत्म-तुल्य समझने से मैत्रीभाव प्रकट होता है और द्वेष का नाश होता है।

(७) मोह-जैसे शराबी मदिरा पीकर भले बुरे का विवेक खो देता है और परवश हो जाता है उसी प्रकार मोह के प्रभाव से जीव सत् असत् के विवेक से रहित हो कर परवश हो जाता है। विवेक से मोह पर विजय होती है। ज्ञानावरणीयादि आठ कर्मों में मोह सब का राजा कहा गया है। विवेक ही इसको जीतने का अमोघ उपाय है।

(८) काम-काम शब्द से शब्द, रस, रूप, गन्ध और स्पर्श का ग्रहण होता है। ये सब मोहनीय कर्म के उत्तेजक हैं। काम राग में अन्धा बना हुआ पुरुष निज पर का विवेक खो बैठता है। स्त्री के शरीर के अशुचिपन का विचार करने से काम पर विजय प्राप्त होती है। शरीर महान् गंदा और अशुचि का भण्डार है। स्त्री के शरीर के बारह द्वारों से सदा अशुचि बहती रहती है। केशर, कस्तूरी, चन्दनादि सुगन्धित द्रव्यों को, बहुमूल्य वस्त्राभूषणों को तथा स्वादिष्ट और रसीले भोजन आदि सभी को अपनी अशुचि के कारण यह शरीर बिगाड़ देता है। सारा शरीर अशुचि से ही बना

है, फिर ऐसे शरीर में काम राग करना बुद्धिमान् पुरुषों को कैसे शोभा देता है। ऐसा विवेक पूर्वक विचार करने से काम राग पर विजय प्राप्त होती है।

(९) मत्सर– दूसरों की सम्पत्ति और उन्नति को देख कर हृदय में जलते रहना मत्सर कहलाता है। इसी को डाह और ईर्षा भी कहते हैं। चित्त में दूसरों के प्रति किसी प्रकार बुरे विचार न करने से मत्सर पर विजय प्राप्त होती है।

(१०) विषय–पाँच इन्द्रियों के विषय भूत शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श आदि में आसक्ति भाव रखना विषय कहलाता है। पाँच इन्द्रियों के निग्रह रूप संयम से विषय जीते जाते हैं।

(११) अशुभ योग–मन, वचन और काया की अशुभ प्रवृत्ति को अशुभ योग कहते हैं। गुप्तित्रय (मन, वचन और काया की शुभ प्रवृत्ति) से अशुभ योगों पर विजय प्राप्त होती है।

(१२) प्रमाद– धर्म कार्यों में ढील करना प्रमाद कहलाता है। धर्म कार्यों में समय मात्र की भी ढील न करने से प्रमाद पर विजय प्राप्त होती है। भगवान् ने गौतम स्वामी को लक्ष्य करके उत्तराध्ययन सूत्र में फरमाया है–

'समयं गोयम मा पमायए'

अर्थात्– हे गौतम! समय मात्र का भी प्रमाद मत करो।

शास्त्रों में जगह जगह भगवान् ने फरमाया है–

'अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबन्धं करेह।

हे देवानुप्रिय! धर्म कार्य में किञ्चिन्मात्र विलम्ब मत करो।

(१३) अविरति–हिंसा, झूठ आदि का त्याग न करना अविरति भाव कहलाता है। हिंसा आदि के त्याग रूप विरति से इस पर विजय प्राप्त होती है।

उपरोक्त तेरह बातों का विचार करने से चित्त में शान्ति रहती है और चित्त स्वस्थ रहता है। (श्राद्धविधि प्रकरण)

८१९-- असंस्कृत अध्ययन की तेरह गाथाएं

जीवन चञ्चल है। पूर्व संचित कर्मों के फल भोगने ही पड़ते हैं। इन दोनों बातों का वर्णन उत्तराध्ययन सूत्र के चौथे असंस्कृत नाम के अध्ययन में बड़ी सुन्दरता के साथ किया गया है। इस अध्ययन में कुल तेरह गाथाएं हैं। इनका भावार्थ नीचे दिया जाता है।

(१) गौतम स्वामी को लक्ष्य करके भगवान् फरमाते हैं-

हे गौतम ! टूटा हुआ जीवन फिर जुड़ नहीं सकता इसलिये एक समय का भी प्रमाद मत कर। वृद्धावस्था से ग्रसित पुरुष का कोई शरणभूत नहीं होता, ऐसा तू विचार कर। प्रमादी और हिंसक बने हुए विवेक शून्य जीव किस की शरण में जायेंगे ?

(२) कुबुद्धि (अज्ञान) के वश होकर जो मनुष्य पाप कर्मों द्वारा धन प्राप्त करते हैं, वे कर्मबन्ध में बंधे हुए और वैर भाव की शृङ्खला में जकड़े हुए मृत्यु के समय धन आदि को यहीं छोड़ कर नरक आदि गतियों में चले जाते हैं।

(३) सेंध लगाते हुए पकड़ा गया चोर जिस तरह अपने कर्म से पीड़ित होता है उसी तरह पाप कर्म करने वाले जीव इहलोक और परलोक में अपने अपने कर्मों द्वारा पीड़ित होते हैं क्योंकि संचित कर्मों को भोगे बिना छुटकारा नहीं होता।

जो कर्मों का कर्त्ता है वही उनका भोक्ता है। कर्त्ता एक हो और भोक्ता कोई दूसरा हो ऐसा नहीं हो सकता। इसी न्याय से इस लोक में जिन कर्मों का फल भोगना बाकी रहता है उनको दूसरे भव में भोगने के लिये उस आत्मा को पुनर्जन्म धारण करना ही पड़ेगा।

(४) संसारी जीव दूसरों के लिये अर्थात् अपने कुटुम्बी जनों के लिये जो पाप कर्म करता है, जब वे पाप कर्म उदय में आते हैं तब उसे अकेले को ही वे भोगने पड़ते हैं। उसके धन में भागीदार होने वाले भाई बन्धु, पुत्र, स्त्री आदि उन कर्मों के भागीदार नहीं होते।

(५) प्रमादी जीव धन से इस लोक और परलोक में शरण प्राप्त नहीं कर सकते। जिस तरह अन्धेरी रात में दीपक के बुझ जाने पर गाढ़ अन्धकार फैल जाता है, उसी तरह प्रमादी पुरुष न्याय मार्ग (वीतराग मार्ग) को देख कर भी मानो देखता ही न हो इस तरह व्यामोह में जा फंसता है।

(६) जागृत, निरासक्त, बुद्धिमान् और विवेकी पुरुष जीवन का विश्वास न करे, क्योंकि जीवन चञ्चल है और शरीर निर्बल है इसलिये भारण्ड पक्षी की तरह अप्रमत्त होकर विचरे।

(७) थोड़ी सी भी आसक्ति जाल के समान है ऐसा जान कर सदा सावधान होकर चले। जहाँ तक इस शरीर से लाभ होता हो वहाँ तक संयमी जीवन का निर्वाह करने के लिये शरीर की साल सम्भाल करे किन्तु अपना अन्तकाल समीप आया जान कर इस अशुचिमय मलिन शरीर का समाधिमरण पूर्वक त्याग करे।

(८) जैसे सधा हुआ और कवचधारी योद्धा युद्ध में विजय प्राप्त करता है उसी तरह साधक मुनि अपनी स्वच्छन्द प्रवृत्ति और वासनाओं को रोकने से मुक्ति प्राप्त करता है। पूर्वकाल (असंख्य वर्षों का लम्बा काल प्रमाण) तक भी जो मुनि अप्रमत्त रह कर विचरता है वह उसी भव से शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त करता है।

पतन के दो कारण हैं- (१) स्वच्छन्द प्रवृत्ति और प्रमाद। मुमुक्षु (मोक्ष की अभिलाषा रखने वाले) को चाहिए कि इन्हें सर्वथा दूर कर दे तथा अर्पणता (गुरु की आज्ञानुसार प्रवृत्ति करना) और सावधानता को प्राप्त करे।

(९) शाश्वत (नियत) वादियों की यह मान्यता है कि जो वस्तु पहले न मिली हो पीछे से भी वह नहीं मिल सकती। इस विषय में विवेक करना उचित है अन्यथा उस मनुष्य को शरीर का विरह होते समय अथवा आयुष्य के शिथिल होने पर खेद करना पड़ता है।

जो हमने पहिले नहीं किया तो अब क्या कर सकेंगे ? ऐसा विचार कर पुरुषार्थ को न छोड़ देना चाहिए किन्तु सब कालों में और सब परिस्थितियों में पुरुषार्थ तो करते ही रहना चाहिये।

इस नवीं गाथा का परम्परा के अनुसार दूसरा अर्थ भी होता है। वह इस प्रकार है—

शाश्वत वादी (निश्चय से कह सकें ऐसे ज्ञानी जन) त्रिकालदर्शी होने से, अभी ऐसा ही होगा, अथवा अभी वह जीव संयम आदि प्राप्त कर सकेगा बाद में नहीं आदि आदि बातें निश्चय पूर्वक जानते हैं वे तो पीछे भी पुरुषार्थ कर सकते हैं परन्तु यह उपमा तो उन्हीं महापुरुषों को लागू पड़ती है, औरों को नहीं। यदि साधारण आत्मा भी उनकी तरह वैसा ही करने लगें तो अन्त समय में उनको पछताना ही पड़ेगा।

(१०) शीघ्र विवेक करने की शक्ति किसी में नहीं है। इस लिए मुमुक्षु आत्माओं को चाहिए कि कामभोगों को छोड़ कर संसार स्वरूप को समभाव से समझें और आत्म रक्षक बन कर अप्रमत्त रूप से विचरें।

(११) बारम्बार मोह को जीतते हुए और संयम में विचरते हुए त्यागी को विषय भोग अनेक रूप में स्पर्श करते हैं किन्तु भिक्षु उनके विषय में अपने मन को कलुषित न करे।

(१२) चित्त को लुभाने वाला मन्द मन्द कोमल स्पर्श यद्यपि बहुत ही आकर्षक होता है किन्तु संयमी उसके प्रति अपने मन को आकृष्ट न होने दे, क्रोध को दबावे, अभिमान को दूर करे, कपट (मायाचार) का सेवन न करे और लोभ को छोड़ देवे।

(१३) जो अपनी वाणी (विद्वत्ता) से ही संस्कारी गिने जाने पर भी तुच्छ और परनिन्दक होते हैं तथा राग द्वेष से जकड़े रहते हैं वे परतन्त्र और अधर्मी हैं, ऐसा जान कर साधु उनसे अलग

रहे और शरीर के अन्त तक (मृत्यु पर्यन्त) सद्गुणों की ही आकांक्षा करे। (उत्तराध्ययन अध्ययन ४)

८२०- भगवान् ऋषभ देव के तेरह भव

भगवान् ऋषभ देव के जीव ने धन्ना सार्थवाह के भव में सम्यक्त्व प्राप्त किया था। उस भव से लेकर मोक्ष जाने तक तेरह भव किये थे। वे ये हैं-

धण मिहुण सुर महब्बल ललियंग य, वइरजंघ मिहुणे य।
सोहम्म विज्ज अच्चुय चक्की, सव्वट्ठ उसभे य ॥

अर्थात्- धन्ना सार्थवाह, युगलिया, देव (सौधर्म देवलोक में), महाबल, ललिताङ्ग देव (दूसरे देवलोक में), वज्रजंघ, युगलिया, देव (सौधर्म देवलोक में), जीवानन्द वैद्य, देव (अच्युत देवलोक में), वज्रनाभ चक्रवर्ती, देव (सर्वार्थ सिद्ध विमान में), प्रथम तीर्थङ्कर भगवान् ऋषभ देव।

(१) जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में क्षितिप्रतिष्ठित नाम का एक नगर था। यह नगर अतीव रमणीय और सुन्दर था। अपनी सुन्दरता के लिये उस समय में वह अपूर्व था, मानो इसी दृष्टि से उसका नाम क्षितिप्रतिष्ठित (पृथ्वी में सन्मानित) रक्खा गया था। उस नगर में प्रसन्नचन्द्र नाम का राजा राज्य करता था। प्रजा का पुत्रवत् पालन करने से तथा न्याय और नीति से राज्य करने से उस का यश पूर्ण चन्द्र की चाँदनी के समान सर्वत्र फैला हुआ था। चन्द्र की चाँदनी में जैसे कुमुदिनी हर्षित एवं विकसित होती है उसी तरह उसके राज्य में सब प्रजा सुखी और प्रसन्न थी। अपनी प्रसन्नता व्यक्त करने के लिये ही मानो प्रजा ने अपने राजा का नाम प्रसन्न चन्द्र रक्खा था।

इसी नगर में धन्ना सार्थवाह नाम का एक सेठ रहता था। वह

नगर में प्रतिष्ठित, समृद्ध एवं यशस्वी था। व्यापार में वह बहुत चतुर एवं कुशल था। एक समय व्यापार के लिये वह वसन्तपुर जाने को तय्यार हुआ। उसने नगर में यह घोषित करवाया कि मैं व्यापारार्थ वसन्तपुर जा रहा हूँ, जो मेरे साथ चलना चाहे चले। मैं उसे सभी प्रकार की सुविधा दूँगा। इस घोषणा से बहुत से लोग धन्ना सेठ के साथ वसन्तपुर को रवाना होगये। चलते चलते मार्ग में ही वर्षा ऋतु का समय आगया। इसलिये धन्ना सेठ को मार्ग में ही पड़ाव डाल कर रह जाना पड़ा। अपनी शिष्य मण्डली सहित धर्मघोष आचार्य भी क्षितिप्रतिष्ठित नगर से विहार कर वसन्तपुर की ओर पधार रहे थे। धन्ना सेठ की विनति से वे भी चतुर्मास व्यतीत करने के लिये पड़ाव के पास ही पर्वतों की गुफा में ठहर गये। धन्ना सेठ को मुनियों का स्मरण न रहा इस कारण वह उनकी सेवा शुश्रूषा एवं साल सम्हाल न कर सका। चतुर्मास की समाप्ति पर जब चलने की तय्यारी होने लगी तब सेठ को मुनियों का ध्यान आया। पश्चात्ताप करता हुआ वह मुनियों की सेवा में उपस्थित होकर दीनता एवं अनुनय विनय पूर्वक प्रार्थना करने लगा कि मैं मन्दभाग्य आप को भूल ही गया इस कारण आपकी सेवा का लाभ न ले सका। मेरा अपराध क्षमा करें और कृपा करके पारणा करें।

धर्मघोष आचार्य सेठ के पड़ाव पर भिक्षा करने के लिये पधारे। भिक्षार्थ पधारे हुए ऐसे उत्तम पात्र को दान देने के लिये सेठ के परिणाम इतने उच्च हुए कि देवों को भी आश्चर्य होने लगा। सेठ के परिणामों की परीक्षा करने के लिये देवताओं ने मुनि की दृष्टि बांध दी। मुनि अपने पात्र को देख नहीं सकते थे इस कारण सेठ का वहराया हुआ घी पात्र भर जाने से बाहर बहने लगा। फिर भी सेठ घी डालता ही रहा। परिणामों की उच्चता के कारण वह यही समझता रहा कि मेरा वहराया हुआ घी तो पात्र में ही जाता है।

सेठ के दृढ़ परिणामों को देख कर देवों ने अपनी माया समेट ली और दान का माहात्म्य बताने के लिये वसुधारा आदि पाँच द्रव्य प्रकट किये। उत्तम दान के प्रभाव से धन्ना सेठ ने मोक्षवृक्ष का बीज रूप बोधिरत्न (सम्यक्त्व रत्न) प्राप्त किया।

(२) सुखपूर्वक आयु पूर्ण करके वह उत्तर कुरुक्षेत्र में तीन पल्योपम की आयु वाला युगलिया हुआ।

(३) युगलिये का आयुष्य पूर्ण कर धन्ना सेठ का जीव सौधर्म देवलोक में उत्पन्न हुआ।

(४) देवभवधारी धन्ना सेठ का जीव देवतासम्बन्धी दिव्य सुखों का उपभोग कर आयुष्य पूर्ण होने पर महाविदेह क्षेत्र में गान्धार देश के स्वामी राजा शतबल की रानी चन्द्रकान्ता की कुक्षि से उत्पन्न हुआ। यहाँ उसका नाम महाबल रखा गया। योग्य वय होने पर राजा शतबल ने उसका विवाह अनेक राज कन्याओं के साथ कर दिया और राज्यभार सौंप कर स्वयं संयम अङ्गीकार कर विचरने लगा। बहुत काल तक संयम की आराधना कर शत-बल स्वर्गवासी हुआ।

राजा महाबल न्याय नीति पूर्वक राज्य करने लगा। उसके चार मन्त्री थे– स्वयंबुद्ध, संभिन्नमति, शतमति और महामति। इन चारों में स्वयंबुद्ध सम्यक्त्वधारी एवं धर्मपरायण था। शेष तीन मन्त्री मिथ्यात्वी थे। वे महाबल राजा को संसार में फंसाये रखने की चेष्टा करते थे किन्तु स्वयंबुद्ध मन्त्री समय समय पर धर्मोपदेश द्वारा संसार से निकलने के लिये प्रेरणा किया करता था। बहुत काल तक राज्य करने के पश्चात् राजा महाबल ने राज्य का त्याग कर संयम अङ्गीकार कर लिया। अपनी आयु के दिन थोड़े जान कर दीक्षा लेने के दिन से ही अनशन कर लिया। उसका अनशन बाईस दिन तक चलता रहा।

(५) इसके बाद आयु पूर्ण करके महाबल मुनि का जीव दूसरे ईशान कल्प देवलोक में ललिताङ्ग नाम का देव हुआ। उसकी प्रधान देवी का नाम स्वयंप्रभा था। महाबल की मृत्यु के समाचार जान कर उसके मन्त्री स्वयंबुद्ध ने भी संयम ले लिया। शुद्ध संयम का पालन कर वह भी ईशान कल्प में देव हुआ। वह ललिताङ्ग देव का पूर्ण हितचिन्तक था। एक समय स्वयंप्रभा देवी के विरह से चिन्तित ललिताङ्ग देव को समझा कर धर्म पर दृढ़ किया था।

(६) ईशान देवलोक का आयुष्य समाप्त कर ललितांग देव का जीव महाविदेह क्षेत्र के पुष्कलावती विजय में स्थित लोहार्गल नगर के राजा स्वर्णजंघ की रानी लक्ष्मीदेवी की कुक्षि से पुत्ररूप से उत्पन्न हुआ। उसका नाम वज्रजंघ रखा गया। स्वयंप्रभा देवी का जीव इसी पुष्कलावती विजय में स्थित पुण्डरीकिणी नगरी के राजा वज्रसेन की पुत्रीरूप से उत्पन्न हुआ। इसका नाम श्रीमती रखा गया।

श्रीमती यौवन अवस्था को प्राप्त हुई। एक समय वह महल की छत पर बैठी थी। उसी समय उस ओर से कुछ देवविमान निकले। उन्हें देख कर उसे जातिस्मृति ज्ञान पैदा होगया। उसे अपने पूर्व-भव के पति ललिताङ्ग देव का स्मरण हो आया। उसने मन में दृढ़ संकल्प कर यह प्रण कर लिया कि 'जब तक मुझे अपने पूर्वभव का पति न मिलेगा तब तक मैं किसी से न बोलूँगी' अतः उसने मौन धारण कर लिया। श्रीमती की पण्डिता नाम की सखी बहुत चतुर थी उसने इसका कारण जान लिया। श्रीमती की सहायता से उसने दूसरे देवलोक ईशान कल्प का तथा ललितांग देव के विमान का एक चित्र बनाया किन्तु उसमें कुछ त्रुटि रहने दी। उस चित्रपट को राजपथ पर टांग दिया। संयोगवश एक समय कुमार वज्रजंघ उधर से निकला। राजपथ पर टंगे हुए उस चित्रपट को देख कर जाति-स्मृति ज्ञान पैदा होगया। उसने चित्रपट में रही हुई त्रुटि निकाल दी।

इस बात का पता श्रीमती तथा उसके पिता वज्रसेन को लगा। इस से उनको बहुत प्रसन्नता हुई। वज्रसेन ने श्रीमती का विवाह वज्र-जंघ के साथ कर दिया।

बहुत काल तक सांसारिक भोग भोगने के बाद वज्रजंघ और श्रीमती दोनों को संसार से वैराग्य होगया। 'प्रातः काल पुत्र को राज्य देकर दीक्षा अंगीकार कर लेंगे' ऐसा विचार कर राजा और रानी सुख पूर्वक सो गये। उसी दिन राजपुत्र ने किसी शस्त्र अथवा विष प्रयोग द्वारा राजा को मार कर राज्य प्राप्त कर लेने का विचार किया। राजदम्पति को सोये हुए जान कर राजपुत्र ने विष मिश्रित धूँआ छोड़ दिया जिससे राजा और रानी दोनों एक साथ मर गए।

(७) परिणामों की सरलता के कारण राजा वज्रजंघ और रानी श्रीमती के जीव उत्तर कुरुक्षेत्र में तीन पल्योपम की आयु वाले युगलिए हुए।

(८) युगलिये का आयुष्य समाप्त करके दोनों सौधर्म देवलोक में देव हुए।

(९) जम्बूद्वीप के महाविदेह क्षेत्र में क्षितिप्रतिष्ठित नाम का एक नगर था। उस नगर में सुविधि नाम का एक वैद्य रहता था। देवलोक से चव कर वज्रजंघ का जीव सुविधि वैद्य के यहाँ पुत्र रूप में जन्मा। उसका नाम जीवानन्द रक्खा गया। जीवानन्द वैद्यक विद्या में बहुत होशियार और निपुण हो गया। सौधर्म देव-लोक का आयुष्य पूर्ण कर श्रीमती के जीव ने भी इसी क्षिति-प्रतिष्ठित नगर में ईश्वरदत्त सेठ के यहाँ पुत्र रूप से जन्म लिया।

जीवानन्द वैद्य के पाँच मित्र थे— महीधर राजकुमार, एक प्रधान का पुत्र, एक सेठ का पुत्र और दो अन्य साहूकारों के पुत्र। एक दिन वे पाँचों मित्र जीवानन्द वैद्य के यहाँ बैठे हुए थे। एक तपस्वी मुनि उधर से निकले। उनके चेहरे से ऐसा प्रतीत होता था कि

उनके शरीर में कोई व्याधि है। अपने कार्य में व्यस्त होने के कारण जीवानन्द वैद्य का ध्यान उधर न गया। महीधर राजकुमार ने उससे कहा कि मित्र! तुम बड़े स्वार्थी मालूम होते हो! जहाँ निःस्वार्थ सेवा का अवसर होता है उधर तुम ध्यान ही नहीं देते। जीवानन्द ने कहा कि मित्र! आपका कथन यथार्थ है किन्तु मुझे अब यह बताइये कि मेरे योग्य ऐसी कौन सी सेवा है? राजकुमार ने जवाब दिया कि इन तपस्वी मुनिराज के शरीर में कोई रोग प्रतीत होता है, इसे मिटा कर महान् लाभ लीजिये। जीवानन्द बहुत चतुर वैद्य था। उसने मुनि के शरीर को देख कर जान लिया कि कुपथ्य सेवन से यह रोग हुआ है। जीवानन्द ने अपने मित्रों से कहा कि इस को मिटाने के लिये लक्षपाक तैल तो मेरे पास है किन्तु गोशीर्ष चन्दन और रत्न कम्बल ये दो वस्तुएं मेरे पास नहीं हैं यदि ये दोनों वस्तुएं आप ले आवें तो मुनि की चिकित्सा हो सकती है और इनका शरीर पूर्ण स्वस्थ बन सकता है।

जीवानन्द का उत्तर सुन कर पाँचों मित्र बाजार गये। जिस व्यापारी के पास ये दोनों चीजें मिलती थीं उसके पास जाकर इनकी कीमत पूछी। व्यापारी ने कहा कि इन दोनों वस्तुओं का मूल्य दो लाख स्वर्णमुद्रा है, परन्तु यह बतलाइये कि आप इन चीजों को क्यों खरीद रहे हैं? पाँचों मित्रों ने अपना उद्देश्य बतलाया। तब व्यापारी ने कहा कि आप धन्य हैं जो इस प्रकार महान् लाभ का कार्य कर रहे हैं। मैं इनका मूल्य न लूँगा। आप इन्हें ले जाकर मुनि के शरीर की चिकित्सा करिये।

पाँचों मित्रों ने व्यापारी को धन्यवाद दिया और दोनों वस्तुएं लेकर जीवानन्द के पास आये। उन्होंने मुनि के शरीर में लक्ष-पाक तेल की मालिश की और रत्न कम्बल द्वारा रोग के कीटा-णुओं को निकाल कर गोशीर्ष चन्दन का लेप कर दिया जिससे

मुनि का शरीर बिल्कुल नीरोग होगया।

कुछ समय के पश्चात् छहों मित्रों को संसार से विरक्ति होगई। छहों ने संयम स्वीकार कर लिया। बहुत वर्षों तक शुद्ध संयम का पालन करते हुए विचरते रहे।

(१०) अपना मृत्यु काल समीप जान कर छहों मित्रों ने संलेखना पूर्वक संथारा कर लिया। परिणामों की शुद्धता के कारण आयुष्य पूर्ण कर वे सभी बारहवें अच्युत देवलोक में महर्द्धिक देव हुए।

(११) जम्बूद्वीप के महाविदेह क्षेत्र में पुण्डरीकिणी नाम की एक नगरी थी। वहाँ वज्रसेन नाम के महाराजा राज्य करते थे। उनके धारिणी नाम की रानी थी। बारहवें देवलोक का आयुष्य समाप्त करके जीवानन्द वैद्य का जीव धारिणी रानी के गर्भ में आया। उसी रात में रानी ने चौदह महा स्वप्न देखे। महाराजा वज्रसेन के पास जाकर रानी ने अपने देखे हुए स्वप्न सुनाये। उन्हें सुन कर महाराजा को बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने रानी को स्वप्नों का फल बतला कर कहा कि तुम चक्रवर्ती पुत्र प्रसव करोगी। महाराजा द्वारा कहा गया अपने स्वप्नों का फल सुन कर वह बहुत हर्षित हुई। यतना पूर्वक वह अपने गर्भ का पालन करने लगी। समय पूर्ण होने पर रानी ने सर्व लक्षण सम्पन्न पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम वज्रनाभ रक्खा गया। जीवानन्द के शेष पाँच मित्र भी देवलोक का आयुष्य पूर्ण कर रानी धारिणी की कुक्षि से उत्पन्न हुए। वे वज्रनाभ के छोटे भाई हुए।

महाराज वज्रसेन तीर्थङ्कर थे। इस लिये लोकान्तिक देवों ने उनसे तीर्थ प्रवर्ताने की प्रार्थना की। अपने भोगावली कर्मों का क्षय हुआ जान कर महाराजा वज्रसेन ने अपने पुत्र वज्रनाभ को राजसिंहासन पर बैठा कर दीक्षा ले ली। घाती कर्मों का क्षय कर केवलज्ञान केवलदर्शन उपार्जन किये और चतुर्विध तीर्थ की स्थापना की।

एक दिन महाराज वज्रनाभ के सामने उपस्थित होकर शस्त्रागार रक्षक ने आयुधशाला में चक्ररत्न उत्पन्न होने की बधाई दी। उसी समय दूसरी ओर से 'वज्रसेन तीर्थङ्कर को केवलज्ञान हुआ है' यह बधाई आई। इसी समय वज्रनाभ को अपने यहाँ पुत्र जन्म की बधाई भी मिली। चक्रवर्ती वज्रनाभ ने सब से पहले वज्रसेन तीर्थङ्कर के केवलज्ञान की महिमा की अर्थात् वन्दन और वाणी श्रवण आदि का लाभ लिया। इसके पश्चात् चक्ररत्न और पुत्र उत्पन्न होने के महोत्सव किये।

छः खण्ड पृथ्वी का विजय करके वज्रनाभ बहुत वर्षों तक चक्रवर्ती पद का उपभोग करता रहा। कुछ समय पश्चात् चक्रवर्ती वज्रनाभ को संसार से वैराग्य होगया। भगवान् वज्रसेन के पास दीक्षा अङ्गीकार कर अनेक प्रकार के कठिन तप करता हुआ विचरने लगा। अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय स्थविर आदि का गुण कीर्तन, सेवा, भक्ति, आदि तीर्थङ्कर पद के योग्य बीस बोलों की आराधना करके उत्कृष्ट भावों द्वारा तीर्थङ्कर नाम उपार्जन किया।

(१२) आयुष्य पूर्ण होने पर शरीर त्याग कर वज्रनाभ मुनि सर्वार्थ सिद्ध विमान में तेतीस सागरोपम की स्थिति वाले सर्वोत्कृष्ट देव हुए।

(१३) वर्तमान अवसर्पिणी काल दस कोड़ाकोड़ी सागरोपम का है। इसमें छः आरे हैं— सुषमसुषमा, सुषमा, सुषमदुषमा, दुषमसुषमा, दुषमा और दुषमदुषमा। जब पहला और दूसरा आरा बीत चुका था और तीसरे आरे का बहुत सा भाग भी बीत चुका था केवल चौरासी लाख पूर्व से कुछ अधिक काल बाकी था उस समय भी कुछ कुछ युगलिया धर्म प्रचलित था। उस समय नाभि नाम के कुलकर थे, वे ही युगलियों के राजा थे। उनकी रानी का नाम मरुदेवी था। वे प्रायः विनीता नगरी में ही रहा करते थे। वज्र

नाभ का जीव सर्वार्थसिद्ध विमान का आयुष्य पूर्ण करके मरुदेवी के गर्भ में आया। उसी रात्रि में मरुदेवी ने चौदह महास्वप्न देखे। यथा– वृषभ (बैल), हाथी, सिंह, लक्ष्मी, पुष्पमाला, चन्द्रमण्डल, सूर्यमण्डल, महाध्वज, कलश, पद्मसरोवर, क्षीर समुद्र, देवविमान, रत्नराशि और निर्धूम अग्नि। इन स्वप्नों को देख कर मरुदेवी तत्काल जाग उठी। अपने देखे हुए स्वप्नों का चिन्तन कर हर्षित होती हुई रानी मरुदेवी अपने महल से निकल कर शीघ्र ही अपने पति महाराजा नाभि के पास गई और उन्हें अपने देखे हुए महास्वप्न सुनाए। स्वप्नों को सुन कर नाभि राजा को बहुत प्रसन्नता हुई। उन्होंने कहा– हे भद्रे! इन महास्वप्नों के प्रभाव से तुम एक महाभाग्यवान् पुत्र को जन्म दोगी। इस बात को सुन कर महारानी को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। यत्नपूर्वक वह अपने गर्भ का पालन करने लगी। नौ मास और साढे सात रात्रि व्यतीत होने पर चैत्र कृष्णा अष्टमी की रात्रि में उत्तराषाढा नक्षत्र का चन्द्र के साथ योग होने पर महारानी मरुदेवी ने त्रिलोक पूज्य पुत्र को जन्म दिया। तीर्थङ्कर का जन्म हुआ जान कर छप्पन दिक्कुमारियाँ और दक्षिणार्द्ध लोक के स्वामी सौधर्मपति शक्रेन्द्र सहित चौंसठ इन्द्र माता मरुदेवी की सेवा में उपस्थित हुए। मेरु पर्वत पर ले जाकर इन्द्रों ने भगवान् का जन्म कल्याण किया।

भगवान् ऋषभदेव द्वितीया के चन्द्र की तरह बढ़ने लगे। यौवन वय होने पर उस समय की पद्धति के अनुसार सुमंगला नामक कन्या के साथ ऋषभ कुमार का सांसारिक सम्बन्ध हुआ। समय की विषमता के कारण एक युगल (पुत्र कन्या के जोड़े) में से पुरुष की अल्पवय में ही मृत्यु होगई। उस असहाय कुंवारी कन्या का विवाह ऋषभकुमार के साथ कर दिया गया। यहीं से विवाह पद्धति प्रारम्भ हुई। दोनों पत्नियों के साथ ऋषभ कुमार आनन्द

पूर्वक समय विताने लगे। देवी सुमंगला के उदर से क्रमशः एक पुत्र और एक पुत्री हुई। पुत्र का नाम भरत और पुत्री का नाम ब्राह्मी रक्खा। इसके अतिरिक्त ४९ युगल पुत्र उत्पन्न हुए। देवी सुनन्दा के उदर से एक बाहुबल नामक पुत्र और सुन्दरी नाम की कन्या उत्पन्न हुई। इस प्रकार भगवान् ऋषभ देव के एक सौ पुत्र और दो पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं।

समय की विषमता के कारण अब कल्पवृक्ष फल रहित होने लग गये। लोग भूखों मरने लगे और हाहाकार मच गया। इस समय ऋषभदेव की आयु बीस लाख पूर्व की हो चुकी थी। इन्द्रादि देवों ने आकर ऋषभदेव का राज्याभिषेक महोत्सव किया। राज सिंहासन पर बैठते ही ऋषभदेव ने भूख से पीड़ित लोगों का दुःख दूर करने का निश्चय किया। उन्होंने लोगों को विद्या और कला सिखला कर परावलम्बी से स्वावलम्बी बनाया और लोकनीति का प्रादुर्भाव कर अकर्म भूमि को कर्म भूमि के रूप में परिणत कर दिया। इससे लोगों का दुःख दूर होगया, वे सुखपूर्वक रहने लगे। त्रेसठ लाख पूर्व तक ऋषभदेव राज्य करते रहे। एक दिन उनको विचार आया कि मैंने लौकिक नीति का प्रचार तो किया किन्तु इसके साथ यदि धर्म नीति का प्रचार न किया गया तो लोग संसार में ही फंसे रह कर दुर्गति के अधिकारी बनेंगे, इस लिए अब लोगों को धर्म से परिचित करना चाहिये। इसी समय ऋषभदेव के भोगावली कर्मों का क्षय हुआ जान कर लोकान्तिक देवों ने आकर उनसे धर्म तीर्थ प्रवर्ताने की प्रार्थना की। अपने विचार तथा देवों की प्रार्थना के अनुसार भगवान् ऋषभदेव ने वार्षिक दान देना प्रारम्भ किया। प्रति दिन एक पहर दिन चढ़ने तक एक करोड़ आठ लाख स्वर्णमुद्रा दान देने लगे। इस प्रकार एक वर्ष तक दान देते रहे। इसके पश्चात् अपने ज्येष्ठ पुत्र भरत को विनीता नगरी का और

निन्यान्वे पुत्रों को अलग अलग नगरों का राज्य दे दिया। माता मरुदेवी की आज्ञा लेकर विनीता नगरी के बाहर सिद्धार्थ बाग में पधारे। अपने हाथों से ही अपने कोमल केशों का लुञ्चन किया किन्तु इन्द्र की प्रार्थना से शिखा रहने दी। भगवान् ने स्वयमेव दीक्षा धारण की। इन्द्रादि देवों ने भगवान् का दीक्षा कल्याण मनाया। दीक्षा लेते ही भगवान् को मनःपर्यय ज्ञान उत्पन्न होगया। भगवान् के साथ चार हजार पुरुषों ने दीक्षा धारण की।

दीक्षा लेकर भगवान् वन की ओर पधारने लगे तब मरुदेवी माता उन्हें वापिस महल चलने के लिये कहने लगी। जब भगवान् वापिस न मुड़े तब वह बड़ी चिन्ता में पड़ गई। अन्त में इन्द्र ने माता मरुदेवी को समझा बूझा कर घर भेजा और भगवान् वन की ओर विहार कर गये।

इस अवसर्पिणी काल में भगवान् सर्व प्रथम मुनि थे। इससे पहले किसी ने भी संयम नहीं लिया था। इस कारण जनता मुनियों के आचार विचार, दान आदि की विधि से विल्कुल अनभिज्ञ थी। जब भगवान् भिक्षा के लिये जाते तो लोग हर्षित होकर वस्त्र,आभूषण, हाथी, घोड़े आदि लेने के लिये आमंत्रित करते किन्तु शुद्ध और एषणीक आहार पानी कहीं से भी नहीं मिलता। भूख और प्यास से व्याकुल होकर भगवान् के साथ दीक्षा लेने वाले चार हजार मुनि तो अपनी इच्छानुसार प्रवृत्ति करने लग गये।

एक वर्ष वीत गया किन्तु भगवान् को कहीं भी शुद्ध आहार नहीं मिला। विचरते विचरते भगवान् हस्तिनापुर पधारे। वहाँ के राजा सोमप्रभ के पुत्र श्रेयांस कुमार के हाथों से इक्षु रस द्वारा भगवान् का पारणा हुआ। देवों ने पॉच दिव्य प्रकट करके दान का माहात्म्य वताया। भगवान् का पारणा हुआ जान कर सभी लोगों को वड़ा हर्ष हुआ। लोग तभी से मुनिदान की विधि समझने लगे।

किया। छः दिन तक उनका अनशन चलता रहा। माघ कृष्णा त्रयोदशी के दिन अभिजित नक्षत्र का चन्द्र के साथ योग होने पर शेप चार अघाती कर्मों का नाश करके भगवान् मोक्ष में पधार गये। उस समय इस अवसर्पिणी काल का तीसरा आरा समाप्त होने में तीन वर्ष साढ़े आठ महीने बाकी थे। जिस समय भगवान् मोक्ष पधारे उसी समय में दूसरे १०७ पुरुष और भी सिद्ध हुए। भगवान् के साथ अनशन करने वाले दस हजार मुनि भी उसी नक्षत्र में सिद्ध हुए जिसमें भगवान् मोक्ष पधारे थे। इन्द्र तथा देवों ने सभी का अन्तिम संस्कार किया। फिर नन्दीश्वर द्वीप में जाकर सभी देवी देवताओं ने भगवान् का निर्वाण कल्याण मनाया।

(त्रिषष्टि शलाका पुरुषचरित्र, प्रथम पर्व)

८२१—सम्यक्त्व के लिए तेरह दृष्टान्त

काऊण गंठिभेयं सहसम्मुइयाए पाणिणो केई।
परवागरणा अन्ने लहंति सम्मत्तवररयणं ॥

अर्थात्—अनन्त संसार में भटकता हुआ भव्य जीव जब ग्रन्थि भेद करता है अर्थात् कर्मों की स्थिति को घटा कर मिथ्यात्व की गांठ को खोल डालता है, उस समय उसे सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है। संसार में सम्यक्त्व सभी रत्नों में श्रेष्ठ है। शास्त्रों में कहा है—

सम्यक्त्वरत्नान्न परं हि रत्नं,
सम्यक्त्वबन्धोर्न परोस्ति बन्धुः।
सम्यक्त्वमित्रान्न परं हि मित्रं,
सम्यक्त्वलाभान्न परोस्ति लाभः ॥

अर्थात् —सम्यक्त्व रूपी रत्न से श्रेष्ठ कोई रत्न नहीं है। सम्यक्त्व रूपी बन्धु से बड़ा कोई बन्धु नहीं है। सम्यक्त्व रूपी मित्र से बढ़कर कोई मित्र नहीं है और सम्यक्त्व रूपी लाभ से उत्तम कोई लाभ नहीं है।

इस प्रकार के सम्यक्त्व रूपी रत्न की प्राप्ति दो कारणों से होती है– दूसरे के उपदेश की सहायता के बिना जातिस्मरण से अथवा दूसरे के उपदेश से।

(१) जातिस्मरण से सम्यक्त्व प्राप्ति के लिए श्रेयांसकुमार का उदाहरण–

भारतवर्ष के गजपुर नगर में सोमप्रभ नाम का राजा राज्य करता था। वह भगवान् ऋषभदेव का पौत्र और तक्षशिला के राजा बाहुबलि का पुत्र था। सोमप्रभ के श्रेयांस नाम का युवराज था। वह बहुत सुन्दर, बुद्धिमान् और गुणी था। एक दिन रात को उसने स्वप्न देखा– 'काले पड़ते हुए सुमेरु पर्वत को मैंने अमृत के घड़ों से सींचा और वह अधिक चमकने लगा।' उसी रात को सुबुद्धि नाम के सेठ ने भी स्वप्न देखा कि अपनी हजारों किरणों से रहित होते हुए सूर्य को श्रेयांसकुमार ने किरण सहित कर दिया और वह पहले से भी अधिक प्रकाशित होने लगा। राजा सोमप्रभ ने भी स्वप्न देखा कि एक दिव्य पुरुष शत्रुसेना द्वारा हराया जा रहा है, उसने श्रेयांसकुमार की सहायता द्वारा विजय प्राप्त कर ली।

दूसरे दिन तीनों ने राजसभा में अपने अपने स्वप्न का वृत्तान्त कहा। स्वप्न के वास्तविक फल को बिना जाने सभी अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार कुछ कहने लगे। इस बात में सभी का एक मत था कि श्रेयांसकुमार को कोई महान् लाभ होगा।

राजा, सेठ तथा सभी दरबारी अपने अपने स्थान पर चले गए। श्रेयांसकुमार अपने सतमंजले महल की खिड़की में आकर बैठ गया। जैसे ही उस ने बाहर दृष्टि डाली भगवान् ऋषभदेव को पधारते हुए देखा। वे एक वर्ष की कठोर तपस्या का पारणा करने के लिए भिक्षार्थ घूम रहे थे। शरीर एकदम सूख गया था। उस समय के भोले लोग भगवान् को अपना राजा समझ कर अपने घर निम

न्त्रित कर रहे थे। कोई उन्हें भिक्षा में धन देना चाहता था, कोई कन्या। इस बात का किसी को ज्ञान न था कि भगवान् इन सब चीजों को त्याग चुके हैं। ये वस्तुएं उन के लिए व्यर्थ हैं। उन्हें तो लम्बे उपवास का पारणा करने के लिए शुद्ध आहार की आवश्यकता है।

श्रेयांसकुमार उन्हें देख कर विचार में पड़ गया। उसी समय उसे जातिस्मरण ज्ञान हो गया। थोड़ी देर के लिए उसे मूर्च्छा आगई। कपूर और चन्दन वाले पानी के छींटे देने पर होश आया। ऊपर वाले महल से उतर कर वह नीचे आंगन में आगया। इतने में भगवान् भी उसके द्वार पर पधार गए। उसी समय कोई व्यक्ति कुमार को भेट देने के लिए इक्षुरस से भरे घड़े लाया। श्रेयांसकुमार ने एक घड़ा हाथ में लिया और सोचने लगा– 'मैं धन्य हूँ जिसे इस प्रकार की समस्त सामग्री प्राप्त हुई है। सुपात्रों में श्रेष्ठ भगवान् तीर्थङ्कर स्वयं भिक्षुक बन कर मेरे घर पधारे हैं, निर्दोष इक्षुरस से भरे हुए घड़े तैयार हैं। इनके प्रति मेरी भक्ति भी उमड़ रही है। यह कैसा शुभ अवसर है।' यह सोच कर भगवान् को प्रणाम करके उसने निवेदन किया– यह आहार सर्वथा निर्दोष है। अगर आप के अनुकूल हो तो ग्रहण कीजिए। भगवान् ने मौन रह कर हाथ फैला दिए। श्रेयांसकुमार भगवान् के हाथों में इक्षुरस डालने लगा। अतिशय के कारण रस की एक भी बूँद नीचे नहीं गिरी। भगवान् का कृश तथा उत्तप्त शरीर स्वस्थ तथा शान्त हो गया। इक्षुरस का पान करते हुए उन्हें किसी ने नहीं देखा क्योंकि नीचे लिखे अतिशय तीर्थङ्करों के जन्म से ही होते हैं –

देहः प्रस्वेदामयविवर्जितो नीरजा सुरभिगन्धः।
गोक्षीरसम रुधिरं, निर्विस्रसुधासितं मांसम्॥
आहारो नीहारो लक्ष्यो न च मांसचक्षुषाऽमुष्यः।
निःश्वासः फुल्लोत्पल समानगन्धोऽतिरमणीयः॥

अर्थात्- उनका शरीर पसीने और रोग से रहित होता है अर्थात् धूल या मैल उसे नहीं छूती। सुगन्ध से व्याप्त होता है। रुधिर गाय के दूध के समान सफेद होता है। मांस दुर्गन्धरहित तथा अमृत के समान श्वेत होता है। उनका आहार तथा नीहार चर्मचक्षुओं से दिखाई नहीं देता। उनका साँस फूले हुए कमल के समान सुगन्ध वाला और मनोहर होता है।

उसी समय भगवान् के पारणे से होने वाले हर्ष के कारण देवों ने गन्धोदक और पाँच वर्ण के पुष्पों की वृष्टि की। गम्भीर और मधुर स्वर वाली दुन्दुभियाँ बजाईं। दिव्य वस्त्रों से बनी हुई पताकाएं फहराईं। अपनी कान्ति से दिशाओं को प्रकाशित करने वाले साढ़े बारह करोड़ रत्नों की वृष्टि की। जय जय शब्द करके दान का माहात्म्य गाया। कुछ देवता घर के आंगन में उतर कर श्रेयांस कुमार की प्रशंसा करने लगे। दूसरे लोग भी श्रेयांसकुमार के घर पर इकट्ठे होगए और पूछने लगे- भगवान् के पारणे की विधि आपने कैसे जानी? श्रेयांसकुमार ने उत्तर दिया- जातिस्मरण ज्ञान से। लोगों ने फिर पूछा- जातिस्मरण किसे कहते हैं? उससे पारणे की विधि कैसे जानी जाती है? उसने उत्तर दिया- जातिस्मरण मतिज्ञान का भेद है। इससे मैंने पिछले वे आठ भव जान लिए जिन में मैं भगवान् के साथ रहा था। वर्तमान भव से पहले नवें भव में मेरे प्रपितामह भगवान् ऋषभदेव का जीव ईशानकल्प देव-लोक में ललिताङ्ग नाम का देव था। मैं उनकी स्नेहपात्री स्वयंप्रभा नाम की देवी था। मैं उनकी देवी कैसे बना, यह कथा इस प्रकार है-

धातकीखण्ड द्वीप में पूर्व महाविदेह क्षेत्र के मङ्गलावती विजय में नन्दी नाम का गाँव था। वहाँ दरिद्र किन्तु बड़े कुटुम्ब वाला नागिल नाम का गृहस्थ रहता था। उसकी स्त्री का नाम नागश्री था। उनके सुलक्षणा, सुमङ्गला आदि छः कन्याएं पहले से थीं,

पूर्व जन्म में किए गए पाप के कारण मैंने सातवीं कन्या के रूप में जन्म लिया। माता, पिता तथा परिवार के सभी लोगों को उस जन्म से बड़ा दुःख हुआ। इसी लिए उन्होंने सातवीं कन्या का नाम भी कुछ न रक्खा। लोग उसे निर्नामिका के नाम से पुकारने लगे।

एक वार किसी उत्सव के दिन निर्नामिका ने धनवानों के बच्चों को खेलते हुए देखा। उनके हाथों में विविध प्रकार की खाद्य वस्तुएं थीं। उसने अपनी मां के पास जाकर मांगा– मां! मुझे लड्डू वगैरह कोई मिठाई दो जिससे मैं भी नगर के इन बच्चों के साथ खेलूँ। माँ ने क्रोध के साथ त्योरियाँ और भौंहें चढ़ा कर उसके मुँह पर थप्पड़ लगाया और घर से निकालते हुए कहा– 'अभागिन! तेरे लिए खाने को यहाँ क्या रक्खा है? यदि कुछ खाना चाहती है तो अम्बर तिलक पहाड़ पर चली जा। वहाँ मनोरम नाम के बाग में तरह तरह के फल मिलेंगे। उन्हें खाकर अपनी इच्छा से खेलना। मेरे घर की तरफ मत आना। अगर आई तो ऐसा करूँगी जैसा कभी नहीं हुआ।' इस प्रकार रोती हुई निर्नामिका को घर से निकाल दिया गया। बाहर आकर उसने अम्बर तिलक पर्वत पर जाते हुए बहुत से लोगों को देखा। उनके साथ वह भी पर्वत पर पहुँच गई। वहाँ विविध प्रकार के फलों से लदे हुए वृक्षों वाले, अनेक पक्षियों से व्याप्त, मृग आदि प्राणियों से सुशोभित तथा ऊँचे शिखरों से मण्डित अम्बर तिलक नाम के पर्वत को देखा। दूसरे लोगों के समान उसने भी पक करके अपने आप गिरे हुए स्वादिष्ट फलों को खाया। पर्वत के रमणीय होने के कारण उन लोगों के साथ घूमते हुए उसने कहीं से आता हुआ मीठा स्वर सुना। स्वर के अनुसार कुछ दूर चलने पर चार ज्ञान तथा चौदह पूर्व के धारक युगन्धर नाम के आचार्य को अपनी शिष्य मण्डली के साथ देखा। मनुष्य और देवों की सभा में विराजे हुए वे धर्म कथा सुना

रहे थे। निर्नामिका ने भी जीवों के बन्ध और मोक्षविषयक धर्मोपदेश को सुना। कथा के अन्त में उसने महामुनि से पूछा- भगवन्! क्या संसार में मुझ से भी अधिक दुखी कोई प्राणी है? आचार्य ने उत्तर दिया- भद्रे! तुम्हें क्या दुःख है? तुम अच्छे बुरे शब्दों को सुन सकती हो, सुन्दर तथा असुन्दर रूपों को देख सकती हो, भले तथा बुरे अनेक प्रकार के गन्धों को सूँघ सकती हो, मीठे और कड़वे सभी प्रकार के रसों का स्वाद ले सकती हो, कोमल और कठोर सभी प्रकार के स्पर्शों का अनुभव कर सकती हो, शीत, उष्ण तथा भूख, प्यास आदि कष्टों को दूर करने का उपाय कर सकती हो, सुख से नींद ले सकती हो, अन्धेरे में दीप आदि के प्रकाश द्वारा अपना कार्य कर सकती हो। संसार में दुखी तो वे हैं जिन्हें सदा अशुभ शब्द, अशुभ रूप, अशुभ गन्ध, अशुभ रस और अशुभ स्पर्श की प्राप्ति होती है। जो अपनी शीत तथा उष्ण वेदना को नहीं मिटा सकते। एक पल भर भी जिन्हें कभी निद्रासुख नहीं प्राप्त होता। जहाँ सदा अन्धकार छाया रहता है। जिन्हें परमाधार्मिक विविध प्रकार की यातनाएं सदा देते रहते हैं। मृत्यु की इच्छा होने पर भी निरुपक्रम आयु होने के कारण जिन्हें मौत नहीं आती। नारकी के जीव इस प्रकार की भयङ्कर यातनाएं भोगते हैं। तिर्यञ्च भी ऐसी असह्य वेदनाएं उठाते हैं जिनका वर्णन करना कठिन है। शीत, उष्ण, भूख, प्यास आदि को दूर करने के लिए वे सदा पराधीन रहते हैं। स्वपक्ष तथा परपक्ष से अनेक प्रकार के आघात सहते हैं। तुम से हीन पुण्य वाले, बन्धन आदि में पड़े हुए तथा पराधीन मनुष्यों को भी हजारों दुःख उठाने पड़ते हैं। वे तुम्हारी अपेक्षा बहुत अधिक दुःख भोगते हैं।

इसके बाद निर्नामिका ने वन्दना करके आचार्य से प्रार्थना की- भगवन्! आपने जो कहा वह सर्वथा सत्य है। मेरे लिए उपयुक्त

कोई ऐसा उपाय बताइये जिससे अगले जन्म में मुझे इस प्रकार कष्ट न उठाने पड़ें। आचार्य ने उसे पाँच अणुव्रतों का उपदेश दिया। निर्नामिका ने उन्हें श्रद्धापूर्वक ग्रहण कर लिया। आचार्य के उपदेश से वहुत लोगों को प्रतिवोध हुआ। किसी ने सर्वविरति चारित्र अङ्गीकार कर लिया, किसी ने देशविरति और किसी ने सम्यक्त्व ग्रहण की।

इसके वाद आचार्य महाराज को वन्दना करके दूसरा कोई मार्ग न होने के कारण निर्नामिका वापिस अपने घर लौट आई। घर में रह कर अणुव्रतों को पालने लगी। धीरे धीरे वह जवान होगई किन्तु दुर्भाग्य से किसी ने उसके साथ विवाह नहीं किया। वेले, तेले आदि तपस्याओं से उसने अपना शरीर सुखा डाला। अपने पिता के द्वारा दिए गए रूखे सूखे भोजन और फटे पुराने कपड़ों पर ही सन्तोष करके वहुत समय विता दिया। एक दिन अपने शरीर को जीर्ण शीर्ण तथा सभी प्रकार से क्षीण देख कर निर्नामिका ने आहार को त्याग कर संथारा कर लिया। उसी समय ललिताङ्ग देव (नवें पूर्व भव में भगवान् ऋषभदेव का जीव) की स्वयंप्रभा नामक देवी आयुष्य पूरी होने पर स्वर्ग से काल कर गई। उसके स्थान पर किसी दूसरी देवी को ढूँढता हुआ ललिताङ्ग देव मर्त्यलोक में आया। रात में निर्नामिका को देख कर अपना रूप प्रकट करके कहने लगा– निर्नामिके! मुझे लक्ष्य करके तू नियाणा कर ले कि मैं इसकी देवी वनूँ। यह कह कर वह अदृश्य हो गया। उसे देख कर निर्नामिका के हृदय में भी कुछ अभिलाषा पैदा हो गई थी, इस लिए उसी का ध्यान करती हुई काल करके वह ईशान कल्प के श्रीप्रभ विमान में उसी देव की स्वयंप्रभा नामक देवी के रूप में उत्पन्न हुई। अन्तर्मुहूर्त में ही सारी पर्याप्तियाँ पूर्ण हो गईं। जन्म से होने वाले अवधिज्ञान के कारण उसने अपने पूर्व भव का

वृत्तान्त जाना। ललितांग देव के साथ अम्बर तिलक पर्वत पर जाकर युगन्धराचार्य को वन्दना की और उनके सामने भक्तिपूर्वक विविध प्रकार के नाटक किए। इसके बाद अपने विमान में आकर वह चिर काल तक ललिताङ्ग देव के साथ स्वर्ग के सुख भोगती रही।

एक दिन ललितांग देव आँखें नीची किए कुछ चिन्तित सा बैठा था। उसकी माला के फूल मुरझाए हुए थे। स्वयंप्रभा देवी ने पास में जाकर पूछा– प्राणेश! आज आप उदास क्यों मालूम पड़ते हैं? उसने उत्तर दिया– प्रिये! अब मेरी आयु बहुत थोड़ी बची है। तुम्हारा वियोग समीप है। यह सुन कर स्वयंप्रभा देवी को बहुत दुःख हुआ। उसी समय ललितांग देव ने नन्दीश्वर द्वीप के लिए प्रस्थान किया। मार्ग में देवी की आँखों के सामने ही आँधी से बुझे हुए दीप के समान ललितांग देव समाप्त हो गया। वहाँ से चव कर वह पूर्वविदेह के पुष्कलावती विजय में लोहार्गल नगर के स्वामी सुवर्णजंघ राजा के घर लक्ष्मीवती रानी के गर्भ से उत्पन्न हुआ। उसका नाम वज्रजंघ रक्खा गया। स्वयंप्रभा को उसके वियोग से बहुत दुःख हुआ। वह भी कुछ दिनों बाद काल करके जम्बूद्वीप में विदेह नामक विजय की पुण्डरीकिणी नगरी में वज्र-सेन नामक चक्रवर्ती की रानी गुणवती के गर्भ से कन्या के रूप में उत्पन्न हुई। उसका नाम श्रीमती रक्खा गया। जिस प्रकार हंसिनी पद्मसरोवर में खेलती है उसी प्रकार पिता के घर में खेलती हुई श्रीमती बढ़ने लगी। उसके प्रत्येक कार्य के लिए अलग अलग धात्रियाँ रक्खी हुई थीं। सब प्रकार की स्त्रीकलाओं को सीख कर वह अति निपुण हो गई। धीरे धीरे पूर्ण युवती हो गई। एक दिन वह अपने सर्वतोभद्र नामक महल में बैठी हुई थी। नगर के बाहर देवसम्पात को देखा। विचार करने पर उसे पूर्वभव का स्मरण हो गया। उसी समय वह मूर्च्छित हो गई। चन्दन के पानी से छींटे

देकर पंखा करने पर उसे होश आया। वह मन में सोचने लगी- मुझे अपने प्रिय ललितांग की प्राप्ति कैसे हो ? उसके विना जीना व्यर्थ है। इसके बाद उसने मौन अंगीकार कर लिया। उसके सम्बन्धियों तथा नौकर चाकरों ने सोचा-जृम्भक देवों ने इसकी बोली बन्द कर दी है। इस के लिए उन्होंने बहुत से यन्त्र मन्त्र आदि कराए किन्तु उसका मौन नहीं टूटा।

एक दिन उसका शृङ्गार करने वाली धाय ने एकान्त में पूछा- वेटी ? यदि किसी कारण से तुमने मौन अङ्गीकार किया है तो मुझे बता दो। सम्भव है मैं भी कुछ उपाय कर सकूं। विना कहे तो कुछ नहीं किया जा सकता। श्रीमती ने अपने दिल की वात उसे कह दी।

वृद्धा ने एक चित्रपट तैयार कराया। उसमें धातकीखण्ड से लेकर देवलोक से च्यवन तक ललिताङ्ग देव का सारा चरित्र विस्तार सहित चित्रित कर दिया। इसके बाद जो कोई राजकुमार वहाँ आता उसे वह चित्रपट दिखा देती। एक दिन वज्रजंघ कुमार किसी प्रयोजन से वहाँ आया। ।श्रीमती की धाय ने उसे भी चित्र-पट दिखाया। चित्र देखते ही वज्रजंघ को जातिस्मरण होगया। वह पूछने लगा-मैं ही वह ललिताङ्ग देव हूँ जिसका चरित्र इसमें चित्रित है। यह किसने वनाया ? स्वयंप्रभा देवी को छोड़ कर और कोई इस बात को नहीं जानता। मैं उससे मिलना चाहता हूँ। धाय ने उत्तर दिया- तुम्हारी भूआ की पुत्री श्रीमती ने चित्रित कराया है। वही स्वयंप्रभा देवी है। में यह समाचार राजा को देती हूँ। तब तक आप प्रतीक्षा कीजिए। बहुत अधीर नहीं होना चाहिए। यह कह कर वह श्रीमती के पास गई और उसे सारा हाल सुनाया। राजा के पास पहुँच कर उसने दोनों के प्रेम की बात भी कह दी। बड़े धूम धाम से वज्रजंघ और श्रीमती का विवाह हो गया। माता पिता ने बड़े सन्मान के साथ उन्हें विदा दी। श्रीमती अपने पति के साथ

लोहार्गल नगर में चली आई। पूर्वजन्म में किए गए सुकृत के कारण प्राप्त हुए सांसारिक भोग भोगते हुए उन्हें बहुत दिन बीत गए।

श्रीमती के पिता वज्रसेन चक्रवर्ती तीर्थङ्कर थे। समय होने पर लोकान्तिक देवों ने आकर उन्हें चेताया। सांवत्सरिक दान के बाद अपने बड़े पुत्र पुष्कलपाल को राज्य देकर उन्होंने दीक्षा ले ली। केवलज्ञान होजाने पर धर्मतीर्थ की प्ररूपणा की।

कुछ दिनों के बाद वज्रजंघ के घर आश्चर्यजनक गुणों को धारण करने वाला एक पुत्र उत्पन्न हुआ। इधर कुछ सामन्त पुष्कलपाल से विमुख हो गए। उसने श्रीमती के साथ वज्रजंघ को बुलाने के लिए दूत भेजा। वज्रजंघ श्रीमती के साथ रवाना हुआ। पुण्डरीकिणी में पहुँचने के लिए शरवण नामक मार्ग से जाना आवश्यक था। उस के लिए गुण दोष जानने वाले कुछ लोगों ने वज्रजंघ को मना किया और कहा—इस मार्ग में दृष्टिविष सर्प रहते हैं। इस लिए इधर से न जाना चाहिए। उस मार्ग को छोड़ते हुए घूम कर जाने से वज्रजंघ पुण्डरीकिणी के पास पहुँच गया। उसका आगमन सुन कर भय से सभी सामन्त अपने आप झुक गए। पुष्कलपाल ने उन दोनों का उचित सत्कार किया। कुछ दिन वहाँ रख कर विदा दी। अपने नगर की ओर लौटते हुए वे शरवण-मार्ग के समीप वाले प्रदेश में आए। लोगों ने कहा—अब इस मार्ग से जाने में भी कोई हानि नहीं है। इस मार्ग में किसी महामुनि को केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ था। उनके दर्शनों के लिए आए हुए देवों की प्रभा से उन साँपों का दृष्टिविष नष्ट हो गया। यह सुन कर वज्रजंघ उसी मार्ग से रवाना हुआ। कुछ दूर जाने पर वहाँ विराजे हुए सागर-सेन और मुनिसेन नाम के अनगारों के दर्शन किए। दोनो मुनि संसारावस्था में वज्रजंघ के भाई थे। उनके साथ बहुत से साधु थे। वे दोनों पूर्ण तपस्वी, ज्ञान के भण्डार और सौम्यता के निधि

थे। वज्रजंघ ने परिवार के साथ उन्हें वन्दना की। भिक्षा के समय शुद्ध प्रासुक आहार पानी वहरा कर प्रतिलाभित किया। तीसरे पहर उन महातपस्वियों के गुणों का स्मरण करते हुए वह भावना भाने लगा–मेरे भाई बड़े महात्मा तथा पुण्यात्मा हैं। वह दिन कब होगा जब मैं इस विस्तृत राज्य को छोड़ कर मुनि वृत्ति अङ्गीकार करूँगा। सांसारिक विषय भोगों से निःस्पृह होकर विचरूँगा। इस प्रकार भावना भाते हुए उसके प्रस्थान का समय आ गया। वहाँ से रवाना होकर वज्रजंघ अपने नगर में पहुँचा।

वज्रजंघ के पुत्र ने माता पिता के चले जाने पर नौकरों को दान सन्मान आदि से अपने वश में कर लिया। जब उनके आने का समय हुआ तो उनके वासगृह में विष की धूप कर दी। वज्रजंघ को इस बात का बिल्कुल पता नहीं लगा। रात्रि के समय अपने परिजनों को छुट्टी देकर वह श्रीमती के साथ अपने महल में गया। साधु के गुणों का स्मरण करते हुए वह विश्राम करने लगा। विष की धूप के कारण उसका चित्त घबराने लगा और उसी समय मृत्यु हो गई। श्रीमती भी उसी समय समाप्त हो गई। दोनों मर कर उत्तरकुरु में तीन पल्योपम की आयु वाले युगलिए हुए। वहाँ आयु पूरी करके सौधर्म देव लोक में देव देवी रूप से उत्पन्न हुए। वहाँ भी उन दोनों में बहुत अधिक प्रीति थी। वहाँ एक पल्योपम की आयु पूरी होने पर वप्रावती विजय की प्रभङ्करा नगरी में उत्पन्न हुए। वज्रजंघ का जीव सुविधि नाम के वैद्य का अभय घोष* नामक पुत्र बना और श्रीमती का जीव किसी सेठ के घर केशव नामक पुत्र रूप से उत्पन्न हुआ। वहाँ भी उन दोनों का परस्पर परम स्नेह हो गया। उस भव में उनके चार मित्र और हो गए–राजा, मन्त्री, सेठ और सार्थवाह का पुत्र। एक बार उन्होंने कृमि और कुष्ठ रोग वाले

* त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र में अभय घोष के स्थान पर जीवानन्द नाम है।

किसी मुनि का उपचार करके पुण्य का उपार्जन किया। अन्तिम अवस्था में दीक्षा अङ्गीकार करके श्रमण पर्याय में उन्होंने देवलोक का आयुष्य बाँधा। काल करके सभी सामानिक देव रूप में उत्पन्न हुए। वहाँ से चव कर अभयघोष का जीव जम्बूद्वीप के पुष्कलावती विजय की पुण्डरीकिणी नगरी में वहाँ के राजा वज्रसेन की रानी के गर्भ से उत्पन्न हुआ। केशव को छोड़ कर दूसरे भी बाहु, सुबाहु, पीठ और महापीठ के नाम से वज्रसेन के पुत्र रूप से उत्पन्न होकर माण्डलिक राजा बने। वज्रसेन ने दीक्षा अङ्गीकार कर ली। जिस समय वज्रनाभ को चक्ररत्न की प्राप्ति हुई उसी समय उन्होंने केवलज्ञानी होकर धर्मतीर्थ को प्रवर्ताया। केशव का जीव वज्रनाभ चक्रवर्ती का सारथि बना। काल क्रम से वज्रनाभ चक्रवर्ती ने अपने चारों भाइओं और सारथि के साथ अपने पिता भगवान् वज्रसेन तीर्थङ्कर के पास दीक्षा ले ली। उन में से वज्रनाभ चौदह पूर्वधर और दूसरे साथी ग्यारह पूर्वधारी हुए। लम्बे समय तक दीक्षा पाल कर समाधिमरण द्वारा वे सर्वार्थसिद्ध महाविमान में देव रूप से उत्पन्न हुए। वहाँ तेतीस सागरोपम की स्थिति प्राप्त की। स्थिति पूरी होने पर पहले वज्रनाभ का जीव नाभि कुलकर के पुत्र रूप से उत्पन्न हुआ। बाहु, सुबाहु, पीठ और महापीठ के जीव क्रमशः भरत, बाहुबलि, ब्राह्मी और सुन्दरी रूप से उत्पन्न हुए। सारथि का जीव मैं श्रेयांसकुमार के रूप में उत्पन्न हुआ हूँ। मैंने पूर्वभव में भगवान् वज्रसेन नामक तीर्थङ्कर को देखा है। उन के पास सुना भी था कि वज्रनाभ का जीव भरत क्षेत्र में तीर्थङ्कर होगा। उनके पास दीक्षित होने के कारण मैं दान आदि की विधि को जानता हूँ। केवल इतने दिन मुझे पूर्वभव का स्मरण नहीं था। आज भगवान् को देखने से जातिस्मरण हो गया। पूर्वभव की सारी बातें प्रकट हो गईं। इसी लिए आज भगवान् का पारणा विधि-

पूर्वक हो गया। मेरु पर्वत आदि के स्वप्न जो मैंने, पिताजी ने और सेठजी ने देखे थे तथा जिन के लिए सभा में विचार किया गया था उनका भी वास्तविक फल यही है कि एक वर्ष के अनशन के कारण भगवान् का शरीर सूख रहा था। उनका पारणा कराके कर्म शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने में सहायता की गई है। यह सुन कर श्रेयांसकुमार की प्रशंसा करते हुए सभी अपने अपने स्थान पर चले गए।

पूर्वभव स्मरण के कारण श्रेयांसकुमार में श्रद्धा अर्थात् सम्यक्त्व प्रकट हुई। इसी लिए उसने भगवान् को भक्ति पूर्वक दान दिया। तत्त्वों में श्रद्धा रखता हुआ वह चिर काल तक संसार के सुख भोगता रहा। भगवान् को केवल ज्ञान उत्पन्न होने पर उसने दीक्षा अङ्गीकार कर ली। निरतिचार संयम पालते हुए घनघाती कर्मों का क्षय करके निर्मल केवल ज्ञान को प्राप्त किया। आयुष्य पूरी होने पर सभी कर्मों का नाश करके मोक्ष को प्राप्त किया।

(नवपद बृहद्वृत्ति गाथा १२८)

(२) उपदेश से सम्यक्त्व प्राप्ति के लिए चिलातीपुत्र की कथा—

क्षितिप्रतिष्ठित नगर में जितशत्रु राजा राज्य करता था। उस के सारी रानियों में प्रधान धारिणी नाम की पटरानी थी। उसने राज्य का भार मन्त्री को सौंप दिया। स्वयं दोगुन्दक देवों के समान विषय सुखों में लीन रहने लगा। उसी नगर में यज्ञदेव नाम का एक द्विजपुत्र रहता था। वह चौदह विद्याओं में पारंगत था। अपने को बड़ा भारी पण्डित मानता था। बड़ा घमण्डी, श्रुतियों का पाठ करने वाला और जातिगर्वित था। नगर में साधुओं को देख कर उन की हंसी तथा विविध प्रकार से जिन शासन का अवर्णवाद किया करता था। लोगों के सामने कहता कि ये लोग गन्दे होते हैं। इन में शुचिपना बिल्कुल नहीं होता।

एक बार उसी नगर के बाहर उद्यान में सुस्थित नाम के आचार्य पधारे। उनका सुव्रत नामक शिष्य गोचरी के लिए नगर में गया। वहाँ द्विजपुत्र की अपमान भरी बातें सुनीं। गुरु के पास आकर सुव्रत ने सारी बातें कहीं और पूछा- यदि आप आज्ञा दें तो मैं राजसभा में जाकर सब लोगों के सामने इसका पाण्डित्यगर्व दूर करूँ। गुरु ने कहा- हमारे लिए यह उचित नहीं है। हमारा धर्म क्षमाप्रधान है। विवाद करने से उसमें बाधा पड़ती है। उसकी बातों को अपमान न मानते हुए आक्रोश परिषह को सहन करना चाहिए। वाद विवाद से कभी सत्य वस्तु की सिद्धि नहीं होती। कहा भी है-

वादांश्च प्रतिवादांश्च, वदन्तोऽनिश्चितांस्तथा।
तत्त्वान्तं नैव गच्छन्ति, तिलपीलकवद्गतौ ॥

जैसे कोल्हू का बैल चलते रहने पर भी किसी दूसरे स्थान पर नहीं पहुँचता। घूम घाम कर वहीं आ जाता है। उसी प्रकार बिना निश्चय वाले वाद विवादों को करने वाले व्यक्ति भी किसी निश्चित सिद्धान्त पर नहीं पहुँचते।

गुरु के इस प्रकार मना करने पर सुव्रत मुनि चुप रह गए। शास्त्र में उन्होंने पढ़ा कि सामर्थ्य होने पर तीर्थ की प्रभावना अवश्य करनी चाहिए। कहा भी है-

पावयणी धम्मकही वाई नेमित्तिओ तवस्सी य।
विज्जासिद्धो य कई, अट्ठेव य पभावगा भणिया॥

अर्थात्- प्रावचनी, धर्मकथा करने वाला, वादी, नैमित्तिक, तपस्वी, विद्वान्, सिद्ध (लब्धि सम्पन्न मुनि) और कवि ये आठ प्रभावक कहे गए हैं। यह पढ़ कर मन में निश्चय करके वह गुरु के पास गया और वन्दना करके पूछा। दुबारा पूछने से उसका विशेष आग्रह जान कर गुरु ने मना नहीं किया।

सुव्रत मुनि ने यज्ञदेव के पास जाकर कहा- भद्र! तुम भोले

लोगों के सामने जिन शासन की निन्दा करते हो। ऐसा तुम अज्ञान से करते हो या तुम्हें अपने ज्ञान का बहुत घमण्ड है? यदि अज्ञान से ऐसा करते हो तो अब छोड़ दो, क्योंकि जो जीव अज्ञान के कारण जिनशासन की निन्दा करते हैं वे भव भव में दुःख प्राप्त करते हैं तथा ज्ञान गुण से हीन होते हैं। कहा भी है-

ज्ञानस्य ज्ञानिनां चैव, निन्दाप्रद्वेषमत्सरैः।
उपघातैश्च विघ्नैश्च, ज्ञानघ्नं कर्म बध्यते॥

अर्थात्- ज्ञान या ज्ञानी की निन्दा, द्वेष, ईर्ष्या, उपघात और विघ्नों से ज्ञान का नाश करने वाला कर्म बँधता है।

यदि तुम जान कर ऐसा करते हो तो राजा की सभा में बहुत से सभ्यों के सामने मेरे साथ वाद कर लो। मूर्ख तथा अज्ञान जनता को क्यों ठगते हो? मैं या तुम जो भी हारे वह दूसरे का शिष्य बन जाय यह प्रतिज्ञा कर लो। ऐसा कहने पर वह द्विजपुत्र कुपित होकर कहने लगा-श्रमणाधम! तुम्हें बहुत घमण्ड है। अगर शास्त्रार्थ करने की मन में है तो सुबह आ जाना। राजसभा में तुम्हारा घमण्ड उतर जायगा। सुव्रत मुनि ने उसकी बात को स्वीकार कर लिया। दूसरे दिन सूर्योदय होते ही वे राजा की सभा में पहुँच गये। थोड़ी देर में यज्ञदेव भी वहाँ आ गया। सुव्रत मुनि ने उससे कहा- तुम्हारे कहने के अनुसार मैं राजसभा में आ गया हूँ। राजा स्वयं इसके सभापति हैं। नगर के विशिष्ट लोग सभ्य हैं। ये सभी मध्यस्थ हैं। ये जो फैसला देंगे वह हम दोनों को मान्य होगा। अब तुम्हें जो कुछ कहना हो कहो।

यज्ञदेव ने पूर्वपक्ष किया- तुम लोग अधम हो, क्योंकि वेद के अनुसार अनुष्ठान नहीं करते हो। जैसे चाण्डाल। यहाँ हेतु असिद्ध नहीं है क्योंकि वैदिक क्रियाएं शौचविधि के बाद होती हैं। तुम लोग शरीर तथा वस्त्र दोनों से मलिन हो, इस लिए अशुचि

हो। अशुचि होने के कारण किसी प्रकार की वैदिक क्रिया नहीं कर सकते। इस लिए अधम हो।

सुव्रत मुनि ने उत्तर दिया- तुम्हारा कहना लोक और आगम से बाधित अर्थात् विरुद्ध है, क्योंकि साधुओं को लौकिक शास्त्रों में प्रशस्त अर्थात् उत्तम और पवित्र माना गया है। कहा भी है-

साधूनां दर्शनं श्रेष्ठं, तीर्थभूता हि साधवः।
तीर्थं पुनाति कालेन, सद्यः साधुसमागमः॥

अर्थात्- साधुओं का दर्शन कल्याण देने वाला है, क्योंकि साधु तीर्थरूप होते हैं। तीर्थ तो देर से पवित्र करता है किन्तु साधुओं का समागम शीघ्र पवित्र करता है।

वेद के अनुयायी भी मानते हैं कि-

शुचिर्भूमिगतं तोयं, शुचिर्नारी पतिव्रता।
शुचिर्धर्मपरो राजा, ब्रह्मचारी सदा शुचिः॥

अर्थात्- भूमि के अन्दर रहा हुआ पानी, पतिव्रता स्त्री और धर्मपरायण राजा पवित्र हैं। ब्रह्मचारी सदा पवित्र है।

आपने कहा- जैन साधु वेदविहित अनुष्ठान नहीं करते यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि वेदों में हिंसा का निषेध किया गया है और जैन साधु हिंसा के पूर्ण त्यागी होते हैं।

जैन साधु अपवित्र रहते हैं इस लिए वेदविहित कर्मानुष्ठान के अधिकारी नहीं हैं, यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि शौच अनेक प्रकार का है। वेदवादी भी मानते हैं-

सत्यं शौचं तपः शौचं, शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
सर्वभूतदया शौचं, जलशौचं च पञ्चमम्॥

अर्थात्-सत्य, तप, इन्द्रियनिग्रह और प्राणियों की दया सभी शौच हैं, अर्थात् आत्मा को पवित्र करने वाले हैं। पाँचवाँ जलशौच है।

हम लोग सत्य आदि मुख्य शौच का सेवन करते हैं फिर अपवित्र कैसे हैं? वस्त्र और शरीर मैला होने से हमें अशुचि कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि जीव पापकर्मों से ही मैला होता है, शरीर और वस्त्रों से नहीं। कहा भी है-

मलमइल पंकमइला, धूलीमइला न ते नरा मइला।
जे पावकम्ममइला, ते मइला जीवलोयंमि॥

अर्थात्- मैल, कीचड़ या धूलि के कारण जो लोग मैले कहे जाते हैं वे वास्तव में मैले नहीं हैं। जो पापकर्मों के कारण मैले हैं वे ही वास्तव में मैले हैं। इत्यादि वचनों के द्वारा यज्ञदेव निरुत्तर हो गया। भाव न होने पर भी शास्त्रार्थ की प्रतिज्ञा के अनुसार वह उनका शिष्य हो गया। शास्त्रार्थ को समाप्त करके सुव्रत मुनि अपने स्थान पर चले आए। आचार्य को वन्दना करके यज्ञदेव को दीक्षा दिला दी। स्वीकार की हुई बात का पालन करना वीर पुरुषों का धर्म है, यह सोच कर उसने भी द्रव्य दीक्षा अंगीकार कर ली। कहा भी है-

छिज्जउ सीसं अह होउ बंधणं वयउ सव्वहा लच्छी।
पडिवएणपालणेसुं पुरिसाण जं होइ तं होउ॥

अर्थात्-सिर कट जाय, बन्धन में फंसना पड़े, सारा धन चला जाय, स्वीकार की हुई बात के पालन करने में महापुरुषों को बड़े से बड़ा कष्ट उठाना पड़े तब भी वे उसे नहीं छोड़ते।

कुछ दिनों बाद शङ्का समाधान करता हुआ यज्ञदेव भाव से भी साधु हो गया किन्तु उसके मन से दुगुंछा दूर न हुई। धीरे धीरे श्रावक भी उसे काफी मानने लगे।

एक दिन उसकी स्त्री ने मोहवश किसी वस्तु को वशीकरण द्वारा मन्त्रित करके भोजन के समय उसे वहरा दिया। अज्ञानवश उसने उसे खा लिया और फिर विचार में पड़ गया। व्रतलोप के

भय से उसने अनशन ले लिया। समाधिपूर्वक काल करके वह देवलोक में गया। वहाँ पहुँचने पर भी जुगुप्सा दूर नहीं हुई।

उसके देहान्त से स्त्री को भी वैराग्य हो गया। लज्जा के कारण अपने मन्त्र प्रयोग की बात किसी से बिना कहे ही उसने दीक्षा ले ली। बहुत दिनों तक दीक्षा पाल कर वह काल कर गई। पूर्वकृत सुकृत के कारण वह भी देवलोक में उत्पन्न हुई। देवलोक में दोनों चिर काल तक वहाँ के भोग भोगते रहे।

भरत क्षेत्र में मगध नाम का रमणीय देश है। उसमें ऊँचे ऊँचे प्रासादों, विशाल दुकानों तथा दूसरी सब बातों से रमणीय तथा समृद्ध राजगृह नाम का नगर है। वहाँ वाहन, धन, धान्य और सब प्रकार की सम्पत्ति वाला धन्ना सार्थवाह रहता था। उसकी भार्या का नाम भद्रा था। उनके चिलाती नाम की दासी थी। यज्ञदेव का जीव देव भव से चव कर जुगुप्सा दोष के कारण चिलाती दासी के पुत्र रूप से उत्पन्न हुआ। उसका नाम चिलातीपुत्र रक्खा गया। वह धीरे धीरे बढ़ने लगा।

कुछ दिनों बाद उसकी स्त्री देव भव से चव कर भद्रा सेठानी के गर्भ से पुत्री रूप में उत्पन्न हुई। सेठ के पाँच पुत्र पहले से थे। पुत्री का नाम सुषुमा रक्खा गया। सेठ ने चिलातीपुत्र को उसे खिलाने का काम सौंप दिया। सुषुमा को खिलाते समय वह बुरी चेष्टाएं करने लगा। एक दिन ऐसा करते हुए उसे सेठ ने देख लिया और उसे दुःशील समझ कर घर से निकाल दिया।

अवारागर्द घूमता हुआ चिलातीपुत्र उसी नगर के पास सिंहगुहा पल्ली नामक चोरों की बस्ती में जा पहुँचा। वहाँ जाकर वह चोरों के साथ लूट, मार, चोरी आदि करने लगा। इन कामों में वह बहुत तेज था। दूसरे को लूटते समय उसे कभी दया न आती। वह बहुत क्रूर तथा दृढ़प्रहारी बन गया। इन विशेषताओं के कारण चोरों

का मुखिया उसे बहुत मानने लगा।

कुछ दिनों बाद चोरों का मुखिया मर गया। अपने पराक्रम के कारण चिलातीपुत्र चोरों का सेनापति बन गया।

धन्ना सार्थवाह की पुत्री सुषुमा अब जवान हो गई थी। उसने स्त्री की सभी कलाएं सीख लीं। रूप और गुणों के कारण वह प्रसिद्ध हो गई। राजगृह से आए हुए किसी पुरुष ने उसका हाल चोर सेनापति चिलातीपुत्र से कहा। उसने अपने साथी डाकुओं को बुला कर कहा— आज हम लोग राजगृह में जाएंगे। वहाँ धन्ना सार्थवाह नाम का प्रसिद्ध सेठ रहता है। उसके सुषुमा नाम की लड़की है। मैं उसके साथ विवाह करूँगा। उसके घर से जितना धन लूट कर लाओगे वह सब तुम्हारा होगा। इस प्रकार लालच देने से सभी साथियों ने सहर्ष उसकी बात मान ली। वे राजगृह की ओर रवाना हुए रात को धन्ना सार्थवाह के घर में घुसे। अवस्वापिनी (दूसरे को सुला देने की विद्या) द्वारा घर के सभी लोगों को सुला कर वे घर का सारा धन ले कर निकले। चोर-पति चिलातीपुत्र ने सुषुमा को पकड़ लिया।

धन्ना सेठ को सारा हाल मालूम पड़ा। उसने रक्षकों को कहा, चोरों ने मेरा जो धन चुराया है वह सारा तुम्हारा है। मुझे केवल मेरी पुत्री सुषुमा लौटा देना।

रक्षक यह सुन कर चोरों की खोज में चल पड़े। धन्ना सेठ भी पुत्रों के साथ उनके पीछे हो लिया। धन्ना सार्थवाह को अपनी पुत्री के वियोग में बहुत दुःख हो रहा था। इतने में सूर्योदय होगया। रक्षकों ने बहुत दूर धन को ले जाते हुए चोरों को देखा। उनके आगे सुषुमा को लेकर चिलातीपुत्र भी जा रहा था। लड़ने के लिए अच्छी तरह तैयार होकर वे चोरसेना के पास जा पहुंचे और उन्हें घायल करके सारा धन छीन लिया। यह हाल चिलातीपुत्र ने भी

देखा। वह सुषुमा को आगे करके तलवार घुमाता हुआ जल्दी२ चला।

इतने में रक्षकों ने धन्ना सेठ से कहा– हमें भूख और प्यास लगी है। अपना नगर बहुत दूर छूट गया है। यह अटवी बहुत विकट है। भयङ्कर तलवार को घुमाता हुआ चोर सेनापति भी खतरनाक मालूम पड़ रहा है। एक सुषुमा को छुड़ाने के लिए सभी का जीवन सन्देह में डालना ठीक नहीं है। नीति में भी कहा है–

त्यजेदेकं कुलस्यार्थे, ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत् ।
ग्रामं जनपदस्यार्थे, आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत् ॥

अर्थात्– कुल की रक्षा के लिए एक को छोड़ देना चाहिए। ग्राम की रक्षा के लिए कुल को छोड़ देना चाहिए। देश की रक्षा के लिए ग्राम को छोड़ देना चाहिए और आत्मा की रक्षा अर्थात् आत्मा को पतन से बचाने के लिये पृथ्वी को छोड़ देना चाहिये।

सेठ ने उत्तर दिया– तुम लोग अपने घर पर चले जाओ। मैं अपनी पुत्री को लेकर आऊँगा। यह कह कर धन्ना सेठ अपने पुत्रों के साथ आगे बढ़ा। दूसरे लोग भी लज्जित होकर सारा धन लेकर उसके साथ हो लिये। त्वरितगति से चलते हुए वे शीघ्र चिलातीपुत्र के समीप पहुँच गये।

चिलातीपुत्र ने सोचा– ये मेरे पास पहुँच गए हैं। इस लिए सुषुमा को जरूर छीन लेंगे। अगर यह मेरे पास नहीं रहती तो इनके पास भी न रहनी चाहिए। यह सोच कर उसने सुषुमा का सिर काट लिया। धड़ को वहीं छोड़ कर वह आगे चला गया। इतने में सेठ और उसके लड़के वहाँ आ पहुँचे। बिना सिर के धड़ को देख उन्हें बड़ा दुःख हुआ। शव को लेकर भूख और प्यास से व्याकुल होते हुए वे एक वृक्ष की छाया में बैठ गए। सेठ ने अपने पुत्रों से कहा– तुम लोगों को बहुत जोर से भूख लगी है। ऐसी दशा में एक पैर भी आगे बढ़ना कठिन है। मैं बूढ़ा हो गया

हूँ और पुत्री के मरने के कारण बहुत दुखी भी हूँ। इस लिए तुम मुझे मार कर अपनी भूख मिटा लो और घर चले जाओ।

पुत्रों ने कहा- हाय पिताजी ! आप यह क्या कह रहे हैं ? आप हमें लज्जित कर रहे हैं। ऐसा घृणित कार्य करके हम संसार में किसी को मुँह दिखाने लायक न रहेंगे।

सब लड़कों ने भी क्रमशः अपने अपने शरीर द्वारा भूख मिटाने के लिए कहा किन्तु उसे स्वीकार नहीं किया गया। यह देख कर पिता ने कहा- अगर यही बात है तो इस मरे हुए कलेवर से अपने प्राणों की रक्षा करो। प्राणों की रक्षा के लिए मोह छोड़ कर भूख के घाव को भर लो। उस से भूख मिटा कर वे लोग अपने घर चले गए।

भागते हुए चिलातीपुत्र ने एक ध्यानस्थ मुनि को देखा। पास जाकर कहने लगा-महाराज मुझे संक्षेप से बताइए, धर्म क्या है? नहीं तो तुम्हारा भी सिर काट डालूँगा। मुनि ने उपयोग लगा कर देखा कि यह सुलभबोधि जीव है, इस लिए अवश्य प्रतिबोध प्राप्त करेगा। यह सोच कर उन्होंने उपशम, विवेक और संवर इन तीन पदों में धर्म का उपदेश दिया। चिलातीपुत्र एकान्त में जाकर बैठ गया और सोचने लगा- इन पदों का क्या अर्थ है ?

उस ने विचार किया-क्रोध का त्याग करना उपशम है। उदय में आए हुए क्रोध को निष्फल बनाना चाहिए और उदय में नहीं आए हुए को रोकना चाहिए। शास्त्रों में कहा है-

दुग्गइगमणे सउणो, सिवसग्गपहेसु किण्हसप्पोव्व।
अत्तपरोभयसंतावदायगो, दारुणो कोहो॥

अर्थात्- क्रोध जीवों को दारुण अर्थात् कठोर दुःख देने वाला होता है। दुर्गति में जाने का शकुन है। मोक्ष और स्वर्ग के मार्ग में कृष्ण सर्प है। अपनी आत्मा तथा दूसरे सभी को दुःख देने वाला है।

"मैं इस क्रोध से यावज्जीवन निवृत्त होना चाहता हूँ।" यह

सोच कर उसने अपने दक्षिण हाथ से तलवार फेंक दी।

साधु जी ने दूसरा शब्द विवेक कहा है। उस का अर्थ है द्रव्य, शयन और वस्त्र आदि को छोड़ना। कहा भी है-

जत्तियमेत्तो जीवो संजोगे चित्तवल्लहे कुणइ।
तत्तियमेत्ते सो सोयकीलए नियमणो निहई॥

अर्थात्- चित्त को अच्छे लगने वाले विषयों से जीव जितना सम्बन्ध रखता है उतना ही उसे अधिक शोक करना पड़ता है।

धन, धान्य आदि परिग्रह को भी मैं यावज्जीवन छोड़ता हूँ। यह सोच कर उसने मोहरहित हो कर हिंसा को छोड़ दिया।

साधुजी ने तीसरा पद 'संवर' कहा था। संवर का अर्थ है इन्द्रिय और नोइन्द्रिय के व्यापार को रोकना। शरीर को त्याग कर मैं संवर को भी प्राप्त करता हूँ। यह सोचकर वह कायोत्सर्ग करके खड़ा हो गया। मुनि के उपदेश से उसे प्राणियों के लिए हित-कर तथा संसार में सर्वश्रेष्ठ सम्यक्त्व रूपी रत्न की प्राप्ति हो गई।

खून की गन्ध से वज्र सरीखी चोंच वाली चींटियाँ आकर उसके शरीर को खाने लगीं। पैरों से खाना शुरू करके वे सिर तक पहुँच गईं फिर भी चिलातीपुत्र ध्यान से विचलित नहीं हुआ। उसका शरीर चलनी के समान विन्ध गया। अढ़ाई दिन के बाद काल करके वह देवलोक में पहुँचा।

जो तिहिं पएहिं धम्मं समभिगओ संजमं समारूढो।
उवसमविवेगसंवर चिलाइपुत्तं नमंसामि॥

अर्थात्-जो उपशम, विवेक और संवर रूप तीन पदों से धर्म को प्राप्त कर संयम पर आरूढ हुआ, ऐसे चिलातीपुत्र को नमस्कार हो।

अहिसरिया पाएहिं सोणियगंधेण जस्स कीडीओ।
खायंति उत्तमंगं, तं दुक्करकारगं वंदे॥

अर्थात्-रक्त के गन्ध से चींटियाँ आकर पैरों से ऊपर चढ़ती

हूँ और पुत्री के मरने के कारण बहुत दुखी भी हूँ। इस लिए तुम मुझे मार कर अपनी भूख मिटा लो और घर चले जाओ।

पुत्रों ने कहा– हाय पिताजी ! आप यह क्या कह रहे हैं ? आप हमें लज्जित कर रहे हैं। ऐसा घृणित कार्य करके हम संसार में किसी को मुँह दिखाने लायक न रहेंगे।

सब लड़कों ने भी क्रमशः अपने अपने शरीर द्वारा भूख मिटाने के लिए कहा किन्तु उसे स्वीकार नहीं किया गया। यह देख कर पिता ने कहा– अगर यही बात है तो इस मरे हुए कलेवर से अपने प्राणों की रक्षा करो। प्राणों की रक्षा के लिए मोह छोड़ कर भूख के घाव को भर लो। उस से भूख मिटा कर वे लोग अपने घर चले गए।

भागते हुए चिलातीपुत्र ने एक ध्यानस्थ मुनि को देखा। पास जाकर कहने लगा–महाराज मुझे संक्षेप से बताइए, धर्म क्या है ? नहीं तो तुम्हारा भी सिर काट डालूँगा। मुनि ने उपयोग लगा कर देखा कि यह सुलभबोधि जीव है, इस लिए अवश्य प्रतिबोध प्राप्त करेगा। यह सोच कर उन्होंने उपशम, विवेक और संवर इन तीन पदों में धर्म का उपदेश दिया। चिलातीपुत्र एकान्त में जाकर बैठ गया और सोचने लगा– इन पदों का क्या अर्थ है ?

उस ने विचार किया–क्रोध का त्याग करना उपशम है। उदय में आए हुए क्रोध को निष्फल बनाना चाहिए और उदय में नहीं आए हुए को रोकना चाहिए। शास्त्रों में कहा है–

दुग्गइगमणे सउणो, सिवसग्गपहेसु किण्हसप्पोव्व।
अत्तपरोभयसंतावदायगो, दारुणो कोहो॥

अर्थात्– क्रोध जीवों को दारुण अर्थात् कठोर दुःख देने वाला होता है। दुर्गति में जाने का शकुन है। मोक्ष और स्वर्ग के मार्ग में कृष्ण सर्प है। अपनी आत्मा तथा दूसरे सभी को दुःख देने वाला है।

"मैं इस क्रोध से यावज्जीवन निवृत्त होना चाहता हूँ।" यह

सोच कर उसने अपने दक्षिण हाथ से तलवार फेंक दी।

साधु जी ने दूसरा शब्द विवेक कहा है। उस का अर्थ है द्रव्य, शयन और वस्त्र आदि को छोड़ना। कहा भी है-

जत्तियमेत्तो जीवो संजोगे चित्तवल्लहे कुणइ।
तत्तियमेत्ते सो सोयकीलए नियमणो निहई॥

अर्थात्- चित्त को अच्छे लगने वाले विषयों से जीव जितना सम्बन्ध रखता है उतना ही उसे अधिक शोक करना पड़ता है।

धन, धान्य आदि परिग्रह को भी मैं यावज्जीवन छोड़ता हूँ। यह सोच कर उसने मोहरहित हो कर हिंसा को छोड़ दिया।

साधुजी ने तीसरा पद 'संवर' कहा था। संवर का अर्थ है इन्द्रिय और नोइन्द्रिय के व्यापार को रोकना। शरीर को त्याग कर मैं संवर को भी प्राप्त करता हूँ। यह सोचकर वह कायोत्सर्ग करके खड़ा हो गया। मुनि के उपदेश से उसे प्राणियों के लिए हितकर तथा संसार में सर्वश्रेष्ठ सम्यक्त्व रूपी रत्न की प्राप्ति हो गई।

खून की गन्ध से वज्र सरीखी चोंच वाली चींटियाँ आकर उसके शरीर को खाने लगीं। पैरों से खाना शुरू करके वे सिर तक पहुँच गईं फिर भी चिलातीपुत्र ध्यान से विचलित नहीं हुआ। उसका शरीर चलनी के समान विन्ध गया। अढ़ाई दिन के बाद काल करके वह देवलोक में पहुँचा।

जो तिहिं पएहिं धम्मं समभिगओ संजमं समारूढो।
उवसमविवेगसंवर चिलाइपुत्तं नमंसामि॥

अर्थात्-जो उपशम, विवेक और संवर रूप तीन पदों से धर्म को प्राप्त कर संयम पर आरूढ हुआ, ऐसे चिलातीपुत्र को नमस्कार हो।

अहिसरिया पाएहिं सोणियगंधेण जस्स कीडीओ।
खायंति उत्तमंगं, तं दुक्करकारगं वंदे॥

अर्थात्-रक्त के गन्ध से चींटियाँ आकर पैरों से ऊपर चढ़ती

हुई जिस के सिर को खाने लगीं ऐसे दुष्कर कार्य को करने वाले चिलातीपुत्र को नमस्कार हो।

धीरो चिलाईपुत्तो जो मुइंगलियाहि चालणिव्व कओ।
सो तहवि खज्जमाणो, पडिवन्नो उत्तमं अत्थं ॥

अर्थात्-चिलातीपुत्र बड़े धीर हैं। चींटियों ने उनके शरीर को चलनी बना दिया फिर भी वे विचलित नहीं हुए। चींटियों द्वारा खाए जाते हुए भी उन्होंने उत्तम अर्थ को सिद्ध किया।

अड्ढाइज्जेहिं राइंदिएहिं पत्तं चिलाईपुत्तेणं।
देविंदामरभवणं अच्छरगुण संकुलं रम्म ॥

अर्थात्- अढ़ाई दिन रात के संयम से चिलातीपुत्र ने विविध प्रकार के सुखों से भरे स्वर्ग को प्राप्त किया।

इस प्रकार संक्षेप से चिलातीपुत्र का चरित्र कहा गया। विस्तार से इसका विवरण उपदेश माला से जानना चाहिए।

नोट- चिलातीपुत्र की कथा ज्ञाताधर्मकथाङ्ग सूत्र, प्रथम श्रुतस्कन्ध के १८ वें अध्ययन में विस्तार से दी गई है। यहाँ नवपद प्रकरण के अनुसार लिखी गई है।

(३) सम्यक्त्व से भ्रष्ट होने के लिए नन्द मणिकार की कथा-

राजगृह नगर में नन्द नाम का मणिकार रहता था। भगवान महावीर का उपदेश सुन कर उसने श्रावक व्रत अङ्गीकार कर लिया। इसके बाद चिर काल तक उसे साधु का समागम नहीं हुआ और न कभी सत्य धर्म का उपदेश सुनने को मिला। मिथ्यात्वी कुसाधुओं के परिचय से सम्यक्त्व में शिथिल होते हुए उसने मिथ्यात्व को प्राप्त कर लिया।

एक बार ग्रीष्म ऋतु में उसने चौविहार अट्ठम तप किया। तीसरे दिन रात को जोर से प्यास लगी। उसी समय वह मन में सोचने लगा- वे लोग धन्य हैं जो नगर से बाहर कूप, बावड़ी, तालाब

आदि जल स्थानों को बनवाते हैं। जहाँ आकर हजारों प्राणी नहाते हैं, पानी पीते हैं और विविध प्रकार से शान्ति प्राप्त करते हैं। कल सुबह मैं भी राजा से पूछ कर जलाशय बनवाऊँगा।

दूसरे दिन नन्द मणियार ने नहा धो कर राजदरबार में जाने योग्य वस्त्र पहिने। विशिष्ट उपहार ले जाकर राजा को भेंट किया और बावड़ी बनवाने के लिए जगह मांगी। राजा श्रेणिक ने उसकी बात मान ली।

यथा समय बावड़ी बन कर तैयार हो गई। उसके चारों तरफ बगीचा लगवाया गया। चित्रशाला, भोजन शाला, अतिथि शाला, दान शाला तथा सभागृह आदि बनाए गए। नगर तथा बाहर के सभी लोग उस बावड़ी का उपयोग करने लगे। नन्द की कीर्ति चारों ओर फैल गई। सर्वत्र उसकी प्रशंसा होने लगी। उसे सुन कर नन्द को बड़ा हर्ष हुआ। उसका मन दिन रात बावड़ी में रहने लगा। वह उसी में आसक्त हो गया।

एक बार नन्द मणियार के शरीर में सोलह भयङ्कर रोग उत्पन्न हो गए। वैद्यों ने बहुत इलाज किया किन्तु रोग शान्त न हुए। आर्त्त-ध्यान करते हुए उसने तिर्यञ्च गति का आयुष्य बाँधा तथा मर कर मूर्च्छा के कारण उसी बावड़ी में मेंढक रूप से उत्पन्न हुआ।

एक दिन वह बावड़ी के तट पर बैठा था। इतने में कुछ लोग पानी का उपयोग करने के लिए उसी किनारे पर आए। पानी पीकर हाथ मुँह धोते हुए वे नन्द मणियार की प्रशंसा करने लगे। मेंढक को वे शब्द परिचित से जान पड़े। सोचने पर उसे जातिस्मरण ज्ञान हो गया। सम्यक्त्व को छोड़ कर मिथ्यात्व ग्रहण करने के कारण उसे पश्चात्ताप हुआ। अपने आप श्रावक के व्रतों को धारण कर वह विधिपूर्वक उन्हें पालने लगा। ग्रामानुग्राम विहार करते हुए श्रमण भगवान् महावीर फिर राजगृह में पधारे। पानी भरने वाली स्त्रियों

की बातों से उस मेंढक ने भी यह समाचार जाना। भगवान् के दर्शन करने के लिए वह बावड़ी से बाहर निकला। उसी समय भगवान् के दर्शनार्थ जाते हुए राजा श्रेणिक के घोड़े के पैर नीचे दब कर कुचला गया। शुभ भाव पूर्वक मृत्यु प्राप्त करके दर्दुरांक नामक देव हुआ।

वहाँ से चव कर महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होगा और दीक्षा लेकर मोक्ष प्राप्त करेगा। (ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र १३ वाँ अध्ययन)

(४) सम्यक्त्व गुण की प्राप्ति के लिए धनसार्थवाह की कथा—

सम्मत्तस्स गुणोऽयं अचिंतचिंतामणिस्स जं लहइ।
सिवसग्गमणुयसुहसंगयाणि धणसत्थवाहोव्व॥

अर्थात्—सम्यक्त्व रूपी चिन्तामणि रत्न का माहात्म्य अचिन्त्य है। इस की प्राप्ति से मोक्ष, स्वर्ग और मनुष्य लोक के सभी सुख प्राप्त होते हैं, जैसे धनसार्थवाह को प्राप्त हुए।

जम्बूद्वीप के पश्चिम महाविदेह में अमरावती के समान ऐश्वर्य वाला क्षितिप्रतिष्ठित नाम का नगर है। वहाँ प्रसन्न चन्द्र नाम का राजा राज्य करता था। उसी नगर में कुबेर से भी अधिक ऋद्धि वाला धनसार्थवाह रहता था।

एक बार धनसार्थवाह ने सब साधनों से सुसज्जित होकर वसन्तपुर जाने का विचार किया। प्रस्थान से पहले लोगों को सूचित करने के लिए पटह द्वारा घोषणा कराई—धनसार्थवाह वसन्तपुर के लिए प्रस्थान कर रहा है। जिस किसी को वहाँ जाने की इच्छा हो वह उसके साथ चले। मार्ग में जिस के पास भोजन, वस्त्र,पात्र आदि किसी भी वस्तु की कमी होगी उसे वही दी जायगी। किसी प्रकार का अभाव न रहने दिया जाएगा।

इस घोषणा को सुन कर विविध प्रकार का धन्धा करने की इच्छा से बहुत से सेवक, कृपण तथा वाणिज्य करने वाले लोग

धनसार्थवाह के साथ चलने को तैयार हो गए।

धर्मघोष आचार्य ने भी यह घोषणा सुनी। धनसार्थवाह के सभी कार्यों को सोच कर कार्य रूप में परिणत करने वाला मणिभद्र नाम का प्रधान मुनीम था। धर्मघोष आचार्य ने उसके पास दो साधुओं को भेजा। अपने घर में आए हुए मुनियों को देख कर मणिभद्र ने विधि पूर्वक वन्दना की और विनय पूर्वक आने का कारण पूछा। साधुओं ने कहा– धनसार्थवाह का वसन्तपुर गमन सुन कर आचार्य महाराज ने हमें आपके पास भेजा है। यदि उसे स्वीकार हो तो वे भी साथ में जाना चाहते हैं। मणिभद्र ने उत्तर दिया– सार्थवाह का अहोभाग्य है अगर आचार्य महाराज साथ में पधारें, किन्तु जाने के समय आचार्य महाराज स्वयं आकर सार्थवाह को कह दें। यह कह कर नमस्कार पूर्वक उसने मुनियों को विदा किया। साधुओं ने जाकर सारी बात आचार्य को कही। उसे स्वीकार करके वे धर्माचरण में अपने दिन बिताने लगे।

एक दिन अच्छे मुहूर्त तथा शुभ तिथि, करण, योग और नक्षत्र में धनसार्थवाह प्रस्थान करके नगर से बाहर कुछ दूर जाकर ठहर गया।

उसी समय धर्मघोष आचार्य भी बहुत से मुनियों के साथ सार्थवाह को दर्शन देने के लिए वहाँ आए। वन्दना नमस्कार तथा उचित सत्कार करके सार्थवाह ने उन से पूछा– क्या आप लोग भी मेरे साथ चलेंगे ? आचार्य ने उत्तर दिया– यदि आप की अनुमति हो तो हमारी इच्छा है। उसी समय सार्थवाह ने रसोइए को बुलाया और कहा– अशन पान आदि जैसा आहार इन मुनिवरों को अभीष्ट हो तथा कल्पता हो उस समय बिना संकोच इन्हें वैसा ही आहार देना।

यह सुन कर आचार्य ने कहा–सार्थपते! इस प्रकार हमारे लिए चिन्तित किया हुआ आहार हमें नहीं कल्पता। साधुओं के लिए

वही आहार कल्पनीय होता है जिसे वे न स्वयं बनाते हैं, न दूसरे के द्वारा बनवाते हैं और जो न उनके निमित्त से बना होता है। गृहस्थ जिस आहार को अपने लिए बनाता है उसी को मधुकरी वृत्ति से दोष टाल कर लेना साधु को कल्पता है।

उसी समय किसी ने पके हुए सुगन्धित आम्र फलों से भरा हुआ थाल सार्थपति को उपहार स्वरूप दिया। उसे देख कर प्रसन्न होते हुए सार्थपति ने आचार्य से कहा– भगवन्! इन फलों को ग्रहण करके मुझ पर अनुग्रह कीजिए। आचार्य ने कहा– अभी मैंने कहा था कि जिस आहार को गृहस्थ अपने लिए बनाता है वही हमें कल्पता है। कन्द, मूल, फल आदि जब तक शस्त्र प्रयोग द्वारा अचित्त नहीं होते तब तक हमारे लिए उन्हें छूना भी नहीं कल्पता। खाना तो कैसे कल्प सकता है।

यह सुन कर सार्थवाह ने कहा–आप लोगों का व्रत बहुत दुष्कर है अथवा मोक्ष का शाश्वत सुख बिना कष्ट के प्राप्त नहीं हो सकता। यद्यपि आपका हमारे से बहुत थोड़ा प्रयोजन है फिर भी मार्ग में यदि कोई बात हो तो अवश्य आज्ञा दीजिएगा। ऐसा कह कर सार्थवाह ने प्रणाम करके, उनके गुणों की प्रशंसा करते हुए धर्मघोष आचार्य को विदा किया। आचार्य अपने स्थान पर चले आए। स्वाध्याय और अध्ययन में लीन रहते हुए एक रात वहाँ ठहर कर प्रातः काल होते ही सार्थवाह के साथ रवाना हुए।

उसी समय ग्रीष्म ऋतु आ गई। गरमी बढ़ने लगी। भूमि तपने लगी। तालाब सूख गए। प्यास अधिक लगने लगी। प्रकृति की सरसता नष्ट हो गई। इस प्रकार की गरमी में भी सतत प्रयाण करता हुआ सार्थ (काफिला) विविध प्रकार के भयङ्कर जंगली पशुओं से भरी भयानक अटवी में पहुँच गया। ताल, तमाल, हिन्ताल आदि विविध प्रकार के वृक्ष वहाँ इतने घने थे कि सूर्य भी दिखाई न देता था।

गरमी के बाद संसार को शान्ति देने के लिए वर्षा समय आ गया। बादल आकाश में छा गए। बिजलियाँ चमकने लगीं। भयंकर गर्जना होने लगी। मानो बादल गरमी को तर्जना दे रहे हों।

ऐसे समय में रास्ते चलना बड़ा कठिन था। सभी मार्ग पानी और कीचड़ से भर गए थे। यह सोच कर धन्ना सार्थवाह ने दूसरे लोगों से पूछ कर वहीं पड़ाव डाल दिया। सामान का बचाव करने के लिए रस्सियों से मंच बना कर काफिले के सभी लोग वर्षाकाल बिताने के लिए वहीं ठहर गए। धनसार्थवाह के साथ चलने वाले बहुत थे। मार्ग लम्बा होने से भी बहुत दिन लग गए तथा दान भी बहुत दिया जाता था। इन सब कारणों से रास्ते में खाने पीने की सामग्री कम हो गई। सभी लोग पश्चात्ताप करने लगे। भूख से पीड़ित होकर वे कन्द, मूल तथा फल खाने लगे।

रात को सार्थवाह जब आराम कर रहा था तो मणिभद्र ने कहा– स्वामिन्! खाद्य सामग्री के कम हो जाने से सभी काफिले वाले कन्द, मूल और फल खाने लगे हैं। लज्जा, पुरुषार्थ और मर्यादा को छोड़ कर सभी तापसों की तरह रहने लगे हैं। कहा भी है–

मानं मुञ्चति गौरवं परिहरत्यायाति दैन्यात्मताम्।
लज्जामुत्सृजति श्रयत्यकरुणां नीचत्वमालम्बते॥
भार्याबन्धुसुहृत्सुतेष्वपकृतीर्नानाविधाश्चेष्टते।
किं किं यन्न करोति निन्दितमपि प्राणी क्षुधापीडितः॥

ऐसा कौनसा निन्दित कार्य है जिसे क्षुधापीडित प्राणी नहीं करता। वह अपने मान को छोड़ देता है, गौरव का त्याग कर देता है, दीनता को धार लेता है, लज्जा को तिलाञ्जलि दे देता है, क्रूरता और नीचता को अपना लेता है। स्त्री, बन्धु, मित्र और पुत्र आदि के साथ भी विविध प्रकार के बुरे व्यवहार करता है।

यह सुन कर धन्ना सार्थवाह चिन्ता करने लगा। इतने में उसे

नींद आ गई। रात्रि के अन्तिम पहर में अश्वशाला रक्षक ने सार्थवाह को लक्ष्य करके एक आर्या श्लोक पढ़ा-

पालयति प्रतिपन्नान् विषमदशामागतोऽपि सन्नाथः।
खण्डीभूतोऽपि शशी कुमुदानि विकाशयत्यथवा॥

अर्थात्- सज्जन मालिक स्वयं बुरी दशा में होने पर भी अपने आश्रित व्यक्तियों का पालन करता है। चन्द्रमा खण्डित होने पर भी कुमुदों को अवश्य विकसित करता है।

इस श्लोक को सुन कर सार्थपति जग गया। वह सोचने लगा- इस श्लोक में स्तुति के बहाने से मुझे उलाहना दिया गया है। इस काफिले में सब से अधिक दुखी कौन है? यह सोचते हुए उस के मन में धर्मघोष आचार्य का ध्यान आया। उसने अपने आप कहा- इतने दिन तक मैंने उन महाव्रतधारियों का नाम भी नहीं लिया, सेवा करना तो दूर रहा। कन्द, मूल, फल वगैरह वस्तुएं उन के लिए अभक्ष्य हैं। इस लिए मेरे ख्याल में उन्हीं को सब से अधिक दुःख होगा। प्रमाद रूपी नशा कितना भयंकर है। यह पुरुष को सदा बुरी चिन्ताओं की ओर प्रवृत्त करता है। अच्छे विषयों की ओर से बुद्धि को हटाता है। इस लिए अभी जाकर मैं साधु जी की उपासना करता हूँ। वह इस प्रकार का विचार कर रहा था, इतने में पहरेदार के मुंह से एक दूसरा श्लोक सुना-

संसारेऽत्र मनुष्यो घटनं केनाऽपि तेन सह लभते।
दैवस्यानभिलषतोऽपि यद्वशात् पतति सुखराशौ॥

अर्थात्- संसार में मनुष्य अचानक ऐसी वस्तुओं को प्राप्त कर लेता है जिन के कारण वह प्रकृति के प्रतिकूल होने पर भी सुखों को प्राप्त कर लेता है।

इस श्लोक को सुन कर धन्ना सार्थवाह को सन्ताप हुआ, क्योंकि इस में सूचित किया गया था कि बुरा समय होने पर भी मुनियों

को किसी प्रकार का कष्ट नहीं है।

इतने में कालनिवेदक ने आकर कहा-

भूषितभुवनाभोगो दोषान्तकरः समुत्थितो भानुः।
दर्शयितुमिव तवायं समगुणभावेन मित्रत्वम्॥

संसार को अलंकृत करने वाला, रात्रि का अन्त करने वाला सूर्य उदित हो गया है। मानो समान गुणों वाला होने के कारण वह आप के साथ मित्रता करना चाहता है।

इस के बाद सार्थवाह शय्या से उठा। प्रातःकृत्य से निबट कर बहुत से लोगों के साथ आचार्य के समीप गया। वहाँ पहुँच कर मुनियों से घिरे हुए धर्मघोष आचार्य के दर्शन किए। आचार्य करुणा के निवास, धैर्य के निधान, नीति के घर, चारों प्रकार की बुद्धि के उत्पत्तिस्थान, साधु धर्म के आधार, सन्तोष रूपी अमृत के समुद्र तथा क्रोध रूपी प्रचण्ड अग्नि के लिए जल से भरे बादल के समान थे।

अपने को कृतार्थ समझते हुए सार्थवाह ने प्रसन्नचित्त होकर भक्तिपूर्वक आचार्य तथा सभी मुनियों को वन्दना की। संसार के मूल कारण कर्मरूपी पर्वतों का दमन करने में वज्रानल के समान गुरु महाराज ने उस का अभिनन्दन किया। पास बैठ कर धनसार्थ-वाह कहने लगा- भगवन्! पुण्यहीन के घर में कल्पवृक्ष नहीं उगता, न कभी वहाँ धन की वृष्टि होती है। आप संसार समुद्र से पार होने के लिए जहाज के समान हैं। तृण, मणि, पत्थर, सोना, शत्रु और मित्र सभी आप के लिए समान हैं। आप सच्चे धर्म का उपदेश देने वाले सद्गुरु हैं। ऐसे आप को प्राप्त करके भी मैंने कभी आपका अमृत समान वचन नहीं सुना। संसार में प्रशंसनीय आप के चरणकमलों की सेवा भी कभी नहीं की। कभी आप का ध्यान भी नहीं किया। प्रभो! मेरे इस प्रमाद को क्षमा कीजिए।

उस का वचन सुन कर अवसर को जानने वाले आचार्य ने

उत्तर दिया– सार्थपते ! आपको दुखी न होना चाहिए। जंगल में क्रूर प्राणियों से हमारी रक्षा करके आपने सब कुछ कर लिया। काफिले के लोगों से हमें इस देश तथा हमारे कल्प के अनुसार आहार आदि मिल जाते हैं।

सार्थवाह ने फिर कहा– प्रभो ! यह आपकी महानता है कि आप मेरी प्रशंसा करते हैं तथा प्रत्येक परिस्थिति में संतुष्ट रहते हैं। किसी दिन मुझे भी दान का लाभ देने की कृपा कीजिए।

आचार्य ने उत्तर दिया– कल्पानुसार देखा जायगा। इसके बाद सार्थवाह वन्दना करके चला गया।

उस दिन के बाद सार्थवाह प्रतिदिन भोजन के समय भावना भाने लगा। एक दिन गोचरी के लिए फिरते हुए दो मुनि उस के निवासस्थान में पधारे। सार्थवाह को बड़ी खुशी हुई। वह सोचने लगा– इन्हें क्या वहराया जाय ? पास में ताजा घी पड़ा था। सार्थवाह ने उसे हाथ में लेकर मुनियों से प्रार्थना की– यदि कल्पनीय हो तो इसे लेकर मुझ पर कृपा कीजिए। 'कल्पनीय है' यह कर कर मुनियों ने पात्र बढ़ा दिया। सार्थवाह बहुत प्रसन्न होकर अपने जन्म को कृतार्थ समझता हुआ घी वहराने लगा। इतने में पात्र भर गया। मुनियों ने उसे ढक लिया। भावपूर्वक वन्दना करके सार्थवाह ने मुनियों को विदा किया।

सार्थवाह ने भाव पूर्वक दान दे कर बोधिबीज को प्राप्त किया। भव्यत्व का परिपाक होने से वह अपार संसार समुद्र के किनारे पहुँच गया। देव और मनुष्यों के भवों से उसने विविध प्रकार के सुख प्राप्त किए। संसार समुद्र को पार करके मोक्ष रूपी तट के समीप पहुँच गया। इसके बाद उसने तीर्थंकर गोत्र बाँधा। धन्ना सार्थवाह का जीव तेरहवें भव में वर्तमान चौवीसी के प्रथम तीर्थङ्कर श्री ऋषभदेव के भव में उत्पन्न होकर नित्य, शुद्ध, बुद्ध और मुक्त

हुआ। तेरह भवों का वृत्तान्त बोल नं० ८२० में दिया है।

जिस सम्यक्त्व के बीज मात्र से ऐसा फल प्राप्त होता है उस की साक्षात् प्राप्ति होने पर तो कहना ही क्या ? कहा भी है–

असमसुखनिधानं धाम संविग्नतायाः।
भवसुखविमुखत्वोद्दीपने सद्विवेकः॥
नरनरकपशुत्वोच्छेदहेतुर्नराणाम्।
शिवसुखतरुमूलं शुद्धसम्यक्त्वलाभः॥

अर्थात्– शुद्ध सम्यक्त्व की प्राप्ति सुख का अनुपम निधान है। संवेग का घर है। सांसारिक सुखों से विरक्ति बढ़ाने के लिए सच्चा विवेक है। मनुष्य, तिर्यञ्च और नरकगति को काटने वाला है तथा मोक्ष का मूल कारण है।

सम्यक्त्वमेकं मनुजस्य यस्य, हृदि स्थितं मेरुरिवाप्रकम्पम्।
शङ्कादिदोषापहृतं विशुद्धं, न तस्य तिर्यङ्नरके भयं स्यात्॥

अर्थात्– जिस व्यक्ति के हृदय में मेरु के समान निष्प्रकम्प, शङ्का आदि दोषों से रहित तथा शुद्ध सम्यक्त्व जम जाता है उसे तिर्यञ्च और नरक गति का भय नहीं रहता।

(५) सम्यक्त्व में शङ्का दोष के लिए मयूराण्ड और सार्थवाहपुत्र का उदाहरण–

चम्पा नगरी से उत्तर पूर्व में सुभूमिभाग नाम का उद्यान था। उसमें तालाब के मालुका कच्छ नामक किनारे पर एक मयूरी रहती थी। समय पाकर उसने दो अण्डे दिये। नगर में जिनदत्त और सागरदत्त नामक सार्थवाहों के दो पुत्र बालमित्र थे। एक दिन वे दोनों सैर सपाटा करने के लिए उसी उद्यान में आए। वहाँ घूमते हुए वे मालुका कच्छ किनारे पर पहुँचे। उन्हें देख कर मयूरी डर गई। वृक्ष पर बैठ कर भयभीत दृष्टि से मालुका कच्छ और उन दोनों की ओर देखने लगी।

सार्थवाह के पुत्र मयूरी की चेष्टाओं से समझ गए कि इस कच्छ में कोई ऐसी वस्तु है जिसकी रक्षा के लिए मयूरी चिन्तित है। लताओं के अन्दर ध्यान पूर्वक देखने पर उन्हें दो अण्डे दिखाई दिए। उन्हें लेकर वे अपने घर चले आए। अण्डे नौकरों को दे कर कहा कि इन की पूरी साल सम्भाल रखना। इनसे निकले हुए मोरों से हम खेला करेंगे।

उन में से सागरदत्त का पुत्र सदा शङ्कित रहता था कि उसके अण्डे से मोर बनेगा या नहीं। शङ्का शील होने के कारण वह रोज अपने अण्डे के पास आकर उसे घुमा फिरा कर देखता। अन्दर कुछ है या नहीं, यह जानने के लिए उसे कान से लगा कर हिलाता तथा ऐसी चेष्टाएं करता जिन से उसे बाधा पहुँचती।

इस प्रकार हिलने डुलने से अण्डा सूखने लगा। यह देख कर सागरदत्त के पुत्र को बड़ा पश्चात्ताप हुआ। वह सोचने लगा— शङ्कित होने के कारण मैंने स्वयं उसे खराब कर दिया।

जिनदत्त का पुत्र निःशङ्क होकर उसे विधि पूर्वक पालने लगा। समय पूरा होने पर उसमें से मयूर का बच्चा निकला। उसे देख कर जिनदत्त का पुत्र बहुत प्रसन्न हुआ। एक मोर पालने वाले को बुला कर उसे नाचना सिखाने के लिए सौंप दिया। थोड़े दिनों बाद वह सभी प्रकार के नृत्य सीख कर तैयार हो गया। नगर के सभी लोग उसे देख कर प्रसन्न होते। जिनदत्त के पुत्र ने शङ्का रहित होने के कारण अपने मनोरथ को पूरा कर लिया और सागरदत्त के पुत्र ने शङ्कित होने के कारण उसे बिगाड़ लिया।

इसी प्रकार जो जीव शङ्कारहित होकर सम्यक्त्व का पालन करता है वह मोक्ष रूपी लक्ष्मी को प्राप्त कर लेता है। शास्त्रों में कहा है—

जिणवर भासियभावेसु भावसच्चेसु भावओ मइमं।
नो कुज्जा संदेहं, संदेहोऽणत्थ हेउत्ति॥

अर्थात्– राग द्वेष को जीतने वाले जिनेन्द्र भगवान् द्वारा कही हुई बातें सर्वथा सत्य हैं। बुद्धिमान् व्यक्ति उनमें सन्देह न करे क्योंकि सन्देह अनर्थ का मूल है।

नोट–ऊपर लिखी कथा ज्ञाता धर्मकथाङ्ग सूत्र, प्रथम श्रुतस्कन्ध के तीसरे अध्ययन में भी आई है।

(६) सम्यक्त्व में कांक्षा दोष के लिए कुशध्वज राजा का दृष्टान्त

कुशस्थल नामक नगर में कुशध्वज राजा राज्य करता था। उसका कुशाग्रबुद्धि नामक मंत्री था। एक बार कोई व्यक्ति राजा के पास उल्टी शिक्षा वाले घोड़े उपहार रूप में लाया। घोड़ों की शिक्षा का हाल किसी को कहे बिना ही उसने घोड़े भेंट कर दिए।

कुतूहलवश राजा और मंत्री उन पर सवार होकर मैदान में गए। राजा और मंत्री घोड़ों को रोकने के लिए लगाम खींचते थे किन्तु घोड़े इससे तेज़ होते जाते थे। मैदान से निकल कर वे जंगल की ओर दौड़ने लगे। अन्त में दोनों ने थक कर लगाम ढीली कर दी। घोड़े खड़े हो गए। पर्याण (साज सामान) के उतारते ही वे नीचे गिर पड़े।

राजा और मन्त्री भूख तथा प्यास से व्याकुल हो रहे थे। पानी की खोज में फिरते हुए उन्होंने बक पक्षियों की पंक्ति को देखा। उस से पानी का अनुमान करके वे उसी ओर चले। कुछ दूर जाने पर उन्हें निर्मल पानी से भरा हुआ जलाशय दिखाई दिया। वहाँ पहुँच कर उन्होंने स्नान किया। थोड़ी देर विश्राम करके पास वाले वृक्षों के फल खाकर उन्होंने अपनी भूख मिटाई तथा पत्तों की शय्या बना कर सो गए।

दूसरे दिन उठ कर अपने नगर की ओर चले। रास्ते में उनके खोजने के लिए सामने आते हुए सैनिक मिले।

नगर में पहुँचते ही राजा ने खाने के लिए विविध प्रकार के

स्वादिष्ट तथा गरिष्ट भोजन बनवाए। उन्हें बहुत ज्यादह खा जाने से वह बीमार पड़ गया। उसी से उसका देहान्त हो गया।

मन्त्री ने वैद्य की सलाह के अनुसार थोड़ा थोड़ा भोजन करके अपनी पाचन शक्ति को ठीक किया। धीरे धीरे वह पूर्ण स्वस्थ हो गया और सभी सुख भोगने लगा।

इसी प्रकार जो व्यक्ति धर्म के विषय में दूसरे दर्शनों की आकांक्षा करता है वह स्वर्ग मोक्ष आदि सुखों को नहीं प्राप्त कर सकता। मिथ्यात्व को प्राप्त करके नरक आदि गतियों में भ्रमण करने लगता है। इस लिए मुमुक्षु को आकांक्षा दोष से रहित रहना चाहिए।

(७) विचिकित्सा दोष के लिए विद्या देने वाले वणिक् का उदाहरण--

श्रावस्ती नगरी में जिनदत्त नाम का श्रावक रहता था। वह नव तत्त्वों का जानकार, बारह व्रतों का धारक तथा आकाशगामी विद्या का ज्ञाता था। वहीं पर उसका मित्र महेश्वरदत्त रहता था। किसी बात से उसे मालूम हो गया कि जिनदत्त आकाशगामी विद्या को जानता है। एक दिन उसके पास आकर कहने लगा-- कृपा करके मुझे भी यह विद्या दे दीजिए जिससे मैं भी आकाश में चलने लग जाऊँ। जिनदत्त ने दुःसाध्य कहते हुए उसे सारी विधि बता दी।

महेश्वरदत्त सारी विधि तथा मन्त्र को सीख कर उसके अनुसार सिद्ध करने के लिए कृष्ण चतुर्दशी को श्मशान में गया। एक वृक्ष की शाखा से चार पैरों वाला छींका बाँधा। नीचे खाई खोद कर उसमें खदिर की लकड़ियाँ इकट्ठी करके आग जलाई। छींके में बैठ कर १०८ बार मन्त्र को पढ़ा। इसके बाद वह मन में सोचने लगा-- अब मुझे छींके का एक पैर काट देना चाहिए। इसी प्रकार मन्त्र को जपते हुए चारों पैरों को काटना है। मालूम नहीं विद्या सिद्ध होगी या नहीं। अगर तब तक विद्या सिद्ध न हुई तो मैं आग

में गिर पडूँगा। यह सोच कर वह नीचे उतर गया। फिर सोचा- श्रावक ने मुझे अपना मित्र समझ कर बहुत कहने पर विद्या दी है। कृष्ण चतुर्दशी भी फिर बहुत दिनों बाद आएगी। यह सोच कर फिर छींके पर चढ़ा। नीचे देखा तो उसे तेज जलते हुए अंगारे दिखाई दिए। फिर नीचे उतर आया। वह इसी प्रकार चढ़ना उतरना करता रहा।

उसी रात को किसी चतुर चोर ने राजा के महल में सांध लगाई। रत्नों का पिटारा चुरा कर वह बाहर निकल गया। खोजी लोग पीछे लग गए। उन के भय से चोर उसी वन में घुस गया। खोजी लोगों ने सोचा- अभी पीछा करने से चोर भाग जाएगा या मार काट करेगा। इस लिए वन को घेर कर बैठ जाना चाहिए। सुबह पकड़ लिया जायगा।

चोर कुछ दूर गया तो उसने जलती हुई आग तथा चढ़ उतर करते हुए महेश्वरदत्त को देखा। आश्चर्य में पड़ कर चोर ने उसके पास जाकर पूछा- तुम कौन हो? यहाँ किस लिए आए हो?

महेश्वरदत्त ने उत्तर दिया-मैं इस नगर से विद्या सिद्ध करने के लिए यहाँ आया हूँ।

चोर बोला- चञ्चलता छोड़ कर एकाग्रचित्त होने पर ही विद्या सिद्ध होती है। चढ़ उतर करने से नहीं।

महेश्वरदत्त- यह तो ठीक है, किन्तु ऊपर चढ़ने पर मैं डरता हूँ कि विद्या सिद्ध होगी या नहीं।

चोर ने पूछा-तुम्हें विद्या सिद्ध करने का मन्त्र किसने दिया?

महेश्वरदत्त-श्रावक ने। वह मेरा मित्र है।

चोर ने सोचा- इसे विद्यासिद्धि में पूरा विश्वास नहीं है। संशयशील होने के कारण यह विद्या को सिद्ध नहीं कर सकता। उसने कहा- सिद्ध करने की विधि और मन्त्र मुझे बता दो। मैं

सिद्ध करूँगा। तुम्हें रत्नकरण्डिका दे दूँगा।

महेश्वरदत्त ने इस बात को मञ्जूर कर लिया। उसने सोचा-पता नहीं यह विद्या सिद्ध होगी या नहीं। रत्नकरण्डिका तो प्रत्यक्ष फल है। उसने रत्नकरण्डिका लेकर विद्या चोर को दे दी। चोर ने दृढ चित्त होकर विद्या को सिद्ध कर लिया और उसी समय आकाश में उड़ गया।

प्रातः काल होते ही महेश्वरदत्त को पुलिस ने पकड़ लिया। चोरी का माल उसी के पास था, इस लिए राजा के पास लाया गया। राजा ने उसे मृत्युदण्ड दिया। राजपुरुष उसे शूली पर ले जाने लगे। इतने में विद्या सिद्ध करने वाले चोर ने उपयोग लगा कर देखा कि मुझे विद्या देने वाले मेरे गुरु का क्या हाल है। वध्य स्थान की ओर ले जाते हुए उसे देख कर वह नगर पर पत्थर बरसाने लगा। आकाश में खड़े रह कर उसने कहा- यह निर्दोष है। इसे छोड़ दो। डर कर राजपुरुषों ने उसे छोड़ दिया।

विद्या सिद्धि में चिकित्सा अर्थात् संशय होने के कारण महेश्वर दत्त उसे सिद्ध नहीं कर सका। चोर ने संशय रहित होने के कारण उसे सिद्ध कर लिया।

(८) जुगुप्सा दोष के लिए दुर्गन्धा का उदाहरण-

सीमाप्रदेश में शालिग्राम नाम का गाँव था। वहाँ धनमित्र श्रावक रहता था। उसकी धनश्री नाम वाली पुत्री थी। जब उसका विवाह होने वाला था उस समय विहार करते हुए साधु महाराज उसी नगर में पधार गए। भिक्षा के समय धनमित्र द्वारा विनति करने पर गोचरी के लिए वे उस के घर आए। श्रावक ने अपनी पुत्री से हाथ फरसने के लिए कहा। उस समय वह नहा धो कर शृङ्गार किए बैठी थी। ज्येष्ठ आषाढ़ के दिनों में साधुओं के शरीर से बहुत दुर्गन्ध निकल रही थी। भिक्षा देते समय धनश्री के मन

में आया– पाप और दोषों से बचने के लिए ही धार्मिक क्रियाएं होती हैं। अगर साधु प्रासुक जल से स्नान कर लेवें तो इसमें क्या दोष है ? धनश्री ने इस जुगुप्सा दोष के लिए आलोयणा तथा प्रतिक्रमण नहीं किए। सांसारिक काम भोग भोगती हुई वह काल करके राजगृह नगर में एक वेश्या के घर उत्पन्न हुई। जिस समय वह पेट में थी उसी समय वेश्या को उस से घृणा उत्पन्न हो गई। उसने गर्भ को गिराने के अनेक उपाय किए किन्तु आयुष्य बलवान होने के कारण गर्भ नहीं गिरा। उत्पन्न होते ही वेश्या ने उसे किसी जगह छोड़ आने के लिए दासी को दे दिया। दासी उसे जहाँ छोड़ कर आई वह प्रदेश दुर्गन्ध से भर गया।

उसी समय श्रमण भगवान् महावीर राजगृह में पधारे। श्रेणिक राजा सेना के साथ वन्दना करने गया। मार्ग में पड़ी उस लड़की की दुर्गन्धि असह्य होने के कारण आगे की सेना दूसरे रास्ते से जाने लगी। राजा ने दुर्गन्ध का हाल जान कर उसके पास जाकर देखा और मन में सोचा– कहाँ इसकी रूप सम्पदा और कहाँ दुर्गन्ध ! भगवान् से जाकर पूछूँगा कि यह किस कर्म का फल है? श्रेणिक भगवान् के पास गया। दुर्गन्धा के पूर्वभव का सारा हाल जान कर उसने पूछा–इसकी क्या गति होगी ? भगवान् ने उत्तर दिया – आठ वर्ष तक वह तुम्हारी प्रधान भार्या रहेगी।

श्रेणिक ने फिर पूछा– मैं उसे कैसे पहिचानूँगा।

भगवान् ने फरमाया– एक बार वह पासे के खेल में तुम्हें जीत लेगी। फिर तुम्हारी पीठ पर अपना कपड़ा रख कर चलने को कहेगी। उस से तुम समझ सकोगे कि यही दुर्गन्धा है।

धर्मकथा सुन कर राजा वापिस नगर में आगया। इतने में वह भी गजगन्धा बन गई अर्थात् उसके शरीर की गन्ध मतवाले हाथी के समान हो गई।

सिद्ध करूँगा। तुम्हें रत्नकरण्डिका दे दूँगा।

महेश्वरदत्त ने इस बात को मञ्जूर कर लिया। उसने सोचा- पता नहीं यह विद्या सिद्ध होगी या नहीं। रत्नकरण्डिका तो प्रत्यक्ष फल है। उसने रत्नकरण्डिका लेकर विद्या चोर को दे दी। चोर ने दृढ चित्त होकर विद्या को सिद्ध कर लिया और उसी समय आकाश में उड़ गया।

प्रातः काल होते ही महेश्वरदत्त को पुलिस ने पकड़ लिया। चोरी का माल उसी के पास था, इस लिए राजा के पास लाया गया। राजा ने उसे मृत्युदण्ड दिया। राजपुरुष उसे शूली पर ले जाने लगे। इतने में विद्या सिद्ध करने वाले चोर ने उपयोग लगा कर देखा कि मुझे विद्या देने वाले मेरे गुरु का क्या हाल है। वध्य स्थान की ओर ले जाते हुए उसे देख कर वह नगर पर पत्थर बरसाने लगा। आकाश में खड़े रह कर उसने कहा- यह निर्दोष है। इसे छोड़ दो। डर कर राजपुरुषों ने उसे छोड़ दिया।

विद्या सिद्धि में चिकित्सा अर्थात् संशय होने के कारण महेश्वर दत्त उसे सिद्ध नहीं कर सका। चोर ने संशय रहित होने के कारण उसे सिद्ध कर लिया।

(८) जुगुप्सा दोष के लिए दुर्गन्धा का उदाहरण-

सीमाप्रदेश में शालिग्राम नाम का गाँव था। वहाँ धनमित्र श्रावक रहता था। उसकी धनश्री नाम वाली पुत्री थी। जब उसका विवाह होने वाला था उस समय विहार करते हुए साधु महाराज उसी नगर में पधार गए। भिक्षा के समय धनमित्र द्वारा विनति करने पर गोचरी के लिए वे उस के घर आए। श्रावक ने अपनी पुत्री से हाथ फरसने के लिए कहा। उस समय वह नहा धो कर शृङ्गार किए बैठी थी। ज्येष्ठ आषाढ़ के दिनों में साधुओं के शरीर से बहुत दुर्गन्ध निकल रही थी। भिक्षा देते समय धनश्री के मन

में आया- पाप और दोषों से बचने के लिए ही धार्मिक क्रियाएं होती हैं। अगर साधु प्रासुक जल से स्नान कर लेवें तो इसमें क्या दोष है? धनश्री ने इस जुगुप्सा दोष के लिए आलोयणा तथा प्रतिक्रमण नहीं किए। सांसारिक काम भोग भोगती हुई वह काल करके राजगृह नगर में एक वेश्या के घर उत्पन्न हुई। जिस समय वह पेट में थी उसी समय वेश्या को उस से घृणा उत्पन्न हो गई। उसने गर्भ को गिराने के अनेक उपाय किए किन्तु आयुष्य बलवान होने के कारण गर्भ नहीं गिरा। उत्पन्न होते ही वेश्या ने उसे किसी जगह छोड़ आने के लिए दासी को दे दिया। दासी उसे जहाँ छोड़ कर आई वह प्रदेश दुर्गन्ध से भर गया।

उसी समय श्रमण भगवान् महावीर राजगृह में पधारे। श्रेणिक राजा सेना के साथ वन्दना करने गया। मार्ग में पड़ी उस लड़की की दुर्गन्धि असह्य होने के कारण आगे की सेना दूसरे रास्ते से जाने लगी। राजा ने दुर्गन्ध का हाल जान कर उसके पास जाकर देखा और मन में सोचा- कहाँ इसकी रूप सम्पदा और कहाँ दुर्गन्ध! भगवान् से जाकर पूछूँगा कि यह किस कर्म का फल है? श्रेणिक भगवान् के पास गया। दुर्गन्धा के पूर्वभव का सारा हाल जान कर उसने पूछा-इसकी क्या गति होगी? भगवान् ने उत्तर दिया - आठ वर्ष तक वह तुम्हारी प्रधान भार्या रहेगी।

श्रेणिक ने फिर पूछा- मैं उसे कैसे पहिचानूँगा।

भगवान् ने फरमाया- एक बार वह पासे के खेल में तुम्हें जीत लेगी। फिर तुम्हारी पीठ पर अपना कपड़ा रख कर चलने को कहेगी। उस से तुम समझ सकोगे कि यही दुर्गन्धा है।

धर्मकथा सुन कर राजा वापिस नगर में आगया। इतने में वह भी गजगन्धा बन गई अर्थात् उसके शरीर की गन्ध मतवाले हाथी के समान हो गई।

इतने में किसी प्रयोजन से वहाँ आए हुए एक अहीर ने उसे देखा और ले जाकर अपनी स्त्री को सौंप दिया। स्त्री ने उसे पुत्री रूप से स्वीकार कर लिया। सुखपूर्वक पलती हुई वह युवती हो गई।

कार्तिकी पूर्णिमा को राजगृह में कौमुदी महोत्सव मनाया जाता था। उसे देखने के लिए वह भी अपनी माता के साथ आई। अहीर की स्त्री और वह दोनों एक जगह खड़ी होकर तमाशा देख रही थीं। इतने में श्रेणिक राजा अभयकुमार के साथ वेश बदल कर वहीं आया। उस के रूप को देख कर तथा अंगस्पर्श का अनुभव करके राजा उस पर आसक्त हो गया और मन में सोचने लगा- इसे कैसे प्राप्त किया जाय ? उस ने अपना प्रयोजन कपट से सिद्ध करना चाहा। अपने नाम वाली अंगूठी को उस के कपड़े में बाँध दिया और अभयकुमार से कहा- किसी ने मेरी अंगूठी चुरा ली है। अभयकुमार ने उसी समय बहुत से पुरुषों को बुलाया और अंगूठी का हाल बता कर सभी द्वारों पर खड़े रहने के लिए कहा। एक एक व्यक्ति को बुला कर तलाशी ली गई। उसी लड़की के ओढ़ने में अंगूठी निकल आई। चोर समझ कर उसे पकड़ लिया गया और राजा के पास भेज दिया गया।

राजा उसे अपने अन्तःपुर में ले गया और उसके साथ विवाह कर लिया। धीरे धीरे वह राजा को बहुत प्रिय हो गई। एक दिन वे दोनों पासों से खेल रहे थे। दोनों में शर्त हुई कि जो जीते वह दूसरे की पीठ पर चढ़े और हारने वाला सवारी बन कर उसे घुमावे। राजा हार गया। श्रेणिक की दूसरी रानियाँ जब जीतती थीं तो उस पर कपड़ा रख कर हाथ रख देती थीं। गजगन्धा केवल कपड़ा रख कर अलग हो गई। राजा को भगवान् के वचन याद आगए और वह हँसने लगा। गजगन्धा ने लज्जित होकर हँसने का कारण पूछा। कसम खिला कर पूछने पर राजा ने भगवान् द्वारा बताई

हुई सारी बात कह दी। यह सुन कर उसे वैराग्य उत्पन्न हो गया। राजा की आज्ञा लेकर उसने दीक्षा ले ली।

जुगुप्सा का कटु फल जान कर उसे त्यागना चाहिए।

(६) परपाषण्डप्रशंसा के लिए सयडाल की कथा—

पाटलिपुत्र में नन्द वंश और कल्पक वंश का सम्बन्ध बहुत पुराना चला आ रहा था। जिस समय नवाँ नन्द राज्य कर रहा था कल्पक वंश का सयडाल नामक मन्त्री था। उसका असली नाम श्रीवत्स था। सौ पुत्र उत्पन्न होने के कारण राजा उसे सयडाल कहने लगा था, क्योंकि उसके वंश की सौ शाखाएं हो गई थीं। उसके त्याग, भोग, दाक्षिण्य, लावण्य आदि गुणों के कारण सभी पुत्रों में प्रधान स्थूलभद्र नाम का एक पुत्र था। सब से छोटे का नाम श्रियक था।

उसी नगर में वररुचि नामका ब्राह्मण रहता था। वह प्रतिदिन नए नए एक सौ आठ श्लोक बना कर राजा की प्रशंसा किया करता था। राजा सन्तुष्ट होने पर भी कुछ नहीं देता था। केवल सयडाल के मुँह की ओर देखने लगता। वररुचि मिथ्यात्वी था इस लिए सयडाल उसकी प्रशंसा नहीं करता था। वररुचि इस बात को समझ गया। उसने सयडाल की स्त्री के पास जाकर उसी की प्रशंसा करना शुरु किया। स्त्री द्वारा पूछा जाने पर वररुचि ने सारी बात कह दी।

एक दिन स्त्री ने पूछा— आप वररुचि की प्रशंसा क्यों नहीं करते ? सयडाल ने उत्तर दिया— वह मिथ्यात्वी है।

स्त्री ने कहा—महापुरुष नियम वाले होते हैं। भावदोष को टालना चाहिए। उसकी प्रशंसा करने में तुम्हारा तो कोई स्वार्थ नहीं है। फिर क्या दोष है ? स्त्री ने उसे रोज इसी प्रकार कहना शुरू किया।

स्त्री द्वारा वार वार कहा जाने पर एक दिन सयडाल ने उस

की प्रशंसा करते हुए कहा– सुभाषित है। राजा ने एक सौ आठ दीनारें पारितोषिक में दे दीं। प्रतिदिन वह इसी प्रकार देने लगा।

सयडाल ने सोचा– इस प्रकार तो खजाना खाली हो जाएगा इस लिए कोई उपाय करना चाहिए। एक दिन उसने राजा से कहा– महाराज ! आप इस प्रकार क्यों देते हैं ? राजा ने उत्तर दिया– तुम प्रशंसा करते हो, इस लिए मैं देता हूँ।

सयडाल ने कहा– लोक में प्रचलित काव्यों को वह अच्छी तरह पढ़ता है, मैंने तो यही कहा था।

राजा ने पूछा– यह कैसे कहते हो कि लोक में प्रचलित काव्यों को पढ़ता है। यह तो अपने बनाये हुए काव्यों को सुनाता है।

सयडाल ने उत्तर दिया मेरी लड़कियाँ भी इन्हें सुना सकती हैं, फिर दूसरों का तो कहना ही क्या ?

सयडाल के सात कन्याएं थीं– यक्षिणी, यक्षदत्ता, भूतिनी, भूतदत्ता, सेना, रेणा और वेणा। उसमें पहली को सौ श्लोक एक ही बार सुनने पर याद हो जाते थे। दूसरी को दो बार सुनने पर, तीसरी को तीन बार सुनने पर इसी प्रकार सातवीं को सात बार सुनने पर याद हो जाते थे।

राजा को विश्वास दिलाने के लिए सयडाल ने उन्हें समझा कर परदे के पीछे छिपा कर बैठा दिया।

वररुचि ने आकर एक सौ आठ श्लोक पढ़े। कन्याओं ने उन्हें सुन लिया। वररुचि ने कहा– महाराज ! यदि आप की आज्ञा हो तो अपनी पुत्रियों को बुलाऊँ। वे भी इन श्लोकों को सुना सकती हैं।

राजा की आज्ञा से मन्त्री ने पहिले यक्षिणी को बुलवाया और कहा बेटी ! वररुचि ने इस प्रकार के एक सौ आठ श्लोक राजा को सुनाए हैं। क्या तुम भी उनको जानती हो? यदि जानती हो तो

राजाजी को सुनाओ। यक्षिणी ने अपने मधुर कण्ठ से सभी श्लोक बिना कहीं चूके सुना दिए। यक्षदत्ता ने उन श्लोकों को दो बार सुन लिया था। इस लिए वे उसको याद हो गए। मन्त्री के बुलाने पर उस ने भी सभी सुना दिए। तीन बार सुनने पर तीसरी लड़की को याद होगए। इसी प्रकार सभी लड़कियों ने उन श्लोकों को सुना दिया।

राजा ने रुष्ट होकर वररुचि का दान बन्द कर दिया।

इस के बाद वररुचि ने एक दूसरी चाल चली। रात को जाकर वह गङ्गा में एक मोहर डाल देता और सुबह सभी लोगों के सामने उसे निकाल कर कहता– यह मोहर मुझे गङ्गा ने दी है। इसी प्रकार वह रोज करने लगा। लोग उसके प्रभाव से चमत्कृत हो गए। धीरे धीरे यह खबर राजा को लगी। उसने सयडाल को कहा– अगर वररुचि लोक में प्रचलित काव्यों को सुनाता है तो गङ्गा सन्तुष्ट होकर दीनारें क्यों देती है? मन्त्री ने उत्तर दिया–

आडम्बरस्स पाओ, पाओ डंभस्स विज्जया पाओ।
गलगज्जिअस्स पाओ, हिंडइ धुत्तो चउप्पाओ॥

अर्थात्– धूर्त पुरुष चार पैरों पर घूमते हैं– आडम्बर, दम्भ अर्थात् कपटाई, विद्या और गलगर्जित अर्थात् बहुत बातें बनाना।

राजा ने फिर पूछा– यदि यही बात है तो सभी लोग उसके गुणों की प्रशंसा क्यों कर रहे हैं?

मन्त्री ने कहा–महाराज! दुनियाँ वास्तविक बात को नहीं पहिचानती। हमें स्वयं वहाँ जाकर देखना चाहिए कि क्या बात है?

दोनों ने प्रातः काल वहाँ जाने का निश्चय कर लिया। मन्त्री ने सन्ध्या समय एक विश्वस्त पुरुष को गङ्गा के किनारे भेजा और कहा– तुम वहाँ छिप कर बैठ जाना। वररुचि पानी में जो कुछ डाले उसे यहाँ लेते आना। उस पुरुष ने वैसा ही किया।

सुबह राजा और मन्त्री गङ्गा के किनारे गए। वररुचि गङ्गा

की स्तुति कर रहा था। इसके बाद वह दीनार खोजने के लिए हाथ पैर मारने लगा। कुछ न मिलने पर वह लज्जित हो गया इसके बाद सयडाल ने कहा- अगर गङ्गा नहीं देती तो मैं देता हूँ। यह कह कर उसने दीनार वाला कपड़ा निकाला। राजा को दिखा कर उसे दे दिया। वररुचि को अपना मुँह दिखाना भी कठिन हो गया। वह वहाँ से भाग गया।

वररुचि मन्त्री पर बहुत क्रुद्ध हो गया था, इस लिए उसके छिद्र ढूँढने लगा। मन्त्री की एक दासी को उसने अपने साथ मिला लिया। उससे नित्य प्रति वह मन्त्री के घर का हाल जानने लगा वह मूर्ख दासी सब कुछ कह देती थी।

कुछ दिनों बाद श्रियक के विवाह की तैयारी होने लगी। किसी राजा के यहाँ ढूकना था, इस लिए फौज, हथियार वगैरह पूरा सरञ्जाम इकट्ठा किया जाने लगा। दासी ने यह बात वररुचि को कह दी। उसे छिद्र मिल गया। छोटे मोटे नौकर चाकरों में उसने यह बात फैलानी शुरू कर दी-

एहु लोउ नवि जाणइ जं सयडालु करेसइ।
राय नंदु मारेविउ सिरियउ रज्जि ठवेसइ॥

भावार्थ- लोग इस बात को नहीं जानते कि सयडाल क्या करना चाहता है। राजा नंद को मार कर अपने पुत्र श्रियक को गद्दी पर बैठाना चाहता है।

परम्परा से यह बात राजा के पास पहुँच गई। उसने विश्वस्त पुरुषों को जाँच के लिए भेजा। उन्होंने मन्त्री के घर जाकर सारी तैयारियाँ देखीं। राजा कुपित हो गया। सयडाल ने राजा के पैरों में गिर कर बहुत समझाने की कोशिश की किन्तु वह अधिकाधिक विमुख होता गया। उसने घर जाकर श्रियक को बुला कर कहा-वत्स! उस दुष्ट ब्राह्मण ने राजा को हम पर कुपित कर दिया

है। कुल नाश से बचने के लिए यही उपाय है कि मैं जाकर राजा के पैरों में पड़ता हूँ, उस समय तुम मुझे मार डालना। श्रियक ने अनिच्छा प्रकट की।

सयडाल ने कहा—अच्छा! पैरों में गिरने के समय मैं तालकूट विष खा लूँगा। इस से मेरी मृत्यु स्वतः हो जायगी। ऊपर से तुम प्रहार करना। इससे राजा को तुम पर विश्वास हो जायगा और कुल का नाश बच जायगा। श्रियक ने वैसा ही किया।

सयडाल ने अपने प्राण छोड़ दिए किन्तु अन्यतीर्थिक की प्रशंसा नहीं की। इसी प्रकार सम्यक्त्व में दृढ़ पुरुषों को परतीर्थी की प्रशंसा नहीं करनी चाहिए।

(१०) उपबृंहणा के लिए श्रेणिक का उदाहरण—

ज्ञान, दर्शन तथा चारित्र आदि गुणों के धारण करने वालों की प्रशंसा करना, गुणों की वृद्धि के लिए उन्हें प्रोत्साहित करना उपबृंहणा कहलाती है। इसके लिए श्रेणिक का उदाहरण है—

मगध देश के राजगृह नगर में श्रेणिक राजा राज्य करता था। वह बहुत प्रतापी, बुद्धिमान् और धार्मिक था। एक बार वह घोड़े पर सवार होकर मण्डिकुक्षि नाम के उद्यान में गया। उद्यान विविध प्रकार के खिले हुए पुष्पों से आच्छादित, वृक्ष और लताओं से सुशोभित था। विविध प्रकार के पक्षी क्रीडाएं कर रहे थे। घूमते हुए राजा ने वृक्ष के नीचे बैठे हुए, समाधि में लीन, ध्यानस्थ तथा तपस्वी एक मुनि को देखा।

उसे देख कर राजा मन में सोचने लगा—अहो! यह मुनि कितना रूपवान् है। शरीर की शोभा चारों तरफ फैल रही है। मुख से सौम्यता और क्षमा आदि गुण टपक रहे हैं। इस प्रकार की शरीर सम्पत्ति और गुणों के होने पर भी इसने संसार छोड़ दिया। इस के वैराग्य और अनासक्ति भी अपूर्व हैं।

आश्चर्य चकित होकर राजा मुनि के पास आया। वन्दना नमस्कार के बाद विनय से हाथ जोड़ कर उसने पूछा- भगवन्! अभी आप की युवावस्था है। अपूर्व शारीरिक सम्पत्ति प्राप्त हुई है। यह अवस्था सांसारिक सुख भोगने की है। ऐसे समय में भी आपने समस्त सांसारिक भोगों को छोड़ कर कठोर मुनिव्रत क्यों अङ्गीकार किया? इस बात को जानने के लिए मेरा मन बहुत उत्कण्ठित है। यदि किसी प्रकार की बाधा न हो तो बताने की कृपा कीजिए।

मुनि ने उत्तर दिया—महाराज! मैं अनाथ हूँ। विविध प्रकार के शत्रु कष्ट देने लगे, उस समय मुझे अभय दान देने वाला कोई न मिला। इस प्रकार अत्यन्त दुखी होकर मैंने व्रतों की शरण ली।

यह सुन कर राजा हँसते हुए बोला- भगवन्! जहाँ आकृति होती है, वहाँ गुण भी अवश्य रहते हैं। इस आकृति से आप में ऐसे गुण दिखाई दे रहे हैं, जिस से संसार की सारी सम्पत्तियाँ वश में की जा सकती हैं। कहा भी है-

शूरे त्यागिनि विदुषि च वसति जनः, स च जनाद्गुणी भवति।
गुणवति धनं धनाच्छ्रीः, श्रीमत्याज्ञा ततो राज्यम्॥

अर्थात्-शूरवीर, त्यागी और विद्वान् को लोग मानते हैं। उसी से वह गुणी कहा जाता है। गुणवान् को धन की प्राप्ति होती है। धन से प्रभाव होता है। प्रभाव से आज्ञा चलती है और उस से राज्य की प्राप्ति होती है।

आपके समान व्यक्ति तो दूसरों का नाथ बन सकता है। यदि अनाथ होने मात्र से आपने दीक्षा ली है तो मैं आप का नाथ होता हूँ। मेरे रहते हुए आपका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। आप निश्चिन्त होकर सांसारिक सुखों को भोगिए।

मुनि ने उत्तर दिया- राजन्! शूरता, उदारता आदि गुणों

को सूचित करने वाली आकृति से ही कोई नाथ नहीं बनता। आप स्वयं अनाथ हैं फिर मेरे नाथ कैसे बन सकते हैं? आप की शरण लेने पर भी शत्रु मेरा पीछा न छोड़ेंगे। फिर निश्चिन्त होकर सुखों को कैसे भोग सकता हूँ ?

राजा ने फिर पूछा—मुनिवर ! मैं विशाल साम्राज्य का अधिपति हूँ। मेरी चतुरङ्गिनी सेना शत्रु के हृदय में भय उत्पन्न करती है। मेरे प्रताप के कारण बड़े बड़े वीर सामन्त मुझे सिर नमाते हैं। सभी शत्रुओं को मैंने नष्ट कर डाला है। मेरी आज्ञा का उल्लंघन करने की किसी में शक्ति नहीं है। मन चाहे सुखों का स्वामी हूँ। संसार के सभी भोग मेरे पास मौजूद हैं। फिर मैं अनाथ कैसे हूँ ?

मुनि ने उत्तर दिया— राजन् ! आप इस बात को नहीं जानते, वास्तव में अनाथ कौन है। मेरा वृत्तान्त सुनने पर आपको मालूम हो जाएगा कि वास्तव में अनाथ कौन है और मैं अपने को अनाथ क्यों मानता हूँ। यह कह कर मुनि ने अपनी कहानी शुरू की—

मेरे पिता कौशाम्बी के बहुत बड़े सेठ थे। उन के पास अपार धन था। मुझे प्राणों से भी अधिक प्यार करते थे। उस समय मेरा नाम संजय था। एक बार मेरे शरीर में भयङ्कर रोग उत्पन्न हुआ। सभी अंगों में जलन होने लगी। आँखों में, कमर में और पसवाड़ों में भयङ्कर शूल उठने लगी। रोग को शान्त करने के लिए मेरे पिता ने अनेक वैद्य तथा मन्त्र तन्त्र आदि जानने वालों को बुलाया। जिसने जो कहा वही उपचार किया गया किन्तु रोग शान्त न हुआ। पिता जी ने यहाँ तक कह दिया कि जो संजय को स्वस्थ कर देगा उसे सारा धन दे दूँगा।

माता मेरे दुःख से दुखी हो कर दिन रात रोया करती थी। छोटे बड़े भाई मेरी सेवा के लिए खड़े रहते थे। दुःख से आँखों में आँसू भर कर मुझे निहारते रहते थे। स्त्री मेरे पैरों में गिर कर

कहती थी–नाथ! आपको क्या हो गया? वह इस प्रकार सतत विलाप करती रहती थी। दूसरे सम्बन्धी, मित्र, दास, दासी आदि सभी मेरे दुःख से परम दुखी थे। दिन रात मेरे पास खड़े रहते। क्षण भर भी इधर उधर न होते किन्तु कोई मेरी वेदना को कम न कर सका। उस समय मुझे ज्ञान हुआ कि सांसारिक प्राणी अनाथ है। दुःख आने पर धन, मित्र आदि कोई काम नहीं आता। उसे भोगना ही पड़ता है।

मैंने फिर सोचा– इस समय मुझे तीव्र वेदना हो रही है। इस से भी बढ़ कर कई प्रकार की वेदनाएं नरक आदि गतियों में मैंने भोगी हैं। इन दुःखों से छुड़ाने की शक्ति किसी में नहीं है। इन कष्टों का मूल कारण कषाय रूपी शत्रु हैं। ये सभी संसारी जीवों के पीछे लगे हुए हैं। यदि मैं किसी प्रकार इस रोग से छूट गया तो कषायों का नाश करने के लिए मुनिव्रत अंगीकर कर लूँगा। चारित्र ही ऐसा नाथ है जो सभी जीवों की दुःख से रक्षा कर सकता है। इस प्रकार सोचने पर उसी रात को मेरी वेदना शान्त हो गई। प्रातः काल होते ही मैंने माता पिता आदि सभी सम्बन्धियों को पूछ कर विधि पूर्वक दीक्षा ले ली। अठारह पापों का त्याग करके मैं अनगार बन गया।

राजन्! संसारी जीव चारों गतियों में चक्कर काटते रहते हैं। अनेक प्रकार के शारीरिक और मानसिक कष्ट उठाते हैं। धर्म को छोड़ कर उन की रक्षा करने वाला कोई नहीं हैं। इसी लिए मैंने धर्म की शरण ली है।

यह सुन कर श्रेणिक बहुत प्रसन्न हुआ और मुनि की प्रशंसा करने लगा–भगवन्! आपने मुझे अनाथता का वास्तविक स्वरूप समझा दिया। आपका जन्म सफल है। आपने सकल संसार को अनाथ समझ कर सभी प्रकार के शारीरिक और मानसिक दुःखों का सर्वथा नाश करने वाले, कषाय रूपी शत्रु का दमन करने

वाले तथा सभी के नाथ धर्म की शरण ली है।

इस प्रकार मुनि की स्तुति करता हुआ श्रेणिक अपने निवास स्थान पर चला गया। गुणों की स्तुति करने से उनके प्रति श्रद्धा बढ़ती है। इससे सम्यक्त्व दृढ होता है तथा आत्मा को उन गुणों की प्राप्ति होती है। इस लिए मुमुक्षु को आत्मा के गुणों की स्तुति रूप उपबृंहणा करनी चाहिए।

(११) स्थिरीकरण के लिए आर्याषाढ आचार्य का दृष्टान्त–

वत्सदेश में बहुश्रुत, विश्ववत्सल तथा बहुत बड़े शिष्य परिवार वाले आर्याषाढ़ नाम के आचार्य रहते थे। उनके गच्छ में जब कोई साधु अन्तिम समय आया जान कर संथारा करता तो आचार्य उसे धर्मध्यान का उपदेश देते तथा ऐसा प्रयत्न करते जिस से अन्त तक उसके भाव शुद्ध रहें। अन्त में आचार्य उसे कहते कि देवगति में उत्पन्न हो कर तुम मुझे अवश्य दर्शन देना। इस प्रकार आचार्य ने बहुत शिष्यों को कहा किन्तु कोई स्वर्ग से नहीं आया।

एक वार आचार्य के किसी प्रिय शिष्य ने संथारा किया। आचार्य ने बड़ी सावधानी के साथ उसका संथारा पूरा कराया और अन्त में उसे प्रतिज्ञा करवा कर गद्गद् वाणी से कहा–वत्स! मेरा तुम पर बहुत स्नेह है। तुम भी मुझे बहुत मानते हो। स्वर्ग में जाने पर तुम मुझे एक बार अवश्य दर्शन देना। यही मेरी बार बार प्रार्थना है। मैंने इस प्रकार बहुत से साधुओं को कहा था, किन्तु एक भी नहीं आया। वत्स! मेरे स्नेह का स्मरण करके तुम तो अवश्य आना।

शिष्य ने उसे स्वीकार कर लिया। काल करके वह देवलोक में उत्पन्न हुआ। देवलोक के कार्यों में व्यग्र रहने के कारण उसे आचार्य को दर्शन देने के लिए आने में विलम्ब हो गया।

उसे शीघ्र न आते देख आचार्य के चित्त में विपरीत विचार

उठने लगे। उन्होंने सोचा– निश्चय से परलोक नहीं है। मेरे जिन शिष्यों का देहान्त हुआ है वे सभी ज्ञान, दर्शन और चारित्र की आराधना करने वाले तथा शान्तस्वभावी थे। अन्तिम समय में आहार आदि का त्याग करके उन्होंने संथारा किया था। मैंने स्वयं उसे पूरा कराया था। उनके परिणाम यथा सम्भव शुद्ध थे। सभी मेरी आज्ञा को मानने वाले तथा स्नेहशील थे, किन्तु उनमें से एक भी मेरे पास नहीं आया। देवलोक होता तो वे वहाँ उत्पन्न होकर अवश्य मेरे पास आते।

मनोहर तथा सुखद भोगों को छोड़ कर मैंने आज तक कठोर व्रतों का व्यर्थ पालन किया। मैं व्यर्थ ही ठगा गया। अब सभी भोगों को भोग कर जन्म सफल करूँगा। जब परलोक ही नहीं है तो उसके लिए व्यर्थ कष्ट क्यों उठाया जाय। यह सोच कर वे सम्यक्त्व से गिर गए। साधु के ही वेश में उन्होंने मिथ्यात्व प्राप्त कर लिया। दीक्षा छोड़ने की इच्छा से वे गच्छ से बाहर निकल गए।

इतने में स्वर्ग में गए हुए आचार्य के शिष्य ने अवधिज्ञान लगा कर देखा। अपने गुरु का यह हाल जान कर उसे बहुत दुःख हुआ। वह सोचने लगा– आगम रूपी नेत्र वाले होने पर भी मेरे गुरु मोह रूपी अन्धकार में पड़ कर मोक्ष के मार्ग को छोड़ रहे हैं।

अहो मोहस्य महिमा, जगज्जैत्रो विजृम्भते।
जात्यन्धा इव चेष्टन्ते, पश्यन्तोऽप्यखिला जनाः॥

अर्थात्– मोह की महिमा अपार है। इसने अपनी विडम्बना से सारे संसार को जीत रक्खा है। इसके वश होकर देखते हुए भी लोग जन्मान्ध बन जाते हैं।

कुलवानपि धीरोऽपि, गभीरोऽपि सुधीरपि।
मोहाज्जहाति मर्यादां, कल्पान्तादिव वारिधिः॥

अर्थात्– जिस प्रकार समुद्र कल्पान्त के कारण मर्यादा को

छोड़ देता है उसी प्रकार कुलवान, धीर, गम्भीर तथा पण्डित भी मोह के कारण मर्यादा को छोड़ देता है।

मोह से प्रेरित हो कर जब तक ये कोई दुष्कर्म नहीं करते तब तक इन्हें समझा कर सन्मार्ग पर लाना चाहिए। यह सोच कर वह देव नीचे आया और अपने गुरु के मार्ग में एक ग्राम की विक्रिया की। उसके एक ओर विविध प्रकार के नाटक रचा दिए। आचार्य उस मनोहर नाटक को आँखें ऊपर किए छः मास तक आनन्दपूर्वक देखते रहे। देव प्रभाव के कारण उन्हें नाटक देखते समय सरदी, गरमी, भूख, प्यास तथा थकावट कुछ नहीं मालूम पड़ा।

इतने में देव ने उस नाटक का संहार कर लिया। आचार्य आगे चले। वे सोचने लगे—भाग्य से क्षण भर शुभ नाटक देखने को मिला।

देव ने उन के भावों की परीक्षा के लिए वन में छः कायों के नाम वाले छः बालकों की विकुर्वणा की। बालक सभी प्रकार के आभूषणों से सजे हुए थे। आचार्य ने बहुत जेवरों से लदे हुए पहले पृथ्वीकाय नाम के बालक को देखा और मन में सोचा— इस बालक के आभूषणों को मैं छीन लेता हूँ, इनसे प्राप्त हुए धन से मेरी भोगेच्छा पूरी हो जायगी। धन के बिना भोगेच्छा मृगतृष्णा का पानी पीने के समान है। यह सोच कर आचार्य ने उस सुन्दर बालक को उत्कण्ठा से कहा— अरे! इन आभूषणों को उतार दे। बालक ने नहीं उतारे। इस पर क्रोधित होकर उन्होंने बालक को गर्दन से पकड़ लिया। भयभीत होकर बालक ने रोते हुए कहा— मेरा नाम पृथ्वीकायिक है। इस भयङ्कर अटवी में चोरों के उपद्रव से डर कर आपकी शरण में आया हूँ।

अशाश्वता ह्यमी प्राणाः, विश्वकीर्तिश्च शाश्वती।
यशोऽर्थी प्राणनाशेऽपि, तद्रक्षेच्छरणागतम्॥

अर्थात्— ये प्राण अशाश्वत हैं। संसार में कीर्ति शाश्वत है।

यश को चाहने वाला व्यक्ति अपने प्राण देकर भी शरण में आए हुए की रक्षा करे।

मैं गरीब बालक हूँ। आपकी शरण में आया हूँ। मेरी रक्षा कीजिए। शरणागत की रक्षा करने वाले अपने कार्य द्वारा स्वयं भूषित होते हैं। क्योंकि–

विहलं जो अवलम्बइ, आवइपडियं च जो समुद्धरइ।
सरणागयं च रक्खइ, तिसु तेसु अलंकिया पुहवी॥

अर्थात्– दुःख से घबराए हुए प्राणी को जो सहारा देता है। जो आपत्ति में पड़े हुए का उद्धार करता है तथा जो शरणागत की रक्षा करता है, उन्हीं तीन व्यक्तियों से पृथ्वी सुशोभित है।

इस प्रकार कहने पर भी लोभी आचार्य न माने। वे बालक की गर्दन मरोड़ने के लिए तैयार हो गए। बालक ने फिर प्रार्थना की– भगवन्! एक कथा सुन लीजिए। फिर जैसी आपकी इच्छा हो कीजिएगा। आचार्य के कहने पर बालक सुनाने लगा–

किसी गांव में एक कुम्हार रहता था। खोदते हुए उस पर किनारे की मिट्टी गिर पड़ी। वह कहने लगा– जिस की कृपा से मैं देवों को उपहार और याचकों को भिक्षा देता हूँ तथा परिवार का पोषण करता हूँ वही भूमि मुझ पर आक्रमण कर रही है। शरण देने वाला ही मेरे लिए भयजनक हो रहा है।

भगवन्! मैं भी डरा हुआ आपकी शरण में आया हूँ ... मुझे लूट रहे हैं, इस लिए मुझे भी शरण से भय है ...
'बालक! तुम बड़े चतुर हो' यह कहते हुए आचार्य ने
आभूषण छीन ... और उन्हें अपने पात्र में डाल
भ्रष्ट होने पर ... भी अति क्रूर और नि...
आचार्य ... में कुछ दूर चलने पर
नाम का ... ई दिया। वह भी

आभूषण पहिने हुए था। आचार्य उसके भी आभूषण छीनने के लिए तैयार हो गए। बालक ने अपना नाम बता कर नीचे लिखी कथा सुनाई–

किसी जगह पाटल नाम का चारण रहता था। वह मनोहर कहानियाँ सुनाने में बहुत चतुर था। अच्छी अच्छी उक्तियों का समुद्र था। एक बार गङ्गा को पार करते हुए वह पूर में बह गया। तीर पर खड़े हुए लोगों ने उसे देखा और विस्मित होते हुए कहा– चित्र विचित्र कथाएं सुनाने वाले और बहुश्रुत पाटल को गङ्गा बहा कर ले जा रही है। ओ बहने वाले! तुम्हारा कल्याण हो। कोई सुभाषित सुनाओ।

दोनों किनारों से लोगों की बात सुन कर पाटल बोला– जिस से बीज उगते हैं। जिसके आधार पर किसान जीते हैं। उस में पड़ कर मैं मर रहा हूँ। शरण देने वाले से ही मुझे भय हो गया है।

कहानी कह कर बालक ने बहुत प्रार्थना की, किन्तु निर्दय हो कर आचार्य ने उसके भी आभूषण छीन लिए।

आगे बढ़ कर आचार्य ने तेजस्कायिक नाम के तीसरे बालक को देखा और आभूषण छीनने की तैयारी की। बालक ने अपना नाम बता कर नीचे लिखी कथा सुनाई–

किसी आश्रम में सदा अग्नि की पूजा करने वाला एक तापस था। एक दिन आग से उसकी झोंपड़ी जल गई। वह बोला–
...ी से दिन रात तृप्त करता रहता हूँ, उसी ने
...ली। शरण देने वाला ही मेरे लिए भय-
...व्याघ्र से डर कर अग्नि की शरण ली थी।
...डाला। शरण ही भय देने वाली बन
...के ...प्रार्थना की, किन्तु आचार्य

आगे बढ़ने पर वायुकायिक नाम के चौथे बालक को देख कर आचार्य आभूषण छीनने को तैयार हो गए। बालक ने अपना नाम बता कर कहानी शुरू की–

एक युवा पुरुष बहुत बलवान था। उसके अङ्ग बहुत मोटे हो गए तथा वातरोग से पीड़ित रहने लगे। उसे देख कर किसी ने पूछा– आप पहले लांघना, कूदना आदि विविध प्रकार के व्यायाम करते थे। आज किस रोग के कारण लकड़ी को लेकर चल रहे हैं?

युवा ने कहा– जो हवा जेठ और आषाढ़ में सुख देती है। वही मेरे शरीर को पीड़ा दे रही है। शरण से ही मुझे भय हो रहा है। यह कथानक कह कर बालक ने रक्षा की प्रार्थना की किन्तु आचार्य ने उसके भी आभूषण छीन लिए।

आगे बढ़ने पर आचार्य ने आभूषण पहिने हुए वनस्पतिकाय नाम के पाँचवे बालक को देखा। उसने भी आचार्य को आभूषण खोसने के लिए उद्यत देख कर नीचे लिखी कहानी कही–

फूल और फलों से लदे हुए किसी वृक्ष पर बहुत से पक्षी रहते थे। वृक्ष को अपनी शरण मान कर वे निश्चिन्त हो रहे थे। वहाँ बिना किसी बाधा के निवास करते हुए उन पक्षियों के बच्चे हो गए और घोंसलों में क्रीड़ाएं करने लगे।

कुछ दिनों बाद वृक्ष के पास एक बेल उग गई। उस वृक्ष को लपेटती हुई वह ऊपर चढ़ गई। एक दिन उस लता के सहारे से एक साँप वृक्ष पर चढ़ गया और पक्षियों के बच्चों को खा गया। सन्तान के नाश से दुखी हुए पक्षी विलाप करते हुए कहने लगे– आज तक उपद्रव रहित इस वृक्ष पर हम लोग सुख से रहे। शरणभूत यही वृक्ष लता युक्त होने पर हमारे लिए भयप्रद हो गया है।

कहानी कह कर बालक ने अपनी रक्षा के लिए प्रार्थना की, किन्तु आचार्य ने उसके भी आभूषण छीन लिए।

आगे बढ़ने पर आचार्य को त्रसकाय नाम का छठा बालक मिला। आभूषण छीनने के लिए उत्सुक आचार्य को देख कर उस ने चार कहानियाँ सुनाईं। वे इस प्रकार हैं-

(क) किसी नगर को शत्रुओं ने घेर लिया। बाहर बसे हुए चाण्डाल वगैरह डर कर नगर में घुस गए। नगर के अन्दर रहने वालों ने अन्न आदि समाप्त हो जाने के भय से उन्हें फिर बाहर निकाल दिया। नगर हमारे लिए शरण भूत होगा, इस आशा से नगर में घुसते हुए उन चाण्डालों की दुर्दशा देख कर कोई कहने लगा- डरे हुए नागरिक तुम्हें बाहर निकालते हैं। बाहर शत्रु मार रहे हैं। इस लिए हे चाण्डालो! तुम कहीं जाओ। शरण ही तुम्हारे लिए भय है।

कहानी सुनाने पर भी आचार्य ने उसे नहीं छोड़ा। बालक ने दूसरी कहानी शुरू की-

(ख) एक राजा बड़ा दुष्ट था। वह सदा अपने नगर में निजी पुरुषों द्वारा चोरी करवाता था। उसका पुरोहित सभी को बहुत पीटा करता था। लोग दुखी होकर आपस में कहने लगे- यहाँ राजा स्वयं चोर है तथा पुरोहित कष्ट देने वाला है। ऐसे नगर से चले जाना चाहिए। यहाँ शरण ही भय देने वाला है। इस पर भी आचार्य ने उसे नहीं छोड़ा।

(ग) बालक ने तीसरी कामुक ब्राह्मण की कहानी सुनाई। फिर भी आचार्य ने बालक को न छोड़ा। उसने चौथी कथा शुरू की-

(घ) किसी गांव में एक ब्राह्मण रहता था। उसके पास बहुत धन था। उसने धर्म समझ कर एक तालाब खुदवाया। उसके किनारे पर मन्दिर और बगीचा बनवा कर उसने बकरे का यज्ञ किया। यज्ञ में बकरे का होम करना धर्म समझ कर परलोक में

आगे बढ़ने पर वायुकायिक नाम के चौथे बालक को देख कर आचार्य आभूषण छीनने को तैयार हो गए। बालक ने अपना नाम बता कर कहानी शुरू की–

एक युवा पुरुष बहुत बलवान था। उसके अङ्ग बहुत मोटे हो गए तथा वातरोग से पीड़ित रहने लगे। उसे देख कर किसी ने पूछा– आप पहले लांघना, कूदना आदि विविध प्रकार के व्यायाम करते थे। आज किस रोग के कारण लकड़ी को लेकर चल रहे हैं?

युवा ने कहा– जो हवा जेठ और आषाढ़ में सुख देती है। वही मेरे शरीर को पीड़ा दे रही है। शरण से ही मुझे भय हो रहा है। यह कथानक कह कर बालक ने रक्षा की प्रार्थना की किन्तु आचार्य ने उसके भी आभूषण छीन लिए।

आगे बढ़ने पर आचार्य ने आभूषण पहिने हुए वनस्पतिकाय नाम के पाँचवें बालक को देखा। उसने भी आचार्य को आभूषण खोसने के लिए उद्यत देख कर नीचे लिखी कहानी कही–

फूल और फलों से लदे हुए किसी वृक्ष पर बहुत से पक्षी रहते थे। वृक्ष को अपनी शरण मान कर वे निश्चिन्त हो रहे थे। वहाँ बिना किसी बाधा के निवास करते हुए उन पक्षियों के बच्चे हो गए और घोंसलों में क्रीड़ाएं करने लगे।

कुछ दिनों बाद वृक्ष के पास एक बेल उग गई। उस वृक्ष को लपेटती हुई वह ऊपर चढ़ गई। एक दिन उस लता के सहारे से एक साँप वृक्ष पर चढ़ गया और पक्षियों के बच्चों को खा गया। सन्तान के नाश से दुखी हुए पक्षी विलाप करते हुए कहने लगे– आज तक उपद्रव रहित इस वृक्ष पर हम लोग सुख से रहे। शरणभूत यही वृक्ष लता युक्त होने पर हमारे लिए भयप्रद हो गया है।

कहानी कह कर बालक ने अपनी रक्षा के लिए प्रार्थना की, किन्तु आचार्य ने उसके भी आभूषण छीन लिए।

आगे बढ़ने पर आचार्य को त्रसकाय नाम का छठा बालक मिला। आभूषण छीनने के लिए उत्सुक आचार्य को देख कर उस ने चार कहानियाँ सुनाई। वे इस प्रकार हैं-

(क) किसी नगर को शत्रुओं ने घेर लिया। बाहर बसे हुए चाण्डाल वगैरह डर कर नगर में घुस गए। नगर के अन्दर रहने वालों ने अन्न आदि समाप्त हो जाने के भय से उन्हें फिर बाहर निकाल दिया। नगर हमारे लिए शरण भूत होगा, इस आशा से नगर में घुसते हुए उन चाण्डालों की दुर्दशा देख कर कोई कहने लगा- डरे हुए नागरिक तुम्हें बाहर निकालते हैं। बाहर शत्रु मार रहे हैं। इस लिए हे चाण्डालो! तुम कहीं जाओ। शरण ही तुम्हारे लिए भय है।

कहानी सुनाने पर भी आचार्य ने उसे नहीं छोड़ा। बालक ने दूसरी कहानी शुरू की-

(ख) एक राजा बड़ा दुष्ट था। वह सदा अपने नगर में निजी पुरुषों द्वारा चोरी करवाता था। उसका पुरोहित सभी को बहुत पीटा करता था। लोग दुखी होकर आपस में कहने लगे- यहाँ राजा स्वयं चोर है तथा पुरोहित कष्ट देने वाला है। ऐसे नगर से चले जाना चाहिए। यहाँ शरण ही भय देने वाला है। इस पर भी आचार्य ने उसे नहीं छोड़ा।

(ग) बालक ने तीसरी कामुक ब्राह्मण की कहानी सुनाई। फिर भी आचार्य ने बालक को न छोड़ा। उसने चौथी कथा शुरू की-

(घ) किसी गांव में एक ब्राह्मण रहता था। उसके पास बहुत धन था। उसने धर्म समझ कर एक तालाब खुदवाया। उसके किनारे पर मन्दिर और बगीचा बनवा कर उसने बकरे का यज्ञ किया। यज्ञ में बकरे का होम करना धर्म समझ कर परलोक में

सुख की आशा से उसने बहुत से बकरे मरवा डाले। आयुष्य पूरी होने पर वह ब्राह्मण भी मर कर बकरा बना। धीरे धीरे बढ़ता हुआ वह बहुत मोटा और हृष्ट पुष्ट हो गया। ब्राह्मण के पुत्रों ने यज्ञ में मारने के लिए उसे खरीद लिया और तालाब के किनारे ले गए। पूर्व जन्म में अपने बनवाए हुए तालाब वगैरह को देख कर बकरे को जातिस्मरण हो गया। 'मैंने ही ये सब बनवाए थे किन्तु अब मेरी विपत्ति के कारण बन गए हैं' यह सोच कर वह अपने कार्यों की निन्दा करता हुआ बुबु शब्द करने लगा। उसे इस प्रकार दुखी होते हुए किसी महामुनि ने देखा। ज्ञान द्वारा पूर्व भव का वृत्तान्त जान कर उन्होंने कहा- ओ बकरे! तुम्हीं ने तालाब खुदवाया, वृक्ष लगाए और यज्ञ शुरू किए। उन कर्मों के उदय आने पर अब बुबु क्यों कर रहा है?

साधु की बात सुन कर बकरा चुप हो गया। वह विचारने लगा अपने कर्म उदय में आने पर रोने से क्या होता है। साधु की वाणी से चुप हुए बकरे को देख कर ब्राह्मण आश्चर्य में पड़ गए और मुनि से पूछने लगे- भगवन्! जैसे सांप मन्त्र के अधीन हो कर शान्त हो जाता है, उसी प्रकार आप की बात से यह बकरा चुप हो गया। आप ने ऐसा क्या किया?

मुनि ने उत्तर दिया-आप लोगों का पिता मर कर यह बकरा बना है। तालाब आदि देख कर इसे पूर्व जन्म की बातें याद आ गईं। जब वह बुबु करके दुःख प्रकट कर रहा था तो मैंने कहा- तुम अपने कर्मों का फल भोग रहे हो। उसके लिए दुखी क्यों होते हो? यह सुनते ही बकरा चुप हो गया।

ब्राह्मण के लड़कों ने पूछा-भगवन्! इस बात पर कैसे विश्वास किया जाय? कोई प्रमाण बताइये।

मुनि ने उत्तर दिया- पूर्व भव में स्वयं गाड़े हुए धन को यह

तुम्हारे सामने बता देगा। इससे तुम्हें विश्वास हो जायगा। इस के बाद साधु ने बकरे से धन बताने को कहा। बकरा धन वाले स्थान पर जा कर उसे पैर से खोदने लगा। वहीं पर धन निकल आया। साधु की बात पर विश्वास करके लड़कों ने बकरे को छोड़ दिया तथा जैन धर्म को स्वीकार कर लिया। बकरे ने भी मुनि से धर्म का श्रवण कर उसी समय अनशन कर लिया। मर कर वह स्वर्ग में गया।

मरने के बाद वे ही उसके शरण होंगे, ब्राह्मण ने इस आशा से तालाब खुदवा कर यज्ञ आदि शुरू किए थे, किन्तु वे ही उसके लिए अशरण हो गए। इसी प्रकार मैंने भी डर कर आपकी शरण ली थी। यदि आप ही मुझे लूट रहे हैं तो मेरे लिए रक्षक ही भक्षक बन गया।

इस प्रकार चार कथाएं सुनने पर भी आचार्य की दुर्भावना नहीं बदली, जिस प्रकार असाध्य रोग औषधियों से शान्त नहीं होता। आचार्य ने पहले की तरह उसके भी अलङ्कार खोस लिए। जिस प्रकार समुद्र पानी से तृप्त नहीं होता इसी प्रकार लोभी धन से सन्तुष्ट नहीं होता। इस प्रकार छः बालकों के आभूषण खोस कर उसने पात्र भर लिया और अपनी आत्मा को बुरे विचारों से मलिन बना लिया। बालकों के सम्बन्धी कहीं देख न लें, इस विचार से वह जल्दी जल्दी आगे बढ़ने लगा।

देव ने इस प्रकार परीक्षा करके जान लिया कि आचार्य व्रतों से सर्वथा गिर गया है। उसके सम्यक्त्व की परीक्षा के लिए देव ने एक साध्वी की विक्रिया की। साध्वी बहुत से जेवरों से लदी थी। उसे देख कर आचार्य ने रोष करते हुए कहा– आँखों में सुरमा लगाए, विविध प्रकार का शृङ्गार किए, तिलक से मण्डित जिन शासन की हँसी कराने वाली दुष्ट साध्वी! तुम कहाँ से आई हो?

आचार्य का वचन सुन कर साध्वी कुपित हो गई। बिना हिच-किचाहट के शीघ्रता पूर्वक उसने उत्तर दिया– आचार्य ! दूसरे का राई जितना छिद्र भी तुम्हें दीख जाता है। अपना पहाड़ जितना नहीं दीखता। स्वयं निर्दोष व्यक्ति ही दूसरे को उपदेश देता अच्छा लगता है। स्वयं दोष वाला दूसरे को उपदेश देने का अधिकारी नहीं होता। यदि तुम अपने को सच्चा श्रमण, ब्रह्मचारी, पत्थर और सुवर्ण को समान समझने वाला, सदाचारी और उग्रविहारी समझते हो तो यहाँ आओ। दूर क्यों भागते हो। मुझे तुम्हारा पात्र देखने दो।

साध्वी से इस प्रकार फटकार सुन कर वह चुपचाप आगे बढ़ा। उसी देव द्वारा विक्रिया की हुई सेना को देखा। भयभीत हो कर आचार्य सेना के मार्ग को छोड़ कर दूसरी तरफ जाने लगा। दुर्भाग्य से वह राजा के सामने पहुँच गया।

आचार्य को देख कर राजा ने हाथी से उतर कर वन्दना की और कहा– मेरा अहोभाग्य है कि आपके दर्शन हुए। भगवन् ! मेरे पास मोदक आदि प्रासुक और सर्वथा एषणीय आहार है। इसे ग्रहण करने की कृपा कीजिए। पात्र में रक्खे हुए आभूषण को छिपाने के उद्देश्य से आचार्य ने कहा– आज मैं आहार नहीं करूँगा। भयभीत हो कर छोड़ दो, छोड़ दो, कहने पर भी आचार्य को राजा ने नहीं छोड़ा। उनका पात्र पकड़ कर खींचना शुरू किया। आचार्य के नहीं छोड़ने पर राजा ने बलपूर्वक पात्र को छीन लिया और लड्डू डालने के लिए उसे खोला।

पात्र में आभूषणों को देख कर राजा बहुत कुपित हुआ। क्रोध से भौंहे चढ़ा कर भयंकर मुँह बनाते हुए उसने कहा–अरे पापी ! तूने मेरे पुत्रों को मार डाला। अन्यथा उनके आभूषण तुम्हारे पास कहाँ से आते ? अरे, साधु का ढोंग रचनें वाले दुष्ट ! नीच !

मेरे पुत्रों को मार कर तू जीवित कैसे जा सकता है।

राजा की तर्जना सुन कर आचार्य भय से कांपने लगा। लज्जा से मुँह नीचा किए वह सोचने लगा- इसके पुत्रों के आभूषणों को लेकर मैंने बहुत बुरा कार्य किया। मोह के कारण मैंने विवेक खो दिया। मेरे पाप का सारा हाल इस राजा ने जान लिया है। अब यह मुझे बुरी मौत से मरवाएगा। मेरे पाप का फल सामने आ गया है। अब कौन बचा सकता है। मैंने प्रारम्भ से ही बिना विचारे किया जो भोगों की इच्छा से संयम के सुख को छोड़ दिया। जिस समय आचार्य इस प्रकार सोच रहा था उसी समय वह देव माया का संहार करके, अपने शरीर की कान्ति से दिशाओं को प्रकाशित करता हुआ उसके सामने निजी रूप में प्रकट हुआ और कहने लगा- भगवन्! मैं आपका वही प्रिय शिष्य हूँ जिसे संथारा स्वयं पूरा करा के आपने देव लोक से आने को कहा था। व्रत के माहात्म्य से मैं विशाल ऋद्धि वाला देव हुआ हूँ। आप के वाक्य का स्मरण करके वचनबद्ध होने से यहाँ आया हूँ।

मार्ग में आपने जो नाटक देखा था, संयम से भ्रष्ट चित्त वाले आप को बोध कराने के लिए वह मैंने ही रचा था। आपके भावों की परीक्षा के लिए मैंने ही छः कायों के नाम वाले बालक और साध्वी की विक्रिया की थी। आप के बढ़ते हुए महा-मोह को देख कर उसे नष्ट करने के लिए मैंने ही सेना आदि का भय दिखाया था। इस लिए शङ्का आदि दोषों को निकाल दीजिए। उन्मार्ग में जाते हुए मन को सन्मार्ग में लगाइए। शास्त्रों में आया है-

संकंत दिव्वपेम्मा, विसयपसत्तासमत्त कत्तव्वा।
अणहीण मणुअकज्जा, नरभवमसुइं न इंति सुरा॥
चत्तारिपंच जोअण सयाइं, गंधो उ मणुअ लोगस्स।
उड्ढं वच्चइ जेणं, न हु देवा तेण आवंति॥

अर्थात्--दिव्य भोगों से प्रेम होने के कारण, विषय भोग में प्रसक्त होने से, देवलोक का कार्य समाप्त न होने से तथा मनुष्यों के अधीन न होने से देवता अशुचि मनुष्य लोक में नहीं आते। मनुष्य लोक की दुर्गन्ध पाँच सौ योजन ऊपर तक चारों तरफ फैलती है इस लिए भी देव यहाँ नहीं आते।

इस प्रकार शास्त्रीय बातों को आप जानते हैं फिर भी मेरे न आने पर आपने कैसा काम कर डाला ? दिव्य नाटक आदि देखने की उत्सुकता में बीतने वाले लम्बे समय का भी देवों को ज्ञान नहीं रहता। आपने भी उस नाटक को देखने में लीन हो कर ऊपर देखते हुए एक मुहूर्त के समान छः मास विता दिए। भगवन्! इस प्रकार मोह में फँसना आपके लिए उचित नहीं है। क्या प्रलय आने पर भी क्षीर सागर कभी अपनी मर्यादा को छोड़ता है ? आप सरीखे आचार्य भी अगर इस प्रकार के अनुचित कार्य को करने लगेंगे तो संसार में दृढ़धर्मा कौन होगा। महामुने! अपने दुराचरण की आलोयणा करके कर्मों का नाश करने वाले चारित्र का पालन कीजिए। देवता की वाणी सुन कर मुनि को प्रतिबोध हो गया। उसने अपने दुराचार की बार बार निन्दा की। आचार्य आर्याषाढ ने बार बार देव से कहा-- वत्स! तुमने बहुत अच्छा किया। तुम बड़े बुद्धिमान् हो जो इस प्रकार मुझे बोध दे दिया। मैं अपने अशुभ कर्मों के उदय से नरक के मार्ग की ओर जा रहा था। तुमने मोक्ष मार्ग में डाल दिया। इस लिए तुम मेरे भावबन्धु हो। मैं धर्म से गिर गया था। फिर धर्म दे कर तुमने मुझ पर जो उपकार किया है उससे कभी उऋण नहीं हो सकूँगा। देव की इस प्रकार प्रशंसा करके आचार्य अपने स्थान पर चले गए। पापों के लिए आलोयणा, प्रतिक्रमण करके उग्रतप करने लगे। देव ने भी आचार्य को नमस्कार किया, अपने अपराध के

लिए क्षमा मांगी और स्वर्ग की ओर प्रस्थान कर दिया।

जिस प्रकार देव ने आचार्य को सम्यक्त्व में स्थिर किया, उसी प्रकार सम्यक्त्व से गिरते हुए को स्थिर करना चाहिए।

(उत्तराध्ययनसूत्र, कथा वाला, दूसरा परिषहाध्ययन)

(१२) वात्सल्य के लिए वज्रस्वामी का दृष्टान्त–

भ्रातृभाव से प्रेरित हो कर समान धर्म वालों का भोजन पानी आदि द्वारा उचित सत्कार करना वात्सल्य है। इसके लिए वज्र-स्वामी का दृष्टान्त है–

अवन्ती देश के तुम्बवन सन्निवेश में धनगिरि नाम का श्रावक श्रेष्ठिपुत्र रहता था। वह दीक्षा लेना चाहता था। माता पिता उस के लिए योग्य कन्या को चुनते थे किन्तु वह अपनी दीक्षा लेने की इच्छा प्रकट करके उसे टाल देता था। इसी लिए कोई कन्या भी उसके साथ विवाह करने को तैयार न होती थी।

धनपाल नाम के सेठ की कन्या सुनन्दा उसके साथ विवाह करने को तैयार हो गई। दोनों का विवाह हो गया। सुनन्दा का भाई आर्यशमी सिंहगिरि के पास पहले ही दीक्षा ले चुका था। कुछ दिनों बाद वह गर्भवती हो गई। धनगिरि ने उसे कहा–यह गर्भ तुम्हारा सहायक होगा, मुझे अब दीक्षा लेने दो। सुनन्दा की अनुमति मिलने पर वह सिंहगिरि के पास जाकर दीक्षित हो गया। कुछ अधिक नौ मास बीतने पर सुनन्दा के पुत्र उत्पन्न हुआ। उसे देखने के लिए आई हुई स्त्रियाँ कहने लगीं– अगर इसका पिता दीक्षा न लेता तो अच्छा होता। बालक पैदा होते ही बातों को समझने लगा था। वह समझ गया कि उसके पिता ने दीक्षा ले ली है। इस प्रकार विचार करते हुए उसे जाति-स्मरण हो गया। यह सोच कर वह दिन रात रोने लगा कि इससे तंग आ कर माता छोड़ देगी और मैं सुख पूर्वक दीक्षा ले लूँगा।

इसी प्रकार छः मास बीत गए। एक बार वहाँ आचार्य पधारे। आर्य शमी और धनगिरि ने आचार्य को पूछा- अगर आप आज्ञा दें तो हम अपने गृहस्थावास के सम्बन्धियों के घर भिक्षार्थ जावें। आचार्य ने शकुन द्वारा जान कर कहा- तुम्हें बहुत लाभ होने वाला है। सचित्त या अचित्त जो कुछ मिले उसे लेते आना। गुरु की आज्ञा लेकर वे सम्बन्धियों के घरों में गए और घूमने लगे।

इतने में स्त्रियों ने आ कर सुनन्दा से कहा- इस बालक को तुम उन्हें दे दो। फिर वे अवश्य स्नेह करने लगेंगे। सुनन्दा ने धन-गिरि से कहा- इतने दिन मैंने इसको पाला, अब आप पालन कीजिए। धनगिरि ने उत्तर दिया- तुम पश्चात्ताप मत करो। यह कह कर उस की साक्षी में छः मास के बालक को ले लिया। बालक ने यह जान कर रोना बन्द कर दिया।

धनगिरि उसे लेकर आचार्य के पास चले आए। आचार्य ने पात्र को भरा जान कर हाथ फैलाया। छूते ही आचार्य जान गए कि यह कोई बालक है। इसके बाद देवकुमार के सदृश बालक को देखा और कहा- इस को भली प्रकार पालना चाहिए। यह प्रवचन का आहार अर्थात् पोषक होगा। उसी दिन से उसका नाम वज्र रख दिया। आचार्य ने उसे साध्वियों को सौंप दिया। साध्वियों ने शय्यातर को दे दिया। बालक शय्यातर के अपने बच्चों के साथ बढ़ने लगा। साधु वहाँ से विहार कर गए। सुनन्दा ने बालक को वापिस मांगा, किन्तु शय्यातर ने उसे निक्षेप अर्थात् दूसरे की धरोहर बता कर नहीं दिया। सुनन्दा रोज आ कर उसे दूध पिला जाती थी। इसी प्रकार वह तीन वर्ष का हो गया। कुछ दिनों बाद साधु फिर वहीं आ गए। सुनन्दा ने उनसे पुत्र को मांगा। साधुओं ने नहीं दिया। सुनन्दा ने राजद्वार में जा कर पुकार की। राजा ने निर्णय दिया- आगे बैठा हुआ यह बालक बुलाने पर जिस के

पास चला जाएगा, यह उसी का होगा।

संघ के साथ गुरु एक तरफ थे तथा सुनन्दा और सभी नागरिक दूसरी तरफ। वे राजा के दोनों तरफ बैठ गए और बालक सामने बैठ गया। स्त्री पक्ष वालों द्वारा दया की प्रार्थना करने पर राजा ने पहले सुनन्दा से बुलाने के लिए कहा। वह कई प्रकार के खिलौने तथा खाद्य वस्तुएं लेकर आई थी। उन्हें दिखाती हुई सुनन्दा प्यार से बुलाने लगी। बालक माता को देख कर भी दूर बैठा रहा। अपने स्थान से नहीं हिला। वह मन में सोचने लगा- पालने में पड़े हुए भी मैंने सुनने मात्र से ग्यारह अंग पढ़ लिए। क्या अब माता के मोह में पड़ कर संघ को छोड़ दूँ? अगर मैं व्रत में रहा तो माता भी व्रत अङ्गीकार कर लेगी, जिससे दोनों का कल्याण होगा।

राजा की आज्ञा से पिता ने उस से कहा- हे वज्र! यदि तुम ने निश्चय कर लिया है तो धर्माचरण के चिह्नभूत तथा कर्मरज को पूँजने वाले इस रजोहरण को स्वीकार करो। यह सुनते ही बालक ने रजोहरण ले लिया। राजा की अनुमति से गुरु ने सभी के सामने उसी समय दीक्षा दे दी।

सुनन्दा ने विचार किया- मेरे भाई, पति और पुत्र सभी ने दीक्षा ले ली। अब मुझे किसी से क्या मतलब है? यह सोच कर उसने भी दीक्षा ले ली।

कुछ साधुओं के साथ बालक को वहीं छोड़ कर आचार्य दूसरी जगह विहार कर गए।

वज्रमुनि आठ वर्ष के होने पर आचार्य के साथ विहार करने लगे। एक बार गुरु अवन्ती की ओर जा रहे थे। रास्ते में वर्षा होने लगी। उसी समय उसके पूर्वभव के मित्र जृम्भक देव जा रहे थे। वज्रमुनि को देख कर परीक्षा करने के लिए ठहर गए। उन्होंने कूष्माण्ड (कोहले) को पकाया और वर्षा बन्द हो जाने पर वज्रमुनि

को निमन्त्रित किया। उन्होंने जाकर उपयोग लगाया– द्रव्य से पका हुआ कूष्माण्ड है, क्षेत्र से उज्जैनी है, काल से वर्षा समय है, भाव से देने वाले पृथ्वी को नहीं छू रहे हैं और निर्निमेष हैं अर्थात् उनकी पलकें स्थिर हैं। यह देख कर वज्रमुनि ने समझ लिया कि वे देव हैं। इस लिए आहार को ग्रहण नहीं किया। देव इस बात से सन्तुष्ट हुए और अपने स्वरूप को प्रकट करके उन्होंने वज्रमुनि को वैक्रिय शक्ति दे दी।

कुछ दिनों बाद ज्येष्ठ मास में जब वज्रमुनि अवन्ती नगरी में थे उस समय देवों ने फिर उनकी परीक्षा की। जब वे शौच निवृत्ति के लिए बाहर गए तब घेवर और शाक आदि बना कर उन्हें आमन्त्रित किया। द्रव्यादि का उपयोग लगा कर वहाँ पर भी वज्रमुनि ने सचाई जान ली और आहार को ग्रहण नहीं किया। उस समय देवों ने उन्हें आकाशगामिनी विद्या दे दी।

दूसरे शिष्यों को पढ़ते हुए सुन कर वज्रमुनि को ग्यारह अंगों का ज्ञान स्थिर हो गया। इसी प्रकार सुन कर ही उन्होंने पूर्वों का भी बहुत सा ज्ञान प्राप्त कर लिया।

एक बार आचार्य शौच निवृत्ति के लिए गए हुए थे और दूसरे स्थविर साधु गोचरी के लिए उपाश्रय से बाहर थे। उस समय वज्र-स्वामी कुछ छोटे छोटे साधुओं की मण्डली में बैठ कर वाचना देने लगे। इतने में आचार्य आ गए। वज्रमुनि को वाचनी देते हुए देख कर उन्हें आश्चर्य हुआ। कुछ दिनों बाद आचार्य ने दूसरी जगह विहार करने का निश्चय किया। साधुओं को वाचना देने का कार्य वज्रमुनि को दे दिया। सभी साधु भक्ति पूर्वक वज्रमुनि से वाचना लेने लगे।

वज्रमुनि इस प्रकार समझाने लगे जिससे मोटी बुद्धि वाले भी समझ जावें। पढ़े हुए श्रुतज्ञान में से भी साधुओं ने बहुत सी

शङ्काएं कीं। वज्रमुनि ने अच्छी तरह खुलासा कर दिया। साधु सोचने लगे, अगर आचार्य कुछ दिन और न आवें तो हमारा श्रुतस्कन्ध पूरा हो जाय। साधु वज्रमुनि को बहुत मानने लगे। धीरे धीरे वज्रमुनि दस पूर्वधारी हो गए। आचार्य का स्वर्गवास होने पर वे ही आचार्य बने। अनेक साधु साध्वियों ने उनके पास दीक्षा ली। सुन्दर रूप, शास्त्रों का ज्ञान तथा विविध लब्धियों के कारण उनका प्रभाव दूर दूर तक फैल गया। देवता उनकी सेवा में उपस्थित रहने लगे।

एक बार महा दुर्भिक्ष पड़ गया। सारा संघ एकत्रित होकर वज्रस्वामी के पास गया। अपनी लब्धि के बल से वे सारे संघ को दुर्भिक्षरहित स्थान में ले गए। वहाँ सभी आनन्दपूर्वक रहने लगे।

समान धर्म वाले के कष्ट को दूर करना साधर्मिक वत्सलता है। यह भी सम्यक्त्व का लक्षण है।

(१३) प्रभावना के लिए विष्णुकुमार का दृष्टान्त–

तीर्थ या धर्म का पराभव उपस्थित होने पर उसकी उन्नति के लिए चेष्टा करना प्रभावना है। इसके लिए विष्णुकुमार का दृष्टान्त–

कुरुदेश में हस्तिनापुर नाम का नगर था। वहाँ पद्मोत्तर राजा राज्य करता था। उसकी ज्वाला नाम की रानी थी। एक बार रात के अन्तिम भाग में उसने अपनी गोद में आते हुए सिंह का स्वप्न देखा। प्रतापी पुत्र की उत्पत्ति रूप स्वप्न के फल को जान कर उसे बहुत हर्ष हुआ।

समय पूरा होने पर उसने देवकुमार के सदृश पुत्र को जन्म दिया। बड़े धूम धाम से पुत्र जन्मोत्सव मनाया गया। शुभ मुहूर्त में बालक का नाम विष्णुकुमार रक्खा गया। धीरे धीरे वृद्धि पाता हुआ वह युवावस्था को प्राप्त हो गया।

महारानी ज्वाला ने रात्रि के अन्तिम पहर में चौदह स्वप्न देखे।

उचित समय पर महापद्म नाम का चक्रवर्ती पुत्र उत्पन्न हुआ। धीरे धीरे वह भी युवावस्था को प्राप्त हुआ। चक्रवर्ती के लक्षण जान कर पिता ने उसको युवराज बनाया।

उसी समय उज्जैनी नगरी में श्रीधर्म नामक राजा राज्य करता था। उसके नमुचि नाम का मन्त्री था। एक बार मुनि-सुव्रत स्वामी के शिष्य सुव्रताचार्य अनेक मुनियों के साथ विचरते हुए वहाँ पधारे। नगरी के लोग सज धज कर दर्शनार्थ जाने लगे। राजा और मन्त्री अपने महल पर चढ़ कर उन्हें देखने लगे। राजा ने पूछा– क्या लोग अकाल यात्रा के लिए जा रहे हैं? नमुचि ने उत्तर दिया– महाराज! आज सुबह मैंने सुना था कि उद्यान में कुछ श्रमण आए हैं। राजा ने कहा चलो, हम भी चलें। मन्त्री ने उत्तर दिया– वहाँ आप किस लिए जाना चाहते हैं? धर्म सुनने की इच्छा से तो वहाँ जाना ठीक नहीं है, क्योंकि वेदविहित सर्व-सम्मत धर्म का उपदेश हम ही देते हैं।

राजा ने कहा– यह ठीक है कि आप धर्म का उपदेश देते हैं, किन्तु महात्माओं के दर्शन करने चाहिए और यह जानना चाहिए कि वे कैसे धर्म का उपदेश देते हैं?

मन्त्री ने जाना मंजूर करके कहा– आप वहाँ मध्यस्थ होकर बैठियेगा। मैं उन्हें शास्त्रार्थ में जीत कर निरुत्तर कर दूँगा।

राजा और मन्त्री सामन्तों के साथ उनके पास गए। वहाँ धर्म-देशना देते हुए आचार्य सुव्रत को देखा। प्रणाम करके वे उचित स्थान पर बैठ गए। अकस्मात् नमुचि मन्त्री ने आचार्य को पराजित करने के उद्देश्य से अवहेलना भरे शब्दों में प्रश्न पूछने शुरू किए। आचार्य के एक शिष्य ने उन सब का उत्तर देकर मन्त्री को चुप कर दिया। सभा के अन्दर इस प्रकार निरुत्तर होने पर नमुचि को बहुत बुरा लगा। साधुओं पर द्वेष करता हुआ वह रात को तलवार

निकाल कर उन्हें मारने आया। शासनदेव ने उसे स्तम्भित कर दिया। प्रातः राजा और नगर के लोग इस आश्चर्य को देख कर बहुत चकित हुए। मुनि के समीप आकर धर्मकथा सुनने के बाद उन्होंने जिनधर्म को अंगीकार कर लिया।

नमुचि इस अपमान से दुखी हो कर हस्तिनागपुर में चला गया। वहाँ महापद्म राजा का मन्त्री बन गया। उस समय सिंहबल नाम का दुष्ट सामन्त देश में उपद्रव मचा रहा था। विषम दुर्ग के कारण उसे पकड़ना बड़ा कठिन था। राजा महापद्म ने नमुचि से पूछा– सिंहबल को गिरफ्तार करने का कोई उपाय जानते हो?

नमुचि ने उत्तर दिया– 'हाँ जानता हूँ।' उसने वहाँ जाकर अपनी कुशलता से सिंहबल के दुर्ग को तोड़ कर उसे गिरफ्तार कर लिया। राजा ने सन्तुष्ट हो कर उसे वर मांगने को कहा। मन्त्री ने उत्तर दिया– जब मैं मांगूँ तब दे देना।

युवराज महापद्म किसी कारण से रुष्ट होकर अटवी में चला गया। वहाँ एक आश्रम में ठहर गया। उसी समय जन्मेजय का काल-नरेन्द्र के साथ युद्ध हुआ। जन्मेजय हार कर भाग निकला। उसका परिवार भी इधर उधर भाग गया। जन्मेजय की नागवती नामक पुत्री से उत्पन्न हुई उसकी दौहित्री मदनावली भागती हुई उसी आश्रम में आ पहुंची। वहाँ महापद्म और मदनावली में एक दूसरे को देखते ही स्नेह हो गया। कुछ दिनों बाद महापद्म आश्रम से रवाना हो कर सिन्धुनद नामक नगर में पहुँचा। वहाँ उद्यानिका महोत्सव मनाया जा रहा था। इतने में एक मतवाला हाथी बन्धन तोड़ कर भाग निकला। सभी स्त्री पुरुष भयभीत होकर इधर उधर दौड़ने लगे। महापद्म ने उसे पकड़ कर स्तम्भ से बाँध दिया। यह बात वहाँ के राजा को मालूम पड़ी। उसने सारा हाल जान कर उस के साथ सौ कन्याओं का विवाह कर दिया, किन्तु महापद्म के

मन में मदनावली बसी हुई थी।

एक बार वह रात्रि में सुखपूर्वक सोया हुआ था। उसी समय कोई विद्याधरी उसे उठा ले गई। नींद खुलने पर उसने अपहरण का कारण बता दिया और उसे वैताढ्य पर्वत पर बसे हुए सूरोदय नगर में ले गई। वहाँ इन्द्रधनुष नाम के विद्याधर राजा को सौंप दिया।

इन्द्रधनुष ने श्रीकान्ता नामक भार्या से उत्पन्न हुई अपनी पुत्री जयकान्ता को उसके साथ ब्याह दिया। जयकान्ता के विवाह से उस के ममेरे भाई गङ्गाधर और महीधर महापद्म पर कुपित हो गए। उन्हें युद्ध में जीत कर महापद्म विद्याधरों का राजा बन गया। वैताढ्य पर्वत की दोनों श्रेणियों पर उसका राज्य हो गया। फिर भी मदनावली के बिना उसे सन्तोष नहीं हुआ। वह फिर उसी आश्रम में गया। वहाँ उसने मदनावली के साथ विवाह कर लिया।

विद्याधरों का राजा बन कर महापद्म विशाल ऋद्धि के साथ हस्तिनागपुर में प्रविष्ट हुआ और वहाँ जा कर माता पिता तथा भाई विष्णुकुमार को नमस्कार किया। उसके आगमन से सभी को अपार हर्ष हुआ।

कुछ दिनों बाद सुव्रताचार्य हस्तिनागपुर में पधारे। विष्णु-कुमार और महापद्म के साथ राजा वन्दना करने गए। भक्ति पूर्वक वन्दना करके सभी उचित स्थान पर बैठ गए। आचार्य का उप-देश सुन कर राजा और विष्णुकुमार दोनों संसार से विरक्त हो गए। महापद्म को गद्दी पर बैठा कर दोनों ने साथ दीक्षा ले ली। कुछ दिनों बाद पद्मोत्तर मुनि के घाती कर्म नष्ट हो जाने से उन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हो गया। बहुत दिनों तक केवल पर्याय का पालन कर, अनेक भव्य प्राणियों को प्रतिबोध देकर वे सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हुए।

गद्दी पर बैठने के कुछ दिन बाद महापद्म को चक्ररत्न की प्राप्ति

हुई। छः खण्ड पर विजय प्राप्त करके विशाल राज्य को भोगने लगे। वे भारतवर्ष के नवें चक्रवर्ती थे।

विष्णुकुमार मुनि ने दीक्षा लेने के बाद घोर तपस्या शुरू की। उन्हें विविध प्रकार की लब्धियाँ प्राप्त हो गई।

कुछ दिनों बाद विचरते हुए सुव्रताचार्य फिर हस्तिनागपुर में पधारे। उन्हें देख कर नमुचि मन्त्री का पुराना विरोध जागृत हो गया। बदला लेने के उद्देश्य से उसने राजा पद्मोत्तर के दिये हुए वर को मांगा। महापद्म ने उसे देना स्वीकार कर लिया। नमुचि ने कहा- मैं वेदोक्त विधि से यज्ञ करना चाहता हूँ। इस लिए कुछ दिनों के लिए मुझे अपना राज्य दे दीजिए। महापद्म ने पिता के दिए हुए वचन को पूरा करने के लिए मन्त्री को राज्य दे दिया। स्वयं अपने महलों में जाकर रहने लगा।

मन्त्री के राजा बन जाने पर जैन साधुओं को छोड़ कर सभी बधाई देने गए। इसी छिद्र को लेकर उसने मुनियों को बुला कर कहा- मेरे देश को छोड़ दो। नगर से अभी निकल जाओ। तुम लोग गन्दे रहते हो। लोकाचार का पालन नहीं करते। सभी साधु मुझे बधाई देने के लिए आए किन्तु तुम नहीं आए। क्या तुम उनसे श्रेष्ठ हो? तुम्हें बहुत घमण्ड है।

आचार्य ने उत्तर दिया- महाराज! हमारे न आने का कारण दर्प नहीं है। सांसारिक सम्बन्धों का त्याग होने के कारण जैन मुनियों का ऐसा आचार ही है। सांसारिक लाभ या हानि में वे उपेक्षा भाव रखते हैं। लोकाचार से विरुद्ध भी कोई कार्य हमने नहीं किया। राजनियमों का उल्लंघन करना हमारा आचार नहीं है। आप के राज्य में हम पवित्र संयमी जीवन का पालन कर रहे हैं। ऐसी दशा में हमें निकल जाने की आज्ञा देना ठीक नहीं है। फिर भी यदि आप ऐसा ही चाहते हों तो चतुर्मास के बाद विहार कर

देंगे। चतुर्मास में एक ही स्थान पर रहना जैनमुनियों का आचार है।

नमुचि ने गर्जते हुए कहा– अधिक बातें बनाना व्यर्थ है। यदि जीवित रहना चाहते हो तो सात दिन के अन्दर अन्दर इस स्थान को छोड़ कर चले जाओ। इसके बाद अगर किसी को यहाँ देखा तो कठोर से कठोर दण्ड दिया जायगा। नमुचि का इस प्रकार निश्चय जान कर मुनि अपने स्थान पर चले गए। सभी इकट्ठे हो कर सोचने लगे कि अब क्या करना चाहिए। एक साधु ने कहा 'विष्णुकुमार मुनि के कहने से यह शान्त हो जायगा ऐसी आशा है। इस लिए शीघ्र ही किसी मुनि को उनके पास भेजना चाहिए।' आचार्य ने पूछा– ऐसा कौनसा मुनि है जो शीघ्र से शीघ्र वहाँ जा सके। एक मुनि ने उत्तर दिया– मैं वहाँ जा सकता हूँ, वापिस नहीं आ सकता। आचार्य ने कहा– तुम चले जाओ। वापिस विष्णुकुमार स्वयं ले आएंगे। मुनि उड़ कर मन्दर पर्वत पर पहुँचा जहाँ विष्णुकुमार मुनि तपस्या कर रहे थे। सारा वृत्तान्त उन्हें कहा। उसी समय विष्णुकुमार अपनी लब्धि के बल से दूसरे मुनि को लेकर हस्तिनागपुर में पहुँच गए। आचार्य आदि को वन्दना करने के बाद वे एक साधु को साथ लेकर नमुचि के पास गए। नमुचि को छोड़ कर सभी राजा महाराजाओं ने उन्हें वन्दना की। विष्णुकुमार ने नमुचि से कहा– वर्षाकाल तक मुनियों को यहीं ठहरने दो। बाद में जैसा कहोगे वैसा कर लिया जायगा।

नमुचि ने उनके कथन की परवाह किए बिना उत्तर दिया– पाँच दिन ठहरने की भी मेरी इजाजत नहीं है। विष्णुकुमार ने कहा– नगर से बाहर उद्यान में ठहर जाँय ? नमुचि ने अधिक क्रोधित होते हुए कहा– नगर के उद्यान की बात तो दूर है, नीच पाखण्डियों को मेरे राज्य से बाहर निकल जाना चाहिए। यदि जीवित रहना चाहते हो तो शीघ्र मेरे राज्य को छोड़ दो।

तस्य भागश्चतुर्थोऽयं, संसाराभयदायिनः ।
श्रीमद्वीरजिनेन्द्रस्य, जयन्त्यां पूर्णतामगात् ॥ ६ ॥
निधिनक्षत्रसंख्येन्दौ वत्सरे वैक्रमे वरे ।
चैत्रशुक्लत्रयोदश्यां, चन्द्रवारे शुभे दिने ॥ ७ ॥

अर्थात्—जन्म मरण के झगड़े का अन्त करने वाले तथा देवता और इन्द्रों के समूह द्वारा सदा वन्दित वीतराग भगवान् के चरण युगल को नमस्कार हो ॥ १ ॥

जो मुनि लोककल्याण की भावना से प्रेरित होते हुए शास्त्र रूपी समुद्र को मथ कर उसका सार भव्य प्राणियों को देते हैं, जिन की कृपा के बिना सभी सुखों को देने वाली वर्द्धमान भगवान् की वाणी का रहस्य मालूम नहीं पड़ सकता, ऐसे तप, त्याग और सहनशीलता आदि गुणों के समुद्र, महाव्रतों से मण्डित तथा मोह का त्याग करने वाले मुनियों को मोक्षमार्ग की प्राप्ति के लिए नमस्कार करता हूँ । २-३-४ ॥

धर्म के मर्म को स्पष्ट रूप से प्रकाशित करने वाले, प्रमाणों से सहित 'श्री जैन सिद्धान्त बोल संग्रह' का चौथा भाग संसार को अभय देने वाले जिनेश्वर भगवान् श्रीमहावीर की जयन्ती के दिन विक्रम संवत् १९९९ चैत्र शुक्ला त्रयोदशी सोमवार को समाप्त हुआ ।

॥ इति शुभम् ॥